

महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास प्रणीत

नवां भाग

भीष्मपर्व अध्याय ८८ तक

अनुवादक—
श्री पं० गङ्गाप्रसादजी शास्त्री

प्रकाशक—
महाभारत-प्रकाशक-मण्डल
मालीवाड़ा दिल्ली

प्रथमवार] १९९६ विक्रम [मूल्य २॥)

प्रकाशक—

चतुरसेन गुप्त

प्रबन्धक

महाभारत प्रकाशक मण्डल

दिल्ली।



मुद्रक—

पं० काशीप्रसाद बाजपेई

प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स बाजार सीताराम

लाल दरवाजा देहली।

निवेदन



संसार के इतिहास में पृथिवी के प्रत्येक प्रदेश पर बिजली ी भांति तीव्र-गति से फैल जाने वाले दो ही धर्म प्रसिद्ध हैं, एक ौद्ध-धर्म और दूसरा इसलाम-धर्म। इसलाम धर्म के प्रचार ा श्रेय उन क्रूर वीरों को हैं, जिनकी लपलपाती करवाल (तलवार) आर्तस्वर में क्रन्दन करते हुए बाल-वृद्ध, सभी पुरुषों के रक्त को ाटती हुई नहीं थकती थी और बौद्धधर्म के प्रचार का अधिक श्रेय बौद्धधर्म की महायान शाखा को है, जिसने चीन, तिब्बत जापान आदि देशों में दीर्घोद्योग करके बौद्धधर्म का प्रचार किया।

तिब्बती भाषा के कई ग्रन्थों में लिखा है, कि महायान ाखा के आचार्य राहुलभद्र, बौद्धधर्म में दीक्षित होने से पूर्व ब्राह्मण थे। इनकी महायान पन्थ की सूझ के कारण श्रीकृष्ण और ाणेश हैं। श्रीकृष्ण, भगवद्गीता के उपदेशक और गणेश, महाभारत के लिपि-कर्ता (लेखक) हैं। एक ब्राह्मण को महाभारत और गीता का परिचय होना सहज ही है। इस प्रकार महाभारत या गीता के आधार पर निवृत्ति-प्रधान बौद्धधर्म में एक-दम प्रवृत्ति-प्रधान महायान सम्प्रदाय की उत्पत्ति हो गई।

ईसा की उत्पत्ति से दो सौ तीन सौ वर्ष पूर्व ही अशोक के भेजे हुए बौद्ध भिक्षु, मिश्र, एलेक्जेंड्रिया और यूनान तक पहुंच चुके

थे। ईसा की उत्पत्ति के समय में भी बौद्धभिक्षु जेरुसलम गए थे। प्लूटार्क ने साफ लिखा है, कि ईसा के जीवन काल में भारत का कोई भिक्षु, लाल समुद्र के तट और एलेक्जेंड्रिया के प्रदेशों में प्रति वर्ष आया करता था। नैपाल के किसी बौद्ध मठ में एक ग्रन्थ मिला है, जिस में ईसा के भारत में आने और उसके बौद्ध-धर्म के ज्ञान प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। बौद्धों के महा-यान सम्प्रदाय की उत्पत्ति महाभारत और गीता से हुई है। इस से कहना होगा, कि परम्परा से महाभारत और गीता ही ईसाई धर्म की उत्पत्ति का भी आदिस्रोत है।

अनेक पश्चिमीय विद्वान्, प्रत्यक्ष-रूप से ही गीता को ईसाई धर्म का मूल स्रोत बताते हैं। डाक्टर लारिनसर ने गीता के जर्मनी अनुवाद में सो से अधिक स्थल गीता और बाइबिल के एक से बताए हैं। हाल्डेन एडवर्ड सैम्पसनने कहा है, कि श्रीमद्भगवद्गीता ईसाई धर्मशास्त्रों से समानता रखती है, जिनसे इसके आध्या-त्मिक तत्व, पूर्णतया मिलते हैं। यह प्रत्यक्ष है, कि ईसा तथा उसके धर्म प्रचारक विशेष करके पाल इन वैदिक शास्त्रों को अपने साथ रखते थे और वे स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा उपदेश किये हुए इस धर्मज्ञान के समझने में निपुण थे।

ईसाई धर्म के नेस्टोरियन सम्प्रदायका इसलाम पर बहुत ही प्रभाव पड़ा है। सेल साहब ने लिखा है, कि ईसा के अनन्तर उत्पन्न हुए इसलाम धर्म में कई जगह ईसा

के चरित्र को ज्यों का त्यों उल्था करके रख लिया है। सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, नूह आदि की कथा ज्यों की त्यों ले ली गई है। बौद्ध धर्म और नेस्टोरियन सम्प्रदाय में कितना अधिक-साम्य है, इस विषय पर मि० आर्थर लिली ने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा है। इस दशा में तो यही कहना होगा, कि इसलाम धर्म में जो कुछ भक्ति की झलक है, वह भी लुढ़कती हुई श्रीमद्भगवद्गीता से ही वहां पहुंची है।

"गीता का किसी जाति विशेष या धर्म विशेष से सम्बन्ध नहीं है। इसे संसार की सारी जातियों की धर्म पुस्तक समझनी चाहिए। गीता को यदि दिव्यज्ञान की खानि कहें-तो कोई अत्युक्ति नहीं।

(के खुशरू जे० दस्तूर एम० ए० एल० एल० बी०)

"किसी भी जाति को उन्नतिके शिखर पर चढ़ाने के लिए गीता का उपदेश अद्वितीय है। गीता सबसे बढ़कर भावी विश्व-धर्म का धर्म-ग्रन्थ है।" (एफ० टी० ब्रूक्स,)

"भगवद्गीता में इतना उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है, कि उसके लिखने वाले देवता को हुए अगणित वर्ष हो जाने पर भी उसके समान दूसरा एक भी ग्रन्थ अभी तक नहीं लिखा गया। मैं नित्य प्रातःकाल अपने हृदय और बुद्धि को गीता-रूपी पवित्र जल में स्नान करवाता हूं। (महात्मा थारो)

"जब मुझे निराशाएँ घेरती हैं और आकाश मण्डल पर कोई ज्योति की किरण दृष्टिगोचर नहीं होती, उस समय मैं गीता को

ओर ध्यान देता हूं, इसको देखकर मैं घोर शोकाकुल अवस्था में भी मुस्कुराने लगता हूँ।" (महात्मा गान्धी)

"मेरा विश्वास है, कि पृथ्वी मण्डल की प्रचलित भाषाओं में भगवान् श्रीकृष्ण की कही हुई भगवद्गीता के समान विपुल ज्ञान पूर्ण कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है। गीता सारे जगत् के मनुष्यों की निधि है। (महामना-पं० मदनमोहन मालवीय)

"हम तो अपनी सहायता और प्रकाश के लिए गीता की शरण लेते हैं। (अरविन्द घोष)

गीता हमारे धर्मग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी, निर्मल हीरा है। दुःखी आत्मा को शान्ति पहुंचा देनेवाला, आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देने वाला और संक्षेप में चराचर जगत् के गूढ़तत्त्वों को समझा देनेवाला, गीता के समान कोई ग्रन्थ सम्पूर्ण विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है। (लो० बालगंगाधर तिलक)

पाठको! आज हम भी इस गीतारूपी कोहनूर हीरे के उत्पत्ति-स्थान महाभारत रूपी रत्नाकर को साथ लेकर आपकी सेवा में उपस्थित होते हैं और आशा करते हैं, कि आप इसका स्वाध्याय करके हिन्दूजाति और अपने हित के मार्ग का अवश्य अवलम्बन करके हमको अनुगृहीत करेंगे—

भवदीय—गङ्गाप्रसाद शास्त्री, दिल्ली

———***———

विषयानुक्रमणिका

भीष्मपर्व अध्याय ८८ तक

महाभारत चित्र संख्या ६६



भगवान श्रीकृष्ण का अर्जुन को गीतोपदेश



महाभारत

श्री भीष्म-पर्व

अथ जम्बू-खण्ड-विनिर्माण-पर्व

नवां भाग

पहला अध्याय

श्रीगणेशाय नमः । श्रीवेदव्यासाय नमः ।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

जनमेजय उवाच—

कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः ॥१॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! अब आप प्रथम यह बताइए, कि कौरव, पाण्डव और सोमकवंशी वीर तथा अनेक देशों से आये हुए महात्मा राजाओं ने किस प्रकार युद्ध किया ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

यथा युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
कुरुक्षेत्रे तपःक्षेत्रे शृणु त्वं पृथिवीपते ॥२॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे पृथिवीपते ! जनमेजय ! जिस प्रकार कर्म भूमि कुरुक्षेत्र में कौरव पाण्डव और सोमकवंशी वीरों ने युद्ध किया, मैं तुमको वे सारे समाचार सुनाता हूँ-तुम ध्यान से सुनो ॥२॥

तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सहसोमकाः ।
कौरवाः समवर्त्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः ॥३॥

सोमकवंशी क्षत्रियों के साथ पाण्डव कुरुक्षेत्र में पहुँचे और कौरव वहां प्रथम से ही विद्यमान थे। अब ये दोनों महाबली पक्ष परस्पर एक दूसरे के विजय करने की अभिलाषा में अपने २ दावपेच सोच रहे थे ॥३॥

वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
आशंसन्तो जयं युद्धे बलेनाऽभिमुखा रणे ॥४॥

ये सारे वीर वेद के अध्ययन में तत्पर थे और सारे ही युद्ध के उत्साह में भरे हुए थे। ये सब युद्ध में अपनी २ विजय की आशा लगाए हुए थे और अपनी २ सेना के साथ रणोन्मुख हो रहे थे ॥४॥

अभियाय च दुर्धर्षा धार्त्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ।
प्राङ्मुखाः पश्चिमे भागे न्यविशन्त ससैनिकाः ॥५॥

पाण्डवों की सेना, दुर्धर्ष, धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन की सेना की ओर चलदी। पाण्डवों के सेनापतियों ने अपने सैनिकों के साथ पश्चिम की ओर पूर्व को मुख करके अपना पड़ाव डाला ॥५॥

समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिविराणि सहस्रशः ।
कारयामास विधिवत्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥६॥

कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर ने समन्तपञ्चक तीर्थ से बाहर विधिपूर्वक अपने सहस्रों तम्बू डेरे डाल दिए ॥६॥

शून्या च पृथिवी सर्वा बालवृद्धावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवाऽऽसीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥७॥

इस समय सारी पृथिवी, पर केवल बालक और वृद्ध शेष रह गए थे। रथ, हाथी, अश्व और युवा पुरुषों से शून्य सी प्रतीत होती थी ॥७॥

यावत्तपति सूर्यो हि जम्बूद्वीपस्य मण्डलम् ।
तावदेव समायातं बलं पार्थिवसत्तम ॥८॥

हे पार्थिव श्रेष्ठ ! जितनी दूर तक पृथिवी पर जम्बू द्वीप आदि देशों में सूर्य तपता है, उतने ही देशों से सेना इकट्ठी होकर पाण्डव और कौरवों में आ मिली ॥८॥

एकस्थाः सर्ववर्णास्ते मण्डलं बहुयोजनम् ।
पर्याक्रामन्त देशांश्च नदीः शैलान्वनानि च ॥९॥

उन सेनाओं में सारे वर्ण एक स्थान पर इकट्ठे हो रहे थे। उनका मण्डल कई योजन तक फैला हुआ था। उन्होंने कुरुक्षेत्र के अनेक प्रदेश, नदी, शैल और वनों का बहुत सा भाग घेर लिया ॥९॥

तेषां युधिष्ठिरो राजा सर्वेषां पुरुषर्षभ ।
व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥१०॥

हे पुरुषर्षभ ! धर्मराज युधिष्ठिर ने बाहर से आई हुई और अपनी सेना के भक्ष्य और भोजन की समुचित रूप से व्यवस्था कर दी ॥१०॥

शय्याश्च विविधास्तात तेषां रात्रौ युधिष्ठिरः ।
एवंवेदी वेदितव्यः पाण्डवेयोऽयमित्युत ॥११॥

हे तात ! रात्रि में शयन के लिए सबको अनेक शय्याओं का भी प्रबन्ध कर दिया। पाण्डु-पुत्र—इस प्रकार अपनी सारी सेना की जानकारी (खबरदारी) रखता था ॥११॥

अभिज्ञानानि सर्वेषां संज्ञाश्चाऽऽभरणानि च ।
योजयामास कौरव्यो युद्धकाल उपस्थिते ॥१२॥

इस युद्ध काल के उपस्थित होने पर कुरुवंश श्रेष्ठ धर्मराज ने सबके पृथक् पृथक् चिन्ह, संज्ञा और आभूषण, नियत किए।

दृष्ट्वा ध्वजाग्रं पार्थस्य धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
सह सर्वैर्महीपालैः प्रत्यव्यूहत पाण्डवम् ॥१३॥

महामनस्वी राजा दुर्योधन, कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर की ध्वजा को देख कर अपने साथी राजाओं के साथ राजा युधिष्ठिर के पास पहुंचा ॥१३॥

पाण्डुरेणाऽऽतपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि ।
मध्ये नागसहस्रस्य भ्रातृभिः परिवारितः ॥१४॥

राजा दुर्योधन के मस्तक पर श्वेतछत्र विराजमान था। यह एक सहस्र हाथियों के मध्य में अपने भाइयों से युक्त था ॥१४॥

दृष्ट्वा दुर्योधनं हृष्टाः पञ्चाला युद्धनन्दिनः ।
दध्मुः प्रीता महाशङ्खान्भेरीश्च मधुरस्वनाः ॥१५॥

पञ्चाल वीर भी युद्ध के बड़े अभिलाषी थे। वे राजा दुर्योधन को देख कर बड़े प्रफुल्लित हुए। इन्होंने बड़ी प्रसन्नता से अपने २ शंख और मधुर ध्वनि करने वाली भेरी बजाना आरम्भ किया ॥१५॥

ततः प्रहृष्टां तां सेनामभिवीक्ष्याऽथ पाण्डवाः ।
बभूवुर्हृष्टमनसो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥१६॥

पाण्डव तथा महापराक्रमी श्रीकृष्ण, अपनी सेना को इस तरह प्रफुल्लित देख कर अपने चित्त में बड़े ही प्रफुल्लित हुए।

ततो हर्षं समागम्य वासुदेवधनञ्जयौ ।
दध्मतुः पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ शङ्खौ रथे स्थितौ ॥१७॥

वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और धनञ्जय अर्जुन दोनों ही पुरुष श्रेष्ठ, अत्यन्त हर्ष को प्राप्त होकर रथ में बैठे २ दिव्य शंख बजाने लगे ॥१७॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं देवदत्तस्य चोभयोः ।
श्रुत्वा तु निनदं योधाः शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥१८॥

कौरवों की सेना के वीर श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शंख और धनञ्जय अर्जुन के देवदत्त शंख की ध्वनि सुनकर मल-मूत्र छोड़ने लगे ॥१८॥

यथा सिंहस्य नदतः स्वनं श्रुत्वेतरे मृगाः ।
त्रसेयुर्निनदं श्रुत्वा तथाऽसीदत तद्बलम् ॥१९॥

सिंह की ध्वनि को सुनकर जैसे वन के अन्य मृग आदि जन्तु भयभीत हो जाते हैं, उसी तरह इनके शंखों की ध्वनि सुनकर कौरवों की सेना भयभीत हो गई॥१९॥

उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
अस्तङ्गत इवाऽऽदित्ये सैन्येन सहसाऽऽवृते ॥२०॥

इस समय भूमि से इतनी धूलि उठी, कि कुछ भी दिखाई नहीं देता था। सेना से घिरा हुआ प्रदेश अन्धकार से ऐसे ढक गया—जैसे मानो सूर्य छुप गया हो ॥२०॥

ववर्ष तत्र पर्जन्यो मांसशोणितवृष्टिमान् ।
दिक्षु सर्वाणि सैन्यानि तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२१॥

वहां पर मेघ, मांस और रक्त की वर्षा करने लगा, सब दिशाओं में सारी सेना पर यह बड़ी ही अद्भुत बात दिखाई देती थी ॥२१॥

वायुस्ततः प्रादुरभूनीचैः शर्करकर्षणः ।
विनिघ्नंस्तान्यनीकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥२२॥

वहां पर मोटे २ बालु कणों को लेकर तीव्रता से वायु चलने लगा। यह सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में झपेटे मार २ सेना को क्लेशित करने लगा ॥२२॥

उभे सैन्ये च राजेन्द्र युद्धाय मुदिते भृशम् ।
कुरुक्षेत्रे स्थिते यत्ते सागरक्षुभितोपमे ॥२३॥

हे राजेन्द्र ! कुरुक्षेत्र में उछलते हुए समुद्र के तुल्य, सावधानी से खड़ी हुई दोनों ओर की सेनाएं युद्ध के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रही थी ॥२३॥

तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु सङ्गमः ।
युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव ॥२४॥

उन दोनों सेनाओं का वह संगम बड़ा ही अद्भुत था। यह प्रलय काल में उछलते दोनों समुद्रों की वेला के समान प्रतीत होता था ॥२४॥

शून्याऽऽसीत्पृथिवी सर्वा वृद्धबालावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवाऽऽसीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥२५॥
तेन सेनासमूहेन समानीतेन कौरवैः ।

इस समय सारी पृथिवी युवा पुरुषों से शून्य हो रही थी, उस पर बालक और वृद्ध ही शेष रह गए हों—ऐसा प्रतीत होता था। रथ, हाथी, अश्व और पुरुषों के दोनों सेनाओं में चले जाने से जगत् इनसे शून्य सा दिखाई देता था। यह सारी दशा कौरवों द्वारा इकट्ठी की हुई सेना की अधिकता के कारण से थी।

ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः ॥२६॥
धर्मान्संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ।

हे भरतर्षभ! कौरव, पाण्डव और सोमक क्षत्रियों ने मिलकर युद्ध के नियम और धर्मों को निश्चित किया ॥२६॥

निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात्प्रीतिर्नः परस्परम् ॥२७॥
यथापरं यथायोगं न च स्यात्कस्यचित्पुनः।

जब शास्त्रानुसार युद्ध बन्द कर दिया जावे, तब दोनों पक्षों की परस्पर प्रीति पूर्ववत् हो जानी चाहिए। दो तुल्य योद्धाओं का ही संघर्ष हो—इसका अतिक्रमण न किया जावे और न किसी प्रकार अन्याय से युद्ध में कोई प्रवृत्त हो ॥२७॥

वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम्।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन ॥२८॥

जब वाणी का युद्ध हो रहा हो-तो उसका उत्तर वाणी से ही देना उचित है। जब युद्ध भूमि से सेना निकल गई-तो फिर उस पर किसी प्रकार आक्रमण न किया जावे ॥२८॥

रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः ।
अश्वेनाऽश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥२९॥

हे भारत, जो रथारोही हैं, वह रथारोही से और जो गजारोही है, वह गजारोही से लड़े। इसी प्रकार अश्वारोही अश्वारोही से और पैदल सैनिक पैदल से युद्ध करे ॥२९॥

यथायोगं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम् ।
समाभाष्य प्रहर्त्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले ॥३०॥

जब कभी प्रहार किया जावे, तो यथा-योग्य अपने तुल्य शक्ति वाले के साथ कामनानुसार उसको चैतन्य करके उस पर प्रहार करे, कभी भी विश्वास से बैठे हुए पर धोखे से शस्त्र का प्रहार नहीं करना चाहिए ॥३०॥

एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा ।
क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन ॥३१॥

किसी एक व्यक्ति के साथ जाने वाले शरणागत, युद्ध से विमुख, शस्त्र हीन, और कवच रहित वीर को कभी नहीं मारा जा सकेगा ॥३१॥

न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु ।
न भेरीशङ्खवादेषु प्रहर्त्तव्यं कथञ्चन ॥३२॥

इसी तरह सारथि, रथ के अग्रगामी, शस्त्र ले चलने वाले तथा शंख और भेरी बजाने वालों पर कभी प्रहार नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

एवं ते समयं कृत्वा कुरुपाण्डवसोमकाः ।
विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षमाणाः परस्परम् ॥३३॥

इस प्रकार कुरु, पाण्डव और सोमक वंशजों ने परस्पर नियम निश्चित किया। ये आपस में एक दूसरे को देख २ कर बड़ा ही अचम्भा कर रहे थे ॥३३॥

निर्विश्य च महात्मानस्ततस्ते पुरुषर्षभाः ।
हृष्टरूपाः सुमनसो बभूवुः सहसैनिकाः ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि
सैन्यशिक्षणे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

इसके अनन्तर वे महावीर महात्मा, बड़े प्रसन्न चित्त और सुखी मन वाले होकर अपने २ सैनिकों में जा मिले ॥३४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्ड विनिर्माणपर्व में सैन्यशिक्षण का प्रथम अध्याय पूरा हुआ।



दूसरा अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

ततः पूर्वापरे सैन्ये समीक्ष्य भगवानृषिः ।
सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इसके अनन्तर सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता, सत्यवतीसुत भगवान् महर्षि वेदव्यास ने आकर आगे पीछे से दोनों सेनाओं को देखा ॥१॥

भविष्यति रणे घोरे भरतानां पितामहः ।
प्रत्यक्षदर्शी भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥२॥

ये भगवान व्यासदेव, भरत वंश के पितामह थे और भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान् के प्रत्यक्ष देखने वाले थे। इन्होंने जान लिया, कि अब रण में भरत वंश का घोर विनाश होगा ॥२॥

वैचित्रवीर्यं राजानं सरहस्यं ब्रवीदिदम् ।
शोचन्तमार्त्तं ध्यायन्तं पुत्राणामनयं तदा ॥३॥

इस समय विचित्र वीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों का अन्याय सोच कर बड़े दुःखी हो रहे थे। उस समय महर्षि वेद-व्यास वहां पहुंचे और वे कातर हुए राजा धृतराष्ट्र से एकान्त में ये वचन बोले ॥३॥

व्यास उवाच—

राजन्परीतकालास्ते पुत्राश्चाऽन्ये च पार्थिवाः ।
ते हिंसन्तीव संग्रामे समासाद्येतरेतरम् ॥४॥

व्यास जी ने कहा—हे राजन् ! तेरे पुत्र और ये अन्य राजा काल के वश में हो रहे हैं। ये सब संग्राम में एक दूसरे का वध करते हुए मुझे दिखाई दे रहे हैं ॥४॥

तेषु कालपरीतेषु विनश्यत्स्वेव भारत।
कालपर्यायमाज्ञाय मा स्म शोके मनः कृथाः ॥५॥

हे भारत ! यदि कालके वश में होने से इनका विनाश भी हो जावे-तो तुम को काल की महिमा का ज्ञान कर के इसका शोक नहीं करना चाहिए ॥५॥

यदि चेच्छसि संग्रामे द्रष्टुमेतान्विशाम्पते ।
चक्षुर्ददामि ते पुत्र युद्धं तत्र निशामय ॥६॥

हे विशाम्पते ! जो तुम युद्ध करते हुए अपने पुत्रों को देखना चाहते हो-तो लो मैं तुम को दिव्यचक्षु दिए देता हूँ। हे पुत्र ! तुम उन चक्षुओं से सब कुछ देख सकोगे ॥६॥

धृतराष्ट्र उवाच—

न रोचये ज्ञातिवधं द्रष्टुं ब्रह्मर्षिसत्तम ।
युद्ध मेतत्त्वशेषेण शृणुयां तव तेजसा ॥७॥

धृतराष्ट्र बोले—हे ब्रह्मर्षि-सत्तम ! मैं अपने बान्धवों का वध देखना नहीं चाहता हूं, परन्तु मैं इस सारे युद्ध की घटनाओं को भी ठीक २ तुम्हारे दिव्य तेज के कारण सुन लेना चाहता हूं।

वैशम्पायन उवाच—

एतस्मिन्नेच्छति द्रष्टुं संग्रामं श्रोतुमिच्छति ।
वराणामीश्वरो व्यासः सञ्जयाय वरं ददौ ॥८॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे राजन् ! इस प्रकार युद्ध के देखने की अनिच्छा और सुनने की इच्छा करते हुए राजा धृतराष्ट्र को देखकर वर देने वालों में समर्थ महर्षि वेदव्यास ने सञ्जय के लिए वर प्रदान किया ॥८॥

व्यास उवाच—

एष ते सञ्जयो राजन्युद्धमेतद्वदिष्यति ।
एतस्य सर्वसंग्रामे न परोक्षं भविष्यति ॥९॥

हे राजन् ! इस युद्ध के समाचार यह सञ्जय सुनाया करेगा जिससे अब आपको यह सारा संग्राम प्रत्यक्ष दिखाई देता रहेगा

चक्षुषा सञ्जयो राजन्दिव्येनैव समन्वितः ।
कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति ॥१०॥

हे राजन् ! यह सञ्जय दिव्य दृष्टि से युक्त होगा—यह तुम्हें सारा सुना देगा—क्योंकि युद्ध के सारे विषय का यह सर्वज्ञ होगा

प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा दिवा वा यदि वा निशि ।
मनसा चिन्तितमपि सर्वं वेत्स्यति सञ्जयः ॥११॥

जो युद्ध की घटना प्रकाश में आवेगी या न आवेगी तथा जो दिन में होगी या रात में होगी, या कोई मन में विचारेगा-उन सबको यह सञ्जय अपनी दिव्य दृष्टि से ज्यों की त्यों देख लेगा ।

नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं बाधिष्यते श्रमः ।
गावल्गणिरयं जीवन्युद्धादस्माद्विमोक्ष्यति ॥१२॥

इसको न तो शस्त्र काट सकेंगे और न इस पर किसी परिश्रम का प्रभाव पड़ेगा। यह गवलगण का पुत्र सञ्जय इस युद्ध के देखते २ जीवन्मुक्त हो जावेगा ॥१२॥

अहं तु कीर्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः ॥१३॥

हे भरतर्षभ ! मैं इन कौरव और पाण्डवों की कीर्ति का गान करके संसार में उसको प्रसिद्ध करूंगा-तुम इसकी चिन्ता न करो

दिष्टमेतन्नरव्याघ्र नाऽभिशोचितुमर्हसि ।
न चैव शक्यं संयन्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥१४॥

हे नर व्याघ्र ! यह सब कुछ होनहार के वश में हो रहा है, तुम को इसकी चिन्ता करना उचित नहीं है। कोई होनहार के रोक देने में समर्थ नहीं है। जिधर धर्म होगा उधर ही तुम्हें विजय समझनी चाहिए ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा स भगवान्कुरूणां प्रपितामहः ।
पुनरेव महाभागो धृतराष्ट्रमुवाच ह ॥१५॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! इतना कह कर कुरुवंशजों के पितामह भगवान् महर्षि व्यासदेव, फिर धृतराष्ट्र से कहने लगे।

इह युद्धे महाराज भविष्यति महान्क्षयः ।
तथेह च निमित्तानि भयदान्युपलक्षये ॥१६॥

हे महाराज ! इस युद्ध में बहुत अधिक विनाश होगा, क्योंकि मैं ऐसे ही लक्षण देख रहा हूँ, जो बड़े भय-दायक प्रतीत होते हैं

श्येना गृध्राश्च काकाश्च कङ्काश्च सहिता बकैः ।
सम्पतन्ति नगाग्रेषु समवायांश्च कुर्वते ॥१७॥

श्येन (बाज) गीध, काक, बक, कंक, वृक्षों की चोटियों पर उड़ २ कर बैठते हैं और वहां इनका समूह इकट्ठा हो जाता है ।

अभ्यग्रं च प्रपश्यन्ति युद्धमानन्दिनो द्विजाः ।
क्रव्यादा भक्षयिष्यन्ति मांसानि गजवाजिनाम् ॥१८॥

युद्ध को देखकर प्रसन्न होने वाले पक्षी सामने आ २ कर उड़ते हैं और मांस भोजी गीध और काक; हाथी और अश्वों के मांस खाने के लालायित हो रहे हैं ॥१८॥

निर्दयं चाऽभिवाशन्तो भैरवा भयवेदिनः ।
कङ्काः प्रयान्ति मध्येन दक्षिणामभितो दिशम् ॥१९॥

अत्यन्त भयके सूचक निर्दयतापूर्ण शब्द करते हुए कंकपक्षी मध्य में होकर दक्षिण दिशा को उड़े चले जाते हैं ॥ १९ ॥

उभे पूर्वापरे संध्ये नित्यं पश्यामि भारत ।
उदयास्तमने सूर्यं कबन्धैः परिवारितम् ॥२०॥

हे भारत ! मैं नित्य प्रातः सायंकाल की दोनों संध्याओं को देखता हूँ, कि सूर्य के उदय और अस्तकाल में सूर्य कबन्धों से घिरा हुआ दृष्टि गोचर आता है ॥२०॥

श्वेतलोहितपर्यन्ताः कृष्णग्रीवाः सविद्युतः ।
त्रिवर्णाः परिघाः सन्धौ भानुमन्तमवारयन् ॥२१॥

इसी सन्धिकाल में सूर्य को श्वेत, रक्त और कृष्णवर्ण का मण्डल घेरे रहता है जो तीनवर्ण का मण्डल, विद्युत् के समान चमकीला होता है ॥२१॥

ज्वलितार्केन्दुनक्षत्रं निर्विशेषदिनक्षयम् ।
अहोरात्रं मया दृष्टं तद्भयाय भविष्यति ॥२२॥

मैंने अब की बार दो दिन तक तिथि का क्षय देखा है। सूर्य और चन्द्रमाने अमावस्या में . दुर्ग्रह पर से संक्रमण किया है। यह योग बड़े ही भय का उत्पादन करने वाला है ॥२२॥

अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम् ।
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्थले ॥२३॥

लाल वर्ण के आकाश में चन्द्रमा भी अग्नि के समान लाल २ दिखाई देता है, और कार्तिक की पूर्णमासी को चन्द्रमा बिल्कुल ही कान्ति से हीन था, जो दिखाई भी नहीं देता था ॥२३॥

स्वप्स्यन्ति निहता वीरा भूमिमावृत्य पार्थिवाः ।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ॥२४॥

इन सब अपशकुनों का यही फल दिखाई देता है, कि अर्गला के समान लम्बी २ भुजा वाले अनेक शूरवीर मारे हुए राजा, महाराजा और राजकुमार, भूमि को घेर कर रणाङ्गण में शयन करेंगे ॥२४॥

अन्तरिक्षे वराहस्य वृषदंशस्य चोभयोः ।
प्रणादं युद्ध्यतो रात्रौ रौद्रं नित्यं प्रलक्षये ॥२५॥

मैं तो रात में आकाश में वराह और बिलाव का युद्ध देखता हूं-जो आकाश में कूद २ कर बड़ा चीत्कार करते हैं । यह बड़ा ही भयानक दृश्य है ॥२५॥

देवताप्रतिमाश्चैव कम्पन्ति च हसन्ति च ।
वमन्ति रुधिरं चाऽऽस्यैः खिद्यन्ति प्रपतन्ति च॥२६॥

आज कल देवताओं की प्रतिमा कांपती, हँसती, मुख से रक्त उगलती, पसीने से भरी हुई और गिरती दिखाई देती हैं॥२६॥

अनाहता दुन्दुभयः प्रणदन्ति विशाम्पते ।
अयुक्ताश्च प्रवर्त्तन्ते क्षत्रियाणां महारथाः ॥२७॥

हे विशाम्पते ! इस समय बिना बजाई हुई दुन्दुभियां बज पड़ती हैं और क्षत्रियों के बड़े २ रथ बिना अश्वों के चल देते हैं

कोकिलाः शतपत्राश्च चाषा भासाः शुकास्तथा ।
सारसाश्च मयूराश्च वाचो मुञ्चन्ति दारुणाः ॥२८॥

कोयल, शतपत्र (खुरबढैया) चाष (नील कण्ठ) भास, तोता सारस, मयूर, आदि पक्षी, बड़े दारुण शब्द करते हैं ॥२८॥

गृहीतशस्त्राः क्रोशन्ति चर्मिणो वाजिपृष्ठगाः ।
अरुणोदये प्रदृश्यन्ते शतशः शलभव्रजाः ॥२९॥

चर्मी (भृङ्गरिटि) नामक पक्षी शस्त्र के समान अपनी तीखी चोंचों से अश्वों की पृष्ठों को पीड़ित करते हुए दारुण शब्द करते

हैं एवं इसी तरह सूर्य उदय के समय अनेक कृष्ण-शलभ दृष्टि गोचर होते हैं ॥२६॥

उभे सन्ध्ये प्रकाशन्ते दिशो दाहसमन्विते ।
पर्जन्यः पांसुवर्षी च मांसवर्षी च भारत ॥३०॥

हे भारत ! दोनों संध्या काल में दिशाएं जलने लगती हैं और मेघ मिट्टी धूलि और मांस की वर्षा करता है ॥३०॥

या चैषा विश्रुता राजंस्त्रैलोक्ये साधुसम्मता ।
अरुन्धती तयाऽप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः ॥३१॥

हे राजन् ! यह जो जगत् में अरुन्धती तारा विख्यात है, जिसकी त्रिलोकी वन्दना करता है, उस अरुन्धती ने भी वसिष्ठ नामक तारे को पीछे छोड़ दिया है ॥३१॥

रोहणीं पीडयन्नेष स्थितो राजञ्शनैश्चरः ।
व्यावृत्तं लक्ष्म सोमस्य भविष्यति महद्भयम् ॥६२॥

हे राजन् ! शनैश्चर तारा भी रोहिणीशकट का भेदन करने जा रहा है । चन्द्रमा के भी उलटे लक्षण हैं, इस से प्रतीत होता है, कि महान् क्षय होकर रहेगा । ॥३२॥

अनभ्रे च महाघोरः स्तनितः श्रूयते स्वनः ।
वाहनानां च रुदतां निपतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि श्रीवेदव्यासप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

बिना बादलों के बिजली की घोर कड़क सुनी जाती है। अश्व आदि वाहन इतने रो रहे हैं, कि उनकी आंखों से टप २ अश्रु-बिन्दु टपक रहे हैं ॥३३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माण पर्व में श्रीवेदव्यास के दर्शन का द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ

तीसरा अध्याय

व्यास उवाच—

खरा गोषु प्रजायन्ते रमन्ते मातृभिः सुताः ।
अनार्तवं पुष्पफलं दर्शयन्ति वनद्रुमाः ॥१॥

व्यास जी बोले—हे राजन्! आज कल गौओं में गधे उत्पन्न हो रहे हैं। पुत्र अपनी माताओं के साथ रमण करने लगे हैं। वन के वृक्ष विना ऋतुओं के ही पुष्प और फूल देने लगे हैं ॥१॥

गर्भिण्योऽजातपुत्राश्च जनयन्ति विभीषणान् ।
क्रव्यादाः पक्षिभिश्चापि सहाऽश्नन्ति परस्परम् ॥२॥

गर्भिणी स्त्रियों के पुत्र उत्पन्न नहीं होकर अनेक भीषण वस्तु उत्पन्न हो रही हैं। इसके अतिरिक्त मांस-भोजी कुत्ते सियार पक्षियों के साथ मिल कर भोजन करते हैं ॥२॥

त्रिविषाणाश्चतुर्नेत्राः पञ्चपादा द्विमेहनाः ।
द्विशीर्षाश्च द्विपुच्छाश्च दंष्ट्रिणः पशवोऽशिवाः ॥३॥

तीन सींग, चार नेत्र, पांच पाद, दो मूत्रेन्द्रिय, दो शिर, दो पुच्छ धारी, दाँत वाले भयानक पशु दिखाई पड़ते हैं। ।।३।।

जायन्ते विवृतास्याश्च व्याहरन्तोऽशिवा गिरः।
त्रिपदाः शिखिनस्तार्च्याश्चतुर्दंष्ट्रा विषाणिनः ।।४।।

कुछ ऐसे पशु भी दिखाई देने लगे हैं, जिनके मुंह खुले हुए हैं और जो भयानक शब्द कर रहे हैं। तीन पैर चार दांत के सींग वाले शिखाधारी तार्च्य नामक ये ही पक्षी हैं ।।४।।

तथैवाऽन्याश्च दृश्यन्ते स्त्रियो वै ब्रह्मवादिनाम् ।
वैनतेयान्मयूरांश्च जनयन्ति पुरे तव ।।५।।

हे राजन्! तुम्हारे पुर में ब्रह्मवादियों की ऐसी स्त्रियां भी दिखाई देरही हैं, जो वैनतेय और मयूरों को उत्पन्न कर रही है।

गोवत्सं वडवा सूते श्वा शृगालं महीपते ।
कुक्कुरान्करभाश्चैव शुकाश्चाऽशुभवादिनः ।।६।।

हे महीपते! घोड़ी के पेट से गौ का बछड़ा उत्पन्न होता है और कुत्ती-गीदड़ उत्पन्न कर रही है। करभ नामक मृगी कुत्तों को पैदा करती है और शुक अशुभ वाणी बोलते हैं ।।६।।

स्त्रियः काश्चित्प्रजायन्ते चतस्रः पञ्च कन्यकाः ।
जातमात्राश्च नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ।।७।।

किसी २ स्त्री के इकठी ही चार २ और किसी के पांच २ कन्याएँ उत्पन्न होते ही सब नांचने और हँसने लगती है ।।७।।

पृथग्जनस्य सर्वस्य क्षुद्रकाः प्रहसन्ति च ।
नृत्यन्ति परिगायन्तो वेदयन्तो महद्भयम् ॥८॥

नीच जनों में कुबड़े लंगड़े लूले आदि मनुष्य, हँसते, नाचते और गाते हैं, जिससे बड़ा भय सूचित होता है ॥८॥

प्रतिमाश्चाऽऽलिखन्त्येताः सशस्त्राः कालचोदिताः ।
अन्योन्यमभिधावन्ति शिशवो दण्डपाणयः ॥९॥

काल से प्रेरित, शस्त्र धारण किये हुए प्रतिमाएं भी लड़ती हैं और दण्ड हाथ में लेकर बच्चे एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं

अन्योन्यमभिमृद्नन्ति नगराणि युयुत्सवः ।
पद्मोत्पलानि वृक्षेषु जायन्ते कुमुदानि च ॥१०॥

युद्ध के अभिलाषी मनुष्य, एक दूसरे के और उन नगरों का विनाश करते है तथा वृक्षों के साख पर कमल और कुमुद पैदा हो रहे है ॥१०॥

विष्वग्वाताश्च वान्त्युग्रा रजो नाऽप्युपशाम्यति ।
अभीक्ष्णं वर्त्तते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ॥११॥

चारों ओर बड़ी उग्र आंधी चलती है और धूलि मिट्टी शान्त नहीं होती है । निरन्तर भूमि जलती रहती है एवं सूर्य को राहु ग्रस रहा है ॥११॥

श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ।
अभावं हि विशेषेण कुरूणां तत्र पश्यति ॥१२॥

श्वेतग्रह केतु तारा चित्रानक्षत्र पर जाकर स्वाति पर अतिक्रमण कर रहा है। इससे कौरवों के विनाश का सूचन होता है।

धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाऽऽक्रम्य तिष्ठति।
सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महाग्रहः ॥१३॥

महाघोर धूम केतु तारा पुष्य नक्षत्र का वेध कर रहा है। यह महाग्रह, दोनों सेनाओं के लिए बड़ा ही अशुभ का सूचक है।

मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥१४॥

वक्री होकर मघानक्षत्र पर मंगल पहुंच गया। श्रवण पर बृहस्पति चला गया है। पूर्वा फाल्गुणी नक्षत्र का आक्रमण करके सूर्य पुत्र शनि उत्तरा फाल्गुनी पर पहुंच गया है ॥१४॥

शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते।
उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्षते ॥१५॥

शुक्र का तारा पूर्वा भाद्रपद पर पूर्व में चमक रहा है और वह अब उत्तरा भाद्रपद पर जाने वाला है ॥१५॥

श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं जेष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥१६॥

केतु संज्ञक श्वेत ग्रह, धूम सहित अग्नि के समान देदीप्यमान है। यह इन्द्र सम्बन्धी तेजस्वी नक्षत्र, जेष्ठा नक्षत्र का आक्रमण करके स्थित है ॥१६॥

ध्रुवं प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्त्तते ।
रोहिणीं पीडयत्येवमुभे च शशिभास्करौ ।
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥१७॥

पुरुष ग्रह राहु, बड़ा घोर है जो सदा वक्री होकर चलता है। यह रोहिणी शकट का वेध करके चन्द्र और सूर्य इन दोनों को पीड़ित कर रहा है। यह ग्रह इस समय चित्रा और स्वाति के मध्य में है ॥१७॥

वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः ।
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ॥१८॥

अग्नि तुल्य मंगल भी मघानक्षत्र पर है, वह बार २ वक्री हो कर बृहस्पति से आक्रान्त श्रवण नक्षत्र पर पहुंच गया है और उसका वेध करके स्थित है ॥१८॥

सर्वसस्यपरिच्छन्ना पृथिवी सस्यमालिनी ।
पञ्चशीर्षा यवाश्चापि शतशीर्षाश्च शालयः ॥१९॥

पृथिवी सब तरह के अन्न से व्याप्त हो गई है। इस पर हरे भरे अन्न लहलहा रहे हैं। पांच २ शिर के जौ और सैकड़ों शिर के शाली चांवल हैं ॥१९॥

प्रधानाः सर्वलोकस्य यास्वायत्तमिदं जगत् ।
ता गावः प्रस्नुता वत्सैः शोणितं प्रक्षरन्त्युत ॥२०॥

जो संसार में प्रधान है एवं जिनके आधीन सारा जगत् है। जब उन गायों को उनके वत्स दुग्ध क्षरण के लिए प्रेरित करते हैं, तब वे रक्त का क्षरण करती हैं ॥२०॥

निश्चेरुरर्चिषश्चापात्खड्गाश्च ज्वलिता भृशम् ।
व्यक्तं पश्यन्ति शस्त्राणि संग्रामं समुपस्थितम् ॥२१॥

धनुष से आग निकलती है। खड्ग भी सदा जलते रहते हैं। इससे यही प्रतीत होता है, कि इन शस्त्रों को युद्ध-सन्मुख खड़ा हुआ दिखाई दे रहा है ॥२१॥

अग्निवर्णा यथा भासः शस्त्राणामुदकस्य च ।
कवचानां ध्वजानां च भविष्यति महाक्षयः ॥२२॥

शस्त्र अग्नि वर्ण के समान प्रज्वलित हो गए हैं और पानी उष्ण हो गए। यही रूप कवच और ध्वजाओं का है, इससे यही प्रतीत होता है, कि अब महान् क्षय उपस्थित हो गयाहै ॥२२॥

पृथिवी शोणितावर्ता ध्वजोडुपसमाकुला ।
कुरूणां वैशसे राजन्पाण्डवैः सह भारत ॥२३॥

हे राजन् ! पृथिवी पर रक्त की नदी वह निकलेगी, जिनमें अनेक आवर्त होंगे, ध्वजाएँ छोटी २ नौका सी दिखाई देंगी। हे भारत ! पाण्डवों के साथ कौरवों का यह घोर विनाशकारी युद्ध होकर रहेगा ॥२३॥

दिक्षु प्रज्वलितास्याश्च व्याहरन्ति मृगद्विजाः ।
अत्याहितं दर्शयन्तो वेदयन्ति महद्भयम् ॥२४॥

दिशाओं के मुख जल रहे हैं। मृग और पक्षी चीत्कार कर रहे हैं। ये महा अशुभ की सूचना देते हुए महान भय को उत्पन्न कर रहे हैं ॥२४॥

एकपक्षाक्षिचरणः शकुनिः खचरो निशि ।
रौद्रं वदति संरब्धः शोणितं छर्दयन्निव ॥२५॥

आकाश चारी कोई पक्षी है, जिसके एक पैर एक पक्ष और एक आंख है। वह आवेग में भयानक बोलता है और रक्त का वमन करता है ॥२५॥

शस्त्राणि चैव राजेन्द्र प्रज्वलन्तीव सम्प्रति ।
सप्तर्षीणामुदाराणां समवच्छाद्यते प्रभा ॥२६॥

हे राजेन्द्र! अब शस्त्र प्रज्वलित से हो रहे हैं। इस चमकने वाले सप्तर्षियों की सारी कान्ति ढकसी गई है ॥२६॥

संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलिताबुभौ ।
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ ॥२७॥

एक संवत्सरपर्यन्त स्थायी रहने वाले दो ग्रह बृहस्पति और शनैश्चर, बड़े प्रज्वलित होकर तिर्यक् वेध से विशाखा नक्षत्र के समीप स्थित हो रहे हैं ॥२७॥

चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्ना हि त्रयोदशीम् ।
अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ॥२८॥

चन्द्र और सूर्य दोनों ग्रहों को एक ही तिथि त्रयोदशी को ग्रहण प्राप्त हुआ अर्थात् दो तिथि क्षय होने से तेरह दिन में ही अमावस्या का योग प्राप्त हो गया। इस प्रकार विनापर्व के ही ग्रहण होना प्रजा के क्षय का लक्षण है ॥२८॥

अशोभिता दिशः सर्वा पांसुवर्षैः सन्मततः ।
उत्पातमेघा रौद्राश्च रात्रौ वर्षन्ति शोणितम् ॥२९॥

चारों ओर रज-धूलि की वर्षा से सारी दिशाएँ भयानक दिखाई देती थी । मेघ बड़े उत्पात दिखाने वाले रौद्र रूप में घूम रहे थे, जो रात में रक्त की वर्षा कर देते थे ॥२९॥

कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते ।
अभीक्ष्णवाता वायन्ते धूमकेतुमवस्थिताः ॥३०॥

हे पृथिवीपते ! राहु ग्रह कृत्तिका नक्षत्र को अपने तीक्ष्ण कर्मों से पीड़ित कर रहा है एवं वायु लगातार चलता है, जो महान् उत्पात का प्रदर्शित करने वाला है ॥३०॥

विषमं जनयन्त्येत आक्रन्दजननं महत् ।
त्रिषु सर्वेषु नक्षत्रनक्षत्रेषु विशाम्पते ।
गृध्रः सम्पतते शीर्षं जनयन्भयमुत्तमम् ॥३१॥
चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम् ।

हे विशाम्पते ! ये वायु, युद्ध के उत्पन्न करने वाले तथा दूसरे से विरोध दिखाने वाले हैं । मघा, पूर्वाफाल्गुनी और ज्येष्ठा आदि नक्षत्र हैं, जिन पर मंगल, शनैश्चर बृहस्पति और शुक्र आदि ग्रहों की स्थिति है, जिससे बड़ा भारी आक्रन्दन (रोना पीटना) मचने वाला है । इसी प्रकार शिर पर गीध आ २ बैठते हैं, जो बड़े भयजनक हैं ॥३१॥

इमां तु नाऽभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशाम् ।
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥३२॥
अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः ।
मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत्कृष्णचतुर्दशीम् ।
शोणितैर्वक्त्रसम्पूर्णा अतृप्तास्तत्र राक्षसाः ॥३३॥

पन्द्रह दिन में अमावस्या का योग होता है, जब कभी एक तिथि का क्षय हो जाता है, तो चौदह दिन में अमावस्या आ जाती है। तिथि वृद्धि होने पर सोलहवें दिन अमावस्या का योग होता है, परन्तु दो तिथि के क्षय होने पर त्रयोदश दिन में अमावस्या का योग हमने तो देखा नहीं है। अब त्रयोदश दिन में हुई अमावस्या को सूर्य ग्रहण हुआ, तो पूर्णिमा को चन्द्र ग्रहण एक मास में ही हो गया या चन्द्र सूर्य के साथ २ रहने से एक दिन में ही दोनों का ग्रहण हो गया, यह विना पर्व के ग्रहण हुआ, जिससे प्रजा का अत्यन्त ही क्षय होगा। मास की कृष्ण चतुर्दशी को फिर मांस की वर्षा हुई है। उस स्थान में राक्षसों ने अपने मुख रक्त से भर लिए, परन्तु उनकी तृप्ति नहीं हुई है ॥३२-३३॥

प्रतिस्रोतो महानद्यः सरितः शोणितोदकाः ।
फेनायमानाः कूपाश्च कूर्दन्ति वृषभा इव ॥३४॥

बड़ी २ नदियों के प्रवाह उलटे बह निकले हैं। नदियों में रक्त का प्रवाह बह चला। कूपों में झाग उबल पड़े और वे वृषभों (बैलों) की भाँति कूदने लगे ॥३४॥

पतन्त्युल्काः सनिर्घाताः शक्राशनिसमप्रभाः ।
अद्य चैव निशां व्युष्टामनयं समवाप्स्यथ ॥२५॥

इस समय बड़ी कड़क के साथ उल्कापात हो रहे हैं, जो इन्द्र के वज्र की सी ध्वनि कर रहे हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि आज की रात व्यतीत होते ही कल महान् अनर्थ की प्राप्ति होगी

विनिःसृत्य महोल्काभिस्तिमिरं सर्वतोदिशम् ।
अन्योन्यमुपतिष्ठद्भिस्तत्र चोक्तं महर्षिभिः ॥२६॥
भूमिपालसहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम् ।
कैलासमन्दराभ्यां तु तथा हिमवता विभो ॥२७॥
सहस्रशो महाशब्दः शिखराणि पतन्ति च ।
महाभूता भूमिकम्पे चत्वारः सागराः पृथक् ।
वेलामुद्वर्त्तयन्तीव क्षोभयन्तो वसुन्धराम् ॥२८॥

बड़ी २ उल्का (मशालों)से निकलकर महान्धकार सब दिशाओं में फैल गया। उस समय एक दूसरे से मिलकर महर्षियों ने कहा है, कि अब भूमि सहस्रों राजाओं के रक्त का पान करेगी। हे विभो ! कैलाश, मन्दराचल और हिमालय, सहस्रों भाँति से महान् शब्द करेंगे। इन के शिखर टूट २ कर गिर जावेंगे

जब भूमि कांपने लगेगी-तो ये चारों समुद्र पृथक् २ फैल जावेंगे और पृथिवी को व्याकुल करते हुए से अपनी वेला को छोड़ने लगेंगे ॥२८॥

वृक्षानुन्मथ्य वान्त्युग्रा वाताः शर्करकर्षिणः ।
आभग्नाः सुमहावातैरशनीभिः समाहताः ॥३९॥
वृक्षाः पतन्ति चैत्याश्च ग्रामेषु नगरेषु च ।
नीललोहितपीतश्च भवत्यग्निर्हुतो द्विजैः ॥४०॥

मिट्टी धूलि वर्षाता हुआ वायु, वृक्षों को उखाड़कर उग्ररूप से चल रहे हैं। महावेगवान् वायु तथा बिजली से मारे हुए वृक्ष, और बगीचे ग्राम तथा नगरोंमें गिरे पड़े हैं। ब्राह्मणों द्वारा अग्नि में हवन करने पर वह अग्नि कभी नीला कभी लाल और कभी पीला हो जाता है ॥३९-४०॥

वामार्चिर्दुष्टगन्धश्च मुञ्चन्वै दारुणं स्वनम् ।
स्पर्शा गन्धा रसाश्चैव विपरीता महीपते ॥४१॥

हे महीपते ! इस समय हवन के अग्नि की लपटें बायीं ओर जा रही हैं, जिसमें दुर्गन्ध निकलता है और जो दारुण शब्द कर रहा है। इसी तरह स्पर्श, गंध और रस सब के धर्म विपरीत हो रहे हैं ॥४१॥

धूमं ध्वजाः प्रमुञ्चन्ति कम्पमाना मुहुर्मुहुः ।
मुञ्चन्त्यङ्गारवर्षं च भेर्यश्च पटहास्तथा ॥४२॥

बार २ कांपती हुई ध्वजाएँ धूम छोड़ रही हैं। तथा भेरी और पटह आदि बाजे भी अंगारों की वर्षा कर रहे हैं ॥४२॥

शिखराणां समृद्धानामुपरिष्टात्समन्ततः ।
वायसाश्च रुवन्त्युग्रं वामं मण्डलमाश्रिताः ॥४३॥

बड़े २ सुन्दर पर्वतों के शिखरों पर चारों ओर बैठे हुए कौए, बांई ओर मण्डल बांध कर दारुण शब्द कर रहे हैं ॥४३॥

पक्कापक्वेति सुभृशं वावाश्यन्ते वयांसि च ।
निलीयन्ते ध्वजाग्रेषु क्षयाय पृथिवीक्षिताम् ॥४४॥

पक्षी गण भी "पक्कापकम्" इस प्रकार विनाशकारी शब्द कर रहे हैं और वे ही पक्षी ध्वजाओं के अग्र-भागों में राजाओं का विनाश सूचित करते हुए छुप रहे हैं ॥४४॥

ध्यायन्तः प्रकिरन्तश्च व्याला वेपथुसंयुताः ।
दीनास्तुरङ्गमाः सर्वे वारणाः सलिलाश्रयाः ॥४५॥

ध्यान मग्न एवं कांपते हुए, बिगड़े हुए दीन अश्व मलमूत्र छोड़ रहे हैं और सारे हाथी, स्वेद (पसीने) में भीग गए हैं ॥४५॥

एतच्छ्रुत्वा भवानत्र प्राप्तकालं व्यवस्यताम् ।
यथा लोकः समुच्छेदं नाऽयं गच्छेत भारत ॥४६॥

हे भारत ! मेरे इस कथन पर विचार करके यदि तुम से हो सके-तो क्षमोपयोगी उपाय करो। अब तो तुम को ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिए जिससे संसार का समुच्छेद न हो सके ॥४६॥

वैशम्पायन उवाच—

पितुर्वचो निशम्यैतद्धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ।
दिष्टमेतत्पुरा मन्ये भविष्यति नरक्षयः ॥४७॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! अपने पिता के वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र कहने लगा-कि मैं तो इस को पूर्व जन्म का अब

शिष्ट कर्म (भाग्य) मानता हूं इससे यह नरों का विनाश अवश्य होकर रहेगा ॥ ४७ ॥

राजानः क्षत्रधर्मेण यदि वध्यन्ति संयुगे ।
वीरलोकं समासाद्य सुखं प्राप्स्यन्ति केवलम् ॥४८॥

यदि ये सारे राजा क्षत्रिय धर्म के अनुसार वीर गति को प्राप्त करेंगे-तो ये वीर, लोकों को प्राप्त करके अतिशय आनन्द को प्राप्त करेंगे ॥४८॥

इह कीर्तिं परे लोके दीर्घकालं महत्सुखम् ।
प्राप्स्यन्ति पुरुषव्याघ्राः प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ४९॥

जो पुरुष श्रेष्ठ वीर महायुद्ध में प्राण छोड़ते हैं, वे इस लोक में कीर्ति और परलोक में दीर्घकाल तक सुख प्राप्त करते हैं ॥४९॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं मुनिस्तथेत्युक्त्वा कवीन्द्रो राजसत्तम ।
धृतराष्ट्रेण पुत्रेण ध्यानमन्वगमत्परम् ॥५०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजसत्तम ! इस प्रकार महर्षि वेद-व्यास अपने पुत्र धृतराष्ट्र के साथ वार्तालाप करके अन्तर्हित हो गए ॥५०॥

स मुहूर्तं तथा ध्यात्वा पुनरेवाऽब्रवीद्वचः ।
असंशयं पार्थिवेन्द्र कालः संक्षयते जगत् ॥५१॥
सृजते च पुनर्लोकान्नेह विद्यति शाश्वतम् ।

राजा धृतराष्ट्र ने थोड़ी देर तक विचार किया और फिर यह वचन कहा—कि राजाओं का अब काल उपस्थित हो गया है जिससे इस जगत का क्षय होकर रहेगा। यही काल फिर लोकों की रचना करेगा। इस पृथिवी पर कोई पदार्थ सदा स्थायी रहने वाला नहीं है ॥५१॥

ज्ञातीनां वै कुरूणां च सम्बन्धिसुहृदां तथा ॥५२॥
धर्म्यं देशय पन्थानं समर्थो ह्यसि वारणे।
क्षुद्रं ज्ञातिवधं प्राहुर्मा कुरुष्व ममाऽप्रियम् ॥५३॥

हे राजन् ! तुम अपनी जाति कौरव, सम्बन्धी और मित्रों को धर्म मार्ग का उपदेश करो, क्योंकि तुम उनके रोकने में समर्थ हो। जाति वध बहुत ही क्षुद्र कर्म है। तुम इसे करके मेरे अनिष्ट कर्म का आरम्भ न करो ॥५२-५३॥

कालोऽयं पुत्ररूपेण तव जातो विशाम्पते।
न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथञ्चन ॥५४॥

हे विशाम्पते ! तेरा यह पुत्र दुर्योधन सब का काल होकर उत्पन्न हुआ है। किसी का वृथा वध करना वेद को मान्य नहीं है और न इससे कभी हित सम्पन्न हो सकता है ॥५४॥

हन्यात्स एनं यो हन्यात्कुलधर्मं स्विकां तनुम्।
कालेनोत्पथगन्ताऽसि शक्ये सति यथाऽऽपदि ॥५५॥

जो धर्म का नाश करता है, उसका धर्म नाश कर देता है। जो धर्मका नाशक है, वह कुल धर्म और अपने शरीर का नाशक

है। जो आपत्ति को टलाया जा सकता है, तो फिर तुमको उन्मार्ग गामी नहीं होना चाहिए ॥५५॥

कुलस्याऽस्य विनाशाय तथैव च महीक्षिताम्।
अनर्थो राज्यरूपेण तव जातो विशाम्पते ॥५६॥

हे विशाम्पते! इस कुल और सारे राजाओं के विनाश के लिए राज्यके रूपमें तुम्हारे लिए यह बड़ा अनर्थ उपस्थित हुआ है

लुप्तधर्मा परेणाऽसि धर्मं दर्शय वै सुतान्।
किं ते राज्येन दुर्धर्ष येन प्राप्तोऽसि किल्बिषम् ॥५७॥

तुम तो धर्म का लोप करके स्थित हो। तुमको अपने पुत्रों को धर्म का मार्ग दिखाना चाहिए। हे दुर्धर्ष! ऐसे राज्य का ही तुम क्या करोगे? जिससे तुमको अधर्म की प्राप्ति होगी ॥५७॥

यशो धर्मं च कीर्तिं च पालयन्स्वर्गमाप्स्यसि।
लभन्तां पाण्डवा राज्यं शमं गच्छन्तु कौरवाः ॥५८॥

कौरव गण पाण्डवों से सन्धि करलें और पाण्डव अपने राज्यांश को प्राप्त करले—इस तरह यश, धर्म और कीर्ति का पालन करते हुए तुम स्वर्ग को प्राप्त कर सकोगे ॥५८॥

एवं ब्रुवति विप्रेन्द्रे धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
आक्षिप्य वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यं चैवऽब्रवीत्पुनः ५९॥

महर्षि वेद व्यास इस प्रकार कह रहे थे, कि बोलने वालों में श्रेष्ठ अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र बीच में ही बात काट कर कहने लगे

धृतराष्ट्र उवाच—

यथा भवान्वेत्ति तथैव वेत्ता भावाभावौ विदितौ मे यथार्थौ ।
स्वार्थे हि संमुह्यति तात लोको मां चापि लोकात्मकमेव विद्धि

हे ब्रह्मन्! जो आप जान रहे हैं, उसे मैं भी जानता हूं। अपने और परायों की स्थिति और विनाश मुझे भी सब कुछ ज्ञात हैं। हे तात! सारा संसार स्वार्थ के समय मोहित हो जाता है। मैं भी तो संसार के भीतर ही हूँ ॥६०॥

प्रसादये त्वामतुलप्रभावं त्वं नो गतिर्दर्शयिता च धीरः ।
न चापि ते मद्वशगा महर्षे न चाऽधर्मं कर्तुमर्हा हि मे मतिः

हे भगवन्! आप अतुल-प्रभाव वाले हो-आप ही हमारी गति और मार्ग के दिखाने वाले विद्वान् हो। हे महर्षि! आपकी बुद्धि मेरे अधीन नहीं है और न मेरी बुद्धि अधर्म करना चाहती है।

त्वं हि धर्मप्रवृत्तिश्च यशः कीर्तिश्च भारती ।
कुरूणां पाण्डवानां च मान्यश्चापि पितामहः ॥६२॥

हे ब्रह्मन्! तुम ही भरतवंश की धर्म की प्रवृत्ति के कारण और यश कीर्ति के करने वाले हो तथा तुम ही कौरव पाण्डवों के मान्य पितामह हो ॥६२॥

व्यास उवाच—

वैचित्रवीर्य नृपते यत्ते मनसि वर्तते ।
अभिधत्स्व यथाकामं छेत्ताऽस्मि तव संशयम् ॥६३॥

व्यासजीने कहा—हे विचित्र वीर्य के पुत्र ! राजन् ! धृतराष्ट्र जो तुम्हारे मन में स्थित हो-उसे खुलकर पूछ लो । मैं तुम्हारे सारे संशयों का नाश कर दूंगा ॥६३॥

धृतराष्ट्र उवाच—

यानि लिङ्गानि संग्रामे भवन्ति विजयिष्यताम् ।
तानि सर्वाणि भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥६४॥

धृतराष्ट्र बोले—हे भगवन् ! संग्राम विजय करने वाले वीरों के क्या चिह्न होते हैं-मैं उन सब को सुनना चाहता हूँ । आप मुझे सुनाइये ॥६४॥

व्यास उवाच—

प्रसन्नभाः पावक ऊर्ध्वरश्मिः प्रदक्षिणावर्त्तशिखो विधूमः ।
पुण्या गन्धाश्चाऽऽहुतीनां प्रवान्ति जयस्यैतद्भाविनोरूपमाहुः

व्यासजी ने कहा—हे राजन् ! जिस समय हवन किया जावे, उस समय अग्नि की कांति स्वच्छ हो, उसकी किरणें ऊपर को जा रही हों, दायी ओर धूम रहित लपटें निकल रही हों । आहुति देने पर पवित्र गन्ध निकलती हो-ये सारे लक्षण, भविष्य विजय के लक्षण समझने चाहिए ॥६५॥

गम्भीरघोषाश्च महास्वनाश्च शङ्खा मृदङ्गाश्च नदन्ति यत्र ।
विशुद्धरश्मिस्तपनः शशी च जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥

जिस सेना में शंख और मृदङ्ग, गम्भीर घोष और महास्वन करने वाले हो, सूर्य की किरणें स्वच्छ प्रकाश फैलाती हों । यही दशा चन्द्रमा की हो-तो ये भविष्य विजयके चिह्न समझने चाहिए

इष्टा वाचः प्रसृता वायसानां सम्प्रस्थितानां च गमिष्यतां च
ये पृष्ठतस्ते त्वरयन्ति राजन्ये चाऽग्रतस्ते प्रतिषेधयन्ति ॥

हे राजन् ! उड़ते हुए या चलते हुए कौओं की स्पष्ट और इष्ट जनक वाणी विजय का चिह्न हैं। जो कौए पीछे से बोलते हैं, वे विजय कार्य के लिए शीघ्रता करते हैं और जो आगे बोलते हैं, वे विजय का निषेध करते हैं ॥६७॥

कल्याणवाचः शकुना राजहंसाः शुकाः क्रौञ्चाःशतपत्राश्चयत्र
प्रदक्षिणाश्चैव भवन्ति संख्ये ध्रुवं जयस्तत्र वदन्ति विप्राः ॥

जिस सेना में राजहंस, शुक, क्रौंच, शतपत्र आदि पक्षी कल्याण कारी वाणी बोलते हो और जिसको ये पक्षी युद्ध में दायीं दिशा में मिले, उसकी विजय समझनी चाहिए ॥६८॥

अलङ्कारैः कवचैः केतुभिश्च सुखप्रणादैर्हेषितैर्वा हयानाम् ।
भ्राजिष्मती दुष्प्रतिवीक्षणीया येषां चमूस्ते विजयन्ति शत्रून्

जिन की सेना, अलंकार, कवच, ध्वजा और आनन्द ध्वनि आदि से युक्त हो। अश्व अपने शब्दों का आनन्द से उच्चारण कर रहे हों-जो सेना तेजस्विनी हो और जिसको देखनेसे आंखें चुंधिया जाती हो-वही सेना शत्रुओं को जीत पाती है ॥६९॥

हृष्टा वाचस्तथा सत्त्वं योधानां यत्र भारत ।
न म्लायन्ति स्रजश्चैव ते तरन्ति रणोदधिम् ॥७०॥

हे भारत ! जिस सेना के योद्धाओं में आनन्द की ध्वनि और उत्साह हो, जिनकी मालाएँ मलिन नहीं होती हो, वे ही रण-समुद्र को पार कर जाते हैं ॥७०॥

इष्टा वाचः प्रविष्टस्य दक्षिणाः प्रविविक्षतः ।
पश्चात्सन्धारयन्त्यर्थमग्रे च प्रतिषेधिकाः ॥७१॥

शत्रु की सेना में घुस जाने पर "मारो-मारो" इस प्रकार की और घुसते २ "मार लिया-मार लिया" ऐसी कुशलता पूर्ण जो वाणी बोली जाती है, वही विजय देने वाली है और जो "युद्ध मत करो" इत्यादि वाणी सुनाई देती है-यह पराजय कराने वाली है।

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धाश्चाऽविकृताः शुभाः ।
सदा हर्षश्च योधानां जयतामिह लक्षणम् ॥७२॥

शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गन्ध-इन में किसी प्रकार का विकार न हो और योद्धाओं में सदा आनन्द का उद्रेक हो-यही विजय का लक्षण है ॥७२॥

अनुगा वायवो वान्ति तथाऽभ्राणि वयांसि च ।
अनुप्लवन्ति मेघाश्च तथैवेन्द्रधनूंषि च ॥७३॥

अनुकूल वायु, बादल, पक्षी जाते हो। मेघ और इन्द्र धनुष स्वच्छ दिखाई दे-तो विजय का चिन्ह समझना चाहिए॥७३॥

एतानि जयमानानां लक्षणानि विशाम्पते ।
भवन्ति विपरीतानि मुमूर्षूणां जनाधिप ॥७४॥

हे विशाम्पते ! ये विजयी होने वाले वीरों के लक्षण है। हे जनाधिप ! इन से विपरीत लक्षण मृत्यु प्राप्त करने वालों के होते है ॥१४॥

अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः ।
हर्षो योधगणस्यैको जयलक्षणमुच्यते ॥७५॥

सेना चाहे थोड़ी हो या विशाल हो—उस में योद्धाओं का जो उत्साह है, वही सब से बड़ा विजय का चिन्ह है ॥७५॥

एको दीर्णो दारयति सेनां सुमहतीमपि ।
तां दीर्णामनुदीर्यन्ते योधाः शूरतरा अपि ॥७६॥

जो एक भी कायर सेना से भाग पड़ता है, वह सारी सेना में भगदड़ मचा देता है । सेना के बिखर जाने पर महा शूरवीर भाग निकलते हैं ॥७६॥

दुर्निवर्त्या तदा चैव प्रभग्ना महती चमूः ।
अपामिव महावेगास्त्रस्ता मृगगणा इव ॥७७॥

जब विशाल सेना भाग पड़ती है, तब उसका रोकना कठिन हो जाता है । जब जल का प्रवाह फूट चलता है, तो उसको मृगों का समूह भी नहीं रोक सकता है ॥७७॥

नैव शक्या समाधातुं सन्निपाते महाचमूः ।
दीर्णामित्येव दीर्यन्ते सुविद्वांसोऽपि भारत ॥७८॥

हे भारत ! जब महासेना उखड़ खड़ी होती है, तब उसका समाधान करना दुःसाध्य है । जब सेना बिखर गई—तो युद्ध विशारद भी उखड़ जाते हैं ॥७८॥

भीतान्भग्नांश्च सम्प्रेक्ष्य भयं भूयोऽभिवर्द्धते ।
प्रभग्ना सहसा राजन्दिशो विद्रवते चमूः ॥७९॥

हे राजन् ! जब भयभीत सैनिकों को देखते हैं, तो योद्धाओं को भी भय होने लगता है। जब सेना उखड़ जाती है, तो वह सारी दिशाओं में भाग निकलती है ॥७६॥

नैव स्थापयितुं शक्या शूरैरपि महाचमूः ।
सत्कृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां महीपतिः ।
उपायपूर्वं मेधावी यतेत सततोत्थितः ॥८०॥

इस दशामें महान् सेना को शूरवीर भी नहीं रोक सकता है। राजा को चाहिए, कि अपनी चतुरङ्गिणी सेना का सत्कार करके बड़ी सावधानी से अपनी सेना के दृढ़ रहने का उपाय कर ले।

उपायविजयं श्रेष्ठामाहुर्भेदेन मध्यमम् ।
जघन्य एष विजयो या युद्धेन विशाम्पते ॥८१॥

उपाय से की हुई विजय श्रेष्ठ है। भेद से (फूट डाल कर) की हुई विजय मध्यम है। हे विशाम्पते ! जो युद्ध से विजय की जाती है, वह अधम श्रेणी की विजय कहाती है ॥८१॥

महान्दोषः सन्निपातस्तस्याऽऽद्यः क्षय उच्यते ।
परस्परज्ञाः संहृष्टा व्यवधूताः सुनिश्चिताः ॥८२॥
अपि पञ्चाशतं शूरा मृद्नन्ति महतीं चमूम् ।
अपि वा पञ्च षट् सप्त विजयन्त्यनिवर्तिनः ॥८३॥

योद्धाओं का संघर्ष महान् क्षय का करने वाला है। जो शूरवीर एक दूसरे की शक्ति को जानते हैं, अपने दादा और सुतादि का मोह न करके प्रसन्नता पूर्वक युद्ध में डटे रहते हैं, ऐसे पांच सौ

शूरवीर भी विशाल सेना को उखाड़ देते हैं या युद्ध से मुख नहीं मोड़ने वाले पांच छः या सात सौ वीर ही महान् सेना का विजय कर लेते हैं ॥ ८२-८३ ॥

न वैनतेयो गरुडः प्रशंसति महाजनम् ।
दृष्ट्वा सुपर्णोऽपचितिं महत्या अपि भारत ॥८४॥

हे भारत ! वैनतेय गरुड़ तो अधिक सेना का कुछ महत्व नहीं मानते हैं । गरुड़ ने महान् सेना का भी थोड़े वीरों के सन्मुख नाश होता देखा है ॥ ८४ ॥

न बाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः ।
अध्रुवो हि जयो नाम दैवं चाऽत्र परायणम् ।
जयवन्तो हि संग्रामे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥८५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि निमित्ताख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सेना की अधिकता से विजय आवश्यक नहीं है । जय तो अनिश्चित है । दैव ही इस में कारण है । जो संग्राम में विजयी होते हैं, वे ही कृतकृत्य होते हैं ॥८५॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व में सेना के विजयी होने के कारणों के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ



चौथा अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा ययौ व्यासो धृतराष्ट्राय धीमते ।
धृतराष्ट्रोऽपि तच्छ्रुत्वा ध्यानमेवाऽन्वपद्यत ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! भगवान् वेद व्यास राजा धृतराष्ट्र से इतना कहकर चले गए और राजा धृतराष्ट्र भी यह सुनकर ध्यान मग्न हो गए ॥१॥

स मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ।
सञ्जयं संशितात्मानमपृच्छद्भरतर्षभ ॥२॥

हे भरतर्षभ ! राजा धृतराष्ट्र ने थोड़ी देर ध्यान करके बार २ निःश्वास लिया और व्रतशील सञ्जय से पूछा ॥२॥

सञ्जयेमे महीपालाः शूरा युद्धाभिनन्दिनः ।
अन्योन्यमभिनिघ्नन्ति शस्त्रैरुच्चावचैरिह ॥३॥

हे सञ्जय ! ये युद्ध के प्रेमी शूरवीर, राजा, तीखे शस्त्रों से एक दूसरे को मार रहे हैं ॥३॥

पार्थिवाः पृथिवीहेतोः समभित्यज्य जीवितम् ।
न वा शाम्यन्ति निघ्नन्तो वर्धयन्ति यमक्षयम् ॥४॥

इन राजाओं ने पृथिवी के कारण अपने जीवन का मोह भी छोड़ दिया है । ये एक दूसरे को मारते हुए चुप नहीं हो रहे हैं और यमराज के स्थान को मनुष्यों से भर रहे हैं ॥४॥

भौममैश्वर्यमिच्छन्तो न मृष्यन्ते परस्परम् ।
मन्ये बहुगुणा भूमिस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥५॥

हे सञ्जय ! ये तो पृथिवी पर ऐश्वर्य के लोलुप हैं, इस कारण से किसी दूसरे का सहन नहीं करते हैं। ये तो भूमि में सब उत्तम गुणों को समझते हैं, तुम मुझ से इसका वर्णन करो ॥५॥

बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोट्यश्च लोकवीराणां समेताः कुरुजाङ्गले ॥६॥
देशानां च परीमाणं नगराणां च सञ्जय ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यत एते समागताः ॥७॥

हे सञ्जय ! संसार के प्रसिद्ध वीरों का इस कुरुजाङ्गल प्रदेश से कई सहस्र या कोटि अर्बुद की संख्या में जमघट हुआ है। मैं इन सारे वीर और इनके देश तथा नगरों के परिमाण सुनना चाहता हूं। तुम मुझे इनका ठीक २ वृत्तान्त सुनाओ ॥६-७॥

दिव्यबुद्धिप्रदीपेन युक्तस्त्वं ज्ञानचक्षुषा ।
प्रभावात्तस्य विप्रर्षेर्व्यासस्याऽमिततेजसः ॥८॥

हे सञ्जय ! तुम उन ब्रह्मर्षि भगवान् अत्यन्त तेजस्वी वेदव्यासके प्रभावसे दिव्य बुद्धिके दीपक और ज्ञानके नेत्रोंसे युक्त हो

सञ्जय उवाच—

यथाप्रज्ञं महाप्राज्ञ भौमान्वक्ष्यामि ते गुणान् ।
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ ॥९॥

सञ्जय ने कहा—हे महा बुद्धिमान्! राजन्! मैं आप से अपनी बुद्धि के अनुसार पृथिवी के गुणों को कहता हूं। हे भरतर्षभ! इससे तुम मेरे शास्त्रानुसार प्राप्त हुए दिव्य नेत्रोंकी महिमा को जान सकोगे ॥९॥

द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थावराणि च।
त्रसानां त्रिविधा योनिरण्डस्वेदजरायुजाः ॥१०॥

इस पृथिवी पर स्थावर जंगम—दो प्रकार के प्राणी हैं। इनमें जंगम प्राणियों की अण्डज, स्वेदज और जरायुज—ये तीन प्रकार की योनि मानी गई हैं ॥१०॥

त्रसानां खलु सर्वेषां श्रेष्ठा राजञ्जरायुजाः।
जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये ॥११॥

हे राजन्! इन सारे जंगम जीवों में जरायुज प्राणी अच्छे माने गए हैं। इन प्राणियों में भी पशु और मनुष्य उत्तम हैं ॥११

नानारूपधरा राजंस्तेषां भेदाश्चतुर्दश।
वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥१२॥

हे राजन्! इनके अनेक रूप हैं, जिनके चौदह भेद मुख्य माने गए हैं। हे पृथिवीपाल! इन सबका वेद में वर्णन आया है। इनके आधार पर ही यज्ञ की क्रियाएँ अवलम्बित हैं ॥१२॥

ग्राम्याणां पुरुषाः श्रेष्ठाः सिंहाश्चाऽरण्यवासिनाम्।
सर्वेषामेव भूतानामन्योन्येनोपजीवनम् ॥१३॥

ग्राम के पशुओं में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और अरण्य वासी पशुओं में सिंह श्रेष्ठ माना गया है। इन प्राणियों में भी एक का दूसरे के ऊपर जीवन अवलम्बित है ॥१३॥

उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः।
वृक्षगुल्मलता वल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥१४॥

स्थावर प्राणी, उद्भिज्ज अर्थात् पृथिवी से उत्पन्न होने वाले वृक्षादि हैं, जिनकी वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली और त्वक्सार (बांस आदि) ये पांच जातियां हैं। ये सारी तृण जाति कहाती हैं ॥१४॥

तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु।
चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसम्मता ॥१५॥

य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम्।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ॥१६॥

इन स्थावर जंगम प्राणियों को मिला कर उन्नीस प्रकार की जातियां हुईं। ये उन्नीस जातियां पांच महाभूतों के सम्पर्क से चौबीस संख्या की पूर्ति हो जाती है, जो लोक में मान्य गायत्री के अक्षरों की संख्या है। हे भरतश्रेष्ठ! जो मनुष्य, इस पवित्र सर्वगुण सम्पन्न गायत्री को तत्त्व से जान लेता है। ॥१५-१६॥

अरण्यवासिनः सप्त सप्तैषां ग्रामवासिनः।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा ॥१७॥
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्ताऽरण्याः स्मृता नृप।
गौरजावामनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः ॥१८॥

एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः ।
एते वै पशवो राजन्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥१९॥

हे राजन् ! इन पूर्वोक्त चौदह प्रकार के जंगम भेदों में सात ग्राम और सात वन के जीवों के भेद हैं । वन के भेदों में सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष वारण-ऋक्ष और वानर ये सात भेद माने जाते हैं । गाय, बकरी, भेड़, मनुष्य, अश्व, अश्वतर और गर्दभ- ये सात भेद ग्राम पशुओं के माने गए हैं । हे राजन् ! दोनों मिलकर गांव और वन के चौदह प्रकारके पशु माने गए हैं ।

भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति ।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव सनातनम् ॥२०॥
यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तत्राऽतिगृद्धा राजानो विनिघ्नन्तीतरेतरम् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जंबूखंडविनिर्माणपर्वणि भौमगुणकथने चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

ये सब भूमि पर उत्पन्न और भूमिमें ही नष्ट होते हैं । समस्त प्राणियों की स्थिति भूमि पर ही है, भूमि ही सबका सनातन आधार है । जिसके पास भूमि है, उसी के स्थावर-जंगम सारा जगत है । इसी कारण से राजा लोग भूमि का बड़ा लालच करते हैं और एक दूसरे को मारते हैं ॥२०-२१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बू-खण्डविनिर्माणपर्व में भूमि के गुणों के कथन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।

पांचवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि सञ्जय ।
तथा जनपदानां च ये चाऽन्ये भूमिमाश्रिताः ॥१॥
प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्या मम सर्वतः ।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सञ्जय ॥२॥

धृतराष्ट्र ने कहा–हे सञ्जय ! पृथिवी पर जितने नदी, पर्वत और जनपद (देश) तथा जो अन्य कुछ मुख्य वस्तु हैं, उनके नाम बताओ। हे सञ्जय ! तुम सारी पृथिवी की नाप जानते हो· इससे मुझे पृथिवी का प्रमाण और वनों का वर्णन सुनाओ ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात् ।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥३॥

सञ्जय बोले–हे महाराज ! सृष्टि में पञ्चमहाभूत हैं, जिनके सम्मेलन से ये सारे पदार्थ बने हुए हैं। बुद्धिमान् पंच तत्व से बने हुए होने के कारण सारे पदार्थों को समान एक दृष्टि से विनाशी मानते हैं ॥३॥

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च ।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिःप्रधानतः ॥४॥

भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश-पांच तत्व हैं। इनमें आकाश से वायु आदि क्रम से एक २ गुण उत्कृष्ट होता चला गया है। पृथिवी इन पांचों में प्रधान है ॥४॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥५॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पांचवां गन्ध ये पांचों गुण तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने पृथिवी में माने हैं ॥५॥

चत्वारोऽप्सु गुणा राजन्गन्धस्तत्र न विद्यते।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः।
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु ॥६॥

हे राजन्! जल में चार ही गुण हैं, गन्ध जल में नहीं है। तेज में शब्द, स्पर्श और रूप-ये तीन ही गुण माने हैं। वायु में केवल शब्द और स्पर्श तथा आकाश में शब्द ही एक गुण है ॥६॥

एते पञ्च गुणा राजन्महाभूतेषु पञ्चसु।
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ॥७॥

हे राजन्! पंच महा भूतों में ये पांच गुण हैं। ये पञ्चमहाभूत ही सब लोकों में वर्तमान हैं, जिन में सारे प्राणी स्थित हैं।

अन्योन्यं नाभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा ॥८॥
यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम्।

तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नाऽन्यथा ॥९॥

जब ये एक दूसरे से नहीं मिलते तब इन पंचमहाभूतों की साम्यावस्था रहती है और जब ये परस्पर मिलते हैं, तो विषम भाव को प्राप्त होते हैं। इस अवस्था में कर्मों के भोग से प्राणी अपनी २ देहको प्राप्त होते हैं। इस के अतिरिक्त देह संयोग नहीं होता है ॥९॥

आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चाऽनुपूर्वशः ।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम् ॥१०॥

जब प्रलय होता है, तब ये पञ्चमहाभूत क्रम से एक दूसरे में लीन हो जाते हैं और उत्पत्ति के समय उसी क्रम से निकल आते हैं। इन के अपरिमेय रूप हैं। इस सब की सत्ता या अधिष्ठान एक ही ब्रह्म है ॥१०॥

तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः ।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥११॥
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥१२॥

जहां २ सिद्ध आदिक देव गणों का गमन है, वहां भी पांच भौतिक धातु विद्यमान है। उन २ दिव्य स्थानों के प्रमाणों को मनुष्य अनुमान से जान पाता है या कथन कर सकता है, परन्तु जो पदार्थ विचार में भी नहीं आ सकते, उन पर अनुमान नहीं चलाना चाहिए। जो पदार्थ प्रकृति की सत्ता से परे है अर्थात् आत्म रूप है, वे ही अचिन्त्य हैं ॥११-१२॥

सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन ।

परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ॥१३॥

हे कुरुनन्दन ! मैं तुम से प्रथम सुदर्शन द्वीप का वर्णन करता हूँ । हे महाराज ! यह द्वीप परमाणु रूप में गोल स्थित है । इसका आकार चक्र की तरह है ॥१३॥

नदीजलप्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाऽभ्रसन्निभैः ।

पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥१४॥

वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नधनधान्यवान् ।

लवणेन समुद्रेण समन्तात्परिवारितः ॥१५॥

यह द्वीप नदी के जल से घिरा हुआ है और मेघों के समान पर्वतों से युक्त है । अनेक भांति के नगर और सुन्दर देशों से समन्वित है । अनेक भांति के पुष्प फलों से युक्त इसमें वृक्ष हैं । यह धन और धान्य से सम्पन्न है । इस को चारों ओर से खारा समुद्र घेरे हुए है ॥१४-१५॥

यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः ।

एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले ॥१६॥

जैसे—पुरुष दर्पण में अपना मुख देखता है, इसी भांति सुदर्शन द्वीप भी चन्द्र मण्डल में प्रतिबिम्बित रहता है ॥१६॥

द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान् ॥

सर्वौषधिसमावायः सर्वतः परिवारितः ॥१७॥

आपस्ततोऽन्या विज्ञेयाः शेषः संक्षेप उच्यते ।
ततोऽन्य उच्यते चाऽयमेनं संक्षेपतः शृणु ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि जंबूखंडनिर्माणपर्वणि सुदर्शनद्वीपवर्णने पंचमोऽध्यायः ॥५॥

चन्द्रमण्डल के दो अंश में तो सुदर्शन द्वीप का आकार झलकता है और दो अंश में यह महान् शशक रहता है। इसके सब ओर सम्पूर्ण ओषधियों का समूह रहता है। इसके अनन्तर जल का स्रोत है। शेष भाग बहुत ही संक्षिप्त है। इसके अनन्तर और कुछ कहा जावेगा। अभी तुम इसका ही संक्षेप से वर्णन सुनो।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व में सुदर्शन द्वीप के वर्णन का पाँचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

छठा अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

उक्तो द्वीपस्य संक्षेपो विधिवद् बुद्धिमंस्त्वया ।
तत्त्वज्ञश्चाऽसि सर्वस्य विस्तरं ब्रूहि सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे बुद्धिमन् सञ्जय ! तुमने सुदर्शन द्वीप का संक्षिप्त वर्णन कर दिया। तुम सब बातों का तत्व जानते हो-इससे अब विस्तार के साथ कहो ॥ १ ॥

यावान्भूम्यवकाशोऽयं दृश्यते शशलक्षणे ।
तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम् ॥२॥

जितना भूमि का अवकाश इस चन्द्रमा में दिखाई देता है । इस का प्रमाण बताओ और इसके अनन्तर जो पिप्पल अर्थात् अश्वत्थ रूप जगत् है-उसका विस्तार कहो ॥२॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं राज्ञा स पृष्टस्तु सञ्जयो वाक्यमब्रवीत् ।

सञ्जय उवाच—

प्रागायता महाराज षडेते वर्षपर्वता ।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब राजा धृतराष्ट्र ने इतना पूछा-तो सञ्जय ने वाक्य कहा–हे महाराज ! पूर्व की ओर फैले हुए इस देश में छः पर्वत हैं, जो दोनों ओर से पूर्व और पश्चिम के समुद्र तक पहुँचे हुए हैं ॥३॥

हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः ।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतश्च शशिसन्निभः ॥४॥
सर्वधातुविचित्रश्च शृङ्गवान्नाम पर्वतः ।
एते वै पर्वता राजन्सिद्धचारणसेविताः ॥५॥

हे राजन् ! हिमवान्, हेमकूट, निषध, वैडूर्य मणियों से युक्त नील, शशिके सदृश शुक्ल श्वेत पर्वत तथा सब धातुओंसे चित्रित शृङ्गवान् पर्वत ये छः पर्वत हैं, जिन पर सिद्ध चारण रहते हैं ॥४-५॥

एषामन्तरविष्कम्भो योजनानि सहस्रशः ।

तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि भारत ॥६॥

इनके बीच का विस्तार सहस्रों योजन का है । हे भारत ! उनमें अनेक पवित्र देश हैं और वे सारे ही देश वर्ष नाम से विख्यात हैं ॥६॥

वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।

इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥७॥

हेमकूटात्परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते ।

इनमें अनेक जातियों के जीव बसते हैं । यह भारतवर्ष कहाता है । इसके आगे हिमालय है, हिमालय पर्वत से आगे निकलकर हरिवर्ष देश है ॥७॥

दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥८॥

प्रागायतो महाभाग माल्यवान्नाम पर्वतः ।

हे महाभाग ! नील पर्वत के दक्षिण और निषध के उत्तर पूर्व की ओर फैला हुआ माल्यवान् नामक पर्वत है ॥८॥

ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥९॥

परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः ।

आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥१०॥

माल्यवान् पर्वत के आगे चलकर गन्धमादन पर्वत है । उन दोनों के मध्य में सुवर्ण का मेरु पर्वत है, जो अत्यन्त सूक्ष्म है । यह प्रचण्ड सूर्य की चमकसे धूम रहित अग्नि सा प्रतीत होता है ।

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।
अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां महीपते ॥११॥
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्च लोकानावृत्य तिष्ठति ।
तस्य पार्श्वेऽत्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता विभो ॥१२॥
भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च भारत ।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥१३॥

हे महीपते ! इस पर्वत की ऊंचाई, चौरासी सहस्र योजन की है और नीचे की ओर भी इतना ही गहरा है। यह ऊपर नीचे इधर उधर से लोकों को घेर कर स्थित है। हे भारत ! इसी पर्वत के पार्श्व में ये चारों द्वीप भद्राश्व, केतुमाल जम्बूद्वीप और चौथा उत्तर कुरु प्रदेश है, जिसमें पुण्यवान् लोकों की स्थिति है ॥

विहगः सुमुखो यस्तु सुपर्णस्याऽऽत्मजः किल ।
स वै विचिन्तयामास सौवर्णान्वीक्ष्य वायसान् ॥१४॥
मेरुरुत्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम् ।
अविशेषकरो यस्मात्तस्मादेनं त्यजाम्यहम् ॥१५॥

एक गरुणका पुत्र सुमुख नामक पक्षी है, जिसने मेरु पर्वत पर कौओं को भी सुवर्ण-मय देखकर विचार किया, कि मेरु-पर्वत पर उत्तम, मध्यम और अधम पक्षियों का कुछ ध्यान नहीं किया जाता है। जब यह कुछ भेद ही नहीं करता-तो फिर मैं इस पर नहीं रह सकता हूँ-मैं इसका परित्याग करूँगा ॥१४—१५॥

तमादित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषां वरः ।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणः ॥१६॥

समस्त ज्योतियों में श्रेष्ठ सूर्य इस मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता है और इसी तरह नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा और वायु इसकी प्रदक्षिणा करता है ॥१६॥

स पर्वतो महाराज दिव्यपुष्पफलान्वितः ।
भवनैरावृतः सर्वैर्जाम्बूनदपरिष्कृतैः ॥१७॥

हे महाराज ! यह पर्वत सदा दिव्य पुष्प और फलों से युक्त रहता है तथा यह शुद्ध सुवर्ण के भवनों से सुशोभित है ॥१७॥

तत्र देवगणा राजन्गन्धर्वासुरराक्षसाः ।
अप्सरोगणसंयुक्ताः शैले क्रीडन्ति सर्वदा ॥१८॥

हे राजन् ! इस स्थान पर देव, गन्धर्व असुर और राक्षसों के गण सदा अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हैं ॥१८॥

तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चाऽपि सुरेश्वरः ।
समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः ॥१९॥

यहीं पर ब्रह्मा, रुद्र, सुरेश्वर इन्द्रने इकट्ठे होकर बड़ी २ दक्षिणा के अनेक यज्ञ किए हैं ॥१९॥

तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ।
अभिगम्याऽमरश्रेष्ठांस्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥२०॥

तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, हाहा, हूहू, आदि गन्धर्वोंने वहां आकर अनेक स्तुतियों से अनेक उत्तम २ देवों को प्रसन्न किया है

सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः ।
तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वणि पर्वणि ॥२१॥

महात्मा सप्तर्षि, प्रजापति कश्यप आदि महर्षि भी पर्व पर्व पर उस मेरु पर्वत पर जाते हैं ॥२१॥

तस्यैव मूर्धन्युशनाः काव्यो दैत्यैर्महीपते ।
इमानि तस्य रत्नानि तस्येमे रत्नपर्वताः ॥२२॥

हे महीपते ! इसी पर्वत के शिखर पर दैत्यों के साथ कवि-श्रेष्ठ, शुक्राचार्य रहते हैं। ये उसी के रत्न हैं और ये उसी के रत्न पर्वत हैं ॥२२॥

तस्मात्कुबेरो भगवांश्चतुर्थं भागमश्नुते ।
ततः कलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति ॥२३॥

भगवान् कुबेर तो उस मेरु पर्वत का चतुर्थांश प्राप्त कर पाते हैं और उस प्राप्त किए हुए भाग का सोलहवां भाग वे मनुष्यों में वितरण करते हैं ॥२३॥

पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् ।
कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम् ॥२४॥

उस मेरु पर्वत का उत्तर पार्श्व में बड़ा दिव्य प्रदेश है–जो सब ऋतुओं के पुष्पों से भरा रहता है। शिला समूह से रचा हुआ–यह सुन्दर प्रदेश कर्णिकार वन कहाता है ॥२४॥

तत्र साक्षात्पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः ।
उमासहायो भगवान्रमते भूतभावनः ॥२५॥

इस स्थान पर दिव्य भूतगणों से युक्त प्राणियों के पवित्र करने वाले साक्षात् भगवान् पशुपति पार्वती के सहित यहां पर विराजमान हैं ॥२५॥

कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत्पादावलम्बिनीम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥२६॥

ये भगवान् पैरों तक लटकने वाली कर्णिकार के पुष्पों की माला पहिने रहते हैं। इनके तीन नेत्र इतना प्रकाश करते हैं— जैसे तीन सूर्यों का उदय हो रहा हो ॥२६॥

तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।
पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः ।

इन महेश्वर को उग्र तपस्वी, सिद्ध, व्रतशील, सत्यवादी पुरुष देख पाते हैं, दुराचारी पुरुष, इनके दर्शन नहीं कर पाते हैं।

तस्य शैलस्य शिखरात्क्षीरधारा नरेश्वर ।
विश्वरूपाऽपरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना ॥२८॥
पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा ।
सवन्तीव प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे ॥२९॥

हे नरेश्वर! इस पर्वत की शिखर से अनेक रूप धारिणी अपरिमित, भयङ्कर शब्द करने वाली, दुग्धधारा के समान उज्ज्वल, पवित्र, पुण्यमालाओं से सेवित, गङ्गा नदी निकली है। यह गङ्गा इस तरह वहती है जैसे—चन्द्रमा के तालाब में वेग से वह रही हो ॥२८-२९॥

तया ह्युत्पादितः पुण्यः स ह्रदः सागरोपमः ।
तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि ॥३०॥
शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव पिनाकधृक् ।

समुद्र के समान इस विशाल ह्रद को गङ्गा ने ही बनाया है। पर्वतों से धारण करने में अयोग्य इस गङ्गा को एक लाख वर्ष तक पिनाक धारी शंकर ने अपने शिर पर धारण किया था ॥३०॥

मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमालो महीपते ॥३१॥
जम्बूखण्डे तु तत्रैव महाजनपदो नृप ।
आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां तत्र भारत ॥३२॥

हे महीपते ! मेरु पर्वत के पश्चिम प्रदेश पर जम्बूखण्ड में एक महान् जनपद है—जिसका नाम केतुमाल है। हे भारत ! उस स्थान पर मनुष्यों की आयु दश सहस्र वर्ष की होती है।

सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाऽप्सरसोपमाः ।
अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥३३॥
जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः ।

वहां के पुरुष, सुवर्ण के आकार के होते हैं और स्त्रियां अप्सराओं के समान सुन्दर हैं। वे नर-नारी रोग-शोक से रहित और नित्य प्रसन्न चित्त हैं। उस स्थान पर नर-नारी तप्त सुवर्ण के समान कान्तिमान् प्रतीत होते हैं ॥३३॥

गन्धमादनशृङ्गेषु कुबेरः सह राक्षसैः ॥३४॥
संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः ।

गन्धमादन पर्वत की चोटी पर राक्षसों के साथ गुह्यकाधिप कुवेर अप्सराओं के संघ के साथ आनन्दित होकर रहता है ॥३४॥

गन्धमादनपार्श्वे तु परे त्वपरगण्डिकाः ॥३५॥

एकादश सहस्राणि वर्षाणां परमायुषः ।

गन्धमादन पर्वत के पास में ही जो छोटे २ उसीके पर्वत खण्ड हैं, वहां पर भी ग्यारह सहस्र वर्ष की परम आयु होती है।

तत्र हृष्टा नरा राजंस्तेजोयुक्ता महाबलाः ।
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ॥३६॥

हे राजन् ! वहां रहने वाले मनुष्य, बड़े हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी और महाबली तथा कमल के समान वर्ण वाली, बड़ी सुन्दरी स्त्रियां होती हैं ॥३६॥

निलात्परतरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं परम् ।
वर्षमैरावतं राजन्नानाजनपदावृतम् ॥३७॥

निल पर्वत से आगे श्वेतपर्वत और श्वेतपर्वत से आगे हैरण्यक पर्वत है। हे राजन् ! इसके पीछे ऐरावतवर्ष नामक देश है, जिसमें अनेक जनपद हैं ॥३७॥

धनुःसंस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
इलावृत्तं मध्यमं तु पञ्च वर्षाणि चैव हि ॥३८॥

हे महाराज ! इनमें दक्षिण और उत्तर के जो ऐरावतवर्ष और भारतवर्ष देश बताए हैं, ये धनुषाकार हैं। इनके मध्य में

इलावृत्तवर्ष है। श्वेत और हैरण्यक मिलाकर—ये पांच वर्ष कहाते हैं ॥३८॥

उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ।
आयुःप्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥३९॥

इन पांचों वर्षों में एक से उत्तर दूसरा गुणों में श्रेष्ठ है। आयु का प्रमाण, आरोग्यता, धर्म, अर्थ और काम-सबकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता समझनी चाहिए ॥३९॥

समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भारत ।
एवमेषा महाराज पर्वतैः पृथिवी चिता ॥४०॥

हे भारत! इस तरह इन सब वर्षों में प्राणी भरे पड़े हैं। हे महाराज! इसी प्रकार यह पृथिवी पर्वतों से भरी पड़ी है ॥४०॥

हेमकूटस्तु सुमहान्कैलासो नाम पर्वतः ।
यत्र वैश्रवणो राजन्गुह्यकैः सह मोदते ॥४१॥

हे राजन्! सुवर्ण के शिखर का धारण करने वाला एक कैलास नामक पर्वत है। यहाँ पर विश्रवा का पुत्र कुबेर अपने गण गुह्यकों के साथ आनन्द में रहता है ॥४१॥

अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ।
हिरण्यशृङ्गः सुमहान्दिव्यो मणिमयो गिरिः ॥४२॥

कैलास के उत्तर में मैनाक नामक पर्वत है। उसकी भी सुवर्ण की चोटी है और वह मणियों से भरा हुआ पर्वत है ॥४२॥

तस्य पार्श्वे महद्दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम् ।
रम्यं विन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ॥४३॥
दृष्ट्वा भागीरथीं गङ्गामुवास वहुलाः समाः ।

इसी के पास में वहुत दिव्य, सुन्दर, सुवर्ण के कण जैसी वालु वाला, रमणीक विन्दसर है, जहां राजा भगीरथ ने भागीरथी गङ्गा को देखकर वहुत वर्षों तक निवास किया था ॥४३॥

यूपा मणिमयास्तत्र चैत्याश्चापि हिरण्मयाः ॥४४॥
तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः ।

वहां पर मणियों के खम्भ और स्वर्णमय चैत्यालय (देव भवन) वने हुए हैं। इसी स्थान पर भजन करके महायशस्वी इन्द्र ने सिद्धी प्राप्त की है ॥४४॥

स्रष्टा भूतपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातनः ॥४५॥
उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः ।

इसी स्थान पर सव लोकों के रचने वाले-अत्यन्त तेजस्वी भूतपति सनातन परमात्मा की सव लोग उपासना करते हैं ॥४५॥

नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः ॥४६॥
तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।

नर, नारायण, ब्रह्मा, मनु और पांचवां स्थाणु और दिव्य त्रिपथ-गामिनी गंगा, प्रथम से ही वहां प्रतिष्ठित है ॥४६॥

ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ॥४७॥
वस्वौकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ।
जम्बूनदी च सीता च गङ्गा सिन्धुश्च सप्तमी ॥४८॥
अचिन्त्या दिव्यसङ्काशा प्रभोरेषैव संविधिः ।

ब्रह्म लोक से निकल कर गङ्गा की सात धाराएँ हो जाती हैं। वस्वौकसारा, नलिनी, पाविनी सरस्वती, जम्बू नदी, सीता, गङ्गा और सातवीं सिन्धु धारा है। इनका अचिन्त्य प्रभाव और दिव्य स्वरूप है। प्रभु की ऐसी ही रचना है ॥४७-४८॥

उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ॥४९॥
दृश्याऽदृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती ।
एता दिव्याः सप्त गङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥५०॥

सहस्रयुग पर्यन्त जहाँ पर देवता यज्ञ करते हैं, वहाँ सरस्वती नदी कभी दृश्य और कभी अदृश्य हो जाती है। ये सातों गङ्गा की धाराएँ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। ॥४९-५०॥

रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे तु गुह्यकाः ।
सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम् ॥५१॥

हिमवान् पर्वत पर रक्ष और हेमकूट पर यक्ष, निषध पर सर्प और नाग रहते हैं। यहां गोकर्ण तपोवन है ॥५१॥

देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते ।
गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा ।
शृङ्गवांस्तु महाराज देवानां प्रतिसञ्चरः ॥५२॥

सारे देव और असुरों का श्वेत पर्वत है। निषध पर्वत पर गन्धर्वों का निवास है। नील पर्वत पर ब्रह्मर्षि रहते हैं। हे महाराज! शृङ्गवान् नामक पर्वत है, जिस पर देवों का आना जाना लगा रहता है ॥५२॥

इत्येतानि महाराज सप्त वर्षाणि भागशः।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥५३॥
तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते दैवमानुषी।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया तु बुभूषता ॥५४॥

हे महाराज! यही सात वर्षों का विभाग है। इन सब वर्षों में स्थावर जंगम प्राणियों का निवास है। इनके पास दैवी और मानुषी अनेक भांति की समृद्धि है। वह गिनाई नहीं जा सकती है। समझ वाले मनुष्य को श्रद्धा से समझ लेनी चाहिए ॥५४॥

यां तु पृच्छसि मां राजन्दिव्यामेतां शशाकृतिम्।
पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे।
कर्णौ तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च ॥५५॥

हे राजन्! जो तुमने मुझ से चन्द्रमा में इस दिव्य शशाक आकृति का वर्णन पूछा-तो इस शशाक के उत्तर और दक्षिण में दो वर्ष (देश) हैं, जो तुमको कह दिए। इसी शश स्थानमें नाग द्वीप और काश्यप द्वीप-ये दो द्वीप हैं, जो कर्ण के आकार के हैं ॥५५॥

ताम्रपर्णशिलो राजञ्छ्रीमान्मलयपर्वतः ।
एतद् द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यते शशसंस्थितम् ॥५६॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि
भूम्यादिपरिमाणविवरणे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

हे राजन्! ताम्रपर्ण और श्रीमान् माल्य पर्वत भी द्वितीय जम्बू द्वीप के भाग हैं, जो शशाक में स्थित हैं ॥५६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व में
भूमि परिमाण का छठा अध्याय समाप्त हुआ ।



सातवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

मेरोरथोत्तरं पार्श्वं पूर्वं चाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।
निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महा बुद्धिमान् सञ्जय! अब तुम मुझसे मेरु पर्वत के उत्तर और पूर्व के पार्श्वों का वर्णन करो तथा माल्यवान् पर्वत के सारे वृत्तान्त सुनाओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।
उत्तराः कुरवो राजन्पुण्याः सिद्धनिषेविताः ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! नील पर्वत के दक्षिण और मेरु पर्वत के उत्तर पार्श्व में उत्तर कुरु प्रदेश हैं। जो बड़े पवित्र और सिद्धों से सेवित हैं ॥२॥

तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥३॥

वहां पर नित्य पुष्प फलों से युक्त मधुर फल वाले वृक्ष हैं। यहां सुगन्धि से भरे हुए पुष्प और रसीले फल हैं ॥३॥

सर्वकामफलास्तत्र केचिद्वृक्षा जनाधिप।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र नराधिप ॥४॥

हे जनाधिप! वहां पर कोई २ वृक्ष तो सम्पूर्ण कामनाओं के देने वाले हैं। हे नराधिप! तथा अन्य कुछ वृक्ष दुग्ध से भरे हैं ॥४॥

ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चाऽमृतोपमम्।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥५॥

ये वृक्ष सदा अमृत के समान षट् रसों से पूर्ण दुग्ध को टपकाते रहते हैं। कभी ये वृक्ष वस्त्र और कभी फलों के स्थान में आभूषण प्रदान करते हैं ॥५॥

सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का च जनाधिप।
पुष्करिण्यः शुभास्तत्र सुखस्पर्शा मनोरमाः ॥६॥

इस स्थान की भूमि मणि जटित है। यहां बालुका सूक्ष्म सुवर्ण के कणों के समान उज्ज्वल है। हे जनाधिप! जो सब ऋतुओं में सुखदायी और पङ्क रहित होती है। यहीं पर सुन्दर पुष्करिणी (छोटी २ तलाई) हैं, जिन का स्पर्श सुखकारी और मनोरम है ॥६॥

देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ॥७॥

इसस्थान पर देवलोक से च्युत हुए पुरुषों का जन्म होता है। ये मनुष्य उच्च कुलोत्पन्न और बड़े सुन्दर होते हैं ॥७॥

मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाऽप्सरसोपमाः।
तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसन्निभम् ॥८॥

यहीं पर मनुष्यों के जोड़े उत्पन्न होते हैं। यहां की स्त्रियां अप्सराओं के समान सुन्दर हैं। ये ही इन दुग्ध देने वाले वृक्षों के अमृत तुल्य दुग्ध का पान करते हैं ॥८॥

मिथुनं जायते काले समं तच्च प्रवर्धते।
तुल्यरूपगुणोपेतं समवेषं तथैव च ॥९॥

जो जोड़े यहां उत्पन्न होते हैं, वे साथ २ बढ़ते हैं। उनकी तुल्य आयु, रूप और गुण तथा वेष भूषा होती है ॥९॥

एवमेवाऽनुरूपं च चक्रवाकसमं विभो।
निरामयाश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः ॥१०॥

हे विभो ! चक्रवाक पक्षी के तुल्य ये जोड़े अनुरूप होते हैं। ये मनुष्य, बड़े नीरोग और सदा प्रसन्न होते हैं ॥१०॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
जीवन्ति ते महाराज न चाऽन्योन्यं जहत्युत ॥११॥

हे महाराज ! ये जोड़े ग्यारह सहस्र वर्ष तक जीते हैं और एक दूसरे से वियुक्त नहीं होते हैं ॥११॥

भारुण्डा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डा महाबलाः ।
तान्निर्हरन्तीह मृतान्दरीषु प्रक्षिपन्ति च ॥१२॥

बड़ी तीक्ष्ण चोंच वाले, महाबली भारुण्ड नामक यहां पर पक्षी हैं, वे मृतकोंको उठा ले जाते हैं और गुफाओं में फेंक आते हैं

उत्तराः कुरवो राजन्व्याख्यातास्ते समासतः
मेरोः पार्श्वमहं पूर्वं वक्ष्याम्यथ यथातथम् ॥१३॥

हे राजन् ! मैं ने उत्तर कुरुप्रदेश का वर्णन आप के सन्मुख संक्षेप में कर दिया है। अब मैं मेरु पार्श्व का ठीक २ वर्णन करता हूँ ॥ १३ ॥

तस्य मूर्धाभिषेकस्तु भद्राश्वस्य विशाम्पते ।
भद्रसालवनं यत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥१४॥

हे विशाम्पते ! मेरु के पूर्व के पार्श्व में भद्राश्व का प्रधान प्रदेश है। यहीं पर भद्र सालवन और कालाम्र नामक महावृक्ष हैं

कालाम्रस्तु महाराज नित्यपुष्पफलः शुभः ।
द्रुमश्च योजनोत्सेधः सिद्धचारणसेवितः ॥१५॥

तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः ।

स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥१६॥

हे महाराज ! इस वृक्ष की ऊंचाई एक योजन है, जिस पर सिद्ध और चारण रहते हैं। वहां पर जो श्वेत पुरुष रहते हैं, वे बड़े तेजस्वी और बली हैं। यहाँ की स्त्रियां भी कुमुद के समान कोमल सुन्दरी और देखने में मनोहर हैं ॥१५-१६॥

चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।

चन्द्रशीतलगात्र्यश्च नृत्यगीतविशारदाः ॥१७॥

इन स्त्रियों की चन्द्रमा की सी कान्ति और वर्ण है तथा पूर्ण चन्द्रमा के सदृश शीतल शरीर है। ये नृत्य और गान में कुशल होती हैं ॥१७॥

दशवर्षसहस्राणि तत्राऽऽयुर्भरतर्षभ ।

कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥१८॥

हे भरतर्षभ ! यहां की आयु भी दश हजार वर्ष की ही होती है। ये लोग कालाम्र वृक्ष का रस पीते हैं, जिससे नित्य यौवन से युक्त रहते हैं ॥१८॥

दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।

सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः ॥१९॥

नील पर्वत के दक्षिण और निषध के उत्तर में एक बड़ा सुन्दर सनातन जामुन का महान् वृक्ष है ॥ १९ ॥

सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ।
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः ॥२०॥

यह वृक्ष सब कामनाओं का देने वाला, पवित्र और सिद्ध तथा चारणों से सेवित है। इसी वृक्ष के आधार पर यह सनातन जम्बू-द्वीप कहाता है ॥२०॥

योजनानां सहस्रं च शतं च भरतर्षभ ।
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवस्पृङ् मनुजेश्वर ॥२१॥

हे भरतर्षभ ! इस वृक्ष का विस्तार ग्यारह सौ योजन का होगा। हे राजन् ! यह वृक्ष अपनी ऊंचाई से स्वर्ग को छूता है।

अरत्नीनां सहस्रं च शतानि दश पञ्च च ।
परिणाहस्तु वृक्षस्य फलानां रसभेदिनाम् ॥२२॥
पतमानानि तान्युर्वीं कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् ।
मुञ्चन्ति च रसं राजन्तस्मिन्रजतसन्निभम् ॥२३॥

ढाई हजार अरत्नि (हाथ से कुछ कम) परिमाण के इस वृक्ष के रसीले फल हैं। जब ये फल पृथिवी पर गिरते हैं, तब बड़ा ही शब्द करते हैं और उस समय किसी २ फल में से रजतवर्ण (चांदी) के समान उज्ज्वल रस बह निकलता है ॥२२-२३॥

तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा जनाधिप ।
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा सम्प्रयात्युत्तरान्कुरून् ॥२४॥

हे जनाधिप ! इस जामुन के वृक्ष के फल का रस नदी होकर बहता है। यह नदी जल मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करके उत्तर कुरुप्रदेश में चला जाता है ॥२४॥

तत्र तेषां मनःशान्तिर्न पिपासा जनाधिप ।
तस्मिन्फलरसे पीते न जरा बाधते च तान् ॥२५॥

हे जनाधिप ! इस वृक्ष के फलों के इस रस के पीने से वहां के मनुष्यों के मन को बड़ी शान्ति रहती है और उन्हें कुछ भी प्यास नहीं रहती तथा उनको वृद्धावस्था की क्षीणता क्लेशित नहीं करती है ॥२५॥

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् ।
इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भास्वरं तु तत् ॥२६॥

वहां पर जाम्बूनद नामक एक सुवर्ण का भूषण उत्पन्न होता है, वही देवों का आभूषण कहलाता है। यह इन्द्र गोपक (बीर बहूटी) के सदृश चमकीला होता है ॥२६॥

तरुणादित्यवर्णाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे दृश्यते हव्यवाट् सदा ॥२७॥

वहां पर तरुण सूर्य के सदृश तेजस्वी मनुष्य होते हैं। यहाँ माल्यवान् पर्वतकी शिखर पर अग्नि सदा प्रज्वलित दिखाई देती है

नाम्ना संवर्त्तको नाम कालाग्निर्भरतर्षभ ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे पूर्वपूर्वानुगण्डिका ॥२८॥

हे भरतर्षभ ! इस कालाग्नि का नाम संवर्तक अग्नि है। इस माल्यवान् पर्वत के शिखर पर पूर्व २ की ओर छोटे २ पर्वत है।

योजनानां सहस्राणि पञ्च षण्माल्यवानथ ।
महारजतसङ्काशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥२९॥

यह माल्यवान् पर्वत पांच छः हजार योजन की परिधि में है। यहां पर चांदी के समान चमकीले मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥२६॥

ब्रह्मलोकच्युताः सर्वे सर्वे सर्वेषु साधवः।
तपस्तप्यन्ति ते तीव्रं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः।
रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ते दिवाकरम् ॥३०॥
षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिरेव शतानि च।

ये लोग, ब्रह्मा के लोक से च्युत होकर यहां उत्पन्न होते हैं। ये सबके साथ सज्जनताका व्यवहार करते हैं। ये सारे ब्रह्मचर्यमें स्थित होकर तीव्र तप करते हैं। ये प्राणियों की रक्षा के निमित्त सूर्य में प्रवेश कर जाते हैं, जिनकी संख्या छियासठ सहस्र मानी गई है ॥३०॥

अरुणस्याऽग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ॥३१॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिमेव शतानि च।
आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि माल्यवद्वर्णने सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

ये सूर्य को रोक कर उसके सारथि अरुण के सन्मुख पहुंचते हैं। ये छियासठ हजार वर्ष तक सूर्य ताप को सह कर फिर शशि मण्डल में प्रविष्ट हो जाते हैं। ॥३१-३२॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व में माल्यवान् पर्वत के वर्णन का सातवां अध्याय समाप्त हुआ

आठवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

वर्षाणां चैव नामानि पर्वतानां च सञ्जय ।
आचक्ष्व मे यथातत्त्वं ये च पर्वतवासिनः ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे-सञ्जय ! अब तुम सारे वर्ष पर्वत और पर्वत निवासी प्राणियों के मुझे ठीक २ नाम सुनाओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! श्वेत पर्वत के दक्षिण और निषध के उत्तर में रमणक वर्ष नामक प्रदेश है, जहां पर मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥२॥

शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ।
निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ॥३॥

ये सारे ही मनुष्य बड़े कुलाचार सम्पन्न और सुन्दर होते हैं । ये मनुष्य परस्पर एक दूसरे के शत्रु नहीं होते ॥३॥

दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जीवन्ति ते महाराज नित्यं मुदितमानसाः ॥४॥

हे महाराज ! ये मनुष्य, साढ़े दस हजार वर्ष तक बड़ी प्रसन्नता से जीते हैं ॥४॥

दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
वर्षं हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥५॥

नील पर्वत के दक्षिण और निषध के उत्तर में हिरण्मय वर्ष नामक प्रदेश है, यहीं पर हैरण्वती नदी है ॥५॥

यत्र चाऽयं महाराज पक्षिराट् पतगोत्तमः ।
यक्षानुगा महाराज धनिनः प्रियदर्शनाः ॥६॥
महाबलास्तत्र जना राजन्मुदितमानसाः ।

हे महाराज ! पक्षियों में श्रेष्ठ पक्षिराज गरुड़ भी यहीं निवास करते हैं। हे राजन् ! यहां के लोग बड़े सुन्दर, धनी और महाबली होते हैं, जो यक्षों के अनुगामी हैं और सदा बड़े आनन्दित रहते हैं ॥६॥

एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥७॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ।

हे जनाधिप ! साढे बारह सहस्र वर्ष तक यहां की आयु का प्रमाण है । इतने वर्ष तक यहां के प्राणी जीते रहते हैं ॥७॥

शृङ्गाणि च विचित्राणि त्रीण्येव मनुजाधिप ॥८॥
एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् ।
सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥९॥
तत्र स्वयम्प्रभा देवी नित्यं वसति शाण्डिली ।

हे मनुजाधिप ! इसके तीन विचित्र शिखर हैं। इनमें एक मणिमय दूसरा सुवर्णमय और तीसरा रत्नमय है । ये तीनों

शिखर बड़े २ भवनों से सुशोभित हैं, यहां पर स्वयं प्रभा शाण्डिली देवी नित्य निवास करती है ॥८-९॥

उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते जनाधिप ॥१०॥
वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गमतः परम् ।

न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः ॥११॥
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवाऽऽवृतः ।

हे जनाधिप ! शृङ्गवान् पर्वत के उत्तर की ओर समुद्र के पास ऐरावत वर्ष नामक प्रदेश है, जो शृङ्गवान् पर्वत से आगे चल कर है। वहां पर सूर्य प्रकाश नहीं करता है और न मनुष्य वृद्ध होते हैं। नक्षत्रों के सहित चन्द्रमा सम्पूर्ण ज्योतियों से आवृत सा रहता है।

पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥१२॥
पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।

वहां कमल के समान कान्ति और वर्ण धारी तथा कमलके पत्र के समान नेत्र वाले और कमल के सदृश सुगन्धि- धारी, मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥१२॥

अनिष्यन्दा इष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रियाः ॥१३॥
देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो नृप ।

हे राजन् ! इन मनुष्यों के स्वेद (पसीना) नहीं आता है। ये सदा सुगन्धि से समन्वित होते हैं। ये मनुष्य, कुछ आहार न करके जितेन्द्रियता से युक्त रजोगुण से रहित होकर निवास करते हैं, जो देवलोक से च्युत होकर यहां जन्म लेते हैं ॥१३॥

त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥१४॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा भरतसत्तम।

हे जनाधिप ! भरतसत्तम ! इन मनुष्यों की आयु का प्रमाण तेरह सहस्र वर्ष का है। इतने वर्ष तक ये मनुष्य जीवित रहते हैं।

क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः।
हरिर्वसति वैकुण्ठः शकटे कनकामये ॥१५॥
अष्टचक्रं हि तद्यानं भूतयुक्तं मनोजवम् ।
अग्निवर्णं महातेजो जाम्बूनदविभूषितम् ॥१६॥

क्षीर समुद्र के उत्तर की ओर सुवर्ण के शकट में वैकुण्ठनाथ शक्तिशाली हरि निवास करते हैं। इस शकट के आठ चक्र है, जिसे प्राणी घेरे रहते हैं। यह यान मनके समान वेगशाली, अग्नि के समान वर्ण वाला, महा तेजो युक्त तथा उत्तम सुवर्ण से सुशोभित है ॥१५-१६॥

स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च भरतर्षभ।
संक्षेपो विस्तरश्चैव कर्त्ता कारयिता तथा ॥१७॥

हे भरतर्षभ ! वे ही हरि सब भूतों के प्रभु और विभु हैं। उन्हीं से सब जगत् का संहार और विस्तार होता है। वही प्रभु कर्ता और कारयिता है ॥१७॥

पृथिव्यापस्तथाऽऽकाशं वायुस्तेजश्च पार्थिव ।
स यज्ञः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः ॥१८॥

हे राजन्! पृथिवी, जल, आकाश, वायु, तेज आदि पञ्च भूत सब भगवान् हरि के ही प्रादुर्भूत हैं। वही देव सब भूतों का यज्ञ और उनका मुख यह अग्नि है ॥१८॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तः सञ्जयेन धृतराष्ट्रो महामनाः।
ध्यानमन्वगमद्राजन्पुत्रान्प्रति जनाधिप ॥१९॥

वैशम्पायन बोले—हे जनाधिप! इस प्रकार महा मनस्वी राजा धृतराष्ट्र से सञ्जय ने कहा-अब राजा धृतराष्ट्र भी अपने पुत्रों के विषय में सोचने लगे ॥१९॥

स विचिन्त्य महातेजाः पुनरेवाऽब्रवीद्वचः।
असंशयं सूतपुत्र कालः संक्षिपते जगत् ॥२०॥
सृजते च पुनः सर्वं नेह विद्यति शाश्वतम्।

वे महातेजस्वी धृतराष्ट्र कुछ विचार करके फिर ये वचन बोले-हे सूतपुत्र! सञ्जय! यह ठीक है, कि अब काल जगत् का अवश्यं संहार करना चाहता है। इसके अनन्तर यह फिर रचना करेगा। यहां सदा कुछ नहीं रहता है ॥२०॥

नरो नारायणश्चैव सर्वज्ञः सर्वभूतहृत् ॥२१॥
देवा वैकुण्ठमित्याहुर्नरा विष्णुमिति प्रभुम् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि
धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नर और नरायण सर्वज्ञ और सब प्राणियों के हृदय हैं। देवता इनको वैकुण्ठ और मनुष्य इन्हें शक्तिशाली भगवान् विष्णु कहते हैं ॥२१-२२॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व में धृतराष्ट्र वाक्य का आठवां अध्याय समाप्त हुआ।



नौवा अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

यदिदं भारतं वर्षं यत्रेदं मूर्च्छितं बलम्।
यत्राऽतिमात्रलुब्धोऽयं पुत्रो दुर्योधनो मम ॥१॥
यत्र गृद्धाः पाण्डुपुत्रा यत्र मे सज्जते मनः।
एतन्मे तत्त्वमाचक्ष्व त्वं हि मे बुद्धिमान्मतः ॥२॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! यह जो भारतवर्ष है और जिस के लिए यह सारी सेना इकट्ठी हुई है तथा जिसके लिए मेरा पुत्र दुर्योधन अत्यन्त लालच कर रहा है, जिसके लिए पाण्डवों को भी लालच हो रहा है और जो मेरे मन को भी खैंचता है, इस भारतवर्ष का विस्तार मुझे सुनाओ। तुम मेरी सम्मति में बड़े ही बुद्धिमान् हो ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

न तत्र पाण्डवा गृद्धा शृणु राजन्वचो मम ।
गृद्धो दुर्योधनस्तत्र शकुनिश्चापि सौबलः ॥३॥
अपरे क्षत्रियाश्चैव नानाजनपदेश्वराः ।
ये गृद्धा भारते वर्षे न मृष्यन्ति परस्परम् ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! तुम मेरे वचन सुनो । इस भारतवर्ष के लिए पाण्डवों को कोई लालच नहीं है । इसके लिए तो राजा दुर्योधन और सुबल पुत्र शकुनि ही लालच में मरे जाते हैं तथा बहुत अन्य क्षत्रिय भी है, जो अनेक देशों से आकर इकट्ठे हुए हैं । ये सब भारतवर्ष का लालच कर रहे हैं और परस्पर एक दूसरे का सहन नहीं करते हैं ॥३-४॥

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ॥५॥
पृथोस्तु राजन्वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः ।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च ॥६॥
तथैव मुचुकुन्दस्य शिबेरौशीनरस्य च ।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ॥७॥
कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः ।
सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च ॥८॥
अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम् ।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम् ॥९॥

हे भारत ! अब मैं तुम से भारतवर्ष के विषय में कहता हूं, कि यह देश देवराज इन्द्र और वैवस्वत मनु को बड़ा प्रिय है। इसी तरह वेन पुत्र पृथु महात्मा इक्ष्वाकु को भी यह बड़ा ही प्रिय था। ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, उशीनरपुत्र, शिवि, ऋषभ, ऐल (इलापुत्र) राजानृग, कुशिक, महात्मा, गाधि, सोमक, दिलीप तथा इसी तरह वे अन्य बलवान क्षत्रिय नरेशों को यह भारतवर्ष प्रिय है ॥८-९॥

तत्ते वर्षं प्रवक्ष्यामि यथायथमरिन्दम ।
शृणु मे गदतो राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥१०॥

हे अरिन्दम ! मैं इस भारतवर्ष के विषय में तुमको ठीक २ सुनाता हूं। हे राजन् ! मैं जो कुछ कहता हूं तुम सुनो, क्योंकि तुमने मुझसे इस विषय में प्रश्न किया है ॥१०॥

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥११॥
तेषां सहस्रशो राजन्पर्वतास्ते समीपतः ।
अविज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रसानवः ॥१२॥

इस भारतवर्ष में महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य, पारियात्र, ये सात कुल पर्वत हैं। हे राजन् ! इनके समीप सहस्रों की संख्या में पर्वत हैं, जिनको कोई जानता भी नहीं। जो बड़े दृढ़ विशाल और अद्भुत शिखर वाले हैं ॥१२॥

अन्ये ततोऽपरिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ।
आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य तैर्मिश्राः पुरुषा विभो ॥१३॥

इनके अतिरिक्त भी विना जाने हुए छोटे २ पर्वत हैं, जो छोटे २ जीवों के आधार हैं। हे कौरव्य ! आर्य, म्लेच्छ और इन से मिलकर बने हुए पुरुष भी इन पर्वतों पर रहते हैं ॥१३॥

नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ।
गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां महानदीम् ॥१४॥
शतद्रुं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ।
दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम् ॥१५॥
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम् ।
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि ॥१६॥
वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम् ।
करीषिणीं चित्रवाहां चित्रसेनां च निम्नगाम् ॥१७॥
गोमतीं धूतपापां च वन्दनां च महानदीम् ।
कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम् ॥१८॥
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च तथैव च ।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा ॥१९॥
शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि ।
कावेरीं चुलुकां चापि वाणीं शतबलामपि ॥२०॥
नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां जनाधिप ।
पवित्रां कुण्डलीं सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम् ॥२१॥
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमामोघवतीं तथा ।
पाशाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् ॥२२॥

करीषिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम् ।
मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा ॥२३॥
पुरावतीमनुष्णां च शैब्यां कापीं च भारत ।
सदानीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम् ॥२४॥
सदाकान्तां शिवां चैव तथा वीरवतीमपि ।
वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीं च कम्पनां सहिरण्वतीम् ॥२५॥
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् ॥२६॥
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुवीरामम्बुवाहिनीम् ।
विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम् ॥२७॥
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि ।
खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिश्रावां महापगाम् ॥२८॥
शीघ्रां च पिच्छिलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम् ।
कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम् ॥२९॥
दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम् ।
यवक्षामथ रोहीं च तथा जाम्बूनदीमपि ॥३०॥
सुनसां तमसां दासीं वसामन्यां वराणसीम् ।
नीलां धृतवतीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥३१॥
मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्ध्वनीम् ।
एताश्चान्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप ॥३२॥

हे भारत ! विपुला, गङ्गा, सिन्ध, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा महानदी, बाहुदा, शतद्रु, चन्द्रभागा, महानदी यमुना, दृषद्वती, विपाशा, विपाप्णा, स्थूलवालुका, वेत्रवती, नीचे २ बहने वाली कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका, वेदस्मृता, वेदवती त्रिदिवा, इक्षुला, कृमी, करीषिणी, चित्रवाहा, चित्रसेना, गोमती, धूतपापा, वन्दना, कौशिकी त्रिदिवा, कृत्या, निचिता, लोहितारणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू चर्मण्वती, दूसरी वेत्रवती, हस्तिसोमा, दिक्, सरावती, दूसरी पयोष्णी, वेणा, भीमरथी, कावेरी, चुलुका, वाणी, शतबला, नीवारा, अहिता, सुप्रयोगा; पवित्रा, कुण्डली, सिन्धु राजनी, पुरमालिनी, पूर्वाभिरामा, वीरा, भीमा, ओघवती, पाशाशिनी, पापहरा, महेन्द्रा, पाटलावती, करीषिणी, असिक्नी, महानदी कुशचीरा, मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा, घृतवती, पुरावती, अनुष्णा, शैव्या, कापी, सदानीरा, अधृष्या, महानदी, कुलधार, सदाकान्ता, शिवा, वीरवती, वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना, हिरण्वती, वरा, वीरकरा, महानदी पञ्चमी, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वमित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा, अम्बुवाहिनी, विनदी, पिञ्जला, वेणा, ताम्रा; कपिला, खलु, सुवामा, वेदाश्वा, हरिश्रावा, महापगा, शीघ्रा, पिच्छला, महानदी, भारद्वाजा, कौशिकी, शोणा, बाहुदा, चन्दमा, दुर्गा, चित्रशिला, ब्रह्मवेध्या, बृहद्वती, तन्वा, रोही, जाम्बूनदी, सुनसा, तमसा, दासी, वसा, वराणसी, नीला, धृतवती, पर्णाशा, मानवी, वृषभा, ब्रह्ममेध्या, बृहद्धनी, ये-तथा अन्य महानदी इसी भारतवर्ष में हैं।।१४-३२।।

सदानिरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम् ।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत ॥३३॥
चित्रोपलां चित्ररथां मंजुलां वाहिनीं तथा ।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोषां चापि महानदीम् ॥३४॥
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम् ।
लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम् ॥३५॥
कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च भारत ॥३६॥
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३७॥
इत्येताः सरितो राजन्समाख्याता यथास्मृति ।
अत ऊर्ध्वं जनपदान्निबोध गदतो मम ॥३८॥

हे भारत ! सदा निरामय कृष्णा, मन्दगा, मन्दवाहिनी, ब्राह्मणी, महागौरी, दुर्गा, चित्रोत्पला, चित्ररथा, मञ्जुला, वाहिनी, मन्दाकिनी, वैतरिणी महानदी, कोषा, शुक्तिमती, अनङ्गा, वृषसाह्वया कुमारी, ऋषिकुल्या, मारिषा, सरस्वती, दूसरी मन्दाकिनी, सुपुण्या, सर्वा और गङ्गा आदि नदियां जगत् की माता के समान और अन्नादि महान् फलों के देने वाली हैं । ऐसी ही सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में अनेक नदियाँ और हैं, जिनका प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान नहीं है । हे राजन् ! मैंने भी अपनी स्मृति के

अनुसार तुमको बतायी है। अब इसके आगे मैं तुमको देशों के नाम गिनाता हूँ—तुम मुझसे उनके नाम सुनो ॥ ३३–३८ ॥

तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः ।
शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा मालास्तथैव च ॥३९॥
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुन्तयः कान्तिकोसलाः।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥४०॥
उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरन्धराः ॥४१॥
गोधा मद्रकलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः ।
जठराः कुकुराश्चैव सदशार्णाश्च भारत ॥४२॥
कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवाऽपरकुन्तयः ।
गोमन्ता मण्डकाः सण्डा विदर्भा रूपवाहिकाः ॥४३
अश्मकाः पाण्डुराष्ट्राश्च गोपराष्ट्राः करीतयः ।
अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केवलम् ॥४४॥
वारवास्या यवाहाश्च चक्राश्चक्रातयः शकाः।
विदेहा मगधाः स्वक्षा मलजा विजयास्तथा ॥४५॥
अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च ।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा माहिकाः शशिकास्तथा ॥४६
बाह्लिका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पञ्चालाश्चर्ममण्डलाः ॥४७॥

अटवीशिखराश्चैव मेरुभूताश्च मारिष ।
उपावृत्तानुपावृत्ताः स्वराष्ट्राः केकयास्तथा ॥४८॥
कुन्दापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्ध्राश्च बहवो राजन्नन्तर्गिर्यास्तथैव च ॥४९॥
बहिर्गिर्याङ्गमलजा मगधा मानवर्जकाः ।
समन्तराः प्रावृषेया भार्गवाश्च जनाधिप ॥५०॥
पुण्ड्रा भर्गाः किराताश्च सुदृष्टा यामुनास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवाऽऽनर्तनैर्ऋताः ॥५१॥
दुर्गालाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोसलास्तथा ।
तीरग्रहाः शूरसेना ईजिकाः कन्यका गुणाः ॥५२॥
तिलभारा मसीराश्च मधुमन्तः सुकन्दकाः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा ॥५३॥
अभीसारा उलूताश्च शैवला बाह्लिकास्तथा ।
दार्वीचवा नवा दर्वा वातजामरथोरगाः ॥५४॥
बहुवाद्याश्च कौरव्य सुदामानः सुमल्लिकाः ।
वध्राः करीषकाश्चापि कुलिन्दोपत्यकास्तथा ॥५५॥
वनायवो दशा पार्श्वरोमाणः कुशबिन्दवः ।
कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥५६॥
किराता बर्बराः सिद्धा वैदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
ओण्ड्रा म्लेच्छाः सैसिरिध्राः पार्वतीयाश्च मारिष ५७

हे भारत ! कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय, जाङ्गल, शूरसेन पुलिन्द, वोध, माल मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्तिकोसल, चेदी, मत्स्य, करुप, भोज, सिन्धु, पुलिन्दक, उत्तम दशार्णा, मेकल उत्कल, पंचाल, दूसरा कोसल, नैकपृष्ठ, धुरन्धर, गोध, मद्रकलिङ्ग, काशय, अपरकाशय, जठर, कुकुर, दशार्ण, कुन्ति, अवन्ति, अपरकुन्ति, गोमन्त, मण्डक, सण्ड, विदर्भ, रूपवाहिक, अश्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र, करीति, अधिराज्य, कुशाद्य, केवल, मल्लराष्ट्र, वारवास्य, यवाह, चक्र, चक्राति, शक, विदेह, मगध, स्वक्ष, मलज, विजय, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, यकृल्लोम, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद माहिक, शशिक, बाह्लिक, वाटधान, आभीर, कालतोय, अपरान्त, परान्त, पञ्चाल, चर्ममण्डल, अटवीशिखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, स्वराष्ट्र, केकय, कुन्दापरान्त, माहेय, कक्ष, सामुद्र, निष्कुट, वहुअन्ध्र, अन्तर्गिर्य, अङ्ग, मलज, मगध, मानवर्जक, समन्तर, प्रावृषेय, भार्गव पुण्ड्रभर्ग, किरात, सुदृष्ट, यामुन, शक, निषाद, निषध, आनर्त, नैऋत, दुर्गाल, प्रतिमत्स्य, कुन्तल, तीसरा कोसल, तीरग्रह, शूरसेन, ईजिक, कन्यक, गुण, तिलभार, मसीर, मधुमत्त, सुकन्दक, काश्मीर, सिन्धुसौवीर, गान्धार, दर्शक, अभीसार, उलूत, शैवल, बाल्हिक, दार्वीचव, नव, दर्व, वातज, आमरथ, उरग बहुवाद्य, सुदाम, सुमल्लिक, वध्र, करीषक, कुलिन्द, उपविन्दु, कच्छ, गोपालकक्ष, जांगल, कुरुवर्णक, किरात, बर्बर, सिद्ध, वैदेह, ताम्रलिप्तक, ओण्ड्र, म्लेच्छ, सैसिरिन्ध्र और पार्वतीय ये देश भारत में प्रसिद्ध हैं ।।३९—५७।।

अथाऽपरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्या भूषिका वनवासिकाः ॥५८॥
कर्णाटका महिषका विकल्पा भूषकास्तथा ।
झिल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदा नभकाननाः ॥५९॥
कौकुट्टकास्तथा चोलाः कोङ्कणा मालवा नराः ।
समङ्गाः करकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥६०॥
ध्वजिन्युत्सवसङ्केतास्त्रिगर्त्ताः शाल्वसेनयः ।
व्यूकाः कोकवकाः प्रोष्ठाः समवेगवशास्तथा ॥६१॥
तथैव विन्ध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह ।
मालवा वल्लवाश्चैव तथैवाऽपरवल्लवाः ॥६२॥
कुलिन्दाः कालदाश्चैव कुण्डलाः करटास्तथा ।
मूषकास्तनबालाश्च सनीपा घटसृञ्जयाः ॥६३॥
अठिदापाः शिवाटाश्च तनया सुनयास्तथा ।
ऋषिका विदभाः काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥६४॥

हे भरतर्षभ ! अब तुम दक्षिण देश के नाम सुनो। द्रविड, केरल, प्राच्य, भूषिक, वनवासिक, कर्णाटक, महिषक, विकल्प, भूपक, झिल्लीक, कुन्तल, सौहृद, नभकानन, कोकुट्टक, चौल, कोङ्कण, मालव, नर, समङ्ग, करक, कुकर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सव, सङ्केत, त्रीगर्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकवक, प्रोष्ठ, समवेगवश, विन्ध्य चुलिक, पुलिन्द, वल्कल, मालव, वल्लव, अपरवल्लव, कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक,

स्तनबाल, सनीप, घट, सृञ्जय, अठिदाप, शिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदभ, काक, तंगण और परतंगण, ये देश प्रसिद्ध हैं।

उत्तराश्चाऽपरम्लेच्छाः क्रूरा भरतसत्तम ।
यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥६५॥
सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह ।
तथैव रमणाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः ॥६६॥
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ॥६७॥
खाशीराश्चाऽन्तचाराश्च पह्लवा गिरिगह्वराः ।
आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिकाः ॥६८॥
प्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः ।
तोमरा हन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥६९॥

हे भरत-सत्तम ! अब उत्तर प्रदेश के नाम सुनिए-जो अपर, म्लेच्छ और क्रूर देश हैं। यूनान, चीन, काम्बोज, बड़े क्रूर हैं, जहां म्लेच्छ जाति रहती हैं। सकृद्ग्रह कुलत्थ, हूण, पारसिक, रमण, चीन और देशमालिक, ये क्षत्रियों के उपनिवेश हैं और इनमें वैश्य तथा शूद्र कुल भी रहते हैं। शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर, पशु, खाशीर. अन्तचार, पल्हव, गिरि-गह्वर, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, प्रोषक कलिङ्ग, किरात, ये जातियां भी इनमें बसती हैं। तोमर हन्यलान और करमञ्जक इनके प्रदेश हैं ॥६५-६९॥

एते चाऽन्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च ।
उद्देशमात्रेण मया देशाः सङ्कीर्तिता विभो ॥७०॥

ये तथा अन्य भी पूर्व और उत्तर के प्रदेश हैं । मैंने तुमको उनके नाम मात्र कथन करके बताया है ॥७०॥

यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ।
दुह्येत धेनुः कामधुक् भूमिः सम्यगनुष्ठिता ॥७१॥

यह सब भूमि कामदुधा धेनु के तुल्य है । इसका जो गुण और बल के साथ दोहन करता है-वह अर्थ, धर्म काम-इन तीन महा फलों का दोहन कर सकता है ॥७१॥

तस्यां गृद्ध्यन्ति राजानः शूरा धर्मार्थकोविदाः ।
ते त्यजन्त्याहवे प्राणान्वसुगृद्धास्तरस्विनः ॥७२॥

धर्म और नीति के जानने वाले वीर राजा लोग ऐसी ही भूमि के लिए लालच किया करते हैं । ये धन के लालची, महाबली राजा इसी के लिए युद्ध भूमि में प्राण छोड़ते हैं ॥७२॥

देवमानुषकायानां कामं भूमिः परायणम् ।
अन्योन्यस्याऽवलुम्पन्ति सारमेया यथाऽऽमिषम् ॥७३

यह भूमि ही देव और मनुष्यों को कामना की परम गति है । जैसे कुत्ते एक दूसरे से मांस का टुकड़ा छीनते हैं, वैसे ही क्षत्रिय लोग इस पर लड़ते हैं ॥७३॥

राजानो भरतश्रेष्ठ भोक्तुकामा वसुन्धराम् ।
न चाऽपि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित् ।७४।

हे भरतश्रेष्ठ ! राजा लोग इस पृथिवी के भोगने की इच्छा करते हैं, परन्तु कामनाएँ आज तक किसी की तृप्ति नहीं देखी गई है ॥७४॥

तस्मात्परिग्रहे भूमेर्यतन्ते कुरुपाण्डवाः ।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥७५॥

हे भारत ! यही कारण है, कि कुरु और पाण्डव, भूमि के ग्रहण करने के लिए लड़ रहे हैं। राजा लोग, साम, दान, दण्ड, भेद आदि किसी भी उपाय से पृथिवी के ग्रहण करने का यत्न करते हैं ॥७५॥

पिता भ्राता च पुत्राँश्च खं द्यौश्च नरपुङ्गव ।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शना ॥७६॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतीयनदीदेशादिनामकथने नवमोऽध्यायः ॥ ९॥

हे नरपुङ्गव ! उत्तम प्रकार से प्राप्त की हुई भूमि ही माता, पिता, पुत्र, आकाश और द्युलोक होकर प्राणियों की रक्षक होती है। पृथिवी के सिवा अन्य कोई नहीं है ॥७६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व में
भारतीय नदी और देश के नाम बताने का
नौवां अध्याय पूरा हुआ



दसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

भारतस्याऽस्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च।
प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशुभम् ॥१॥
अनागतमतिक्रान्तं वर्त्तमानं च सञ्जय।
आचक्ष्व मे विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! अब तुम इस भारतवर्ष और हिमवान् पर्वत पर रहने वाले मनुष्यों की आयु का प्रमाण, बल तथा शुभ अशुभ का वर्णन एवं भूत, भविष्य और वर्तमान का विस्तार से कथन करो। इसी के साथ हरिवर्ष का भी वर्णन कर दो ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं च कुरुवर्द्धन ॥३॥
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो।
संक्षेपाद् द्वापरस्याऽथ ततस्तिष्यं प्रवर्त्तते ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ! भारत वर्ष में चार युग होते हैं। सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग-ये इनके नाम हैं। प्रथम युग का नाम कृतयुग है। इसके पीछे त्रेता युग है। फिर द्वापर और इसके पीछे कलियुग आरम्भ होता है ॥३-४॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम।
आयुःसंख्या कृतयुगे संख्याता राजसत्तम ॥५॥

तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥६॥

हे कुरुसत्तम ! चार सहस्र वर्ष की आयु सत्युग में लोगों की मानी गई है । हे मनुजेश्वर ! तीन सहस्र वर्षकी आयु त्रेता में और दो सहस्र वर्ष की द्वापर में आयु का प्रमाण है । इतने दिन तक ही इन युगों में मनुष्य भूमि पर ठहर सकता है ॥५-६॥

न प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन्भरतर्षभ ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ॥७॥

हे भरतर्षभ ! कलियुग में आयु का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है । इसमें प्राणी गर्भ में भी मर जाते हैं और उत्पन्न होते ही मरते हैं ॥७॥

महाबला महासत्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥८॥
जाताः कृतयुगे राजन्धनिनः प्रियदर्शनाः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च मुनयो वै तपोधनाः ॥९॥

सत्युग में महाबली महापराक्रमी प्रज्ञा गुण से युक्त सैकड़ों हज़ारों की संख्या में मनुष्य होते थे तथा होते रहते हैं । हे राजन् ! कृतयुग में धनवान और सुन्दर मनुष्य थे तथा अनेक तपस्वी हो चुके हैं ॥८-९॥

महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।
प्रियदर्शना वपुष्मन्तो महावीर्या धनुर्द्धराः ॥१०॥

ये लोग, महोत्साही, महात्मा, धार्मिक और सत्यवादी होते थे, जो बड़े सुन्दर, डीलडौल वाले, महापराक्रमी और धनुर्धर थे।

वराहा युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसत्तमाः।
त्रेतायां क्षत्रिया राजन्सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥११॥
सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदा चैव च द्वापरे।
महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परजयैषिणः ॥१२॥

क्षत्रिय बड़े ही शूर वीर और वर के योग्य थे। हे राजन्! त्रेतायुग में क्षत्रिय चक्रवर्ती होते थे। द्वापर में सारे वर्ण, महोत्साही, वीर्यवान् और परस्पर विजय की अभिलाषा करने वाले होते हैं।

तेजसाऽल्पेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषा नृप।
लुब्धा अनृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति भारत ॥१३॥

हे राजन्! थोड़े तेज से युक्त, अत्यन्त क्रोधी, लोभी, झूठे, कलियुग में पुरुष होते हैं ॥१३॥

ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायाऽसूया तथैव च।
तिष्ये भवति भूतानां रागो लोभश्च भारत ॥१४॥

हे भारत! इस कलि में लोगों के ईर्ष्या, मान, क्रोध, माया असूया, राग-द्वेष और लोभ बहुत हो जाता है ॥१४॥

संक्षेपो वर्त्तते राजन्द्वापरेऽस्मिन्नराधिप।
गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि भारतवर्षे कृताद्यनुरोधेनायुर्निरूपणे दशमोऽध्यायः ॥१०॥ समाप्तं जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व ।

हे राजन्! अब द्वापर का बहुत थोड़ा भाग शेष है। इस भारतवर्ष से अधिक हैमवतवर्ष और इससे अधिक गुण हरिवर्ष देश में हैं ॥१४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व में सत्युग आदि युग भेद से भारतवर्ष के आयु वर्णन का दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व भी समाप्त हो गया



अथ भूमि-पर्व

ग्यारहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह सञ्जय ।
विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणं तु तत्त्वतः ॥१॥
समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शनम् ।
शाकद्वीपं च मे ब्रूहि कुशद्वीपं च सञ्जय ॥२॥
शाल्मलिं चैव तत्त्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च ।
ब्रूहि गावल्गणे सर्वं राहोः सोमार्कयोस्तथा ॥३॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! तुमने जम्बूखण्ड का प्रमाण ठीक २ कह दिया । अब तुम इसका विस्तार और परिमाण मुझे सुनाओ । इसी के साथ किसी प्रकार की भी न्यूनता से हीन समुद्र का प्रमाण कहो तथा शाकद्वीप, कुशद्वीप, शाल्मलि द्वीप, क्रौंच-द्वीप तथा राहु, चन्द्र और सूर्य का वर्णन करो। हे गावल्गणे ! आप सब कुछ जानते हो ॥१-३॥

सञ्जय उवाच—

राजन्सुबहवो द्वीपा यैरिदं सन्ततं जगत् ।
सप्त द्वीपान्प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यौ ग्रहं तथा ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस पृथिवी पर अनेक द्वीप हैं, जिनसे यह जगत् व्याप्त हो रहा है। अब मैं तुम से सात द्वीप, चन्द्रमा और सूर्य इन ग्रहों की स्थिति का वर्णन करता हूं ॥४॥

अष्टादशसहस्राणि योजनानि विशाम्पते ।
षट्शतानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बुपर्वतः ॥५॥
लावणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः ।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥६॥
नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः ।
सिद्धचारणसङ्कीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥७॥

हे विशाम्पते ! अट्ठारह हजार छः सौ योजन तक इस जम्बू पर्वत का विस्तार है । इससे दुगुणा, लवण समुद्र का परिमाण है । यह समुद्र, अनेक देशों से व्याप्त, मणि विद्रुमों से चित्रित है तथा अनेक धातुओं के विचित्र पर्वतों से सुशोभित है । यह समुद्र अनेक सिद्ध और चारण आदि देवों से संकीर्ण, बड़ा ही सूक्ष्म है ॥५-७॥

शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव ।
शृणु मे त्वं यथान्यायं ब्रुवतः कुरुनन्दन ॥८॥

हे राजन् ! अब मैं यथावत् शाकद्वीप का वर्णन करता हूँ । हे कुरुनन्दन ! मैं न्यायानुसार कहता हूं, तुम ध्यान से सुनो ॥८॥

जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स नराधिप ।
विष्कम्भेण महाराज सागरोऽपि विभागशः ॥९॥
क्षीरोदो भरतश्रेष्ठ येन सम्परिवारितः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः ॥१०॥
कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते ।

शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावद्भरतर्षभ ॥११॥
उक्त एष महाराज किमन्यत्कथयामि ते ।

हे नराधिप ! महाराज ! जम्बू द्वीप के प्रमाण से विस्तार में शाकद्वीप का विस्तार द्विगुण है । हे भरतवंशश्रेष्ठ ! इनके विभाग में समुद्र भी है । यह समुद्र क्षीरोद नाम से विख्यात है, जिसने शाकद्वीप को घेर रखा है । यहां बड़े पवित्र देश हैं । यहाँ मनुष्य अकाल में नहीं मरते है, जो क्षमा और तेज से युक्त हैं, इसमें दुर्भिक्ष भी कैसे हो सकता है । हे भरतर्षभ ! यह शाकद्वीप का संक्षेप से तुमको वर्णन सुनाया गया है । हे महाराज ! कहिए-अब तुमको क्या सुनाया जावे ॥६-११॥

धृतराष्ट्र उवाच—

शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावदिह सञ्जय ॥१२॥
उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः ।

धृतराष्ट्र ने कहा–हे सञ्जय ! महाप्राज्ञ ! तुमने शाकद्वीप का संक्षेप से वर्णन कर दिया । अब तुम इसका विस्तार से ठीक २ वर्णन करो ॥१२॥

सञ्जय उवाच—

तथैव पर्वता राजन्सप्तात्र मणिभूषिताः ॥१३॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस शाकद्वीप में मणियों से भूषित सात पर्वत हैं तथा समुद्र और नदियां हैं, तुम उनके मुझसे नाम सुनो ॥१३॥

महाभारत चित्र संख्या ७०



अर्जुन मोह

महा० भीष्म पर्व अ० २५-२२ पृ० २०६

अतीव गुणवत्सर्वं तत्र पुण्यं जनाधिप ॥१४॥
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते ।

हे जनाधिप ! अत्यन्त गुणधारी वस्तुओं से युक्त, बड़ा पवित्र, देवर्षि और गन्धर्वों से युक्त प्रथम मेरु पर्वत है। जो सारा ही उत्तम हैं ॥१४॥

प्रागायतो महाराज मलयो नाम पर्वतः ॥१५॥
ततो मेघाः प्रवर्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः ।

हे महाराज ! पूर्व की ओर विस्तृत मलय नामक पर्वत हैं। इसी पर्वत से मेघ उठ कर सब ओर फैलते हैं ॥१५॥

ततः परेण कौरव्य जलधारो महागिरिः ॥१६॥
ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् ।

हे कौरव्य ! इसके आगे जलधार नामक महान् पर्वत हैं। इन्द्र इसी पर्वत से उत्तम जल ग्रहण करता है ॥१६॥

ततो वर्षं प्रभवति वर्षकाले जनेश्वर ॥१७॥
उच्चैर्गिरी रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठिता ।
रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः ॥१८॥

हे जनेश्वर ! इसके अनन्तर वर्षाकाल में वर्षा होती हैं। इस स्थानके आगे वड़ा उच्च रैवतकगिरि हैं। इसके ऊपर रेवती नक्षत्र अन्तर्लोक में चमकता है। विधाता की रचना का ऐसा ही क्रम है।

उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरिः ।
नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः ॥१६॥
यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजा जनपदेश्वर ।

हे राजेन्द्र! उत्तर की ओर श्याम नामक महा गिरि है। इसकी कान्ति नये मेघ के समान उज्ज्वल है। जो बड़ा ऊँचा और कान्ति युक्त है। हे जनपदेश्वर! वह पर्वत श्याम है, इससे इसकी प्रजा भी श्याम वर्ण की है ॥१६॥

धृतराष्ट्र उवाच—

सुमहान्संशयो मेऽद्य प्रोक्तोऽयं सञ्जय त्वया ॥२०॥
प्रजाः कथं सूतपुत्र सम्प्राप्ताः श्यामतामिह ।

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! तुमने तो मुझे बड़े ही आश्चर्य की बात सुना दी। हे सूतपुत्र! प्रजा भी श्याम पर्वत की किस तरह श्याम हो गई। तुम यह बताओ ॥२०॥

सञ्जय उवाच—

सर्वेष्वेव महाराज द्वीपेषु कुरुनन्दन ॥२१॥
गौरः कृष्णश्च पतगस्तयोर्वर्णान्तरे नृप ।
श्यामो यस्मात्प्रवृत्तो वै तस्माच्छ्यामो गिरिः स्मृतः ।

सञ्जय ने कहा—हे कुरुनन्दन! महाराज! सारे द्वीपों में प्रजा गौर या कृष्ण तथा मिले हुए वर्ण की होती है, परन्तु इस पर्वत पर लोग श्याम वर्ण के होते हैं, इससे इस पर्वत को ही श्याम पर्वत कहा जाता है ॥२१-२२॥

ततः परं कौरवेन्द्र दुर्गशैलो महोदयः ।
केसरः केसरयुतो यतो वातः प्रवर्त्तते ॥२३॥
तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः ।
वर्षाणि तेषु कौरव्य सप्तोक्तानि मनीषिभिः ॥२४॥

हे कौरवेन्द्र ! इससे आगे बड़ा ऊँचा दुर्गम शैल केसर पर्वत है, यहां का वायु केशर की गन्ध लेकर चलता है। इनका विस्तार भी ज्यों २ उत्तर की ओर बढ़ते जाओगे-द्विगुण हो जावेगा। हे कौरव्य ! इन पर्वतों में सात ही वर्ष, मनीषी लोगों ने माने हैं।

महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदोत्तरः ।
जलधारो महाराज सुकुमार इति स्मृतः ॥२५॥
रेवतस्य तु कौमारः श्यामस्य मणिकाञ्चनः ।
केसरस्याऽथ मौदाकी परेण तु महापुमान् ॥२६॥

हे महाराज ! महामेरु पर्वत का महाकाश, जलद पर्वत का कुमुदोत्तर, जलधार पर्वत का सुकुमार, रेवत का कौमार, श्याम का मणिकाञ्चन, केसर का मौदाकी और पर का महापुमान् वर्ष कहाता है ॥२५-२६॥

परिवार्य तु कौरव्य दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च ।
जम्बूद्वीपेन संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ॥२७॥
शाको नाम महाराज प्रजा तस्य सदाऽनुगा ।
तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शङ्करः ॥२८॥

हे कौरव्य ! इन वर्षों की दीर्घता और लघुता को लेकर जम्बू द्वीप से प्रमाण लगाया जाता है। इसके मध्य में भी एक महान् वृक्ष है। हे महाराज ! उस वृक्ष का नाम शाक है। उस वृक्ष की प्रजा सदा उपासना करती है। वहां बड़े पवित्र देश हैं, जिसमें भगवान् शङ्कर की पूजा होती है ॥२७-२८॥

तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च ।
धार्मिकाश्च प्रजा राजंश्चत्वारोऽतीव भारत ॥२९॥

हे राजन् ! भारत ! वहां सिद्ध, चारण, दैवत आदि देव योनि के प्राणी जाते हैं। चारों वर्ण बड़े ही धार्मिक हैं ॥२९॥

वर्णाः स्वकर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते ।
दीर्घायुषो महाराज जरामृत्युविवर्जिताः ॥३०॥

चारों वर्ण अपने २ कर्मों में रत हैं। कोई भी चोर दिखाई नहीं देता है। हे महाराज ! यहां के लोग दीर्घायु और जरा मृत्यु से रहित हैं ॥३०॥

प्रजास्तत्र विवर्द्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः ।
नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधा गता ॥३१॥

यहां की प्रजा इस तरह बढ़ती है, जैसे वर्षा में नदी बढ़ती है। यहां की नदियों में बड़ा पवित्र जल है। गङ्गा नदी की भी वहां धारा बहती है ॥३१॥

सुकुमारी कुमारी च शीताशी वेणिका तथा ।
महानदी च कौरव्य तथा मणिजला नदी ॥३२॥

चक्षुर्वर्धनिका चैव नदी भरतसत्तम ।
तत्र प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः कुरुकुलोद्वह ॥३३॥
सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः ।
न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च ॥३४॥
शक्यन्ते परिसंख्यातुं पुण्यास्ता हि सरिद्वराः ।

हे कौरव्य ! सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, महानदी, मणिजला और चक्षुवर्धनिका आदि नदियां हैं। हे भरतसत्तम ! कुरुकुलोद्वह ! वहां पवित्र जल से पूर्ण लाखों की संख्या में नदियाँ विद्यमान हैं। इन ही नदियों से जल लेकर इन्द्र वर्षा करता है। इन सबके नाम और परिमाण का कथन करना कठिन बात है।

तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥३५॥
मङ्गाश्च मशकाश्चव मानसा मन्दगास्तथा ।
मङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप ॥३६॥

वहां पर बड़े उत्तम चार लोक सम्मत, मङ्ग, मशक, मानस और मन्दग, ये चार देश हैं। हे नृप ! मङ्ग देश में ब्राह्मणों के निवास अधिक है। ये ब्राह्मण अपने २ काम में लगे रहते हैं।

मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः ।
मानसाश्च महाराज वैश्यधर्मोपजीविनः ॥३७॥

मशक देश में क्षत्रिय विशेष हैं, वे सब धार्मिक तथा सब कामनाओं के देने वाले हैं। हे महाराज ! मानस देश के रहने वाले वैश्य हैं, जो धर्म से जीविका करने वाले हैं ॥३७॥

सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः ।
शूद्रास्तु मन्दगा नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ॥३८॥

मन्दग जनपद में सब कामनाओं से सम्पन्न, शूरवीर, धर्म और नीति में कुशल शूद्र हैं. जो नित्य धर्म का आचरण करने वाले हैं ॥३८॥

न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दण्डिकः ।
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥३९॥

हे राजेन्द्र ! वहां न तो राजा है. न दण्ड और न दण्ड की व्यवस्था करने वाला है । ये धर्म के जानने वाले अपने २ धर्म से एक दूसरे की परस्पर रक्षा करते रहते हैं ॥३९॥

एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम् ।
एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि शाकद्वीपवर्णने एकादशोऽध्यायः

इस शाक द्वीप के विषय में इतना ही कहा जा सकता है तथा महा ओजस्वी शाक द्वीप के विषय में इतना ही सुनना पर्याप्त है ।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भूमिपर्व में शाकद्वीप वर्णन का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ

बारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा ।
एवं तत्र महाराज ब्रुवतश्च निबोध मे ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे कौरव्य ! उत्तर के द्वीपों की कथा इस प्रकार सुनी जाती है । हे महाराज ! मैं तुम से कहता हूं तुम ध्यान से सुनो ॥१॥

घृततोयः समुद्रोऽत्र दधिमण्डोदकोऽपरः ।
सुरोदः सागरश्चैव तथाऽन्यो जलसागरः
परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप ।
पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः ॥३॥

हे राजन् ! इनमें घृत, दही, सुरा और जल के समुद्र हैं । हे नराधिप ! ये सारे द्वीप परस्पर एक दूसरे से द्विगुण हैं । हे महाराज ! यहां के पर्वत समुद्रों से घिरे रहते हैं ॥३॥

गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मानःशिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप ॥४॥

मध्यम द्वीप में गौर नामक पर्वत है, जो मनः शिला का पर्वत है । पश्चिम द्वीप में नारायण का प्रिय कृष्ण नामक पर्वत है ॥४॥

तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः ।
प्रसन्नश्चाऽभवत्तत्र प्रजानां व्यदधत्सुखम् ॥५॥

वहां के दिव्य रत्नों की स्वयं केशव रक्षा करते हैं। वहां पर प्रसन्न हुए नारायण स्वयं प्रजा के सुख का सम्पादन करते हैं ॥५॥

कुशस्तम्बः कुशद्वीपे मध्ये जनपदैः सह।
सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप ॥६॥

कुशद्वीप के मध्य में कुशों का स्तम्ब है और वहां अनेक जनपद हैं। हे नृप! शाल्मलि द्वीप में शाल्मलि का वृक्ष पूजा जाता है ॥६॥

क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरी रत्नचयाकरः।
सम्पूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा ॥७॥

क्रौंच द्वीप में महा क्रौंच गिरि है, जिसमें रत्नों के समूह की आकरें हैं। हे महाराज! इस पर्वत की चारों वर्ण के लोग नित्य पूजा करते हैं ॥७॥

गोमन्तः पर्वतो राजन्सुमहान्सर्वधातुकः।
यत्र नित्यं निवसति श्रीमान्कमललोचनः ॥८॥

हे राजन्! सब धातुओं से पूर्ण गोमन्त नामक पर्वत है। जहां नित्य श्रीमान् कमललोचन रहते हैं ॥८॥

मोक्षिभिः सङ्गतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः।
कुशद्वीपे तु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥९॥

हे राजेन्द्र! भगवान् नारायण प्रभु की यहां नित्य मोक्ष के चाहने वाले उपासना करते हैं। इस कुशद्वीप में पर्वत विद्रुमों से भरे पड़े हैं ॥९॥

स्वनामनामा दुर्द्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः ।
द्युतिमान्नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः ॥१०॥

अपने नाम से ही विख्यात यहां द्वितीय दुर्धर्ष हिमवान् पर्वत है। हे कौरव्य ! द्युतिमान् नामक यहां तीसरा पर्वत है ॥१०॥

चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ।
षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ॥११॥

चौथा पुण्यवान् पर्वत और पाँचवाँ कुशेशय पर्वत है। छठा पर्वतोत्तम हरिगिरि नामक है। ये छः उत्तम २ कुशद्वीप के पर्वत हैं।

तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः सर्वभागशः ।
औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥१२॥
तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कम्बलं स्मृतम् ।
धृतिमत्पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥१३॥
सप्तमं कापिलं वर्षं सप्त ते वर्षलम्भकाः ।
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ॥१४॥

इनके बीच का विस्तार क्रम से सम्पूर्ण से द्विगुण है। यहां औद्भिद पहला वर्ष, दूसरा वेणु मण्डल, तीसरा सुरथाकार, चौथा कम्बल, धृतिमान् पाँचवाँ और प्रभाकर छठा और कापिल सातवाँ वर्ष है। ये सात वर्षों के नाम हैं। हे जगदीश्वर ! यहां की प्रजा में अनेक देव और गन्धर्व हैं ॥१२-१४॥

विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः ।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप ॥१५॥

यहाँ मनुष्य अनेक भांति से विहार और रमण करते हैं, परन्तु मृत्यु को प्राप्त नहीं होते हैं। हे नृप! इनमें चोर आदि दस्यु या म्लेच्छ जाति के लोग नहीं हैं ॥१५॥

गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च पार्थिव ।
अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि मनुजेश्वर ॥१६॥
यथाश्रुतं महाराज तदव्यग्रमनाः शृणु ।

हे राजन्! यहां प्रायः गौरवर्ण के और सुकुमार प्रकृति के लोग हैं। हे मनुजेश्वर! अब अवशिष्ट द्वीपों का वर्णन करता हूं, हे महाराज! जैसे मैंने सुना है, मैं वैसा ही कहता हूं, तुम स्वस्थचित्त से सुनो ॥१६॥

क्रौञ्चद्वीपे महाराज क्रौञ्चो नाम महागिरिः ॥१७॥
क्रौञ्चात्परो वामनको वामनादन्धकारकः ।
अन्धकारात्परो राजन्मैनाकः पर्वतोत्तमः ॥१८॥
मैनाकात्परतो राजन्गोविन्दो गिरिरुत्तमः ।
गोविन्दात्परतो राजन्निविडो नाम पर्वतः ॥१९॥

हे महाराज! क्रौंचद्वीप में क्रौंच नामक महागिरि है। इसके बाद में वामनक और वामनक के बाद अन्धकारक पर्वत हैं। अन्धकारक पर्वत से आगे मैनाक पर्वत है। मैनाक पर्वत से चलकर गोविन्द नामक गिरि है। हे राजन्! गोविन्द गिरि से आगे निविड़ नामक पर्वत है ॥१७—१९॥

परस्तु द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो वंशवर्द्धन ।
देशांस्तत्र प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥२०॥

हे वंशवर्द्धन ! इनमें एक से दूसरे का विस्तार दुगुना है। अब मैं वहां के देशोंका वर्णन करता हूँ, तुम उनका ध्यानसे श्रवण करो।

क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः ।
मनोनुगात्परश्चोष्णो देशः कुरुकुलोद्वह ॥२१॥
उष्णात्परः प्रावरकः प्रावारादन्धकारकः ।
अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥२२॥

क्रौंच गिरि के देश का नाम कुशल है। वामन के देश का नाम मनोनुग है। हे कुरुकुलोद्वह ! मनोनुग देश से आगे उष्ण देश है। उष्ण से आगे प्रावरक और प्रावारक से आगे अन्धकारक है। अन्धकारक देश से आगे मुनि देश है ॥२१-२२॥

मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ।
सिद्धचारणसङ्कीर्णो गौरप्रायो जनाधिप ॥२३॥

मुनि देश से आगे दुन्दुभिस्वन देश है। हे जनाधिप ! यह स्थान सिद्ध चारणों से व्याप्त और प्रायः गौर वर्ण का है ॥२३॥

एते देशा महाराज देवगन्धर्वसेविताः ।
पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान् ॥२४॥

हे महाराज ! ये देश देव गन्धर्वों से सेवित हैं। पुष्कर देश में मणि रत्नों की खान धारी पुष्कर पर्वत है ॥२४॥

तत्र नित्यं प्रभवति स्वयं देवः प्रजापतिः ।
तं पर्युपासते नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः ॥२५॥

वाग्भिर्मनोनुकूलाभिः पूजयन्तो जनाधिप ।
जम्बूद्वीपात्प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधान्युत ॥२६॥

इस स्थान पर स्वयं प्रजापति ब्रह्मा नित्य निवास करते हैं। इनकी सारे देवता और महर्षि, नित्य यहाँ उपासना करते हैं। हे जनाधिप! मन के अनुकूल वाणी से अनेक जन उनकी पूजा करते हैं। जम्बू द्वीप में अनेक प्रकार के रत्न निकलते हैं २५-२६

द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां कुरुसत्तम ।
ब्रह्मचर्येण सत्येन प्रजानां हि दमेन च ॥२७॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः ।
एको जनपदो राजन्द्वीपेष्वेतेषु भारत ।
उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रदृश्यते ॥२८॥

हे कुरुसत्तम! इन सारे द्वीपों में प्रजा की आयु ब्रह्मचर्य, सत्य, दम, आरोग्य और आयु के प्रमाण से द्विगुण २ होती चली गई है। हे भारत! इन द्वीपों में जितने देश हैं, वे सब एक ही जन पद कहाते हैं। जो देश यहां कहे हैं, उनमें एक ही धर्म विद्यमान है

ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः ।
द्वीपानेतान्महाराज रक्षंस्तिष्ठति नित्यदा ॥२९॥

हे महाराज! प्रजापति ब्रह्मा ही सर्व शक्तिमान् है, वह स्वयं ही दण्ड लेकर इन सब देशों की रक्षा करता है॥२९॥

स राजा स शिवो राजन्स पिता प्रपितामहः ।
गोपायति नरश्रेष्ठ प्रजाः सजडपण्डिताः ॥३०॥

हे राजन्! प्रजापति ही राजा, शिव, पिता और प्रपितामह है। हे नरश्रेष्ठ! वही सब मूर्ख, विद्वान् और सब प्रजा की रक्षा करता है ॥३०॥

भोजनं चाऽत्र कौरव्य प्रजाः स्वयमुपस्थितम्।
सिद्धमेव महाबाहो तद्धि भुञ्जन्ति नित्यदा ॥३१॥

हे कौरव्य! यहाँ प्रजा को स्वयं भोजन उपस्थित होता है। हे महाबाहो! वह अन्न भी बना बनाया स्वादिष्ट होता है, उस का ही प्रजा नित्य भोजन करती है ॥३१॥

ततः परं समा नाम दृश्यते लोकसंस्थितिः।
चतुरस्रं महाराज त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ॥३२॥

इसके आगे समा नामक लोककी संस्थिति है। हे महाराज वह चौकोन है और उस स्थान में तेतीस मण्डल हैं ॥३२॥

तत्र तिष्ठन्ति कौरव्य चत्वारो लोकसम्मताः।
दिग्गजा भरतश्रेष्ठ वामनैरावतादयः ॥३३॥

सुप्रतीकस्तथा राजन्प्रभिन्नकरटामुखः।
तस्याऽहं परिमाणं तु न संख्यातुमिहोत्सहे ॥३४॥

असंख्यातः स नित्यं हि तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा।
तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्य एव हि॥३५॥

हे कौरव्य! भरतश्रेष्ठ! वहाँ पर चार लोक सम्मत दिग्गज हैं, जिनके वामन ऐरावत, सुप्रतीक, प्रभिन्नकरटामुख नाम हैं।

मैं इन सब का परिमाण कहने में समर्थ नहीं हूं। ऊपर नीचे इधर उधर से उन दिग्गजों का बड़ा विस्तार है, इससे उनकी संख्या नहीं की जा सकती है। उस स्थान पर समस्त दिशाओं से चलकर वायु आता है ॥३३-३५॥

असम्बद्धा महाराज तान्निगृह्णन्ति ते गजाः।
पुष्करैः पद्मसङ्काशैर्विकसद्भिर्महाप्रभैः ॥३६॥
शतधा पुनरेवाऽऽशु ते तान्मुञ्चन्ति नित्यशः।
श्वसद्भिर्मुच्यमानास्तु दिग्गजैरिह मारुताः ॥३७॥
आगच्छन्ति महाराज ततस्तिष्ठन्ति वै प्रजाः।

हे महाराज! उन हाथियों का परस्पर एक दूसरे से सम्बन्ध ही है, परन्तु उस वायु का अपनें कमल के सदृश, महाप्रभा वाले, खिले हुए अपने शुण्ड से ग्रहण करते हैं। फिर वे उस वायु को ग्रहण कर के सैंकड़ों भागों में छोड़ते हैं। हे महाराज! श्वास लेकर दिग्गजों द्वारा छोड़े हुए वायु वहां आते हैं और प्रजा उस वायु को ग्रहण करती है, जिससे प्रजा का जीवन होता है।

धृतराष्ट्र उवाच—

परो वै विस्तरोऽत्यर्थं त्वया सञ्जय कीर्तितः ॥३८॥
दर्शितं द्वीपसंस्थानमुत्तरं ब्रूहि सञ्जय।

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! तुमने द्वीपों की कथा का बहुत विस्तार कर दिया, क्योंकि उन द्वीपों का स्थान भी बताया। हे सञ्जय! अब तो तुम आगे की कथा कहो ॥३८॥

सञ्जय उवाच—

उक्ता द्वीपा महाराज ग्रहं वै शृणु तत्त्वतः ॥३९॥
स्वर्भानोः कौरवश्रेष्ठ यावदेव प्रमाणतः ।

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! अब तक मैंने द्वीपों का वर्णन किया । अब तुम ग्रहों की ठीक २ स्थिति सुनो । हे कौरवश्रेष्ठ ! जो राहु का प्रमाण है, आप उसको भी सुनें ॥३९॥

परिमण्डलो महाराज स्वर्भानुः श्रूयते ग्रहः ॥४०॥
योजनानां सहस्राणि विष्कम्भो द्वादशाऽस्य वै ।
परिणाहेन षट्त्रिंशद्विपुलत्वेन चाऽनघ ॥४१॥
षष्टिमाहुः शतान्यस्य बुधाः पौराणिकास्तथा ।
चन्द्रमास्तु सहस्राणि राजन्नेकादश स्मृतः ॥४२॥
विष्कम्भेण कुरुश्रेष्ठ त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ।
एकोनषष्टिविष्कम्भं शीतरश्मेर्महात्मनः ॥४३॥

हे महाराज ! राहु ग्रह गोलाकार है । उसके बीच का विस्तार बारह सहस्र योजन का है । हे अनघ ! इसकी परिधि का विस्तार छत्तीस हजार साठ सौ योजन का है । पुराणों के जानने वाले विद्वान्, इसे ठीक मानते हैं । हे राजन् ! चन्द्रमा का व्यास ग्यारह हजार योजन का है । हे कुरुश्रेष्ठ ! इसके तेतीस मण्डल है । इसका विस्तार उनसठ सौ योजन का है ॥४०-४३॥

सूर्यस्त्वष्टौ सहस्राणि द्वे चाऽन्ये कुरुनन्दन ।
विष्कम्भेण ततो राजन्मण्डलं त्रिंशता समम् ॥४४॥

अष्टपञ्चाशतं राजन्विपुलत्वेन चाऽनघ ।
श्रूयते परमोदारः पतगोऽसौ विभावसुः ॥४५॥
एतत्प्रमाणमर्कस्य निर्दिष्टमिह भारत ।
स राहुश्छादयत्येतौ यथाकालं महत्तया ॥४६॥
चन्द्रादित्यौ महाराज संक्षेपोऽयमुदाहृतः ।
इत्येतत्ते महाराज पृच्छतः शास्त्रचक्षुषा ॥४७॥

हे कुरुनन्दन ! दस हजार योजन सूर्य का व्यास है । इसके तीस मण्डल और इसका विस्तार अट्ठावन सहस्र योजन का है । सुना जाता है, कि यह सूर्य, बड़ा तेजस्वी और उदार है । हे भारत ! यह सूर्य का तुमसे मैंने प्रमाण कहा है । राहु ग्रह अपनी महत्ता के कारण समय २ पर इसको ग्रस लेता है । हे महाराज ! चन्द्रमा और सूर्य का यह संक्षेप से वर्णन कर दिया है । हे महाराज ! जो आपने पूछा—उसको शास्त्र दृष्टि से मैंने संक्षेप में कहा है ।

सर्वमुक्तं यथातत्त्वं तस्माच्छममवाप्नुहि ।
यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥४८॥
तस्मादाश्वस कौरव्य पुत्रं दुर्योधनं प्रति ।
श्रुत्वेदं भरतश्रेष्ठ भूमिपर्व मनोनुगम् ॥४९॥
श्रीमान् भवति राजन्यः सिद्धार्थः साधुसम्मतः ।
आयुर्बलं च कीर्तिश्च तस्य तेजश्च वर्धते ॥५०॥

हे राजन् ! मैंने सब कुछ तत्व के अनुसार कह दिया है । अब तुम शान्ति ग्रहण करो । हे कौरव्य ! मैंने तुम को जिस

भांति जगत्‌की रचना हुई-उसी तरह सब कुछ सुनाया है। हे राजन्! अब तुम अपने पुत्र दुर्योधन के प्रति निश्चिन्तता ग्रहण करो। हे भरतश्रेष्ठ! इस मनोहर भूमि पर्व को सुनकर राजा श्रीमान् और श्रेष्ठ पुरुषों में मान्य होकर कृतकृत्य हो जाता है। उसकी आयु, बल, कीर्ति और तेज बढ़ने लगता है ॥४८-५०॥

यः शृणोति महीपाल पर्वणीदं यतव्रतः।
प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥५१॥

हे महीपाल! जो पर्वकाल में इस पर्व को व्रतशील होकर सुनता है, उसके पिता और पितामह तृप्त हो जाते हैं ॥५१॥

इदं तु भारतं वर्षं यत्र वर्त्तामहे वयम्।
पूर्वैः प्रवर्तितं पुण्यं तत्सर्वं श्रुतवानसि ॥५२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि उत्तरद्वीपादिसंस्थानवर्णने द्वादशोऽध्यायः। समाप्तमिदं भूमिपर्व।

यह भारतवर्ष है, जहाँ हम वर्तमान हैं। यह पूर्वकाल से ही पवित्र चला आता है। यह तुम सब कुछ सुन चुके हो ॥५२॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भूमिपर्व में उत्तर द्वीप आदि की स्थिति के वर्णन का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर भूमिपर्व भी समाप्त हो गया।

अथ भगवद्गीतापर्व

तेरहवाँ अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

अथ गावल्गणिर्विद्वान्संयुगादेत्य भारत ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ॥१॥
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः ।
आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ! गवल्गण का पुत्र विद्वान्, सञ्जय युद्ध से लौटा। यह युद्ध की भूत, भविष्य और वर्तमान की सारी बातों का प्रत्यक्ष देखने वाला था। राजा धृतराष्ट्र भी युद्ध के वृत्तान्त के जानने के लिए उत्सुक था। इसी समय दुःखित सञ्जय ने अचानक आकर भरतवंश के पितामह भीष्म का युद्ध में मारा जाना आकर सुनाया ॥१-२॥

संजय उवाच—

सञ्जयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ ।
हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥३॥

सञ्जयने कहा–हे भरतर्षभ ! महाराज ! मैं सञ्जय हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ। आज भरतवंशज क्षत्रियों का पितामह शान्तनु-पुत्र भीष्म युद्ध में मारा गया ॥३॥

ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥४॥

ये भीष्म सारे योद्धाओं में प्रधान और धनुषधारियों के तेज थे। वे कुरु पितामह आज बाणों की शय्या पर सो रहे हैं ।।४।।

यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाऽकरोत् ।
स शेते निहतो राजन्संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ।।५।।

हे राजन् ! जिसके बल पर उन्मत्त होकर तेरे पुत्र दुर्योधन ने द्यूत रचा था, वही भीष्म आज शिखण्डी द्वारा मारा हुआ युद्ध-भूमि में पड़ा है ।।५।।

यः सर्वान्पृथिवीपालान्समवेतान्महामृधे ।
जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ।।६।।
जामदग्न्यं रणे रामं योऽयुध्यदपसम्भ्रमः ।
न हतो जामदग्न्येन स हतोऽद्य शिखण्डिना ।।७।।

जिस अकेले महावीर ने काशीपुरी में एक अपने रथ का ही आश्रय लेकर सारे राजाओं को इकट्ठे ही जीत लिया। जिसने जमदग्नि पुत्र परशुराम से रण में निर्भयता के साथ युद्ध किया, जिसको परशुराम भी नहीं मार सका, आज वही भीष्म शिखण्डी से मारा हुआ रणभूमि में पड़ा है ।।६-७।।

महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः ।।८।।

यह भीष्म शौर्य में महेन्द्र, स्थिरता में हिमालय, गम्भीरता में समुद्र और सहिष्णुता में पृथिवी के सदृश था ।।८।।

शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः खड्गजिह्वो दुरासदः ।
नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः ॥९॥

हे धृतराष्ट्र ! जिसका बाण दंष्ट्रा, धनुष मुख, दुरासद खड्ग-जिह्वा थी; वही कालोपम तेरा पिता नरश्रेष्ठ भीष्म आज पञ्चालराज-कुमार शिखण्डी ने मार गिराया है ॥९॥

पाण्डवानां महासैन्यं तं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः ॥१०॥

रणोद्यत इस भीष्म को देख कर पाण्डवों की महासेना भी रणमें भयातुर होकर इस प्रकार कांपने लगी जैसे-सिंह को देखकर गायों का समूह भयभीत हो उठता है ॥१०॥

परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा ।
जगामाऽस्तमिवाऽऽदित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥११॥

शत्रु सेना का नाशक भीष्म, दश दिन तक तुम्हारी सेना की रक्षा करके और युद्धमें बड़े दुष्कर कर्म करके सूर्य के सदृश आज अस्त हो गया ॥११॥

यः स शक्र इवाऽक्षोभ्यो वर्षन्बाणान्सहस्रशः ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥१२॥

इसने बिना किसी व्याकुलता के इन्द्र के समान बाणों की सहस्रों झड़ी लगा दी और दश ही दिन में अरबों की संख्या में वीर सैनिक मार गिराये ॥१२॥

स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्यथा नाऽर्हः स भारत ॥१३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भीष्ममृत्युश्रवणे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

हे राजन्! वायु से उखाड़े हुए वृक्ष के सदृश आज वे ही भीष्म युद्धभूमि में पड़े हैं। हे भारत! वे इस दशा के योग्य नहीं थे, परन्तु तुम लोगों की दुर्मन्त्रणा ने उनकी यह गति कराई ॥१३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में भीष्म
की मृत्यु के सुनने का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ।

चौदहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं कुरूणामृषभो हतो भीष्मः शिखण्डिना।
कथं रथात्स न्यपतत्पिता मे वासवोपमः ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! कुरु-वंश-श्रेष्ठ भीष्म पितामह को शिखण्डीने किस प्रकार मार लिया और इन्द्र के सदृश पराक्रमी मेरा पिता भीष्म कैसे रथ से नीचे गिरा ॥१॥

कथमाचक्ष्व मे योधा हीना भीष्मेण सञ्जय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥२॥

हे सञ्जय ! अपने पिता के हित के लिये, ब्रह्मचर्य व्रत के धारण करने वाले देव तुल्य महाबली भीष्म के न रहने पर हमारे योद्धाओं की क्या गति हुई ॥२॥

तस्मिन्हते महाप्राज्ञे महेष्वासे महाबले ।
महासत्वे नरव्याघ्रे किमु आसीन्मनस्तव ॥३॥

जिस समय महा बुद्धिमान, महाधनुर्धर महाबली महा पराक्रमी नरश्रेष्ठ भीष्म मारा गया—तो उस समय तेरे चित्त की क्या दशा हुई ? ॥३॥

आर्त्तिं परामाविशति मतः शंससि मे हतम् ।
कुरूणामृषभं वीरमकम्पं पुरुषर्षभम् ॥४॥

हे सञ्जय ! ज्योंही तुमने भीष्म का मरना सुनाया, तभी से मेरा मन बड़ा क्लेशित हो रहा है। ये कुरु-वंश-श्रेष्ठ भीष्म तो युद्ध में निष्कम्प और बड़े वीर योद्धा थे ॥४॥

के तं यान्तमनुप्राप्ताः के वाऽस्याऽऽसन्पुरोगमाः ।
केऽतिष्ठन्के न्यवर्त्तन्त केऽन्ववर्त्तन्त सञ्जय ॥५॥

जब भीष्मपितामह युद्ध के लिये चले, तो कौन उनके पीछे थे और कौन उनके आगे चले थे। हे सञ्जय ! कौन उनके साथ नहीं गए, कौन लौट आये और कौन उनके साथ ही रहे ॥५॥

के शूरा रथशार्दूलमद्भुतं क्षत्रियर्षभम् ।
तथाऽनीकं गाहमानं सहसा पृष्ठतोऽन्वयुः ॥६॥

हे सञ्जय ! मुझे उन वीरों के नाम बताओ-जो महारथी श्रेष्ठ अद्भुत क्षत्रिय वीर सेना के आलोडन करने वाले महात्मा भीष्म के पीछे २ रहे ॥६॥

यस्तमोऽर्क इवाऽपोहन्परसैन्यममित्रहा ।
सहस्ररश्मिप्रतिमः परेषां भयमादधत् ॥७॥

ये शत्रु नाशक भीष्म तो अन्धकार को सूर्य की भांति शत्रु सेना के विध्वंसक थे। इन का तेज सहस्र किरणधारी सूर्य के सदृश था, जिसको देखकर शत्रुओं को भय खड़ा हो जाता था ॥७॥

अकरोद्दुष्करं कर्म रणे पाण्डुसुतेषु यः ।
ग्रसमानमनीकानि य एनं पर्यवारयन् ॥८॥

भीष्म ने पाण्डवों की सेना में बड़ा दुष्कर कर्म कर दिखाया। जिस समय वे पाण्डवों की सेना का ग्रास कर रहे थे-तो क्या उस समय कोई नहीं थे, जो इसको ऐसा करने से रोक देते ॥८॥

कृतिनं तं दुराधर्षं सञ्जयाऽस्य त्वमन्तिके ।
कथं शान्तनवं युद्धे पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥९॥

हे सञ्जय ! तुम तो भीष्म के ही समीप होंगे-तनिक यह तो बताओ-कि युद्ध विद्या में कृतार्थ, दुराधर्ष, शान्तनु-पुत्र भीष्म के युद्ध में रोकने में पाण्डव कैसे समर्थ हो पाये ॥९॥

निकृन्तन्तमनीकानि शरदंष्ट्रं मनस्विनम् ।
चापव्यात्ताननं घोरमसिजिह्वं दुरासदम् ॥१०॥

जिस समय यह सेना को काट रहा था, तो वाण इसकी दंष्ट्रा और धनुष खुला मुख और खण्ड जिह्वा थी, उस समय दुरासद मनस्वी भीष्म को किसने रोका ॥१०॥

अनर्हं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
पातयामास कौन्तेयः कथं तमजितं युधि ॥११॥

किसी से भी पराजित नहीं होने वाले, लज्जाशील, पुरुष रत्न युद्ध भूमि में पतन के अयोग्य, अजेय भीष्म पितामह को युद्ध में अर्जुन ने कैसे गिराया ॥११॥

उग्रधन्वानमुग्रेषुं वर्त्तमानं रथोत्तमे ।
परेषामुत्तमाङ्गानि प्रचिन्वन्तमथेषुभिः ॥१२॥

भीष्म के पास वड़ा उग्र धनुप और वड़े ही उग्र वाण थे। यह सर्वश्रेष्ठ रथ में स्थित था। यह अपने वाणों से शत्रुओं के मस्तकों को चुन २ कर काट रहा था, उसको अर्जुन ने कैसे गिराया ॥१२॥

पाण्डवानां महत्सैन्यं य दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
कालाग्निमिव दुर्धर्षं समचेष्टत नित्यशः ॥१३॥

पाण्डवों की विशाल सेना भी जब युद्धभूमि में उद्यत कालाग्नि के सदृश दुर्धर्ष भीष्म को देखती थी, तो वड़ी सावधानी से चेष्टा कर पाती थी ॥१३॥

परिकृष्य स सेनां तु दशरात्रमनीकहा ।
जगामाऽस्तमिवाऽऽदित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥

शत्रु सेनानाशक भीष्म, दश दिन तक हमारी सेना का नेतृत्व और दुष्कर कर्म करके अन्त में सूर्य के तुल्य अस्त हो ही गया।

यः स शक्र इवाऽक्षय्यवर्षं शरमयं क्षिपन् ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥१५॥
स शेते निहतो भूमौ वातभुग्न इव द्रुमः ।
मम दुर्मन्त्रितेनाऽजौ यथा नाऽर्हति भारत ॥१६॥

जिसने युद्धभूमि में इन्द्र के सदृश बाण वर्षा की झड़ी लगा दी और दश ही दिन में एक अरब योद्धा मार गिराये-वही भीष्म वायु से उखाड़े हुए, वृक्ष के सदृश आज युद्ध भूमि में मारा हुआ सो रहा है। यह सब मेरी दुर्मन्त्रणा का ही फल है, जो दशा युद्ध में भीष्म की होनी नहीं चाहिए थी ॥१५-१६॥

कथं शान्तनवं दृष्ट्वा पाण्डवानामनीकिनी ।
प्रहर्तुमशकत्तत्र भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥१७॥

हे सञ्जय! भीम पराक्रम करने वाले शान्तनु-पुत्र भीष्म को देखकर पाण्डवों की सेना कैसे प्रहार करने में समर्थ हो सकी।१७।

कथं भीष्मेण संग्रामं प्राकुर्वन्पाण्डुनन्दनाः ।
कथं च नाऽजयद्भीष्मो द्रोणे जीवति सञ्जय ॥१८॥

हे सञ्जय! पाण्डुनन्दन, अर्जुन आदि भीष्म से युद्ध करने में कैसे समर्थ हो सके और द्रोण के साथी रहने पर भी भीष्म कैसे विजयी नहीं हो सके ॥१८॥

कृपे सन्निहिते तत्र भरद्वाजात्मजे तथा ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः कथं स निधनं गतः ॥१६॥

इस समय तो द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और कृपाचार्य भी भीष्म के पास ही होंगे, फिर भी प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ भीष्म आज कैसे मृत्यु को प्राप्त हो गये ॥१६॥

कथं चाऽतिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
भीष्मो विनिहतो युद्धे देवैरपि दुरासदः ॥२०॥

हे सञ्जय ! जो महारथी भीष्म देवों से भी दुरासद था, उसको युद्ध में पञ्चाल राजकुमार शिखण्डी ने कैसे मार गिराया ॥२०॥

यः स्पर्द्धते रणे नित्यं जामदग्न्यं महाबलम् ।
अजितं जामदग्न्येन शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥२१॥
तं हतं समरे भीष्मं महारथकुलोदितम् ।
सञ्जयाऽऽचक्ष्व मे वीरं येन शर्म न विद्महे ॥२२॥

जो युद्ध में सदा महाबली जमदग्नि-पुत्र परशुराम से युद्ध करने की स्पर्धा करता था, जो परशुराम से भी नहीं जीता गया । जिसका इन्द्र के तुल्य पराक्रम था, जो महारथियों के कुल का चन्द्रमा था, वह वीर भीष्म युद्ध में कैसे मारा गया, मुझे यह सुनाओ । इसके सुने विना मुझे चैन नहीं पड़ता है ॥२०-२२॥

मामकाः के महेष्वासा नाऽजहुः सञ्जयाऽच्युतम् ।
दुर्योधनसमादिष्टाः के वीराः पर्यवारयन् ॥२३॥

हे सञ्जय ! तुम यह भी तो बताओ, कि मेरे पक्ष के कौन धनुर्धर थे, जिन्होंने अन्त तक इस रण में मुख नहीं मोड़ने वाले वीर भीष्म का साथ नहीं छोड़ा। दुर्योधन ने किन वीरों को उसके साथ रहने की आज्ञा दी और किन २ ने उन्हें घेरे रखा ॥२३॥

यच्छिखण्डिमुखाः सर्वे पाण्डवा भीष्ममभ्ययुः।
कच्चित्ते कुरवः सर्वे नाऽजहुः सञ्जयाऽच्युतम् ॥२४॥

हे सञ्जय ! जब शिखण्डी को आगे करके सारे पाण्डवों ने भीष्म पर आक्रमण किया-तो उस समय हमारे कौरव वीरों ने रण-धीर भीष्म का साथ तो नहीं छोड़ दिया ॥२४॥

अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥२५॥

हे सूतपुत्र ! मेरा हृदय भी विधाता ने पत्थर का सार लेकर बनाया है, जो पुरुषश्रेष्ठ भीष्म का मारा जाना सुनकर भी अभी तक नहीं फटा है ॥२५॥

यस्मिन्सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥२६॥

जिस भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म में सत्य, मेधा और राजनीति निवास करते थे तथा जिस दुर्धर्ष में विचार में नहीं आने वाली अद्भुत २ बातें थी, वह भी युद्ध में कैसे मार लिया गया ॥२६॥

मौर्वीघोषस्तनयित्नुः पृषत्कपृषतो महान्।
धनुर्ह्रादमहाशब्दो महामेघ इवोन्नतः ॥२७॥

जिस के धनुष की टङ्कार मेघ गर्जना, वाण जलधारा और धनुष का शब्द बिजली की सी कड़क थी, इस प्रकार भीष्म एक महा-मेघ के समान उन्नत था ॥२७॥

योऽभ्यवर्षत कौन्तेयान्सपाञ्चालान्ससृञ्जयान् ।
निघ्नन्परस्थान्वीरो दानवानिव वज्रभृत् ॥२८॥

दानवों पर इन्द्र के सदृश शत्रु वीरों पर तथा पाञ्चाल और सृञ्जय सहित पाण्डवों पर वीर-श्रेष्ठ भीष्म ने वाण वर्षा की झड़ी लगा दी थी ॥२८॥

इष्वस्त्रसागरं घोरं बाणग्राहं दुरासदम् ।
कार्मुकोर्मिणमक्षय्यमद्वीपं चलमप्लवम् ॥२९॥
गदासिमकरावासं हयावर्त्तं गजाकुलम् ।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥३०॥
हयान्गजपदातींश्च रथांश्च तरसा बहून् ।
निमज्जयन्तं समरे परवीरापहारिणम् ॥३१॥
विदह्यमानं कोपेन तेजसा च परन्तपम् ।
वेलेव मकरावासं के वीराः पर्यवारयन् ॥३२॥

अस्त्रों का घोर समुद्र है। जिसमें वाणों के दुरासद ग्राह हैं। धनुष की लहर है। जो क्षीण नहीं होने वाला, द्वीप रहित नौका विहीन तथा चञ्चल है। जिसमें गदा, खड्ग आदि मकर आदि जल जन्तु हैं। अश्वों के जिसमें आवर्त हैं। हाथियों से जो आकुल है, पैदल सैनिक रूपी मत्स्यों से जो पूर्ण है। शंख दुन्दुभियों

आदि के नादों से जो शब्दायमान है, ऐसे युद्ध रूपी समुद्र में जो अश्व, हाथी, पैदल और बहुत से रथों को अपने वेग से डुबो देता था, ऐसे शत्रु वीरों के विजेता कोप से जाज्वल्यमान, तेज से शत्रु विजयी, युद्ध रूपी समुद्र की वेला (मर्यादा) रूप भीष्म को किन वीरों ने घेरे रखा ॥ २६-३२ ॥

भीष्मो यदकरोत्कर्म समरे सञ्जयाऽरिहा ।
दुर्योधनहितार्थाय के तस्याऽस्य पुरोऽभवन् ॥३३॥

हे सञ्जय ! अरि विजयी भीष्म ने दुर्योधन के हित के लिए युद्ध में जो कर्म किये-वे अद्भुत थे। तुम यह तो बताओ-इस समय इनके आगे कौन २ वीर थे ॥ ३३ ॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं भीष्मस्याऽमिततेजसः ।
पृष्ठतः के परान्वीरानपासेधन्यतव्रताः ॥३४॥

अमित तेजस्वी भीष्म के दायें चक्र के रक्षक कौन थे और पीछे की ओर से शत्रुवीरों को कौन सावधानी से हटा रहे थे।

के पुरस्तादवर्तन्त रक्षन्तो भीष्ममन्तिके ।
केऽरक्षन्नुत्तरं चक्रं वीरा वीरस्य युध्यतः ॥३५॥

भीष्म के पास आगे २ चलते हुये कौनसे वीर उनकी रक्षा कर रहे थे तथा उस वीर के युद्धकाल में कौनसे वीर उनके उत्तर चक्र की रक्षा में तत्पर थे ॥ ३५ ॥

वामे चक्रे वर्त्तमानाः केऽघ्नन्सञ्जय सृञ्जयान् ।
अग्रतोऽग्र्यमनीकेषु केऽभ्यरक्षन्दुरासदम् ॥३६॥

हे सञ्जय ! मुझे उन वीरों के नाम बताओ, जो भीष्म के बायें चक्र की रक्षा करते हुये सृञ्जयों को मार रहे थे तथा सेना में सर्व श्रेष्ठ दुराधर्ष भीष्म की आगे से रक्षा करते हुए कौन वीर चल रहे थे ॥ ३६ ॥

पार्श्वतः केऽभ्यरक्षन्त गच्छन्तो दुर्गमां गतिम् ।
समूहे के परान्वीरान्प्रत्ययुध्यन्त सञ्जय ॥३७॥

बड़ी दुर्गम गति को पार करते हुए भीष्म के दोनों पार्श्वों पर कौन योद्धा थे । हे सञ्जय ! इस घमसान युद्ध में शत्रु वीरोंसे कौन २ वीर लड़ते रहे ॥ ३७ ॥

रक्ष्यमाणः कथं वीरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
दुर्जयानामनीकानि नाऽजयंस्तरसा युधि ॥३८॥

अन्य वीरों से सुरक्षित तथा स्वयं भी अन्य वीरों की रक्षा करता हुआ भीष्म दुर्जय शत्रुओं की सेना पर कैसे अपने वेग से विजयी नहीं हुआ ॥ ३८ ॥

सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठी प्रजापतेः ।
कथं प्रहर्तुमपि ते शेकुः सञ्जय पाण्डवाः ॥३९॥

हे सञ्जय ! समस्त लोक के स्वामी परमेष्ठी प्रजापति के समान भीष्म पर पाण्डव प्रहार करने में कैसे समर्थ हो सके ।

यस्मिन्द्वीपे समाश्वास्य युध्यन्ते कुरवः परैः ।
तं निमग्नं नरव्याघ्रं भीष्मं शंससि सञ्जय ॥४०॥

हे सञ्जय ! जिस रक्षक का आश्रय लेकर मेरे पुत्र कौरवों ने अपने विरोधियों से युद्ध छेड़ा, आज तुम उन्हीं नर व्याघ्र भीष्म के युद्ध में डूब जाने की प्रवृति (खबर) सुना रहे हो ॥ ४० ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य मम पुत्रो बृहद्बलः ।
न पाण्डवानगणयत्कथं स निहतः परैः ॥४१॥

जिस भीष्म के बल का आश्रय लेकर ही मेरा पुत्र महाबली था और पाण्डवों को कुछ नहीं गिनता था, कहो—क्या आज उसी भीष्म को शत्रुओं ने रण में गिरा लिया है ॥ ४१ ॥

यः पुरा विबुधैः सर्वैः सहाये युद्धदुर्मदः ॥
कांक्षितो दानवान्घ्नद्भिः पिता मम महाव्रतः ॥४२॥

जिस युद्धदुर्मद, महाव्रती मेरे पिता भीष्म को अपनी सहायता के लिए दानवों को मारने के लिए सदा देवता चाहते रहते थे, क्या वह आज युद्धभूमि में हत हो गया ॥ ४२ ॥

यस्मिञ्जाते महावीर्ये शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
शोकं दैन्यं च दुःखं च प्राजहात्पुत्रलक्ष्मणि ॥४३॥

जिस पुत्र के समस्त लक्षणों से युक्त महाबली भीष्म के उत्पन्न होने पर संसार प्रसिद्ध राजा शान्तनु ने शोक, दैन्य और दुःख छोड़ दिया था, क्या वही पुत्र आज युद्ध में हत हो गया ॥ ४३ ॥

प्रोक्तं परायणं प्राज्ञं स्वधर्मनिरतं शुचिम् ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं कथं शंससि मे हतम् ॥४४॥

उन्हीं विख्यात, सबके रक्षक, बुद्धिमान्, स्वधर्म में निरत, पवित्र, वेदवेदाङ्ग के तत्व के ज्ञाता भीष्म की क्या तुम मरने की बात कर रहे हो ॥ ४४ ॥

सर्वास्त्रविनयोपेतं शान्तं दान्तं मनस्विनम् ।
हतं शान्तनवं श्रुत्वा मन्ये शेषं हतं बलम् ॥४५॥

समस्त अस्त्रों की शिक्षा से युक्त, शान्त, उदार, मनस्वी, शान्तनु-पुत्र भीष्म की जो तुम मारे जाने की बात कह रहे हो इससे तो अब सारी सेना के मारे जाने की बात निश्चित है ॥४५

धर्मादधर्मो बलवान्सम्प्राप्त इति मे मतिः ।
यत्र वृद्धं गुरुं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥४६॥

मेरी सम्मति में तो धर्म से अधर्म बलवान् है—यह आज मालूम हो गया, जो वृद्ध, पूज्य अपने पितामह को मार कर भी पाण्डव राज्य को प्राप्त कर लेंगे ॥४६॥

जामदग्न्यः पुरा रामः सर्वास्त्रविदनुत्तमः ।
अम्बार्थमुद्यतः संख्ये भीष्मेण युधि निर्जितः ॥४७॥

पूर्वकाल में सब शस्त्रों का ज्ञाता, महावीर, जमदग्नि-पुत्र परशुराम, अम्बा की सहायता में भीष्म से युद्ध के लिए उद्यत हुआ था, परन्तु भीष्म ने उन्हें युद्ध में जीत लिया ॥४७॥

तमिन्द्रसमकर्माणं ककुदं सर्वधन्विनाम् ।
हतं शंससि मे भीष्मं किं नु दुःखमतः परम् ॥४८॥

तुम इन्द्र के समान कर्म करने वाले, सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ, भीष्म के मारे जाने की बात कह रहे हो—इससे अधिक और क्या दुःख हो सकता है ॥४८॥

असकृत्क्षत्रियव्राताः संख्ये येन विनिर्जिताः ।
जामदग्न्येन वीरेण परवीरनिघातिना ॥४६॥
न हतो यो महाबुद्धिः स हतोऽद्य शिखण्डिना ।

अनेक बार जिस वीर, शत्रुघाती परशुराम ने अनेक क्षत्रियों के समूह को युद्ध में जीत लिया, वह भी जिस महाबुद्धि वीर भीष्म को नहीं मार सका; आज उसी वीर को शिखण्डी ने भूमि में मार गिराया है ॥४६॥

तस्मान्नूनं महावीर्याद्भार्गवाद्युद्धदुर्मदात् ॥५०॥
तेजोवीर्यबलैर्भूयाञ्शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
यः शूरं कृतिनं युद्धे सर्वशास्त्रविशारदम् ॥५१॥
परमास्त्रविदं वीरं जघान भरतर्षभम् ।

अब युद्ध-दुर्मद महापराक्रमी भृगुवंश श्रेष्ठ परशुराम से भी तेज, वीर्य और बल में द्रुपद-पुत्र शिखण्डी को अधिक मानना चाहिए। जिसने शूर, कृतास्त्र, युद्ध-शास्त्र के विशारद, अस्त्र विद्या के ज्ञाता, भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म को युद्ध में मार गिराया ॥५०-५१॥

के वीरास्तममित्रघ्नमन्वयुः शस्त्रसंसदि ॥५२॥
शंस मे तद्यथा चाऽऽसीद्युद्धं भीष्मस्य पाण्डवैः ।

इस शस्त्रों की सभा में उस वीर शत्रुनाशक भीष्म के साथ कौन २ वीर थे। तुम मुझे पाण्डवों के साथ हुए इस भीष्म के युद्ध को ज्यों का त्यों सुनाओ ॥५२॥

योषेव हतवीरा मे सेना पुत्रस्य सञ्जय ॥५३॥
अगोपमिव चोद्भ्रान्तं गोकुलं तद्बलं मम।

हे सञ्जय! इस समय मेरे पुत्र दुर्योधन की सेना, पति पुत्र हीन स्त्री के सदृश हो रही है तथा मेरी सारी सेना ग्वाले के विना बिखरी हुई गौओं के तुल्य उद्भ्रान्त है ॥५३॥

पौरुषं सर्वलोकस्य परं यस्मिन्महाहवे ॥५४॥
परासक्ते च वस्तस्मिन्कथमासीन्मनस्तदा।

जिस युद्ध में सब वीरों से अधिक जिनके पौरुष की आशा थी, जब वे वीर भीष्म ही भूमि में लेट गए—तो तुम लोगों के मन की क्या दशा हुई होगी ॥५४॥

जीवितेऽप्यद्य सामर्थ्यं किमिवाऽस्मासु सञ्जय॥५५॥
घातयित्वा महावीर्यं पितरं लोकधार्मिकम्।

हे सञ्जय! महाशक्तिशाली, लोक धार्मिक, भीष्म पितामह को मरवाकर अब हमको अपने जीवन में भी विश्वास करना अनुचित है ॥५५॥

अगाधे सलिले मग्नां नावं दृष्ट्वेव पारगाः ॥५६॥
भीष्मे हते भृशं दुःखान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।

जिस तरह अगाध जल में डूबती हुई नौका को देखकर पार जाने वाले दुःख से चिन्ता करते हैं, उसी तरह भीष्म के मारे जाने पर मेरे पुत्रों की दशा हुई होगी ॥५६॥

अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ॥५७॥
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ।

हे सञ्जय ! पत्थरों के दृढ़ भाग से मेरा हृदय बनाया गया है, जो पुरुष-श्रेष्ठ भीष्म के मारे जाने की सुनकर भी अभी तक नहीं फटा है ॥५७॥

यस्मिन्नस्त्राणि मेधा च नीतिश्च पुरुषर्षभे ॥५८॥
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ।

जिस वीर में अस्त्र, बुद्धि, नीति थी तथा जिस दुर्धर्ष में विचार में नहीं आने वाली बातें थीं-वही वीर भीष्म कैसे युद्ध में मरा हुआ पड़ा है ॥५८॥

न चाऽस्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च ॥५९॥
न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद्विमुच्यते ।

अस्त्र, पराक्रम, तप, बुद्धि, धैर्य और त्याग-इनमें किसी में भी शक्ति नहीं है, जो मनुष्य को मृत्यु से बचा सके ॥५९॥

कालो नूनं महावीर्यः सर्वलोकदुरत्ययः ॥६०॥
यत्र शान्तनवं भीष्मं हतं शंससि सञ्जय ।

काल बड़ा बलवान् और सब मनुष्यों से दुरतिक्रमणीय है। हे सञ्जय! यह काल की ही महिमा है, जो तुम शान्तनु-पुत्र भीष्म के मरने के समाचार सुना रहे हो ॥ ६० ॥

पुत्रशोकाभिसन्तप्तो महद्दुःखमचिन्तयम् ॥६१॥
आशंसेऽहं परं त्राणं भीष्माच्छान्तनुनन्दनात् ।

हे सञ्जय! मैं पुत्र के शोक से सन्तप्त हूँ और अब मुझे बड़े ही दुःख की आशङ्का है। मुझे तो शान्तनु-पुत्र भीष्म से दुःख-शान्ति की बड़ी ही आशा थी॥ ६१ ॥

यदाऽऽदित्यमिवाऽपश्यत्पतितं भुवि सञ्जय ॥६२॥
दुर्योधनः शान्तनवं किं तदा प्रत्यपद्यत ।

हे सञ्जय! जब टूट कर पड़े हुए सूर्य के सदृश तेजस्वी शान्तनु-पुत्र भीष्म को दुर्योधन ने देखा, तो उस समय उसकी क्या दशा हो गई होगी ॥ ६२ ॥

नाऽहं स्वेषां परेषां वा बुद्ध्या सञ्जय चिन्तयन् ।६२।
शेषं किञ्चित्प्रपश्यामि प्रत्यनीके महीक्षिताम् ।

हे सञ्जय! मैं अपनी बुद्धि से जब विचार करता हूँ, तो अपनी, पाण्डवों की तथा अन्य राजाओं की सेना में कुछ भी शेष रहती हुई नहीं देखता हूँ॥ ६३ ॥

दारुणः क्षत्रधर्मोऽयमृषिभिः सम्प्रदर्शितः ॥६४॥
यत्र शान्तनवं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ।

ऋषियों ने क्षत्रियों का धर्म बड़ा दारुण बताया है, जो शान्तनु-पुत्र भीष्म को मारकर भी पाण्डव राज्यकी इच्छा करते हैं।

वयं वा राज्यमिच्छामो घातयित्वा महाव्रतम् ॥६५॥
क्षत्रधर्मे स्थिताः पार्था नाऽपराध्यन्ति पुत्रकाः ।

हम भी महाव्रतशील पूज्यों को मार कर राज्य की इच्छा करते हैं। पाण्डव भी क्षत्रिय धर्म में स्थित हैं, फिर भीष्म के मारने में उनका अपराध ही क्या है॥ ६५॥

एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥६६॥
पराक्रमः परा शक्तिस्तत्तु तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।

हे सञ्जय! कठिन कर्म की जटिलता उपस्थित होने पर आर्य पुरुषों को ऐसा कर लेना भी उचित ही है। पराक्रम दिखाना ही परमशक्ति है। इस कर्तव्य पालन की कठोरता को राजा युधिष्ठिर भी खूब जानता है॥ ६६॥

अनीकानि विनिघ्नन्तं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥६७॥
कथं शान्तनवं तातं पाण्डुपुत्रा न्यवारयन् ।

हे सञ्जय! सेनाओं को मारते हुए, लज्जाशील, अपराजित, शान्तनु-पुत्र भीष्मपितामह को पाण्डु-पुत्रों ने कैसे रोका॥ ६७॥

यथा युक्तान्यनीकानि कथं युद्धं महात्मभिः ॥६८॥
कथं वा निहतो भीष्मः पिता सञ्जय मे परैः ।

हे सञ्जय ! किस तरह भीष्म ने सेना का व्यूह बनाया और कैसे २ महारथियों से युद्ध हुआ तथा कैसे विरोधी पाण्डवों ने मेरे पिता भीष्म को युद्धभूमि में मार लिया है ॥ ६८ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥६९॥
दुःशासनश्च कितवो हते भीष्मे किमब्रुवन् ।

हे सञ्जय ! जब भीष्म मारे गए, तो दुर्योधन, कर्ण, सुबल-पुत्र शकुनि और खिलाड़ी दुःशासन ने क्या कहा ॥ ६९ ॥

यच्छरीरैरुपास्तीर्णां नरवारणवाजिनाम् ॥७०॥
शरशक्तिमहाखड्गतोमराक्षां महाभयाम् ।
प्राविशन्कितवा मन्दाः सभां युद्धदुरासदाम् ॥७१॥
प्राणद्यूते प्रतिभये केऽदीव्यन्त नरर्षभाः ।

जिस चौसर में नर, हाथी और अश्वों के शरीरों की गोटें, तथा महा भयकारी बाण, शक्ति, महाखड्ग और तोमर के पासे थे, उस युद्ध रूपी दुरासद द्यूत में कौनसे नर वीर खिलाड़ी घुसे, जिन्होंने अपने प्राण की बाजी लगा कर युद्ध रूपी इस द्यूत को खेला ॥ ७०-७१ ॥

के जीयन्ते जितास्तत्र कृतलक्ष्या निपातिताः ॥७२॥
उमन्ये भीष्माच्छान्तनवात्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।

हे सञ्जय ! उस युद्ध रूपी द्यूत में भीष्म को छोड़ कर कौन जीते तथा कौन जीते गए एवं कौन अपने लक्ष्य से गिर गए-यह तुम मुझे खोल कर समझाओ ॥ ७२ ॥

न हि मे शान्तिरस्तीह श्रुत्वा देवव्रतं हतम् ॥७३॥
पितरं भीमकर्माणं भीष्ममाहवशोभिनम्।

मेरे पितामह युद्ध में शोभित होने वाले भीमकर्मा, देवव्रत भीष्म के मारे जाने की सुनकर मुझे चैन नहीं पड़ रहा है ॥७३॥

आर्तिं मे हृदये रूढां महतीं पुत्रहानिजाम् ॥७४॥
त्वं हि मे सर्पिषेवाऽग्निमुद्दीपयसि सञ्जय।

हे सञ्जय ! पुत्र की हानि सुनकर मेरे हृदयमें बड़ी व्याकुलता बढ़ रही है। अब तुम उस मेरे पुत्र की हानिजन्य अग्नि को भीष्म की मृत्यु के समाचार रूपी घृत से उद्दीप्त कर रहे हो ॥७४॥

महान्तं भारमुद्यम्य विश्रुतं सार्वलौकिकम् ॥७५॥
दृष्ट्वा विनिहतं भीष्मं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।

सब लोकों में प्रसिद्ध, इस विश्वव्यापी महायुद्ध के महान् भार को उठाकर तथा युद्ध में भीष्म के मरने के समाचार सुन कर मेरे पुत्र अवश्य शोक कर रहे होंगे ॥७५॥

श्रोष्यामि तानि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥७६॥
तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यद्वृत्तं तत्र सञ्जय ।

हे सञ्जय ! मैं तो अब दुर्योधन के वे शोक सुनना चाहता हूँ, जो भीष्म के मरने पर उसको प्राप्त हुए हैं। अब तुम जो वहां हुआ है-उसे अच्छी तरह मुझे सुनाओ ॥७६॥

यद्वृत्तं तत्र संग्रामे मन्दस्याऽबुद्धिसम्भवम् ॥७७॥
अपनीतं सुनीतं यत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।

हे सञ्जय! मूर्ख दुर्योधन की मूर्खता से जो कुछ संग्राम में नीति के अनुकूल या प्रतिकूल हुआ, वह सब कुछ मुझसे कहो।

यत्कृतं तत्र संग्रामे भीष्मेण जयमिच्छता ॥७८॥
तेजोयुक्तं कृतास्त्रेण शंस तच्चाऽप्यशेषतः।

जय के अभिलाषी, अस्त्र ज्ञाता भीष्म ने जो कुछ संग्राम में तेज युक्त कर्म किया, तुम वह सब कुछ मुझे सुनाओ ॥७८॥

तथा तदभवद्युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥७९॥
क्रमेण येन यस्मिंश्च काले यच्च यथाऽभवत् ॥८०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्दशोऽध्यायः

कुरु और पाण्डवों की सेनामें जिस क्रम से जिस समय पर जहां जिनके साथ जैसे २ युद्ध हुआ—वह मुझे सुनाओ ॥७९-८०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में धृतराष्ट्र प्रश्न का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



पन्द्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथाऽर्हसि।
न तु दुर्योधने दोषमिममासंक्तुमर्हसि ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! ये जितने प्रश्न आपने किये हैं, वे सब आपके योग्य ही हैं, परन्तु इन सब बातों का अपराध आप दुर्योधन पर न लगाइए ॥ १ ॥

य आत्मनो दुश्चरिताद्शुभं प्राप्नुयान्नरः।
एनसा तेन नाऽन्यं स उपाशङ्कितुमर्हति ॥२॥

जो मनुष्य अपने दुष्कर्म से अशुभ फल पाता है, उसे उस पाप में अन्य किसी को सम्मिलित नहीं करना चाहिए ॥ २ ॥

महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत्।
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥३॥

हे महाराज ! जो मनुष्य स्वयं मनुष्यों के साथ निन्दित व्यवहार करता है, वही निन्दित पुरुष, निन्दित आचरणों को करता हुआ सब लोगों के मारने के योग्य है ॥ ३ ॥

निकारो निकृतिप्रज्ञैः पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया।
अनुभूतः सहाऽमात्यैः क्षान्तश्च सुचिरं वने ॥४॥

प्रतीकार करने में समर्थ पाण्डवों ने तेरी प्रतीक्षा में ही यह सब कुछ अपमान अपने मन्त्रियों के साथ सहा और वे बहुत दिन तक वन में रह कर तुमको क्षमा करते रहे ॥ ४ ॥

हयानां च गजानां च राज्ञां चाऽमिततेजसाम् ।
प्रत्यक्षं यन्मया दृष्टं दृष्टं योगबलेन च ॥५॥
शृणु तत्पृथिवीपाल मा च शोके मनः कृथाः ।
दिष्टमेतत्पुरा नूनमिदमेव नराधिप ॥६॥

हे राजन् ! अश्व, हाथी और अत्यन्त तेजस्वी राजाओं के विषय में जो मैंने प्रत्यक्ष देखा या जो योगबल से देखा है। हे पृथिवीपाल ! तुम उसे सुनो और शोक में मन को न डालो। हे नराधिप ! यह सब कुछ दैवने प्रथम से ही निश्चित कर रखा है।

नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते ।
यस्य प्रसादाद्दिव्यं तत्प्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम् ॥७॥

मैं बुद्धिमान् तुम्हारे पिता पराशर के पुत्र वेदव्यास को नमस्कार करता हूँ, जिनके अनुग्रह से मैंने यह सर्वश्रेष्ठ उत्तम ज्ञान प्राप्त किया है ॥ ७ ॥

दृष्टिश्चाऽतीन्द्रिया राजन्दूराच्छ्रवणमेव च ।
परचित्तस्य विज्ञानमतीतानागतस्य च ॥८॥
व्युत्थितोत्पत्तिविज्ञानमाकाशे च गतिः शुभा ।
अस्त्रैरसङ्गो युद्धेषु वरदानान्महात्मनः ॥९॥

हे राजन् ! अतीन्द्रिय पदार्थों के देखने की मेरी दृष्टि और दूर से ही सुन लेने की मुझ में शक्ति प्राप्त हो गई है । इसी तरह अन्य के चित्त का विज्ञान और भूत तथा भविष्य का ज्ञान भी मुझे हो जाता है। शास्त्र विरुद्ध करने वालों की उत्पत्ति का

ज्ञान, आकाशगमन, युद्धमें अस्त्रों के आघातों का अभाव आदि कार्य उसी महात्मा वेदव्यास के वरदान से मुझे प्राप्त हैं ॥८-९॥

शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम् ।
भरतानामभूद्युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम् ॥१०॥

जो भरतवंशजों का अद्भुत लोमहर्षण युद्ध हुआ है, वह बड़ा विचित्र और आश्चर्यकारी है। अब तुम उसका विस्तार से वर्णन सुनो ॥१०॥

तेष्वनीकेषु यत्तेषु व्यूढेषु च विधानतः ।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥११॥

हे महाराज ! जब सारी सेनाएँ सावधान हो गई और उनकी व्यूह रचना कर ली गई, तो उस समय राजा दुर्योधन दुःशासन से यह कहने लगा ॥११॥

दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ।
अनीकानि च सर्वाणि शीघ्रं त्वमनुचोदय ॥१२॥

हे दुःशासन ! अब तुम शीघ्र भीष्म की रक्षा करने वाले रथों को जुतवा लो तथा सारी सेनाओं को शीघ्र चलती कर दो ॥१२॥

अयं स मामभिप्राप्तो वर्षपूगाभिचिन्तितः ।
पाण्डवानां ससैन्यानां कुरूणां च समागमः ॥१३॥

मैं अनेक वर्षों से जिस समय की प्रतीक्षा में था, वह पाण्डवों की सेना और पाण्डव तथा कौरवों का समागम अब कठिनता से प्राप्त हुआ है ॥१३॥

नाऽतः कार्यतमं मन्ये रणे भीष्मस्य रक्षणात् ।

हन्याद् गुप्तो ह्यसौ पार्थान्सोमकांश्च ससृञ्जयान् ॥१४॥

अब मैं भीष्म की रक्षा के अतिरिक्त अन्य कोई कर्तव्य नहीं समझता हूँ। यदि भीष्म की रक्षा बनी रही-तो वे सोमक और सृञ्जयों के साथ पाण्डवों का नाश करके छोड़ेंगे ॥१४॥

अब्रवीच्च विशुद्धात्मा नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।

श्रूयते स्त्री ह्यसौ पूर्वं तस्माद्वर्ज्यो रणे मम ॥१५॥

इस विशुद्ध आत्मा भीष्म ने एक बात कह रखी है, कि मैं शिखण्डी को नहीं मारूंगा। यह पूर्वकाल में स्त्री था, इससे मैं रण में इसका वध नहीं करूंगा ॥१५॥

तस्माद्भीष्मो रक्षितव्यो विशेषेणेति मे मतिः ।

शिखण्डिनो वधे यत्ताः सर्वे तिष्ठन्तु मामकाः ॥१६॥

मेरी सम्मति में विशेष रीति से भीष्म की रक्षा करो और शिखण्डी के मारने में मेरे सारे योद्धा सावधान हो जाओ ॥१६॥

तथा प्राच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्योत्तरापथाः ।

सर्वथाऽस्त्रेषु कुशलास्ते रक्षन्तु पितामहम् ॥१७॥

अब तो अस्त्र विद्या में कुशल, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण देश के सारे राजा, भीष्म पितामह की ही रक्षा करते रहें। ॥१७॥

अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहं महाबलम् ।

मा सिंहं जम्बुकेनेव घातयामः शिखण्डिना ॥१८॥

अरक्षित महाबली सिंह को भेड़िया भी मार लेता है। गीदड़ से सिंह की भांति शिखण्डी द्वारा हम भीष्म का वध न हो जाने दें।

वामं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम्।
गोप्तारौ फाल्गुनं प्राप्तौ फाल्गुनोऽपि शिखण्डिनः ॥१६

अब अर्जुन के बायें चक्र की युधामन्यु और दक्षिण चक्र की उत्तमौजा रक्षा कर रहे हैं और अर्जुन शिखण्डी की रक्षा करता है ॥१६॥

संरक्ष्यमाणः पार्थेन भीष्मेण च विवर्जितः।
यथा न हन्याद्गाङ्गेयं दुःशासन तथा कुरु ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्योधनदुःशासनसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

हे दुःशासन! शिखण्डी की अर्जुन रक्षा करते और भीष्म उसे मारना नहीं चाहते हैं-इस दशा में शिखण्डी गङ्गा-पुत्र भीष्म को मार न बैठे—ऐसा तुमको प्रयत्न करना चाहिए ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में दुर्योधन और दुःशासन के सम्वाद का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ

सोलहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो रजन्यां व्युष्टायां शब्दः समभवन्महान् ।
क्रोशतां भूमिपालानां युज्यतां युज्यतामिति ॥१॥

शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च सिंहनादैश्च भारत ।
हयहेषितनादैश्च रथनेमिस्वनैस्तथा ॥२॥

गजानां बृंहतां चैव योधानां चापि गर्जताम् ।
क्ष्वेलितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! जब रात व्यतीत हो गई तो "रथों को जोड़ो-रथों को जोड़ो" इस प्रकार राजाओं के कोलाहल, शंख और दुन्दुभियों के घोष, सिंह नाद, अश्वों के शब्दों के नाद, रथ की नेमि की ध्वनि, हाथियों की चिंघाड़, योद्धाओं की गर्जना तथा योद्धाओं की बाहु, जांघ आदि की फटकार से बड़ा ही घोर शब्द होने लगा ॥१-३॥

उदतिष्ठन्महाराज सर्वं युक्तमशेषतः ।
सूर्योदये महत्सैन्यं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥४॥

हे महाराज ! सब प्रकार से कुरु और पाण्डवों की सेना सन्नद्ध होकर सूर्योदय होते ही खड़ी हो गई ॥४॥

राजेन्द्र तव पुत्राणां पाण्डवानां तथैव च ।
दुष्प्रधृष्याणि चाऽस्त्राणि सशस्त्रकवचानि च ॥५॥

ततः प्रकाशे सैन्यानि समदृश्यन्त भारत ।
त्वदीयानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥६॥

हे राजेन्द्र ! तेरे पुत्र और पाण्डवों के शस्त्र और कवचों के साथ दुष्प्रधृष्य अस्त्र चलने लगे । जब प्रकाश हो गया, तो दोनों सेनाएं दिखाई देने लगी । उस समय तेरे पुत्र और पाण्डवों की शस्त्र धारण किये हुए सारी विशाल सेना स्पष्ट हो रही थी ॥५-६॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदपरिष्कृताः ।
विभ्राजमाना दृश्यन्ते मेघा इव सविद्युतः ॥७॥

उस समय सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित हाथी और रथ बिजली से सुशोभित मेघों के समान दिखाई देते थे ॥७॥

रथानीकान्यदृश्यन्त नगराणीव भूरिशः ।
अतीव शुशुभे तत्र पिता ते पूर्णचन्द्रवत् ॥८॥

रथों की सेना तो ऐसी दिखाई देती थी, जैसे अनेक नगर, घूमते हों । उस समय तुम्हारे पिता भीष्म पूर्ण चन्द्र की भांति बड़े ही सुशोभित हो रहे थे ॥८॥

धनुर्भिर्ऋष्टिभिः खड्गैर्गदाभिः शक्तितोमरैः ।
योधाः प्रहरणैः शुभ्रैस्तेष्वनीकेष्ववस्थिताः ॥९॥

उन सेनाओं में बड़े २ योद्धा, धनुष, ऋष्टि, खड्ग, गदा, शक्ति तोमर तथा चमकते हुए शस्त्रों से युक्त हुए बड़ी ही सुन्दरता से स्थित थे ॥९॥

गजाः पदाता रथिनस्तुरगाश्च विशाम्पते ।
व्यतिष्ठन्वागुराकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०॥

हे विशाम्पते ! गज, पैदल, रथी और घोड़े, इस तरह खड़े थे-जैसे विरोधीके पकड़नेके लिए सैंकड़ों हजारों जाल बनाये गए हों

ध्वजा बहुविधाकारा व्यदृश्यन्त समुच्छ्रिताः ।
स्वेषां चैव परेषां च द्युतिमन्तः सहस्रशः ॥११॥

उस समय ऊंची उड़ती हुई ध्वजाएँ अनेक रंगों की दिखाई देती थीं । वे सहस्रों की संख्या में अपनी और पाण्डवों की दोनों की ही सेनाएँ फड़फड़ा रही थीं ॥११॥

काञ्चना मणिचित्राङ्गा ज्वलन्त इव पावकाः ।
अर्चिष्मन्तो व्यरोचन्त गजारोहाः सहस्रशः ॥१२॥

हाथियों के असवार, सुवर्ण और मणियों से जटित हुए जलती हुई अग्नि के समान सहस्रोंकी संख्यामें देदीप्यमान हो रहे थे।

महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसद्नेष्विव ।
सन्नद्धास्ते प्रवीराश्च ददृशुर्युद्धकांक्षिणः ॥१३॥

महेन्द्र के भवन पर लगी हुई ध्वजा के समान महेन्द्र की सी अनेक ध्वजाएँ दिखाई देती थीं । इस समय सारे वीर तय्यार हुए युद्ध के अभिलाषी दिखाई देते थे ॥१३॥

उद्यतैरायुधैश्चित्रास्तलबद्धाः कलापिनः ।
ऋषभाक्षा मनुष्येन्द्राश्चमूमुखगता बभुः ॥१४॥

सब ने शस्त्र उठा रखे थे, जिनसे वे बड़े विचित्र दिखाई देते थे। सब ने करतल त्राण और तूणीर कस रखे थे। ये बड़ी २ विशाल आँखों वाले, महावीर, सेना के मुख पर बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते थे ॥१४॥

शकुनिः सौबलः शल्य आवन्त्यौऽथ जयद्रथः।
विन्दानुविन्दौ कैकेयाः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥१५॥
श्रुतायुधश्च कालिङ्गो जयत्सेनश्च पार्थिवः।
बृहद्बलश्च कौशल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ॥१६॥
दशैते पुरुषव्याघ्राः शूराः परिघबाहवः।
अक्षौहिणीनां पतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥१७॥

सुबल-पुत्र शकुनि, शल्य, अवन्तिकुमार विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ, कैकय, काम्बोज, सुदक्षिण, कालिङ्ग, श्रुतायुध, राजा जयत्सेन, कोशल देशाधिपति, बृहद्बल, यदुवंशी कृतवर्मा, ये दश शूरवीर पुरुष श्रेष्ठ थे, जिनकी अर्गला के समान भुजाएँ थी। ये सब अक्षौहिणियों के पति और बड़ी २ दक्षिणा के यज्ञ करने वाले थे॥ १५-१७ ॥

एते चाऽन्ये च बहवो दुर्योधनवशानुगाः।
राजानो राजपुत्राश्च नीतिमन्तो महारथाः ॥१८॥

ये तथा अन्य बहुत से राजा दुर्योधन के वश में थे। जो राजा महाराज, बड़े महारथी और नीति कुशल थे। ॥१८॥

सन्नद्धाः समदृश्यन्त स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः ।

बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे बलिनो युद्धशालिनः ॥१९॥

ये सब अपनी २ सेना में स्थित हुए सन्नद्ध दिखाई देते थे। सब ने कृष्ण मृग की चर्म कस रखी थी और सारे बलवान्, युद्ध के लोलुप थे ॥१९॥

हृष्टा दुर्योधनस्याऽर्थे ब्रह्मलोकाय दीक्षिताः ।

समर्था दश वाहिन्यः परिगृह्य व्यवस्थिताः ॥२०॥

ये सब दुर्योधन की प्रयोजन सिद्धि के लिए बड़े प्रसन्न हो रहे थे। सबने ब्रह्मलोक का दीक्षा ले रखी थी। ये शक्तिशाली दश अक्षौहिणी सेनाओं को लेकर दुर्योधन के लिए युद्ध में स्थित थे।२०।

एकादशी धार्त्तराष्ट्री कौरवाणां महाचमूः ।

अग्रतः सर्वसैन्यानां यत्र शान्तनवोऽग्रणीः ॥२१॥

ग्यारहवीं अक्षौहिणी, राजा धृतराष्ट्र की थी, जो कौरवों की बड़ी उत्तम सेना थी। यह सब सेना में श्रेष्ठ थी और इसका सेनापति शान्तनुपुत्र भीष्म था ॥२१॥

श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतम् ।

अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्रमिवोदितम् ॥२२॥

हे महाराज ! श्वेत पगड़ी, श्वेत अश्व, श्वेत कवच धारण किए हुए रणधीर भीष्म को लोग उदय को प्राप्त हुए चन्द्रमा के समान देख रहे थे ॥ २२ ॥

हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितम् ।

श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरुपाण्डवाः ॥२३॥

सुवर्ण के तालवृक्ष के समान उच्च ध्वजा वाले, चाँदी के रथ में स्थित, श्वेत बादलों में सूर्य के समान भीष्म को कुरु पाण्डवों ने देखा ॥२३॥

सृञ्जयाश्च महेष्वासा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।

जृम्भमाणं महासिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा यथा ॥२४॥

धृष्टद्युम्नमुखाः सर्वे समुद्विविजिरे मुहुः ।

धृष्टद्युम्न से लेकर जितने भी धनुषधारी सृञ्जय थे, वे सब जँभाई लेते हुए सिंह के सन्मुख मृग के समान प्रतीत होते थे। वे सब इस महासिंह भीष्म को देखकर बड़े भयातुर हुए ॥२४॥

एकादशैताः श्रीजुष्टा वाहिन्यस्तव पार्थिव ॥२५॥

पाण्डवानां तथा सप्त महापुरुषपालिताः ।

हे राजन् ! इस प्रकार तुम्हारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। जो बड़ी कान्ति से युक्त है। इसी तरह महावीरों से युक्त पाण्डवों की सात अक्षौहिणी सेना है ॥२५॥

उन्मत्तमकरावर्तौ महाग्राहसमाकुलौ ॥२६॥

युगान्ते समवेतौ द्वौ दृश्येते सागराविव ।

उन्मत्त मकरों के आवर्त्तों से युक्त, बड़े २ ग्राहों से समन्वित, प्रलय के समय उछलते हुए दो समुद्रों के समान वे सेनाएं दिखाई देती थीं ॥२६॥

नैव नस्तादृशो राजन्दृष्टपूर्वो न च श्रुतः ।
अनीकानां समेतानां कौरवाणां तथाविधः ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

हे राजन् ! हमने न तो कभी देखा और न कभी कौरवों के इकट्ठी हुई सेना का ऐसा जमघट सुना था ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में सेना के वर्णन का सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ

सत्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

यथा स भगवान्व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जो कुछ भगवान् वेद-व्यास ने कहा था, उसी प्रकार सारे राजा इकट्ठे हुए वहां आये ॥१॥

मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत ।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥२॥

मघा नक्षत्र पर उस दिन चन्द्रमा था और आकाश में उसी दिन सात बड़े २ ग्रह चमकने लगे-जो बड़े ही अनिष्टके सूचक थे ।

द्विधाभूत इवाऽऽदित्य उदये प्रत्यदृश्यत ।
ज्वलन्त्या शिखया भूयो भानुमानुदितो रविः ॥३॥

जब सूर्य का उदय होने लगा तो वह दो भागों में बटा हुआ सा प्रतीत होता था । सूर्य उदय होता हुआ ऐसा दिखाई दिया, जैसे उसके चारों ओर अग्नि की लपटें जल रही हों ॥३॥

ववाशिरे च दीप्तायां दिशि गोमायुवायसाः ।
लिप्समानाः शरीराणि मांसशोणितभोजनाः ॥४॥

जाज्वल्यमान दिशाओं में गीदड़ और कव्वे शब्द करने लगे । ये मांस शोणित का भोजन करने वाले जन्तु वहां मृतक शरीरों की खोज में प्रवृत्त हुए ॥ ४ ॥

अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
भरद्वाजात्मजश्चैव प्रातरुत्थाय संयतौ ॥५॥
जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणामित्यूचतुररिन्दमौ ।
युयुधाते तवाऽर्थाय यथा स समयः कृतः ॥६॥

जब २ प्रातःकाल कुरु-वृद्ध पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य उठते थे, तब २ ये दोनों अरि विजयी, इन अपशकुनों को देखकर कहते थे, कि विजय तो पाण्डु-पुत्रों की होगी, परन्तु ये तो तुम्हारे पुत्रों के लिए युद्ध करने को प्रवृत्त थे, क्योंकि इन्होंने समय (शर्त या प्रतिज्ञा) यही कर रखा था ॥ ५-६ ॥

सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ।
समानीय महीपालानिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥

सब धर्मों के विशेष तत्त्वों को जानने वाले तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म ने सारे राजाओं को बुला कर यह वचन कहा।

इदं वः क्षत्रिया द्वारं स्वर्गायाऽपावृतं महत्।
गच्छध्वं तेन शक्रस्य ब्रह्मणः सहलोकताम् ॥८॥

हे क्षत्रियों! यह स्वर्ग प्राप्ति का विशाल द्वार खुल गया है। इस द्वार से कोई ब्रह्म और कोई इन्द्र की समानता को प्राप्त करो।

एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः।
सम्भावयध्वमात्मानमव्यग्रमनसो युधि ॥९॥

तुम्हारे पूर्वजों के पूर्वजों ने भी जिस मार्ग का अवलम्बन किया है, यह वही मार्ग है। अब तुम निश्चिन्त मन होकर युद्ध के लिए अपने आपको उपस्थित करो ॥ ९ ॥

नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः।
संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः ॥१०॥

राजा नाभाग, ययाति, मान्धाता, नहुष और नृग-ऐसे उत्तम कर्मों से सिद्ध हुए उत्तम स्थान को प्राप्त हुए हैं॥ १० ॥

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद्व्याधिमरणं गृहे।
यदयोनिधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः ॥११॥

व्याधि में ग्रस्त होकर घर में मरना क्षत्रिय के लिए अधर्म माना गया है। जो लोहे से कट कर क्षत्रिय का मरना है, यही इसका सनातन धर्म है ॥ ११ ॥

एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ ।
निर्ययुः स्वान्यनीकानि शोभयन्तो रथोत्तमैः ॥१२॥

हे भरतर्षभ ! जब भीष्म ने राजाओं से इतना कहा, तो वे सब अपने २ उत्तम रथों से सेना को सुशोभित करते हुए निकल आए ॥ १२ ॥

स तु वैकर्त्तनः कर्णः सामात्यः सह बन्धुभिः ।
न्यासितः समरे शस्त्रं भीष्मेण भरतर्षभ ॥१३॥

हे भरतर्षभ ! विकर्तन-पुत्र कर्ण तो अपने मन्त्री और बान्धवों के साथ इस समय पृथक् रहा, क्योंकि भीष्म ने प्रथम से उससे शस्त्र ग्रहण नहीं करने का प्रण कराया था ॥ १३ ॥

अपेतकर्णाः पुत्रास्ते राजानश्चैव तावकाः ।
निर्ययुः सिंहनादेन नादयन्तो दिशो दश ॥१४॥

हे राजन् ! कर्ण को छोड़ कर तुम्हारे सारे राजा, अपने २ सिंहनाद से दशों दिशाओं को भरते हुए बाहर निकल आए।

श्वेतैश्छत्रैः पताकाभिर्ध्वजवारणवाजिभिः ।
तान्यनीकानि शोभन्ते गजै रथपदातिभिः ॥१५॥

श्वेतच्छत्र, पताका, ध्वजा, मदोन्मत्त हाथी, घोड़े, साधारण गज, रथ और पैदलों से इन राजाओं की सेना बड़ी ही सुशोभित हो रही थी ॥ १५ ॥

भेरीपणवशब्दैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
रथनेमिनिनादैश्च बभूवाऽऽकुलिता मही ॥१६॥

भेरी, पणव आदि बाजों के शब्द, दुन्दुभियों के घोष, रथ-नेमियों के निनाद से सारी भूमि आकुलित हो गई ॥ १६ ॥

काञ्चनाङ्गदकेयूरैः कार्मुकैश्च महारथाः ।
भ्राजमाना व्यराजन्त साग्नयः पर्वता इव ॥१७॥

महारथी, सुवर्ण के अङ्गद और केयूर (हाथ के आभूषण) तथा धनुषों से ऐसे चमक रहे थे, जैसे अग्नियों से पर्वत प्रदीप्त हो रहे हों ॥ १७ ॥

तालेन महता भीष्मः पञ्चतारेण केतुना ।
विमलादित्यसङ्काशस्तस्थौ कुरुचमूपरि ॥१८॥

पञ्चतार की महान् ताल के चिन्ह की ध्वजा से सुशोभित हुए भीष्म पितामह कौरवों की सेना में निर्मल सूर्य के समान देदीप्य-मान हो रहे थे ॥ १८ ॥

ये त्वदीया महेष्वासा राजानो भरतर्षभ ।
अवर्त्तन्त यथादेशं राजञ्शान्तनवस्य ते ॥१६॥

हे भरतर्षभ ! जो तुम्हारी ओर के महाधनुर्धर राजा थे, वे सब शान्तनु-पुत्र भीष्म की आज्ञा में चल रहे थे ॥ १६ ॥

स तु गोवासनः शैब्यः सहितः सर्वराजभिः ।
ययौ मातङ्गराजेन राजार्हेण पताकिना ।

गोवासन देश का राजा शैब्य सारे राजाओं के साथ साथ राजा के योग्य पताका और उत्तम गजराज पर चढ़ कर युद्ध में सम्मिलित हुआ ॥ २० ॥

पद्मवर्णस्त्वनीकानां सर्वेषामग्रतः स्थितः ॥२०॥
अश्वत्थामा ययौ यत्तः सिंहलांगूलकेतुना ।

कमल के समान दिव्य-कान्ति-धारी, सारी सेना के आगे चलने वाले सिंह की पुच्छ के समान विचित्र ध्वजा के साथ बड़ी सावधानी से युद्ध के लिए अश्वत्थामा चल पड़ा ॥ २१ ॥

श्रुतायुधश्चित्रसेनः पुरुमित्रो विविंशतिः ॥२१॥
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च महारथः ।
एते सप्त महेष्वासा द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥२२॥
स्यन्दनैर्वरवर्माणो भीष्मस्याऽऽसन्पुरोगमाः ।

श्रुतायुध, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल्य, भूरिश्रवा, महारथी विकर्ण—ये सात महारथी और आठवां अश्वत्थामा उत्तम २ कवच पहन कर उत्तम २ रथों से भीष्म के आगे आगे चले ॥ २२ ॥

तेषामपि महोत्सेधाः शोभयन्तो रथोत्तमान् ॥२३॥
भ्राजमाना व्यरोचन्त जाम्बूनदमया ध्वजाः ।

इन सब की सुवर्णमय ध्वजाएँ बड़ी ऊंची थी और वे इनके रथों को बड़ी ही सुशोभित कर रही थीं; जो बड़ी उत्तमता से स्वयं भ्राजमान थीं ॥ २३ ॥

जाम्बूनदमयी वेदी कमण्डलुविभूषिता ॥२४॥

केतुराचार्यमुख्यस्य द्रोणस्य धनुषा सह ।

आचार्य-मुख्य द्रोण की ध्वजा में कमण्डलु और धनुष के साथ सुवर्ण की वेदी का बड़ा ही उत्तम आकार था ॥ २४ ॥

अनेकशतसाहस्रमनीकमनुकर्षतः ॥२५॥

महान्दुर्योधनस्याऽऽसीन्नागो मणिमयो ध्वजः ।

लाखों की संख्या का नेतृत्व करने वाले राजा दुर्योधन के हाथी की ध्वजा बड़ी ही विचित्र थी, जो मणियों से जटित थी ।

तस्य पौरवकालिङ्गकाम्बोजाः ससुदक्षिणाः ॥२६॥

क्षेमधन्वा च शल्यश्च तस्थुः प्रमुखतो रथाः ।

राजा दुर्योधन के आगे कौरव, कलिङ्गाधिपति, काम्बोजेश्वर सुदक्षिण, क्षेमधन्वा और शल्य आदि महारथी चल रहे थे ॥२६॥

स्यन्दनेन महार्हेण केतुना वृषभेण च ।

प्रकर्षन्नेव सेनाग्रं मागधस्य कृपो ययौ ॥२७॥

महामूल्य के बने हुए रथ तथा वृषभ के चिन्ह से चिन्हित ध्वजाधारी, कृपाचार्य मागध सेना का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़े ॥ २७ ॥

तदङ्गपतिना गुप्तं कृपेण च मनस्विना ।

शारदाम्बुधरप्रख्यं प्राच्यानां सुमहद्बलम् ॥२८॥

प्राच्य देश की वह विशाल सेना, अङ्गपति कर्ण पुत्र वृषकेतु तथा मनस्वी कृपाचार्य से सुरक्षित थी, जो शरद् ऋतु के मेघों की तरह स्वच्छ थी ॥ २८ ॥

अनीकप्रमुखे तिष्ठन्वराहेण महायशाः ।
शुशुभे केतुमुख्येन राजतेन जयद्रथः ॥२९॥

सेना के अग्रभाग में स्थित, वराह के चिन्ह की ध्वजा के धारी राजा जयद्रथ, अपने चाँदी के बने हुए ध्वजा से बड़े ही उत्तम प्रतीत होते थे ॥ २९ ॥

शतं रथसहस्राणां तस्याऽऽसन्वशवर्त्तिनः ।
अष्टौ नागसहस्राणि सादिनामयुतानि षट् ॥३०॥

राजा जयद्रथ की सेना के एक लाख रथ, आठ हजार हाथी, साठ हजार अश्व, राजा दुर्योधन के वश में चल रहे हैं ।३०।

तत्सिन्धुपतिना राज्ञा पालितं ध्वजिनीमुखम् ।
अनन्तरथनागाश्वमशोभत महद्बलम् ॥३१॥

इस सेना के मुख की सिन्धुपति राजा जयद्रथ रक्षा कर रहे थे । इस सेना में अनन्त रथ, हाथी और अश्व थे, जिनसे सेना बड़ी ही सुशोभित हो रही थी ॥ ३१ ॥

षष्ट्या रथसहस्रैस्तु नागानामयुतेन च ।
पतिः सर्वकलिङ्गानां ययौ केतुमता सह ॥३२॥

कलिङ्ग देश का स्वामी साठ हजार रथ, दश हजार हाथी लेकर अपनी ध्वजा के साथ युद्ध में सम्मिलित हुआ ॥ ३२ ॥

तस्य पर्वतसङ्काशा व्यरोचन्त महागजाः ।
यन्त्रतोमरतूणीरैः पताकाभिः सुशोभिताः ॥२३॥

इसके पर्वत के आकार के हाथी बड़े ही सुशोभित हो रहे थे; जो यन्त्र, तोमर, तूणीर और पताकाओं से सुशोभित थे ॥२३॥

शुशुभे केतुमुख्येन पावकेन कलिङ्गकः ।
श्वेतच्छत्रेण निष्केण चामरव्यजनेन च ॥२४॥

श्वेत छत्र, सुवर्ण के कण्ठे, चामर, कङ्गन और अग्नि के समान प्रदीप्त ध्वजा से कलिङ्गराज सुशोभित हो रहे थे ॥ २४ ॥

केतुमानपि मातङ्गं विचित्रपरमांकुशम् ।
आस्थितः समरे राजन्मेघस्थ इव भानुमान् ॥२५॥

विचित्र विशाल अंकुश वाले हाथी पर बैठे हुये, मेघों में सूर्य के सदृश युद्धभूमि में राजा केतुमान सुशोभित हुए ॥२५॥

तेजसा दीप्यमानस्तु वारणोत्तममास्थितः ।
भगदत्तो ययौ राजा यथा वज्रधरस्तथा ॥२६॥

तेज से देदीप्यमान, सर्वोत्तम हाथी पर बैठा हुआ वज्रधारी इन्द्र के समान तेजस्वी, राजा भगदत्त भी युद्धके लिए चल दिया।

गजस्कन्धगतावास्तां भगदत्तेन सम्मितौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केतुमन्तमनुव्रतौ ॥२७॥

हाथीके स्कन्ध पर बैठे हुए भगदत्त के समान ही वीर अवन्ति देश के स्वामी विन्द और अनुविन्द भी केतुमान के पीछे २ चल दिए ॥ २७ ॥

स रथानीकवान्व्यूहो हस्त्यङ्गो नृपशीर्षवान् ।
वाजिपक्षः पतत्युग्रः प्रहसन्सर्वतोमुखः ॥३८॥
द्रोणेन विहितो राजन्राज्ञा शान्तनवेन च ।
तथैवाऽऽचार्यपुत्रेण बाह्लीकेन कृपेण च ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि
सैन्यवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

हे राजन्! द्रोणाचार्य शान्तनु-पुत्र राजा भीष्म, आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा, बाल्हीक, कृपाचार्य ने एक व्यूह रचना की, उस व्यूह के अङ्ग हाथी, नृपगण शिर, अश्व पक्ष और रथों की सेना प्रत्यङ्ग थी। यह संसार की हंसी करता हुआ सब ओर उड़ रहा था

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में सैन्यवर्णन
का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।



अठारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो मुहूर्त्तात्तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः ।
अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे महाराज ! थोड़ी ही देर में युद्ध करने वाले वीरों का हृदय कंपा देने वाला महान् कोलाहल सुनाई देने लगा ॥ १ ॥

शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः ।
नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुन्धरा ॥२॥

शंख और दुन्दुभियों के घोष, हाथियों की चिंघाड़, रथों की नेमियों की ध्वनि से पृथिवी फटी सी जा रही थी ॥ २ ॥

हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जताम् ।
क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनाऽऽपूरितं तदा ॥३॥

अश्वों की हिनहिनाहट तथा योद्धाओं की गर्जना से क्षण भर में ही आकाश और भूमि शब्द से भर गई ॥ ३ ॥

पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च ।
समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे ॥४॥

हे दुर्धर्ष ! राजंन् ! तुम्हारे पुत्र और पाण्डवों की सेनाए जब परस्पर एक दूसरे के सन्मुख हुई, तो आपस में धड़धड़ी लेने लगी ॥ ४ ॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ।
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥५॥

उस समय सुवर्ण से विभूषित, हाथी और रथ, इस तरह चमक रहे थे-जैसे बिजली से मेघ देदीप्यमान होते हैं ॥५॥

ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप ।
काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्वलिता इव पावकाः ॥६॥

हे नराधिप ! तुम्हारे वीरों के अनेक आकार की ध्वजाएँ तथा सुवर्ण के अङ्गद पहिने हुए वीर, जाज्वल्यमान अग्नि के समान प्रतीत होते थे ॥६॥

स्वेषां चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत ।
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ॥७॥

हे भारत ! अपने और पाण्डव वीरों के सेना की ध्वजाएँ महेन्द्र के भवन पर लगी हुई, शुभ्र महेन्द्र ध्वजाओं के समान प्रतीत होती थीं ॥७॥

काञ्चनैः कवचैर्वीरा ज्वलनार्कसमप्रभैः ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥८॥

सूर्य के समान जाज्वल्यमान, सुवर्ण के कवचों से सन्नद्ध हुए वीर, चमकते हुए सूर्य के समान प्रतीत होते थे ॥८॥

कुरुयोधवरा राजन्विचित्रायुधकार्मुकाः ।
उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः पताकिनः ॥९॥

हे राजन् ! कुरुसेना के वीरों ने विचित्र शस्त्र और धनुष धारण कर रखे थे । ये विचित्र, उठे हुए शस्त्रों से बड़े सुन्दर

प्रतीत होते थे। इन्होंने करतल त्राण बांध रखे थे और ध्वजाएँ ले रखी थीं ॥९॥

ऋषभाक्षा महेष्वासाश्चमूमुखगता बभुः ।
पृष्ठगोपास्तु भीष्मस्य पुत्रास्तव नराधिप ॥१०॥

हे नराधिप ! वृषभ के तुल्य बड़ी २ आंखों वाले, महाधनुर्धर योद्धा सेना के अग्रभाग में सुशोभित थे और तुम्हारे पुत्र भीष्म के पृष्ठ भाग की रक्षा में थे ॥१०॥

दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुःसहस्तथा ।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवाः शलः ॥११॥
रथा विंशतिसाहस्रास्तथैषामनुयायिनः ।

दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुःसह, विविंशति, चित्रसेन, महारथी विकर्ण, सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय, भूरिश्रवा, शल-ये महारथी और बीस २ सहस्र अन्य रथी इनके साथ थे ॥११॥

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥१२॥
शाल्वा मत्स्यास्तथाऽम्बष्ठास्त्रैगर्त्ताः केकयास्तथा ।
सौवीराः कैतवाः प्राच्याः प्रतिच्योदीच्यवासिनः ॥१३॥
द्वादशैते जनपदाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ।
महता रथवंशेन ते ररक्षुः पितामहम् ॥१४॥

अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्व, मत्स्य, अम्बष्ठ, त्रैगर्त, केकय, सौवीर, कैतव, प्राच्य, प्रतीच्य और उदीच्य-ये

बारह पृथक् देश निवासी थे-ये सारे ही बड़े शूरवीर और शरीर का ध्यान छोड़कर लड़ने वाले थे। ये बड़ी भारी रथों की सेना लेकर भीष्मपितामह की रक्षा कर रहे थे ॥१२-१४॥

अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
मागधो यत्र नृपतिस्तद्रथानीकमन्वयात् ॥१५॥

बड़े वेगशील दस हजार हाथियों की एक सेना थी, जिसका नेता मगधराज था। वह भी इस रथों की सेना की रक्षा में पीछे २ चल पड़ी ॥१५॥

रथानां चक्ररक्षाश्च पादरक्षाश्च दन्तिनाम् ।
अभवन्वाहिनीमध्ये शतानामयुतानि षट् ॥१६॥

इस समय रथों के चक्ररक्षक और हाथियों के पादरक्षक इस सेना में साठ लाख के लगभग होंगे ॥१६॥

पादाताश्चाऽग्रतोऽगच्छन्धनुश्चर्मासिपाणयः ।
अनेकशतसाहस्रा नखरप्रासयोधिनः ॥१७॥

धनुष और ढाल तलवार हाथ में लेकर पैदल सैनिक आगे २ चल रहे थे। ये भी लाखों की संख्या में थे, जिनके पास बड़े तीक्ष्ण प्रास आदि शस्त्र थे। जिनसे वे बड़े विचित्र ढंग से लड़ते थे।

अक्षौहिण्यो दशैका च तव पुत्रस्य भारत ।
अदृश्यन्त महाराज गङ्गेव यमुनान्तरा ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने अष्टादशोऽध्यायः ११

हे भारत ! महाराज ! तेरे पुत्र की ग्यारह अक्षौहिणी सेना, यमुना से मिली हुई गङ्गा की तरह उफनती हुई प्रतीत होती है।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में सेनाके वर्णन का अट्ठारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

उन्नीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

अक्षौहिण्यो दशैका च व्यूढा दृष्ट्वा युधिष्ठिरः।
कथमल्पेन सैन्येन प्रत्यव्यूहत पाण्डवः ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मेरे पुत्रों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना की व्यूह रचना देखकर राजा युधिष्ठिर ने अपनी थोड़ी सेना की किस प्रकार व्यूह रचना की ॥१॥

यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम्।
कथं भीष्मं स कौन्तेयः प्रत्यव्यूहत सञ्जय ॥२॥

हे सञ्जय ! जो भीष्म, मनुष्य, दैव, गान्धर्व और आसुर व्यूह रचना करना जानता था, उसके सन्मुख, कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने कैसे अपनी सेना का व्यूह बनाया ॥२॥

सञ्जय उवाच—

धार्तराष्ट्राण्यनीकानि दृष्ट्वा व्यूढानि पाण्डवः।
अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनञ्जयम् ॥३॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! जब राजा युधिष्ठिर ने कौरवों की सेना के व्यूह बने देखे-तो धर्मात्मा धर्मराज भी धनञ्जय अर्जुन से कहने लगा ॥३॥

महर्षेर्वचनात्तात वेदयन्ति बृहस्पतेः ।
संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ॥४॥

हे तात! महर्षि बृहस्पति का यह वचन है, कि जब अपने पास थोड़ी सेना हो-तो उसे संगठित रूप में लड़ावे और अधिक सेना हो, तो उसको विस्तार के साथ लड़ावे ॥४॥

सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह ।
अस्माकं च तथा सैन्यमल्पीयः सुतरां परैः ॥५॥

जब थोड़ी सेना का विशाल सेना के साथ युद्ध हो-तो थोड़ी सेना वाले को सूची-मुख व्यूह बनाना चाहिए । इस समय हमारी सेना भी कौरवों के सन्मुख बहुत थोड़ी है ॥५॥

एतद्वचनमाज्ञाय महर्षेर्व्यूह पाण्डव ।
एतच्छ्रुत्वा धर्मराजं प्रत्यभाषत पाण्डवः ॥६॥

हे अर्जुन! तुम महर्षि बृहस्पति के वचनों का विचार कर व्यूह रचना करो। इतना सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुन धर्मराजसे बोले

एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम् ।
अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥७॥

हे राजसत्तम ! लो ? मैं अभी तुम्हारी सेना का दुर्जय व्यूह बना देता हूं। यह बड़ा अचल व्यूह है, जिसका नाम "वज्र" है। इसको सर्व प्रथम वज्रपाणि इन्द्र ने बनाया था ॥७॥

यः स वात इवोद्भूतः समरे दुःसहः परैः।
स नः पुरो योत्स्यते वै भीमः प्रहरतां वरः ॥८॥

यह वायु की भांति घूमता रहेगा, जो शत्रुओं को युद्ध में बड़ा दुःसह होगा। इसमें प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ भीम सब से आगे युद्ध करते रहेंगे ॥८॥

तेजांसि रिपुसैन्यानां मृद्नन्पुरुषसत्तमः।
अग्रेऽग्रणीर्योत्स्यति नो युद्धोपायविचक्षणः ॥९॥

यह पुरुष रत्न भीमसेन, रिपुसेना के तेजों का नाश करता हुआ, शत्रु सेना के अग्रणी वीरों से भिड़ता रहेगा। यह युद्ध के उपाय जानने में बड़ा कुशल है ॥९॥

यं दृष्ट्वा कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः।
निवर्तिष्यन्ति सन्त्रस्ताः सिंहं क्षुद्रमृगा यथा ॥१०॥

जिस भीमसेन को देख कर दुर्योधन आदि कौरव भयभीत होकर इस तरह भाग निकलेंगे, जैसे सिंह को देखकर क्षुद्र वन-जन्तु भाग जाते हैं ॥१०॥

तं सर्वे संश्रयिष्यामः प्राकारमकुतोभयाः।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं देवराजमिवाऽमराः ॥११॥

जिस तरह इन्द्र का देवता आश्रय लेते हैं, उसी तरह प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, सबके प्राकार (दीवार) भूत, भीमका हम लोग भी निर्भय होकर आश्रय लेंगे ॥११॥

न हि सोऽस्ति पुमाँल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरम् ।
द्रष्टुमत्युग्रकर्माणं विषहेत नरर्षभम् ॥१२॥

मैं तो ऐसा कोई पुरुष संसार में नहीं देखता हूं, जो क्रुद्ध हुए अत्यन्त उग्र कर्म करने वाले, नर श्रेष्ठ भीमसेन को युद्ध में सह सकता हो ॥१२॥

एवमुक्त्वा महाबाहुस्तथा चक्रे धनञ्जयः ।
व्यूह्य तानि बलान्याशु प्रययौ फाल्गुनस्तथा ॥१३॥

महाबाहु अर्जुन ने इतना कहकर वज्र नामक व्यूह बना दिया और अपनी सेनाका झटपट व्यूह बनाकर आगे चल दिया।

सम्प्रयातान्कुरून्दृष्ट्वा पाण्डवानां महाचमूः ।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्पन्दमाना व्यदृश्यत ॥१४॥

कौरवों को आता हुआ देखकर पाण्डवों की विशाल सेना पूर्ण भरी हुई निश्चल लहराती हुई गङ्गा के समान खड़ी हो गई ।

भीमसेनोऽग्रणीस्तेषां धृष्टद्युम्नश्च वीर्यवान् ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥१५॥
विराटश्च ततः पश्चाद्राजाऽथाऽक्षौहिणीवृतः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः ॥१६॥

इस सेनाके अग्रगामी वीर्यवान् सेनापति भीमसेन और धृष्टद्युम्न थे। नकुल, सहदेव, राजा धृष्टकेतु भी इनके साथ थे। राजा विराट, अपने भाई और पुत्रों के साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर इस सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा करने लगे ॥१६॥

चक्ररक्षौ तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युती।
द्रौपदेयाः ससौभद्राः पृष्ठगोपास्तरस्विनः ॥१७॥

भीमसेन के चक्र के रक्षक, महाद्युतिमान् माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव थे और अत्यन्त वेगशील द्रौपदीपुत्र तथा अभिमन्यु, इनके पृष्ठ रक्षक थे ॥१७॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः।
सहितः पृतनाशूरै रथमुख्यैः प्रभद्रकैः ॥१८॥

शूरवीर, रथियों में श्रेष्ठ, प्रभद्रक वीरों के साथ महारथी पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न-इन सबके रक्षक थे ॥१८॥

शिखण्डी तु ततः पश्चादर्जुनेनाऽभिरक्षितः।
यत्तो भीष्मविनाशाय प्रययौ भरतर्षभ ॥१९॥

इनके पीछे शिखण्डी था, जिसकी रक्षा स्वयं अर्जुन कर रहे थे। हे भरतर्षभ! यह बड़ी सावधानी से भीष्म के विनाश के लिए आगे बढ़ा ॥१९॥

पृष्ठतोऽप्यर्जुनस्याऽऽसीद्युयुधानो महाबलः।
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥२०॥
कैकेयो धृष्टकेतुश्च चेकितानश्च वीर्यवान्।

अर्जुन की पीठ पर महाबली युयुधान था और इसके चक्र रक्षक पाञ्चाल वीर युधामन्यु और उत्तमौजा थे। केकयराज, धृष्टकेतु, वीयवान् चेकितान भी इनके ही साथ थे ॥२०॥

भीमसेनो गदां बिभ्रद्वज्रसारमयीं दृढाम् ॥
चरन्वेगेन महता समुद्रमपि शोषयेत् ॥२१॥

एते तिष्ठन्ति सामात्याः प्रेक्षन्तस्ते जनाधिप ।
धृतराष्ट्रस्य दायादा इति बीभत्सुरब्रवीत् ॥२२॥

भीमसेन, वज्रके सार से बनी हुई गदा को धारण किये हुए वेग से आक्रमण करें-तो समुद्र को भी सुखा डालने की सामर्थ्य रखते हैं। हे जनाधिप! ये अपने २ मन्त्रियों के साथ चकित होकर देखते हुए धृतराष्ट्र के पुत्र खड़े हैं-इस प्रकार अर्जुन ने धर्मराज से कहा ॥२१-२२॥

भीमसेनं तदा राजन्दर्शयस्व महाबलम् ।
ब्रुवाणं तु तथा पार्थं सर्वसैन्यानि भारत ॥२३॥
अपूजयंस्तदा वाग्भिरनुकूलाभिराहवे ।

हे राजन्! इस समय सब लोगों को महाबली भीमसेन के दर्शन कराओ। हे भारत! जब अर्जुन ने इस प्रकार कहा, तो तो सारी सेना इस युद्धमें अनुकूल वाणी बोलकर अर्जुन का आदर प्रकट करने लगी ॥२३॥

राजा तु मध्यमानीके कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२४॥
बृहद्भिः कुञ्जरैर्मत्तैश्चलद्भिरचलैरिव ।

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर तो मध्यम सेना के मध्य में बड़े २ विशाल मदोन्मत्त पर्वतों के समान अचल झूमते हुए हाथियों से घिरे हुए खड़े थे ॥२४॥

अक्षौहिण्याऽथ पाञ्चाल्यो यज्ञसेनो महामनाः ।
विराटमन्वयात्पश्चात्पाण्डवार्थं पराक्रमी ॥२५॥

महामनस्वी, पाञ्चालराज, द्रुपद, एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवों की रक्षा के निमित्त, विराट के पीछे २ चल दिए । यह द्रुपदराज बड़े ही पराक्रमी थे ॥२५॥

तेषामादित्यचन्द्राभाः कनकोत्तमभूषणाः ।
नानाचित्रधरा राजन्रथेष्वासन्महाध्वजाः ॥२६॥

हे राजन् ! इनके रथों में सूर्य और चन्द्रमा के सदृश सुवर्ण से भूषित अनेक विचित्र आकार धारण किये हुए रथों में बड़ी बड़ी ध्वजाएँ लगी हुई थीं ॥ २६ ॥

समुत्सार्य ततः पश्चाद्धृष्टद्युम्नो महारथः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षद्युधिष्ठिरम् ॥२७॥

इसके अनन्तर सबको हटा कर महारथी धृष्टद्युम्न अपने भाई और पुत्रों के साथ राजा युधिष्ठिर की रक्षा करने लगे ।२७।

त्वदीयानां परेषां च रथेषु विपुलान्ध्वजान् ।
अभिभूयार्जुनस्यैको रथे तस्थौ महाकपिः ॥२८॥

हे राजन् ! तुम्हारे वीर तथा अपने वीरों के रथों की विपुल २ ध्वजाओं को निस्तेज करके केवल अर्जुन की ध्वजा का महाकपि सबसे अधिक देदीप्यमान हो रहा था ॥ २८ ॥

पदातास्त्वग्रतोऽगच्छन्नसिशक्त्यृष्टिपाणयः।
अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रक्षिणः ॥२९॥

खड्ग, शक्ति और ऋष्टि आदि शस्त्र हाथ में लेकर आगे २ पैदल चल रहे थे। इनकी कई सहस्र की संख्या थी, जो भीमसेन के रक्षक थे ॥ २९ ॥

वारणा दशसाहस्राः प्रभिन्नकरटामुखाः।
शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाऽचलाः ॥३०॥

दश हजार हाथी थे, जिनके कपोलों से मद टपक रहा था। शूरवीर भी सुवर्ण के आभूषणों से देदीप्यमान हुए पर्वतों के समान अचल खड़े थे ॥ ३० ॥

क्षरन्त इव जीमूता महार्हाः पद्मगन्धिनः।
राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूता इव वार्षिकाः ॥३१॥

ये हाथी बड़े मूल्य के थे, जो मेघ की तरह अपने मद की वर्षा कर रहे थे। इनके मद में पद्म के समान गन्ध निकल रहा था। वर्षाकाल में चढ़ने वाले मेघों के समान ये हाथी राजा के पीछे २ चल रहे थे ॥ ३१ ॥

भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन्परिघोपमाम्।
प्रचकर्ष महासैन्यं दुराधर्षो महामनाः ॥३२॥

परिघ (घन) के समान विशाल गदा को घुमाते हुए भीमसेन चल रहे थे। यह महा-मनस्वी, दुराधर्ष, भीमसेन, बड़ी विशाल सेना का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ३२ ॥

तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तमिव वाहिनीम् ।
न शेकुः सर्वयोधास्ते प्रतिवीक्षितुमन्तिके ॥३३॥

शत्रु की सेना को तपाते हुए, सूर्य के समान दुष्प्रेक्षणीय भीम को शत्रुओं के सारे योद्धा समीप से देखने में भी समर्थ नहीं हो पाते थे ॥ ३३ ॥

वज्रो नामैष स व्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः ।
चापविद्युद्ध्वजो घोरो गुप्तो गाण्डीवधन्वना ॥३४॥

पाण्डवों की सेना का जो व्यूह बना था, उसका नाम "वज्र" था। यह बड़ा निर्भय करने वाला, सब ओर घूमता था। धनुष तथा बिजली के समान ध्वजाओं से यह व्यूह और भी घोर हो रहा था। गाण्डीवधारी अर्जुन इसके रक्षक थे ॥ ३४ ॥

यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः ॥३५॥

हे राजन्! तुम्हारे पुत्र की सेना के प्रतिद्वन्द्व (मुकाबिले) पर यह वज्र नामक व्यूह बनाया गया। इसको बना कर पाण्डव निश्चित होकर स्थित हुए। संसार में पाण्डवों से अभिरक्षित यह व्यूह बड़ा ही अजेय था ॥ ३५ ॥

सन्ध्यां तिष्ठत्सु सैन्येषु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
प्रावात्सपृषतो वायुर्निरभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥३६॥

जब सूर्य उदय हो गया, तो सारी सेना ने संध्या की। इस समय बिन्दु वर्षा के साथ वायु चलने लगा और बिना बादल मेघ गर्जना होने लगी ॥ ३६ ॥

विष्वग्वाताश्च विवधुर्नीचैः शर्करकर्षिणः।
रजश्चोद्धूयत महत्तम आच्छादयज्जगत् ॥३७॥

चारों ओर से मिट्टी, धूल, कंकर लेकर नीचा २ वायु चल पड़ा। मिट्टी के छा जाने से अन्धेरेने सारे जगत् को ढक लिया।

पपात महती चोल्का प्राङ्मुखी भरतर्षभ।
उद्यन्तं सूर्यमाहत्य व्यशीर्यत महास्वना ॥३८॥

हे भरतर्षभ! पूर्व की ओर एक विशाल उल्कापात हुआ, जो सूर्य के उदय होते ही बड़ा शब्द करके विलीन हो गया॥ ३८ ॥

अथ संनह्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ।
निष्प्रभोऽभ्युद्ययौ सूर्यः सघोषं भूश्चचाल च ॥३६॥

हे भरतर्षभ! सारी सेना अच्छी तरह सन्नद्ध (तय्यार) हो गई। इस समय सूर्य निस्तेज होकर उदय हुआ और शब्द करके भूमि कांपने लगी ॥ ३६ ॥

व्यशीर्यत सनादा च भूस्तदा भरतर्षभ।
निर्घाता बहवो राजन्दिक्षु सर्वासु चाऽभवन् ॥४०॥

हे भरतर्षभ! बड़ा भारी शब्द करके अनेक स्थानों से पृथिवी फट गई। हे राजन्! अनेक दिशाओं में बड़ी कड़क के साथ बिजली के अनेक पतन हुए॥ ४० ॥

प्रादुरासीद्रजस्तीव्रं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
ध्वजानां धूयमानानां सहसा मातरिश्वना ॥४१॥
किङ्किणीजालबद्धानां काञ्चनस्रग्वराम्बरैः ।
महतां सपताकानामादित्यसमतेजसाम् ॥४२॥
सर्वं झणझणीभूतमासीत्तालवनेष्विव ।

इस समय बड़ा तीव्र रज का अन्धकार खड़ा हो गया, जिससे कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। वायु से ध्वजाओं में सुवर्ण के तन्तुओं से वस्त्रों में गुथे हुए सुवर्ण की किङ्किणियों के जाल से तथा आदित्य के समान चमकते हुए बड़ी २ पताकाओं में अचानक सब ओर से "झण झण" शब्द का प्रादुर्भाव हुआ, जैसे कोई ताल में झण झणाहट खड़ी हो गई हो ॥ ४१-४२ ॥

एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा युद्धनन्दिनः ॥४३॥
व्यवस्थिताः प्रतिव्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।

इस तरह युद्ध का स्वागत करने वाले वे पुरुषव्याघ्र पाण्डव तेरे पुत्र की सेना के व्यूह के सामने व्यूह बना कर डट कर खड़े हो गए ॥ ४३ ॥

ग्रसन्त इव मज्जानो योधानां भरतर्षभ ॥४४॥
दृष्ट्वाऽग्रतो भीमसेनं गदापाणिमवस्थितम् ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि पाण्डवसैन्यव्यूहे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

हे भरतर्षभ ! गदा हाथ में लिए भीमसेन को आगे स्थित देखकर पाण्डव हमारे योद्धाओं की मज्जाओं को खा जाते हुए से प्रतीत होते थे ॥ ४४-४५ ॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में पाण्डवों की सेना के व्यूह रचने का उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



बीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

सूर्योदये सञ्जय के नु पूर्वं युयुत्सवो हृष्यमाणा इवाऽऽसन् ।
मामका वा भीष्मनेत्राः समीपे पाण्डवा वा भीमनेत्रास्तदानीम्

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! सूर्य के उदय होने पर भीष्म के नेतृत्व में चलने वाली हमारी सेना या भीम के नेतृत्व में चलने वाली पाण्डवों की सेना में प्रसन्नतापूर्वक युद्ध की इच्छा से कौन सी सेना प्रथम आगे बढ़ी ॥१॥

केषां जघन्यौ सोमसूर्यौ सवायू केषां सेनां श्वापदाश्चाऽभषन्त ।
केषां यूनां मुखवर्णाः प्रसन्नाः सर्वं मे त्वं ब्रूहि मेवं यथावत्

किस सेना के लिए चन्द्रमा, सूर्य और वायु, अरिष्ट-जनक लक्षण करने वाले हुए तथा किस सेना के निमित्त बनैले जन्तु अशुभ सूचक शब्द करने लगे । किन योद्धाओं के मुख का वर्ण प्रसन्न था । हे सञ्जय ! तुम सब कुछ वृत्तान्त मुझे स्पष्ट रूप से कहो ।

सञ्जय उवाच—

उभे सेने तुल्यमिवोपयाते उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र।
उभे चित्रे वनराजिप्रकाशे तथैवोभे नागरथाश्वपूर्णे ॥३॥

सञ्जय ने कहा-हे नरेन्द्र! सूर्योदय होते ही दोनों सेनाएँ एक साथ आगे बढ़ीं। दोनों के व्यूह बने हुए थे, इससे दोनों ही प्रसन्न-चित्त दिखाई देती थीं। दोनों सेना वन की पंक्ति की तरह विचित्र थीं और दोनों ही हाथी, रथ और अश्वों से भरी थीं ॥३॥

उभे सेने बृहत्यौ भीमरूपे तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये।
तथैवोभे स्वर्गजयाय सृष्टे तथैवोभे सत्पुरुषोपजुष्टे ॥४॥

हे भारत! दोनों ही सेना, विशाल और भयङ्कर दिखती थीं तथा दोनों ही सेना असह्य थीं। दोनों सेना स्वर्ग तक जीतने में समर्थ थीं और दोनों ही महावीर पुरुषों से समन्वित थीं ॥४॥

पश्चान्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः
स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः।
दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां
देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् ॥५॥

पश्चिम की ओर मुख किए हुए धृतराष्ट्र-पुत्र कौरव लड़ने को खड़े हुए और पूर्व को मुख करके पाण्डव स्थित थे। कौरवों की सेना दैत्यों के समान और पाण्डवों की सेना देवसेना के सदृश प्रतीत होती थी ॥५॥

चक्रे वायुः पृष्ठतः पाण्डवानां धार्त्तराष्ट्राञ्श्वापदा व्याहरन्त
गजेन्द्राणां मदगन्धांश्च तीव्रान्न सेहिरे तव पुत्रस्य नागाः

पाण्डवों के पीछे से वायु चल कर उनको अनुकूल चला रही थी और कौरवों की सेना की ओर बनैले जन्तु बुरी तरह शब्द कर रहे थे। पाण्डवों के मदोन्मत्त हाथियों के मद की तीव्र गन्ध को तेरे पुत्रों के हाथी सह नहीं सके ॥६॥

दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं सुवर्णकक्षं जालवन्तं प्रभिन्नम्।
समास्थितो मध्यगतः कुरूणां संस्तूयमानो बन्दिभिर्मागधैश्च॥

कमल के समान वर्ण वाले, सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित, जालीदार हौदे से युक्त मदस्रावी हाथी पर राजा दुर्योधन कौरवों की सेना के मध्य में बैठा था। इस समय इसकी अनेक मागध और वन्दी स्तुति कर रहे थे ॥७॥

चन्द्रप्रभं श्वेतमथाऽऽतपत्रं सौवर्णस्रग्भ्राजति चोत्तमाङ्गे।
तं सर्वतः शकुनिःपार्वतीयैःसार्द्धं गान्धारैर्याति गान्धारराजः

राजा दुर्योधन के मस्तक पर चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र सुशोभित हो रहा था और गले में सुवर्णकी मालाएँ पड़ी थी। राजा दुर्योधन को पर्वतीय गान्धार सेना के साथ गान्धारराज शकुनि, घेरे हुए था ॥८॥

भीष्मोऽग्रतः सर्वसैन्यस्य वृद्धः श्वेतच्छत्रः श्वेतधनुः सखड्गः
श्वेतोष्णीषः पाण्डुरेण ध्वजेन श्वेतैरश्वैः श्वेतशैलप्रकाशैः

सारी सेना के अग्रभाग में कुरुवृद्ध भीष्म चल रहे थे, जिन्होंने श्वेत छत्र, श्वेत धनुष और खड्ग धारण कर रखा था। इन्होंने श्वेत पगड़ी बांध रखी थी और ये श्वेत ध्वजा और श्वेत पर्वत के समान अश्वों से सुशोभित थे ॥९॥

तस्य सैन्ये धार्त्तराष्ट्राश्च सर्वे वाह्लीकानामेकदेशः शलश्च।
येचाऽम्बष्ठाःक्षत्रियायेचसिन्धोस्तथासौवीराःपञ्चनदाश्चशूराः

भीष्म की सेना की टुकड़ी में सारे धृतराष्ट्र-पुत्र वाल्हीकों की सेना का एक भाग, शल, अम्बष्ठ क्षत्रिय सिन्धु सौवीर और पञ्चनद के शूरवीर सम्मिलित थे ॥१०॥

शोणैर्हयै रुक्मरथो महात्मा द्रोणो धनुष्पाणिरदीनसत्वः।
आस्ते गुरुः प्रायशः सर्वराज्ञां पश्चाच्च भूमीन्द्र इवाऽभियाति

सुवर्ण के बने हुए रथ में लाल अश्व जुते हुए थे। उस पर अत्यन्त तेजस्वी धनुष धारी महात्मा द्रोण स्थित थे। ये सारे राजाओं के पीछे २ पृथिवी के इन्द्र के समान सब की रक्षा करते हुए चल रहे थे ॥११॥

वार्धक्षत्रिः सर्वसैन्यस्य मध्ये भूरिश्रवाः पुरुमित्रो जयश्च।
शाल्वामत्स्याः केकयाश्चेतिसर्वेगजानीकैर्भ्रातरोयोत्स्यमानाः

सारी सेना के मध्य में वृद्धक्षत्र का पुत्र जयद्रथ, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, शाल्व और मत्स्य देश के क्षत्रिय तथा केकय देश के सारे राजकुमार हाथियों की सेना लेकर युद्ध के लिए आगे बढ़े॥ १२॥

शारद्वतश्चोत्तरधूर्महात्मा महेष्वासो गौतमश्चित्रयोधी।
शकैः किरातैर्यवनैः पल्हवैश्च सार्धं चमूमुत्तरतोऽभियाति॥

शरद्वान-पुत्र गौतम गोत्रोत्पन्न, कृपाचार्य, महावीर और महा-धनुर्धर हैं। ये बड़ी विचित्रता से युद्ध करने वाले थे और इनका

बड़ी ही उत्कृष्ट रथ था। शक, किरात यवन, पल्हव आदि सैनिकों के साथ कृपाचार्य कौरव सेना के उत्तर भाग से आगे की ओर बढ़ रहे थे ॥१३॥

महारथैर्वृष्णिभोजैः सुगुप्तं सुराष्ट्रकैर्विहितैरात्तशस्त्रैः।
बृहद्बलं कृतवर्माभिगुप्तं बलं त्वदीयं दक्षिणेनाऽभियाति

महारथी वृष्णिभोज और शस्त्रधारी सुराष्ट्र देश के वीरों से सुरक्षित कृतवर्मा के नेतृत्व में एक विशाल सेना चल रही थी, जो तुम्हारी सेना को दक्षिण की ओर से रक्षा करती हुई जा रही थी ॥ १४ ॥

संशप्तकानामयुतं रथानां मृत्युर्जयो वाऽर्जुनस्येति सृष्टः।
येनाऽर्जुनस्तेन राजन्कृतास्त्राः प्रयातारस्ते त्रिगर्ताश्चशूराः

हे राजन्! संशप्तकों के दश हजार त्रिगर्त वीर, जहां अर्जुन थे, वहीं पहुंचे। ये यही कहते जाते थे, कि हम या तो अर्जुन को मार लेंगे या अर्जुन हम लोगों को मार लेगा। ये सारे वीर अस्त्र विद्या में बड़े कुशल थे ॥ १५ ॥

साग्रं शतसहस्रं तु नागानां तव भारत।
नागे नागे रथशतं शतमश्वा रथे रथे ॥१६॥

हे भारत! तुम्हारी सेना में एक लाख उत्कृष्ट हाथी हैं। एक २ हाथी के साथ सौ २ रथ और प्रत्येक रथ के साथ सौ २ अश्व थे।

अश्वेऽश्वे दश धानुष्का धानुष्के शतचर्मिणः।
एवं व्यूढान्यनीकानि भीष्मेण तव भारत ॥१७॥

एक २ अश्व के साथ दश २ धनुषधारी थे और एक एक धनुषधारी के साथ सौ २ ढाल तलवार धारण करने वाले थे। हे भारत! इस भाँति तुम्हारी सेना भीष्म द्वारा सुरक्षित थी ॥१७॥

संव्यूह्य मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवोऽग्रणी ॥१८॥
महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान् ।
भीष्मेण धार्त्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि ॥१९॥

शान्तनु-पुत्र सेनापति भीष्म ने कभी मानुष, कभी दैव, कभी गान्धर्व और किसी दिन आसुर व्यूह बनाए। धृतराष्ट्र-पुत्रों के निमित्त जो भीष्म ने व्यूह रचा, उसमें महारथियों का विपुल समूह था। यह व्यूह समुद्र के समान घोष कर रहा था, जिसका मुख पश्चिम की ओर था॥ १८-१९ ॥

अनन्तरूपा ध्वजिनी नरेन्द्र भीमात्वदीयानतुपाण्डवानाम्
तां चैव मन्ये बृहतीं दुष्प्रधर्षां यस्या नेता केशवश्चाऽर्जुनश्च

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां० भीष्मपर्वणि
भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने विंशोऽध्यायः ॥२०॥

हे नरेन्द्र ! तुम्हारी सेना की संख्या बहुत अधिक है, जिससे वह भीषण दिखाई देती है, पाण्डवों की सेना की यह दशा नहीं है। इस पर भी मैं पाण्डव सेना को बहुत दुष्प्रधर्ष मानता हूँ, क्योंकि उसके नेता अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगद्गीतापर्व में सैन्यवर्णन
का बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

इक्कीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

बृहतीं धार्त्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम् ।
विषादमगमद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रों की युद्ध को सन्नद्ध विशाल सेना को देख कर कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर बड़े विषाद को प्राप्त हुए ॥ १ ॥

व्यूहं भीष्मेण चाऽभेद्यं कल्पितं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अभेद्यमिव सम्प्रेक्ष्य विवर्णोऽर्जुनमब्रवीत् ॥२॥

पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर, भीष्म द्वारा बनाया हुआ अभेद्य सेना का व्यूह देखकर और उसे सचमुच अभेद्य जान कर बड़े क्लेशित हुए और अर्जुन से कहने लगे ॥ २ ॥

धनञ्जय कथं शक्यमस्माभिर्योद्धुमाहवे ।
धार्त्तराष्ट्रैर्महाबाहो येषां योद्धा पितामहः ॥३॥

हे महाबाहो ! अर्जुन ! हम लोग युद्ध में धृतराष्ट्र-पुत्रों के साथ कैसे युद्ध कर सकते हैं, क्योंकि इनका सेनापति महावीर भीष्म पितामह है ॥ ३ ॥

अक्षोभ्योऽयमभेद्यश्च भीष्मेणाऽमित्रकर्षिणा ।
कल्पितः शास्त्रदृष्टेन विधिना भूरिवर्चसा ॥४॥

शत्रुविजयी भीष्म ने अत्यन्त तेज से युक्त शास्त्र-विधि के अनुसार किसी प्रकार विचलित नहीं होने वाला अभेद्य सेना व्यूह बनाया है ॥ ४ ॥

ते वयं संशयं प्राप्ताः ससैन्याः शत्रुकर्षण ।
कथमस्मान्महाव्यूहादुत्थानं नो भविष्यति ॥५॥

हे शत्रुकर्षण ! इस समय हम सेना के साथ बड़े संशय में पड़ गये हैं। अब इस महा-व्यूह से हमारा कैसे उद्धार होगा ॥५॥

अथाऽर्जुनोऽब्रवीत्पार्थं युधिष्ठिरममित्रहा ।
विषण्णमिव सम्प्रेक्ष्य तव राजन्ननीकिनीम् ॥६॥

हे राजन् ! शत्रुनाशक अर्जुन, दुःखी हुए कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर और तुम्हारी सेना को देखकर कहने लगे ॥ ६ ॥

प्रज्ञयाऽभ्यधिकाञ्शूरान्गुणयुक्तान्बहूनपि ।
जयन्त्यल्पतरा येन तन्निबोध विशाम्पते ॥७॥

हे विशाम्पते ! बुद्धि में अधिक, गुणवान, बहुत से शूरवीरों को भी थोड़ी सी सेना जिस तरह जीत लेती है, तुम उस ढङ्ग को सुनो ॥७॥

तत्र ते कारणं राजन्प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
नारदस्तमृषिर्वेद भीष्मद्रोणौ च पाण्डव ॥८॥

हे राजन् ! आप सर्वगुणसम्पन्न किसी की भी निन्दा नहीं करने वाले हो। मैं आपको उस विधि को बतलाता हूँ। हे पाण्डव ! इस विधि को महर्षि नारद या भीष्म और द्रोणाचार्य जानते हैं।

एनमेवाऽर्थमाश्रित्य युद्धे देवासुरेऽब्रवीत् ।
पितामहः किल पुरा महेन्द्रादीन्दिवौकसः ॥९॥

जब पूर्वकाल में देवासुर संग्राम का आरम्भ हुआ, तो यही परिस्थिति उनके सन्मुख थी। उस समय भीष्म पितामह ब्रह्मा ने महेन्द्रादि देवों को इस बात का उपदेश दिया था ॥ ९ ॥

न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः ।
यथा सत्यनृशंस्याभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च ॥१०॥

हे देवो ! विजयाभिलाषी वीर, बलवीर्य से इतनी उत्तम विजय नहीं प्राप्त कर सकते हैं, जितनी सत्य, उदारता, धर्म और उद्यम से प्राप्त कर सकते हैं ॥ १० ॥

ज्ञात्वा धर्ममधर्मं च लोभं चोत्तममास्थिताः ।
युद्धध्यध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः ॥११॥

तुम धर्म और अधर्म का ज्ञान प्राप्त करके उत्तम विजयाभिलाषा के लोभ को धारण करो। फिर अहङ्कार को छोड़ कर युद्ध में प्रवृत्त हो जाओ। जिधर धर्म होगा, उधर ही विजय होगी।

एवं राजन्विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणे जयः ।
यथा तु नारदः प्राह यतः कृष्णस्ततो जयः ॥१२॥

हे राजन् ! तुम यह निश्चय समझलो, कि युद्ध में हमारी विजय होगी। नारद ने पूर्वकाल में ही कह दिया है, कि जिधर को श्रीकृष्ण होंगे-उधर ही विजय है ॥१२॥

गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम्।
तद्यथा विजयश्चाऽस्य सन्नतिश्चाऽपरो गुणः ॥१३॥

विजय तो श्रीकृष्ण की दास हो रही है, जो उन के पीछे २ फिरती है। इनका विजय करना एक गुण है और विजय के अनन्तर नम्र होना इनका दूसरा गुण है ॥१३॥

अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः।
पुरुषः सनातनमयो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥१४॥

श्रीकृष्ण, अनन्त तेज के धारी हैं और शत्रुओं का कितना ही समूह हो-वे व्यथाहीन रहते हैं। ये तो सनातन पुरुष हैं, इससे जिधर श्रीकृष्ण होंगे-उधर ही जय होगी ॥१४॥

पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठोऽकुण्ठसायकः।
सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत्के जयन्त्विति ॥१५॥
कथं कृष्ण जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम्।
तत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥१६॥

पूर्वकाल में शक्तिशाली, भगवान् विष्णुने शक्तिशाली शस्त्र धारण करके देव और असुरों से पूछा-कि तुममें से कौन विजयी होगा, उनमें जिन देवों ने कहा-हे कृष्ण! हम किस प्रकार विजयी हो सकते हैं, यह जिन्होंने पूछा-उन्होंने ही श्रीकृष्ण के कथनानुसार विजय प्राप्त की। उन्हीं कृष्ण के अनुग्रह से इन्द्र आदि देवों ने त्रिलोकी का राज्य प्राप्त किया ॥१५-१६॥

तस्य ते न व्यथां काञ्चिदिह पश्यामि भारत ।
यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुन-संवादे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

हे भारत ! यही कारण है, कि हमको भी इस विषय में कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि देवों के अधिपति भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी विजय की अभिलाषा करते हैं ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगद्गीतापर्व में राजा युधिष्ठिर और अर्जुन के सम्वाद का इक्कीसवां अध्याय पूरा हुआ



बाईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत् ।
प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर ने भीष्म की सेना के विरोध में व्यूह रचने के लिए अपनी सेना को आगे चलने की प्रेरणा की ॥१॥

यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ।
स्वर्गं परममिच्छन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥२॥

पाण्डवों ने भी उपर्युक्त सेना की व्यूह रचना कर ली । ये सारे कुरुवंशश्रेष्ठ, युद्ध द्वारा परम सुख देने वाले स्वर्ग के अभिलाषी हो रहे थे ॥२॥

मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितं सव्यसाचिना ।
धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥३॥

सेनाके मध्य में शिखण्डी की सेना चल रही थी; जिसकी रक्षा अर्जुन कर रहे थे । सेना के अग्रभाग में धृष्टद्युम्न थे, जिसके रक्षक भीमसेन थे ॥३॥

अनीकं दक्षिणं राजन्युयुधानेन पालितम् ।
श्रीमता सात्वताग्र्येण शक्रेणेव धनुष्मता ॥४॥

हे राजन् ! दायीं ओर की सेना की रक्षा यदु-वंश-श्रेष्ठ श्रीमान् युयुधान कर रहे थे, जो धनुर्धारी इन्द्रके समान प्रतीत होते थे ।

महेन्द्रयानप्रतिमं रथं तु सोपस्करं हाटकरत्नचित्रम् ।
युधिष्ठिरः काञ्चनभाण्डयोक्त्रं समास्थितो नागपुरस्य मध्ये

महेन्द्र के रथ के समान, युद्ध सामग्री से सुसज्जित, सुवर्ण और रत्नों से अलंकृत, सुवर्ण के भूषण और रश्मिवाले, रथ पर हाथियों के मध्यमें राजा युधिष्ठिर स्थिर हुए।

समुच्छ्रितं दन्तशलाकमस्य सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति ।
प्रदक्षिणं चैनमुपाचरन्त महर्षयः संस्तुतिभिर्महेन्द्रम् ॥६॥

इस रथ में हाथी दांत की जड़ाई हो रही थी । इस पर लगा हुआ श्वेत-छत्र बड़ा सुशोभित था । दायीं ओर से महेन्द्र तुल्य राजा युधिष्ठिर की महर्षि गण स्तुति कर रहे थे ॥६॥

पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो ब्रह्मर्षिसिद्धाः श्रुतवन्त एनम् ।
जप्यैश्च मन्त्रैश्च महौषधीभिः समन्ततः स्वस्त्ययनं ब्रुवन्तः ॥

ब्रह्मर्षि, सिद्ध, वेद के ज्ञाता, पुरोहित, राजा युधिष्ठिर को शत्रु-वध का आशीर्वाद देने लगे । ये लोग जप, मन्त्र और महौषधियों के साथ स्वस्तिवाचन कर रहे थे ॥७॥

ततः स वस्त्राणि तथैव गाश्च फलानिपुष्पाणितथैवनिष्कान्
कुरूत्तमो ब्राह्मणसान्महात्मा कुर्वन्ययौ शक्र इवाऽमरेशः ॥

देवों के अधिपति इन्द्र के समान कुरुवंश-श्रेष्ठ, महात्मा युधिष्ठिर, वस्त्र, गौ, फल, पुष्प, आभूषण आदि अनेक वस्तु ब्राह्मणों को दान करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥८॥

सहस्रसूर्यः शतकिङ्किणीकः परार्द्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ।
रथोऽर्जुनस्याऽग्निरिवाऽर्चिमाली विभ्राजते श्वेतहयःसुचक्रः

सहस्रों सूर्यों के समान प्रकाश धारी, सैंकड़ों सुवर्ण की किङ्किणियों से युक्त परार्ध्य संख्या के मूल्य से युक्त, सुवर्ण से चित्रित, अर्जुन का रथ, लपटों से जाज्वल्मान अग्नि की तरह देदीप्यमान था । इसमें श्वेत अश्व जुते हुए थे और इसके चक्र बड़े ही सुन्दर थे ॥९॥

तमास्थितः केशवसंग्रहीतं कपिध्वजो गाण्डिवबाणपाणिः
धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां न विद्यते नोभविताकदाचित्

श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं, ऐसे रथ पर गाण्डीव धनुष हाथ में लिए हुए कपिध्वज अर्जुन स्थित हुए। इस अर्जुन के सदृश धनुर्धर पृथिवी पर न तो आज तक कोई हुआ और न आगे होने की आशा है। ॥१०॥

उद्वर्त्तयिष्यंस्तव पुत्र सेनामतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम्।
अनायुधो यः सुभुजो भुजाभ्यां नराश्वनागान्युधि भस्मकुर्यात्
स भीमसेनः सहितो यमाभ्यां वृकोदरो वीररथस्य गोप्ता।

हे राजन्! तेरे पुत्रों की सेना को आलोडन करने के अभिलाषी, भीमसेन ने अतीव उग्र रूप धारण कर रखा था। यह सुन्दर भुजा वाला भीम, बिना शस्त्र धारण किये ही अपनी भुजाओं से नर, अश्व, हाथियों को युद्ध में भस्म करने की शक्ति रखता था। यही वृकोदर भीमसेन अपने भाई नकुल सहदेव के साथ वीरों के रथों की रक्षा कर रहा था ॥११॥

तं तत्र सिंहर्षभमत्तखेलं लोके महेन्द्रप्रतिमानकल्पम् ॥१२॥
समीक्ष्य सेनाग्रगतं दुरासदं संविव्यथुः पङ्कगतायथाद्विपाः
वृकोदरं वारणराजदर्पं योधास्त्वदीया भयविग्रसत्वाः॥१३॥

महाबली सिंह के समान क्रीड़ा करते हुए पृथिवी पर महेन्द्र के समान आकार धारी, मदोमन्त्त हाथीके तुल्य घमण्डी, सेना के अग्रगामी, दुरासद वृकोदर भीमसेन को देख कर कीचड़ में फँसे

हुए हाथियों के सदृश तुम्हारे योद्धा, भय से उद्विग्न होकर बड़े चिन्तित हुए ॥१२-१३॥

अनीकमध्ये तिष्ठन्तं राजपुत्रं दुरासदम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं गुडाकेशं जनार्दनः ॥१४॥

सेना के मध्य में स्थित दुर्धर्ष, राजपुत्र, भरत-श्रेष्ठ, गुडाकेश अर्जुन से जनार्दन श्रीकृष्ण कहने लगे ॥१४॥

वासुदेव उवाच—

य एष रोषात्प्रतपन्बलस्थो यो नः सेनां सिंह इवेक्षते च ।
स एष भीष्मः कुरुवंशकेतुर्येनाऽऽहतास्त्रिशतं वाजिमेधाः ॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! रोष में भरा हुआ, महाबली भीष्म, हमारी सेना को भस्म सा करता हुआ सिंह के सदृश देख रहा है। ये वे ही कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म हैं, जिन्होंने तीस अश्वमेध यज्ञ किए हैं ॥१५॥

एतान्यनीकानि महानुभावं गूहन्ति मेघा इव रश्मिमन्तम् ।
एतानि हत्वा पुरुषप्रवीर कांक्षस्व युद्धं भरतर्षभेण ॥१६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

मेघ जैसे किरण धारी सूर्य को छुपा लेते हैं, ऐसे ही सारी सेना इस महाभाग भीष्म की रक्षा कर रही है। हे पुरुष प्रवीर !

अब तुम इस सेना का नाश कर के इस भरतवंश के वीर भीष्म से युद्ध करने की चेष्टा करो ॥१६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में श्रीकृष्ण अर्जुन सम्वाद का बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ

तेईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

धार्त्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ।
अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! तुम्हारे पुत्रों की युद्ध के लिए उपस्थित सेना को देखकर अर्जुन के हित की प्रेरणा से श्रीकृष्ण उनसे यह वचन बोले-॥११॥

श्रीभगवानुवाच—

शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥२॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे महाबाहो ! अब तुम पवित्र होकर संग्राम की ओर मुख करके शत्रुओं के पराजय के लिए दुर्गा के स्तोत्र का उच्चारण करो ॥२॥

सञ्जय उवाच —

एवमुक्तोऽर्जुनः सङ्ख्ये वासुदेवेन धीमता ।
अवतीर्य रथात्पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब युद्ध में बुद्धिमान् वासुदेव पुत्र श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा-तो कुन्ती-पुत्र अर्जुन रथ से उतर कर और हाथ जोड़ कर दुर्गा के स्तोत्र का पाठ करने लगा ॥३॥

अर्जुन उवाच—

नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि ।
कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ॥४॥

अर्जुन ने कहा-हे मन्दराचल पर वास करने वाली ! आर्ये ! सेना के नेतृत्व करने में सिद्धहस्त, कुमारी, काली, कपाली, कपिले, कृष्णपिङ्गले, तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥

भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥५॥

हे भद्रकाली ! महाकाली, तुमको मैं नमस्कार करता हूँ । हे— बर वर्णिनि ! तिरा देने वाली, चण्डि, चण्डिके ! तुमको नमस्कार है

कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥६॥

अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि ।
गोपेन्द्रस्याऽनुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥७॥

महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥८॥

हे कात्यायनि ! महाभागे, करालि, विजये, जये, मयूर की पांखों की ध्वजा के धारण करने वाली, अनेक आभूषणों से विभूषित, अत्यन्त तीव्र शूल धारण करने वाली, ढाल तलवार धारिणी, श्रीकृष्ण की छोटी भगिनी ! नन्दगोपकुल में उत्पन्न, सर्वश्रेष्ठ, महिषासुर के रक्त के पान करने वाली, कुशिक कुलोत्पन्न पीत वस्त्र धारिणी, वेग से हँसने वाली, चक्रवाक् पक्षी के समान मुखवाली, रणप्रिये, देवि, तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥

उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥९॥

हे उमे ! शाकम्भरि ! श्वेत, कृष्ण, कैटभासुर नाशिनी, सुवर्ण के समान उज्ज्वल पीत नेत्र धारिणी, त्रिनेत्र वाली, धूम्राक्षी तुमको नमस्कार है ॥ ९ ॥

वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये ॥१०॥

हे वेद और श्रुति से पूज्य, महा पुण्यवाली, ब्राह्मण रक्षक, अग्नि स्वरूप, जम्बूद्वीप, सेना और चैत्यों में निवास करने वाली तुमको प्रणाम है ॥ १० ॥

त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।
स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥११॥

तुम विद्याओं में ब्रह्म विद्या, प्राणियों में महा निद्रा के रूप में स्थित हो। स्कन्द की माता, भगवती, दुर्गे! कान्तार में निवास करने वाली, तुमको मैं वन्दना करता हूँ॥ ११॥

स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती।
सावित्री वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते॥१२॥

हे माताः! तुम ही स्वाहा और स्वधाकार हो। तुम सूक्ष्म से सूक्ष्म काल रूप सरस्वती हो। वेद माता सावित्री तुम ही हो और तुम ही वेद का अन्तिम अर्थ हो॥ १२॥

स्तुताऽसि त्वं महादेवि विशुद्धेनाऽन्तरात्मना।
जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद्रणाजिरे॥१३॥

हे महादेवि! मैं अपनी विशुद्ध अन्तरात्मा से तुम्हारी स्तुति करता हूँ। हे देवि! तेरी कृपा से रणभूमि में मुझे नित्य जय प्राप्त होती रहे॥ १३॥

कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चाऽऽलयेषु च।
नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान्॥१४॥

वन में भय के स्थानों में तुम ही रक्षा करने वाली हो। तुम भक्तों के हृदय में निवास करने वाली हो। तुम नित्य पाताल में निवास करने वाली हो और नित्य दानवों का विजय करती हो॥१४॥

त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च।
सन्ध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा॥१५॥

तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी ।
भूतिर्भूतिमतां सङ्ख्ये वीक्ष्यसे सिद्धचारणैः ॥१६॥

तुम ही जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री (लज्जा) श्री, संध्या, प्रभावती, सावित्री, जननी, तुष्टि, पुष्टि, धृति, दीप्ति, चन्द्र और सूर्य के प्रदीप्त करने वाली हो। युद्ध में ऐश्वर्य शालियों को ऐश्वर्य देने वाली तुम ही हो। यह बात सिद्ध और चारण देवता देख पाते हैं ॥ १५-१६ ॥

सञ्जय उवाच—

ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला ।
अन्तरिक्षगतोवाच गोविन्दस्याऽग्रतः स्थिता ॥१७॥

सञ्जय बोले-हे राजन् ! इस प्रकार कुन्ती-पुत्र अर्जुन की भक्ति देखकर भक्त-वत्सला देवी आप आकाश में जाकर श्रीकृष्ण के आगे स्थित हुई ॥ १७ ॥

देव्युवाच—

स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रूञ्जेष्यसि पाण्डव ।
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान् ॥१८॥

देवी बोली—हे पाण्डव ! तुम थोड़े ही समय में अपने शत्रुओं को जीत लोगे। हे दुर्धर्ष ! तुम नर के अवतार हो और तुम्हारे सहायक नारायण हैं ॥ १८ ॥

अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम् ।
इत्येवमुक्त्वा वरदा क्षणेनाऽन्तरधीयत ॥१९॥

महाभारत चित्र संख्या ७१



भीम पुत्र घटोत्कच का राक्षस राज अलम्बुक पर भीषण प्रहार
महा० भीष्म पर्व अ० ४५। ४२ पृ० ४०३

तुम रण में शत्रुओं से अजेय हो, चाहे वह इन्द्र ही शत्रु क्यों न हो। वह वर देने वाली देवी इतना कह कर ही क्षण भर में अलक्षित हो गई ॥ १९ ॥

लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः ।
आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसम्मतम् ॥२०॥
कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।

इस वर को प्राप्त करके अर्जुन ने अपनी विजय निश्चित समझ ली। इसके अनन्तर परम सुन्दर रथ पर कुन्ती-पुत्र अर्जुन चढ़ गए और एक रथ पर बैठ कर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने दिव्य शंख बजाए॥ २० ॥

य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥२१॥
यक्षरक्षःपिशाचेभ्यो न भयं विद्यते सदा ।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठ कर इस स्तोत्र का पाठ करता है, तो उसको यक्ष, राक्षस और पिशाच किसी का भय नहीं रहता है।

नऽचापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ॥२२॥
न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि ।

उसके कोई शत्रु शेष नहीं रहते हैं, सर्प आदि दाँत वाले विषैले जीवों का भी उसको भय नहीं रहता हैं। इसी तरह उसको राजकुल से भी भय नहीं रह जाता है॥ २२ ॥

विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्यति बन्धनात् ॥२३॥
दुर्गं तरति चाऽवश्यं तथा चोरैर्विमुच्यते ।

संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ॥२४॥

आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं तथा ।

जब कोई विवाद (मुकदमा) आकर पड़ता है, तो उसमें भी विजय होती है। बद्ध (कैदी) बन्धन से मुक्त हो जाता है, जो मनुष्य देवी का ध्यान धरता है, वह आपत्ति से तर जाता है और उसको चोरों का भी भय नहीं रह जाता है। वह संग्राम में नित्य विजयी होता है और उत्तम लक्ष्मी को पाता है। भगवती का भक्त आरोग्य बल से सम्पन्न होकर सौ वर्ष तक जीता है ॥२३-२४॥

एतद् दृष्टं प्रसादात्तु मया व्यासस्य धीमतः ॥२५॥

मोहादेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ।

हे राजन्! मैंने बुद्धिमान् वेदव्यास की कृपा से यह सब कुछ ज्ञात किया है। लोग अपने अज्ञान से यह नहीं जान पाते हैं, कि ये नर नारायण नामक ऋषि हैं ॥२५॥

तव पुत्रा दुरात्मानः सर्वे मन्युवशानुगाः ॥२६॥

प्राप्तकालमिदं वाक्यं कालपाशेन गुण्ठिताः ।

तेरे पुत्र दुर्मति और क्रोध में भरे हुए हैं। ये काल की पाश से बद्ध हैं, इससे समय के ऊपर इन वचनों पर ध्यान नहीं देंगे ॥२६॥

द्वैपायनो नारदश्च कण्वो रामस्तथाऽनघः ।

अवारयंस्तव सुतं न चाऽसौ तद्गृहीतवान् ॥२७॥

कृष्णद्वैपायन व्यास, महर्षि नारद, कण्व, अघरहित परशुराम ने तुम्हारे पुत्र को रोका-परन्तु उसने नहीं माना और उनके वचन ग्रहण नहीं किए ॥२७॥

यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः ।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि दुर्गास्तोत्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

जहां धर्म है, वहीं द्युति, कान्ति, ह्री, श्री और मति है। जिधर धर्म होगा-उधर श्रीकृष्ण हैं और जिधर श्रीकृष्ण हैं, उधर ही विजय है ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में दुर्गा स्तोत्र का तेईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



चौबीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

केषां प्रहृष्टास्तत्राऽग्रे योधा युध्यन्ति सञ्जय ।
उदग्रमनसः के वा के वा दीना विचेतसः ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! इस युद्ध में किस के योद्धा बड़ी सावधानी से आगे बढ़ कर युद्ध करते हैं। किन योद्धाओं के मन तेज से पूर्ण हैं और किसके दीन और उद्विग्न चित्त वाले योद्धा हो रहे हैं ॥१॥

के पूर्वं प्राहरंस्तत्र युद्धे हृदयकम्पने ।
मामकाः पाण्डवेया वा तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥२॥

इस हृदय को कंपा देने वाले युद्ध में प्रथम किन्होंने प्रहार किया। प्रहार करने वालों में अग्रगामी मेरे पुत्र थे या पाण्डु-पुत्र थे-तुम मुझे यह बात बताओ ॥२॥

कस्य सेनासमुदये गन्धमाल्यसमुद्भवः ।
वाचः प्रदक्षिणाश्चैव योधानामभिगर्जताम् ॥३॥

किसकी सेना के उदय होने पर गन्ध और मालाओं का समुद्भव हुआ तथा गर्जना करते हुए किसके योद्धाओं की अनुकूल वाणी थी ॥३॥

सञ्जय उवाच—

उभयोः सेनयोस्तत्र योधा जहृषिरे तदा ।
स्रजः समाः सुगन्धानामुभयत्र समुद्भवः ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! उस समय दोनों ओर की सेनाओं के योद्धा हर्ष में भर रहे थे। दोनों ओर की सेना में एक साथ पुष्प मालाओं के गन्ध की समुत्पत्ति हुई ॥४॥

संहतानामनीकानां व्यूढानां भरतर्षभ।
संसर्गात्समुदीर्णानां विमर्दः सुमहानभूत् ॥५॥

हे भरतर्षभ! व्यूह बन्धन से युक्त, इकट्ठी हुई उत्कट सेना के संसर्ग से बड़ा भारी घमसान युद्ध का आरम्भ हुआ ॥५॥

वादित्रशब्दस्तुमुलः शङ्खभेरीविमिश्रितः।
शूराणां रणशूराणां गर्जतामितरेतरम् ॥६॥

शंख, भेरी आदि के शब्दों से विमिश्रित, अनेक बाजों का महान् शब्द होने लगा। रण में शूरता दिखाने वाले शूरवीरों का महान् कोलाहल हो रहा था ॥६॥

उभयोः सेनयो राजन्महान्व्यतिकरोऽभवत्।
अन्योन्यं वीक्ष्यमाणानां योधानां भरतर्षभ।
कुञ्जराणां च नदतां सैन्यानां च प्रहृष्यताम् ॥७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रसञ्जयसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

हे राजन्! इस समय दोनों सेनाओं का महान् संघर्ष होने वाला था। हे भरतर्षभ! इस समय एक योद्धा दूसरे योद्धा की

ओर देख रहे थे। हाथी चिंघाड़ भर रहे थे और हर्ष में भरे हुए सैनिक गर्जना कर रहे थे ॥७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में धृतराष्ट्र और सञ्जय के सम्वाद का चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ





श्रीमद्भगवद्गीता

प्रारम्भ

पच्चीसवां अध्याय
श्रीमद्भगवद्गीता
का
प्रथम अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! पुण्य-भूमि कुरुक्षेत्र में युद्धकी इच्छा से इकट्ठे हुए मेरे पुत्र और पाण्डवों ने अब क्या २ चेष्टाएँ की।

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! तुम्हारा पुत्र, राजा दुर्योधन, पाण्डवों की सेना का व्यूह देखकर द्रोणाचार्य के पास पहुंचे और ये वचन बोले॥ २॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

हे आचार्य! तुम तनिक पाण्डुपुत्रों की इस विशाल सेना को देखो, जिसकी व्यूह रचना तुम्हारे बुद्धिमान् शिष्य, द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने की है ॥३॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥५॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

इस सेना में भीम और अर्जुन के समान महाधनुर्धर वीर हैं। युयुधान, विराट, महारथी द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, वीर्यवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज, नरश्रेष्ठ शैब्य, महापराक्रमी युधामन्यु, वीर्यवान् उत्तमौजा, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी-पुत्र, ये सारे ही महारथी हैं ॥४-६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

हे द्विजोत्तम ! हमारी सेना में जो विशिष्ट वीर हैं, तुम उन हमारे सेनापतियों के नाम सुनो । मैं तुम्हारे ध्यान में आ जाने के लिए कहता हूं ॥७॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥८॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

आप, (द्रोणाचार्य) भीष्म, युद्धविजेता कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा, जयद्रथ आदि बहुत से महारथी शूरवीर मेरे लिए जीवन की आशा छोडकर स्थित हैं। ये अनेक

भाँति के शस्त्रों के प्रहार करने में कुशल और सारे ही युद्ध विद्या में विशारद हैं ॥८-९॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

यद्यपि हमारी सेना की भीष्म रक्षा कर रहे हैं-तो भी वह मुझे पर्याप्त (कार्य सिद्धि के लिये यथेष्ट) नहीं मालूम होती है और पाण्डवों को सेना की भीम रक्षा कर रहे हैं, वह मेरी दृष्टि में पर्याप्त दिखाई देती है ॥ १० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाऽभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

अब तुम सब लोग सेना के भिन्न २ प्रवेश द्वारों में अपने २ विभाग के अनुसार स्थित होकर भीष्म की रक्षा करते रहो ॥११॥

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

इसी समय राजा दुर्योधन के हर्ष को बढ़ाते हुए, कुरुवृद्ध प्रतापी भीष्म पितामह ने सिंहनाद करके बड़े उच्च स्वर से शङ्ख बजाया ॥ १२ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाऽभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

इसके अनन्तर बहुत शङ्ख, भेरी, पणव, आनक और गोमुख एक दम बजने लगे, जिनका बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥ १३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

अब श्वेत अश्वों से युक्त विशाल रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दिव्य शंख बजाने लगे ॥ १४ ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य, धनञ्जय अर्जुन ने देवदत्त और भीम कर्म करने वाले वृकोदर भीमसेन ने पौण्ड्र नामक महाशंख को बजाया ॥ १५ ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्त विजय और नकुल तथा सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजाये ॥ १६ ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चाऽपराजितः ॥१७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥१८॥

हे पृथिवीपते! महाधनुर्धर काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, पराजित नहीं होने वाले सात्यकि, द्रुपद, द्रौपदी-पुत्र, महाबाहु सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने अपने अपने भिन्न २ शंख बजाए ॥ १७-१८ ॥

स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

इस महान् कोलाहल ने धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदयों को फाड़ सा दिया । इस महान् शब्द ने आकाश और पृथिवी को शब्दायमान कर दिया ॥ १९ ॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

हे महीपते! कपिध्वज अर्जुन ने युद्ध में सन्मुख धृतराष्ट्र-पुत्रों को स्थित तथा शस्त्र समूह को प्रवृत्त होता हुआ देख कर धनुष उठाया और ऋषिकेश श्रीकृष्ण से यह वाक्य कहा ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच—

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

अर्जुन बोले—हे अच्युत! अब तुम मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में स्थित कर दो। मैं युद्ध की अभिलाषा से स्थित हुए इन राजाओं को अभी देखे लेता हूँ। मुझे तो अब यही देखना है, कि इस रण-भूमि में कौन मेरे साथ लड़ना चाहता है ॥ २१-२२ ॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

जो वीर राजा यहाँ आये हैं और मुझ से युद्ध करना चाहते हैं तथा युद्ध में धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन का प्रिय करना चाहते हैं, मैं उन सबको देखना चाहता हूँ ॥ २३ ॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

सञ्जय ने कहा–हे भारत ! जब गुडाकेश, अर्जुन ने हृषीकेश श्रीकृष्ण से इतना कहा; तो श्रीकृष्ण ने अर्जुन के विशाल रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाकर भीष्म और द्रोण तथा अन्य सारे राजाओं के सन्मुख खड़ा कर दिया और कहा-हे पार्थ ! तुम यहां सारे उपस्थित हुए कौरव वीरों को देख लो ॥२४-२५॥

तत्राऽपश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥२६॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।

दोनों सेनाओं में कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने पितर, पितामह, आचार्य, मातुल, भ्राता, पुत्र, पौत्र, मित्र, श्वशुर और सुहृद् स्थित देखे ।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥२७॥
कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

कुन्ती-पुत्र अर्जुन युद्ध भूमि में अवस्थित, सारे बन्धुओं को देख कर बड़ी करुणा से व्याप्त हुए और दुःखी होकर ये वचन बोले

अर्जुन उवाच—

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

अर्जुन बोले—हे कृष्ण ! युद्ध की अभिलाषा से उपस्थित हुए, अपने परिवार को देख कर मेरे अङ्ग पीड़ित होते हैं और मुख सूखता है। मेरे शरीर में कँप-कँपी उठती है और रोमांञ्च खड़े हो रहे हैं। गाण्डीव धनुष हाथ से खसकता है और त्वचा जल रही है। हे केशव ! मैं तो अब युद्ध में ठहर भी नहीं सकता हूँ, मेरा मन घूमता है और मुझे सारे निमित्त विपरीत दिखाई देते हैं। इस युद्ध में अपने ही कुटुम्बियों का वध करके मैं कोई कल्याण नहीं देखता हूं ॥२८-३१॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

हे कृष्ण ! अब मैं न तो विजय चाहता हूं और न मुझे राज्य तथा सुख की आकांक्षा है । हे गोविन्द ! इस दशा में राज्य, भोग और जीवन से ही क्या लाभ है ॥३२॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

हे भगवन् ! जिन लोगों के कारण राज्य, भोग और सुखों की अभिलाषा की जाती है, वे ही लोग अपने प्राणों का मोह और धन का लोभ छोड़ कर युद्ध में अवस्थित हैं ॥३३॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः स्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ।३४।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते ॥३५॥

आचार्य, पितर, पुत्र, पितामह, मातुल, श्वशुर, पौत्र, स्याला (साले) तथा अन्य सम्बन्धी इस युद्ध में उपस्थित हैं। हे मधुसूदन ! यदि ये लोग मुझे मार भी डालें, तो भी मैं इनको त्रिलोकी के राज्य के लिए भी नहीं मारूंगा, फिर केवल पृथिवी भर के राज्य के लिए, तो मैं इन्हें मार ही कैसे सकता हूं ॥३४-३५॥

निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

हे जनार्दन ! इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर ही हमें क्या आनन्द होगा । यद्यपि ये आततायी हैं, परन्तु हमको तो इनके मारने पर भी पाप ही होगा ॥३६॥

तस्मान्नाऽर्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान्सबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

हे माधव ! इन सब बातों पर विचार करने से यही निश्चय होता है कि बन्धु बान्धवों के सहित धृतराष्ट्र-पुत्रों का वध हमको कदापि नहीं करना चाहिए । हम लोग अपने ही परिवार के जनों को मार कर कैसे सुखी हो सकते हैं ॥३७॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥

यद्यपि ये दुष्ट, लोभसे अज्ञानी हुए कुल-क्षय के दोष और मित्रद्रोह के पातक को नहीं देख रहे हैं, परन्तु क्या इस पापसे निवृत्त होने के लिए हमको भी इन बातों का ध्यान नहीं देना चाहिए ? हे जनार्दन ! हमको तो कुलक्षय के दोष स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं ।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

कुल के क्षय होने पर सनातन कुल धर्मों का लोप हो जाता है और जब कुल धर्म नष्ट हो जाते है, तो फिर उन कुलों को अधर्म आ दबाता है ॥४०॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥४१॥

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥

हे कृष्ण ! अधर्म के आक्रमण से कुल की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं, हे वृष्णिवंश श्रेष्ठ ! जब स्त्रियाँ दुष्ट हो जावेंगी, तो वर्ण संकर सन्तान, कुल धर्म नष्ट होने वाले मनुष्यों के कुल को नरकों में गिराने वाली होगी। जब इस प्रकार पिण्डदान और जलदान की क्रिया लुप्त हो जावेगी, तो उच्च लोकों से पितर पतित होंगे ॥४२॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४३॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

कुल धर्म नष्ट करने वाले पुरुषों के वर्णसंकर कारक इन दोषों से जाति धर्म और सनातन कुलधर्म लुप्त हो जाते हैं। हे जनार्दन ! जिन मनुष्यों के कुलधर्म नष्ट हो गए, उनका नरक में निश्चय ही निवास होता है-यह हम शास्त्रों में सुनते आए हैं ॥४३-४४॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

यह बड़े ही आश्चर्य की बात है, कि हम सब लोग इस महान् पाप के करने को तय्यार हो रहे हैं, जो राज्य और सुख के लोभसे अपने कुटुम्ब के लोगों को ही मारने को उद्यत हो रहे हैं ॥४५॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

हे कृष्ण! यदि मैं इनका कुछ भी प्रतीकार न करूँ और शस्त्र हाथ में लेकर ये लोग मुझ शस्त्रहीन का वध भी कर दें—तो इसमें मेरा कल्याण ही होगा ॥४६॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ पर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्यायः

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! अर्जुन इस प्रकार युद्धभूमि में कह कर धनुष-बाण को छोड़कर रथ में चुपचाप बैठ गया और इसका शोक से मन उद्विग्न हो गया ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में अर्जुन के विषाद का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण हुआ) भगवद्गीतापर्व में अर्जुन के विषाद का पच्चीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

दूसरा अध्याय

सञ्जय उवाच—

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।

विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस प्रकार करुणा से व्याकुल, अश्रुपूर्ण नेत्रों से समन्वित, विषाद करते हुए अर्जुन से श्रीकृष्ण इस प्रकार कहने लगे ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! तुमको इस विषम परिस्थिति में यह विषाद (मोह) कहाँ से उत्पन्न हो गया । यह मोह तो अनार्यों को होता है, जो स्वर्ग नाशक और अकीर्ति का करने वाला है ।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

हे पार्थ ! तुमको इस समय कायरता को ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप नहीं है । हे परन्तप ! तुम तो अपने हृदय की इस क्षुद्र दुर्बलता को त्याग कर खड़े हो जाओ ॥३॥

अर्जुन उवाच—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

अर्जुन ने कहा—हे मधुसूदन! मैं इस युद्ध में भीष्म तथा द्रोणाचार्य से बाणों से कैसे लड़ सकता हूँ। हे अरिसूदन! ये तो दोनों ही पूजा के योग्य हैं ॥४॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके
हत्वाऽर्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्

हे कृष्ण! महानुभाव पूज्य व्यक्तियों के बिना मारे संसार में भिक्षा मांग कर खा लेना भी कल्याणकारी है। यदि धनके लोलुप पूज्य व्यक्तियों को मारकर हम राज्यके भोगों को भोगेंगे, तो भी उन भोगों का भोगना रुधिर में भीगे हुए भोगों का भोगना ही कहलावेगा ॥५॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नोगरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखेधार्त्तराष्ट्राः

अभी तो यही निश्चय नहीं है, कि हम दोनों पक्षों में कौन सा प्रबल पक्ष है। क्या पता है, हम जीते या नहीं भी जीते। जिन धृतराष्ट्र-पुत्रों को मार कर हमें जीना भी नहीं चाहिए-वे ही हमारे बन्धु बान्धव इस युद्ध में सामने खड़े हैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः ।
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः॥

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे ।
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

हे कृष्ण ! मोह या अज्ञान से मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है, जिससे मैं धर्म के जानने में विमूढ़ हो रहा हूँ। इस समय जो मेरे लिये कल्याणकारी हो, वह कहो—मैं तुम्हारा शरणागत शिष्य हूँ, तुम मुझे कर्तव्य की शिक्षा प्रदान करो ॥ ७ ॥

नहि प्रपश्यामि ममाऽपनुद्याद्यच्छो- ।
कमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ॥
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं ।
राज्यं सुराणामपि चाऽऽधिपत्यम् ॥८॥

हे जनार्दन ! शत्रुओं से रहित सारी पृथिवी का विशाल राज्य अथवा देवताओं का आधिपत्य भी मुझे इस समय क्यों न मिल जावे, परन्तु वह मेरी इन्द्रियों के सुखाने वाले इस शोक को दूर कर सके-मुझे ऐसा दिखाई नहीं देता है ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

सञ्जय ने कहा-हे परन्तप ! गुडाकेश अर्जुन, हृषिकेश श्रीकृष्ण से इतना कह कर बोला-हे गोविन्द ! अब मैं नहीं लड़ूँगा। बस ? इतना श्रीकृष्ण से कह कर अर्जुन चुप हो गया ॥ ९ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

हे भारत ! दोनो सेनाओं के मध्य में इस प्रकार कातर हुए अर्जुन से हँसते २ हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्ण यों कहने लगे ।

श्रीभगवानुवाच—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नाऽनुशोचन्ति पण्डिताः ॥११॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! तुम नहीं चिन्ता करने योग्य बातों की चिन्ता करते हो और फिर भी बुद्धिमानी का अभिमान रखते हो । पण्डित लोग, अपने कर्तव्य के निर्वाह करने के समय किसी के मरने या जीने का विचार नहीं किया करते हैं ॥ ११ ॥

न त्वेवाऽहं जातु नाऽऽसं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
नचैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

प्रथम मैं कभी नहीं था या तुम न थे अथवा ये राजा नहीं थे एवं आगे को हम सब लोग, नहीं होंगे-यह बात नहीं है ॥१२॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

इस मनुष्य की देह में जैसे समय समय पर कुमार, यौवन और वृद्ध अवस्था का प्रादुर्भाव होता है, ऐसे ही इसको देहान्तर की प्राप्ति हो जाती है, विद्वान् अपने कर्तव्य के समय इनके मरने से मोहित नहीं होता है ॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

हे कौन्तेय ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि का अनुभव ही शीत उष्ण या सुख दुःख का देने वाला है। ये विषयों का स्पर्श तो आने जाने वाला अनित्य है, तुम इनके सहन करने की शक्ति प्राप्त करो॥ १४॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

हे पुरुषर्षभ ! दुःख सुख में रहने वाले जिस विद्वान् पुरुष को विषयों का संयोग-वियोग हर्षित या पीड़ित नहीं करता, वही अमृत (मोक्ष) के प्राप्त करने के लिये समर्थ होता है॥ १५॥

नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

असत् वस्तु का कभी भाव नहीं होता और सत् का कभी अभाव नहीं होता है अर्थात् जो आत्म तत्व नहीं होता, तो उसकी प्रतीति नहीं होती और जब आत्मतत्व है, तो उसका विनाश नहीं हो सकता है। तत्त्वदर्शी महात्माओं ने इन दोनों पदार्थों का अन्त देख कर यह सिद्धान्त निश्चित किया है॥ १६॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्याऽस्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

जिस परब्रह्म ने इस सारे विश्व को फैलाया है, उसे तुम अविनाशी समझो। इस अविनाशी आत्मतत्व का कोई भी विनाश नहीं कर सकता है ॥ १७ ॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

हे भारत! इस नित्य आत्मा से सम्बन्ध रखने वाले ये शरीर विनाशी हैं, आत्मा अविनाशी और अचिन्त्य है। बस! तुम भी आत्मा को अविनाशी जान कर अपने कर्तव्य कर्म युद्ध करने के लिए तय्यार हो जाओ॥ १८ ॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नाऽयं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

जो मनुष्य आत्मा को मारने या मरने वाला मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते हैं यह आत्मा न तो मरता है और न मारा जाता है ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाऽयं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे

यह आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न मरता है। अब होकर आगे को नहीं होगा-यह बात नहीं है। यह तो अजन्मा, नित्य, सदा स्थायी रहने वाला सनातन तत्व है। शरीर के काट डालने पर भी यह आत्मा नहीं मरता है॥२०॥

वेदाऽविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

हे पार्थ ! इस आत्मा को जो अविनाशी, नित्य अज और अव्यय जानता है, वह पुरुष फिर यह कैसे मान सकता है, कोई किसी को मरवाता है या कोई किसी को मारता है ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानियथाविहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही

हे अर्जुन ! पुराने वस्त्रों को जैसे छोड़ कर मनुष्य नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, इसी प्रकार यह आत्मा पुराने शरीरों को छोड़ कर नवीन शरीर धारण करता रहता है ॥ २२ ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है। न इसको पानी गला सकता है और न इसे वायु सुखा सकता है ॥ २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

यह आत्मा न तो काटने में आता है और न जलाया जा सकता है। न यह भिगोया जाता है और न सुखाया जा सकता है। यह तो नित्य सर्वव्यापी, स्थाणुवत, अचल और सनातन है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नाऽनुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

यह आत्मा, इन्द्रियों को अगोचर, मन से भी जानने के अयोग्य, विकार हीन है। इस प्रकार तुम्हें आत्मा को अविनाशी जानकर इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥२५॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

हे महाबाहो ! जो तुम इस आत्मा को देह के साथ उत्पन्न होता हुआ मानते हो या इसका मरना मानते हो-तो भी तुमको इस समय इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥२६॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२८॥

जो उत्पन्न हुआ है, उसकी निश्चय मृत्यु होती है और जो मर गया है, उसका अवश्य जन्म होगा-इससे तुम्हें आत्मा को उत्पत्ति-मान् नहीं मानना चाहिए। जब इस प्रकार प्राणी का जन्म और मरण का चक्र अवश्यम्भावी है, तो फिर तुमको किस बात की चिन्ता है ॥२७॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

हे भारत ! आदि में ये पञ्चमहाभूत अव्यक्त (अप्रकट) थे। मध्य में व्यक्त (प्रकट) हुए और अन्तमें फिर अव्यक्त (अप्रकट)

हो जावेंगे-फिर इन पञ्चतत्वों के विकार से बने देह के विषय में क्या रोना चिल्लाना है॥२८॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चाऽन्यः।

आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित्

कोई मनुष्य इस आत्मा को चकित होकर देखता है। कोई इसका अचम्भे के साथ वर्णन करता है। कोई इसकी चर्चा अचम्भे के साथ सुनता है· और कोई २ इसके विषय में तत्व बात को सुन कर भी नहीं जान पाता है॥२९॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।

तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

हे भारत! समस्त प्राणियों की देह में आत्मा नित्य और अवध्य है। यही कारण है, कि तुम को किसी भी प्राणी के विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिए॥३०॥

स्वधर्ममपि चाऽवेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

इसके अतिरिक्त तुमको अपना क्षत्रिय धर्म का ध्यान करके इस समय विचलित नहीं होना चाहिए। धर्म युद्ध से अधिक क्षत्रिय के लिए अन्य कोई विषय कल्याणकारी नहीं है॥३१॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

हे पार्थ ! इस समय यह युद्ध क्या है, तुम लोगों को अचानक स्वर्ग का द्वार खुल गया है। हे अर्जुन ! ऐसे धर्म युद्ध का तो क्षत्रिय लोग बड़े हर्ष से स्वागत करते हैं ॥३२॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

यदि तुम इस समय इस युद्ध को न लड़ोगे-तो अपने धर्म और कीर्ति को खोकर पाप को ही प्राप्त करोगे ॥३३॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

हे अर्जुन ! यही नहीं, मनुष्य तेरी अक्षय अकीर्ति का वर्णन किया करेंगे और सम्मानित पुरुष की अकीर्ति होना, मरण से भी अधिक दुःखदायी है ॥३४॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

ये सारे महारथी, इस समय तुम्हें भय से युद्ध छोड़ने वाला समझेंगे। जिन वीरों में तेरा बड़ा आदर होता था, उनमें तुम आदृत होकर भी लघुता को प्राप्त करोगे ॥३५॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाऽहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

हे कौन्तेय ! इस समय तुम्हारे शत्रु तुम्हारी नहीं कहने की बात भी कहेंगे। ये तुम्हारे बल की निन्दा करेंगे। बताओ ? इस से अधिक दुःख की क्या बात होगी ॥३६॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

अब यदि तुम मारे जाओगे-तो स्वर्ग में पहुंचोगे या विजयी हो गए -तो पृथिवी का राज्य भोगोगे । हे कौन्तेय ! यह सब कुछ विचार कर युद्ध का निश्चय करो और खड़े हो जाओ ॥३७॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

सुख-दुःख, लाभालाभ और जय-पराजय को समान मानकर निष्काम भाव से जो युद्ध करोगे-तो इस तरह तुमको कुछ भी पाप नहीं लगेगा ॥३८॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियोंगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

हे पार्थ ! यह मैंने तुमको ज्ञान योग में प्रवृत्त होने वाली बुद्धि बताई; अब तुम कर्म योग में प्रवृत्त होने वाली बुद्धि को सुनो । हे अर्जुन ! इस कर्म योग में प्रवृत्त बुद्धिके द्वारा मनुष्य कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥३९॥

नेहाऽभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

इस कर्म-योग में ज्ञान-योग की भांति आरम्भ किये हुए ज्ञान के अभ्यास का अभाव होने पर ज्ञान के नाश की तरह कर्म का नाश नहीं होता है और न इसमें कोई पाप का स्पर्श होता है, क्योंकि कर्म समबुद्धि से किया जाता है। इस कर्म-योग का थोड़ा आचरण भी बड़े भारी भय से रक्षा कर देता है ॥४०॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

हे कुरुनन्दन ! जो कर्म-योग की कसोटी पर कर्म करते हैं, उनकी निश्चयात्मिका एक ही समबुद्धि होती है और जो अनिश्चय के साथ सकाम बुद्धि से कर्म करते हैं, उनकी बुद्धियों में अनेक शाखा होती है और वे बुद्धियां अनन्त मार्गों से चल पड़ती हैं ॥४१॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नाऽन्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥

हे पार्थ ! जो पुरुष, कर्म-योग के निष्काम कर्म करने की कसोटी को नहीं जानते हैं, वे ही इस पुष्पित (फल-श्रुति युक्त) वाणी को कहते रहते हैं। ऐसे लोग वेद के सकाम कर्म यज्ञ याग में लगे रहते हैं और वे इन सकाम कर्मों के अतिरिक्त कुछ नहीं है—ऐसा मानते रहते हैं ॥४२॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

जो लोग कामनाओं के वश में हो रहे हैं, वे स्वर्ग देने वाली सकाम क्रिया करते हैं, इससे वे जन्म मरण आदि कर्म फलों के देने वाली अनेक क्रियाओं को करते हैं और इस प्रकार वे लोग भोग और ऐश्वर्य में लिप्त रहते हैं ॥४३॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

भोग और ऐश्वर्य में आसक्त हुए तथा सकामबुद्धि इधर उधर खैंचे गये पुरुषों की व्यवसायात्मिका (कार्य-अनिवार्य के निश्चय करने वाली) बुद्धि, समाधि में निश्चल नहीं होती ॥४४॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवाऽर्जुन ।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

हे अर्जुन ! यह सकाम कर्मकाण्डात्मक वेद सत् रज और तम-इन तीनों गुणों की बातों के वर्णन में ही संलग्न है। तुमको तो इन त्रिगुणात्मक बातों से पृथक् और शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों से रहित होकर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाना चाहिए। तुम तो इस प्रकार अपने भोग विलास साधनों की चिन्ता छोड़ कर आत्मज्ञानी बनो ॥४५॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

जब सब ओर जल प्रवाह आ जाता है, तो उस समय जैसे की आवश्यकता नहीं रह जाती, इसी प्रकार ब्राह्मण के आत्मज्ञानी हो जाने पर उसको इन सकाम यज्ञायागात्मक वेद के कर्मकाण्ड से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है ॥४६॥

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

हे अर्जुन ! तुम्हारा कर्म करने में अधिकार है, फल की अभिलाषा में लीन होने का तुम्हें अधिकार नहीं है । न तुम कर्म फलों का कारण बनो और न तुम्हारा कर्म त्याग में आग्रह होना चाहिए ।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८

हे धनञ्जय ! तुम तो कर्म योग के निष्काम कर्म की रीति से कर्म करो । कर्मों की वासना का परित्याग करो । कार्य की सिद्ध और असिद्धि में सम होना ही कर्म योग कहाता है ॥४८॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

हे धनञ्जय ! साम्य बुद्धि के बिना किया हुआ कर्म बहुत ही निकृष्ट कर्म कहाता है । अब तो तुम साम्यबुद्धि या निष्कामबुद्धि

का आश्रय ग्रहण करो। फल की वासना रखना बहुत ही निकृष्ट बात है ॥४९॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

जो साम्य बुद्धि से युक्त होता है, उसको कर्म के पाप और पुण्य का सम्पर्क नहीं होता है। यही कारण है, कि तुम कर्म योग का आश्रय करो। कर्मों में साम्य-बुद्धि की कुशलता ही कर्म योग कहाता है ॥५०॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥५१॥

जो निष्काम बुद्धि से युक्त विद्वान पुरुष हैं, वे कर्म से उत्पन्न होने वाले, फल की अभिलाषा को छोड़ देते हैं। वे जन्म और बन्धन से मुक्त होकर निरामय पद मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

जब तेरी बुद्धि मोह के मलिन आवरण को पार कर जावेगी, तब तुम सुनने योग्य या सुनी हुई बातों से उदासीन हो जाओगे।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

सकाम यज्ञ योग से भटकती हुई तेरी निश्चल बुद्धि जब समाधि में अचल होगी, तब तू कर्म-योग के स्वरूप को प्राप्त कर सकेगा ॥५३॥

अर्जुन उवाच—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥५४॥

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! जिसकी बुद्धि, समाधि में स्थित हो गई है या जो स्वयं समाधि में स्थित हो गया, उसकी क्या परिभाषा है। समाधि स्थित बुद्धि वाला पुरुष कैसे भाषण करता, कैसे बैठता और कैसे चलता है ॥५४॥

श्रीभगवानुवाच—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।

आत्मन्येवाऽऽत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! जब मनुष्य अपनी सारी मनोगत कामनाओं को छोड़ देता है और अपनी आत्मा के स्वरूपसे आप सन्तुष्ट होता है, तब वह पुरुष, स्थित-प्रज्ञ कहाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

जो मनुष्य, दुःख प्राप्त होने पर दुःखी न होवे और सुखों में लालसा न रखता हो या जो राग द्वेष, भय और क्रोध को छोड़ बैठा है, वही मुनि स्थित-प्रज्ञ कहाता है ॥५६॥

यः सर्वत्राऽनभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।

नाऽभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

जो पुरुष, समय असमय पर प्राप्त हुए इष्ट और अनिष्ट पदार्थों से राग या द्वेष नहीं करता है और जिसका सबसे मोह नष्ट हो गया है-उसी की बुद्धि प्रतिष्ठित हो गई है-यह समझ लेना चाहिए ॥५७॥

यदा संहरते चाऽयं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

जब पुरुष, अपनी इन्द्रियों को उनके विषय, शब्द, स्पर्शादि से ऐसे सुकोड़ लेता है-जैसे कछुआ अपने अङ्गों को सङ्कुचित कर लेता है, तो उसकी बुद्धि सम हो जाती है-यह समझ लेना चाहिए ॥५८॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥५९॥

जो प्राणी आहार छोड़कर आचरण करता है, तो उसके विषय भोग छुट जाते हैं, परन्तु उसको उन विषयों के आनन्द में राग बना ही रहता है, किन्तु जो परब्रह्म के स्वरूप को जान लेता है, उसका विषयों के प्रति राग भी नष्ट हो जाता है ॥५९॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

हे कौन्तेय ! विद्वान् पुरुष के आत्म ज्ञान के प्रयत्न करने पर भी इन्द्रियां उसको खैंच कर ले जा सकती है, क्योंकि इन्द्रियाँ

बड़ी प्रमथन करने वाली हैं। ये मनुष्य के मन को बलपूर्वक खैंच लेती हैं ॥६०॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

इस सब इन्द्रियों को रोक कर कर्म योग के द्वारा बुद्धि को सम करके मुझ (ब्रह्म) में लीन होकर रहे। जिसके इन्द्रियां वश में हो चुकी हैं, उसी की बुद्धि भी निश्चल हो गई-यह समझ लेना चाहिए ॥६१॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

जो पुरुष विषयों का ध्यान करता रहता है, उसका समय पर उनसे संयोग हो ही जाता है। उनके संयोग से काम का उदय और काम के उदय से क्रोध उत्पन्न होता है ॥६२॥

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

क्रोध से मोह की उत्पत्ति होती है और मोह से स्मृति का नाश होता है। स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से मनुष्य नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

रागद्वेष से रहित, आत्म-ज्ञानी मनुष्य इन्द्रियों से विषयों का व्यवहार भी करता हुआ, अपने आत्मा के वश में होने से चित्त की स्वच्छता को प्राप्त हो जाता है ॥ ६४ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

मनुष्य के चित्त के स्वच्छ होने पर सब दुःखों का ह्रास हो जाता है और जिसका चित्त स्वच्छ हो गया, उसकी बुद्धि स्थित हो जाती है ॥ ६५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चाऽयुक्तस्य भावना ।
न चाऽभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

जिसने कर्मयोग की रीति को नहीं जाना उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती और न कर्मयोग की विधि के ज्ञान से हीन पुरुष की उत्तम भावना होती है एवं जिसकी भावना (बुद्धि की स्थिरता) ठीक- नहीं हुई, उसको शान्ति कहाँ से मिल सकती है और अशान्त पुरुष को फिर सुख कहाँ रखा है ॥ ६६ ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाऽम्भसि ॥६७॥

इन्द्रियों के विषयों का विचार करने वाले पुरुषों का मन भी इन्द्रियों के पीछे २ चल पड़ता है, जिससे उनकी बुद्धि को यह मन इस प्रकार खींच ले जाता है जैसे वायु नाव को जल में ले जाकर डुबो देता है ॥ ६७ ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

हे महाबाहो ! बस ? जिस पुरुष ने अपनी इन्द्रियों को उनके शब्द, स्पर्श आदि सब इन्द्रियों के अर्थों आदि (विषयों) से रोक लिया है, उसकी बुद्धि स्थित हुई समझनी चाहिए ॥६८॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

जो सब प्राणियों की रात्रि (इन्द्रियजय) होती है, उसमें संयमी (इन्द्रिय-विजेता) जागता है और जिस (विषय) में साधारण प्राणी जागते हैं, वह आत्मज्ञानी मुनि की रात है ॥६९॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे सशान्तिमाप्नोति न कामकामी

जल से लबालब भरे हुये अचल स्थित समुद्र में जैसे नदियाँ घुसती है, इसी प्रकार जिस प्राणी की सारी कामनाएँ आत्मा में लीन हो जाती है, वह शान्ति प्राप्त करता है, परन्तु जो मनुष्य, कामनाओं के पीछे २ दौड़ता है, उसे शान्ति नहीं मिलती है ॥७०॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

जो पुरुष, सारी कामनाओं को छोड़कर निःस्पृहता के साथ विचरता है और मोह तथा अहङ्कार से रहित हो जाता है, वही शान्ति प्राप्त करता है ॥७१॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२। पर्वणि तु षड्विंशोऽध्यायः ।२६।

हे पार्थ ! यह ब्रह्म प्राप्ति की स्थिति है, इसे ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। इसको जो मनुष्य प्राप्त कर लेता है, वह फिर मोहित नहीं होता है। जिस मनुष्य को यह स्थिति अन्त काल में प्राप्त हो जावेगी, वह भी ब्रह्म में लीनता को प्राप्त कर लेगा ।॥७२॥

इति श्रीमहाभारत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में सांख्य योग का द्वितीय अध्याय) भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में सांख्य योग का छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



सत्ताईसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

तीसरा अध्याय

अर्जुन उवाच—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्माणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥१॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

अर्जुन बोले-हे जनार्दन ! यदि तुम्हारी बुद्धि, कर्म करने को ही श्रेष्ठ मानती है; तो हे केशव ! मुझे प्रथम यह तो बताओ ? कि फिर इस घोर पाप कर्म में ही मुझे क्यों लगा रहे हो । तुम्हारे ज्ञान-योग (कर्म-संन्यास) और कर्म-योग के मिले हुए वाक्य मेरी बुद्धि को मोहित कर रहे हैं, अब तुम निश्चित करके मुझे एक बात बताओ-जिससे मुझे कल्याण की प्राप्ति होवे ॥१-२॥

श्रीभगवानुवाच—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

श्री भगवान् बोले—हे अनघ ! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा है, जिसका वर्णन मैंने तुमसे प्रथम ही कर दिया है ।

ज्ञानियों की ज्ञान-योग और कर्म-योगियों की कर्म-योग, ये ही दो निष्ठाएँ हैं। (मोक्ष-प्राप्ति के अन्तिम साधनों में स्थिति करने को निष्ठा कहा जाता है) ॥३॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

कर्मों के आरम्भ नहीं करने में पुरुष को निष्कामता कैसे प्राप्त हो सकती है तथा कर्मों के स्वरूप से परित्याग कर देने पर भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है ॥४॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

कोई भी पुरुष क्षण भर भी कर्म छोड़ कर नहीं रह सकता है, क्योंकि प्रकृति के स्वाभाविक गुण रागद्वेष, सब से परवशता के साथ कर्म कराते हैं ॥५॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

जो पुरुष कर्मेन्द्रियों को रोककर मन से इन्द्रियों के विषयों का स्मरण करता रहता है, वह आत्म-ज्ञान रहित, मूर्ख, मिथ्याचारी कहाता है ॥६॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्याऽऽरभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य अपने मन से इन्द्रियों को रोक कर कर्मेन्द्रियों से कर्म योग का आरम्भ करता है, वह विषयासक्ति से रहित पुरुष, सब से उत्तम माना गया है ॥७॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥८॥

हे अर्जुन ! इससे तुमको नियमानुसार कर्म अवश्य करने चाहिए । कर्मत्याग से तो कर्म करना ही उत्तम है । बिना कर्म किये-तो तेरी शरीर यात्रा भी पूरी नहीं हो सकेगी ॥८॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥९॥

हे कौन्तेय ! यज्ञ के निमित्त कर्म से अतिरिक्त सकाम कर्म बन्धन के हेतु हैं, इसलिए लोक संग्रह के लिए तुमको निःशङ्क होकर कर्म करने ही चाहिए ॥९॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥

यज्ञ के साथ प्रजाकी रचना करके प्रजापति ब्रह्माने पूर्वकाल में ही कह दिया था, कि तुम इस यज्ञ से अपनी कामनाओं को पूर्ण करो-क्योंकि यह तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ।

देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

इस यज्ञ से तुम देवों की पूजा करो-तो वे देवता भी तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे की पूजा और आदर करने से तुम अत्यन्त कल्याण को प्राप्त करोगे ॥११॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

जब तुम यज्ञ में देवों की तृप्ति करोगे-तो ये देवता भी तुम्हें इष्ट भोगों को प्रदान करेंगे। उन देवों के दिए हुए पदार्थों को देवों के विना अर्पण किए जो खा लेता है, उसे चोर ही मानना चाहिए ॥१२॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

जो मनुष्य, यज्ञ से शेप रहे हुए पदार्थों का भोजन करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी अपने लिए भोजन बनाते हैं, वे तो केवल पाप का ही भोजन करते हैं ॥१३॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

अन्न से प्राणी मात्र का जीवन होता है और मेघों से अन्न की उत्पत्ति है। यज्ञ से मेघ होता है और यज्ञ कर्मों से उत्पन्न है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माऽक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

कर्म, वेद से उत्पन्न है और वेद अक्षर (ब्रह्म) से उत्पन्न है। इससे यही मानना चाहिए, कि सर्वव्यापी ब्रह्म, नित्य यज्ञ में प्रतिष्ठित है ॥१५॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नाऽनुवर्त्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

हे पार्थ! यह संसार चक्र इसी प्रकार चलता है, जो इसका अनुवर्तन नहीं करता वह इन्द्रियों के भोगों में आसक्त पुरुष पापमयी आयु से व्यर्थ ही जीता है ॥१६॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

जो मनुष्य, आत्मा से प्रेम करने वाला और आत्मा में ही तृप्त है तथा जिसको आत्म-ज्ञान से ही सन्तोष होता है, फिर उस आत्मज्ञानी को कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता है ॥१७॥

नैव तस्य कृतेनाऽर्थो नाऽकृतेनेह कश्चन।
न चाऽस्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

इस समय आत्मज्ञानी का न तो कर्म करने से प्रयोजन है और न कर्म के नहीं करने से लाभ है। यही कारण है, कि उसका अब किसी भी प्राणी से स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहा है ॥१८॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

हे अर्जुन ! इसी से तुम भी सदा कर्मों में लिप्त न होकर अपने कर्तव्य कर्म का अनुष्ठान करो। जो मनुष्य, असक्त होकर कर्म करता है, वही परब्रह्म को प्राप्त करता है ॥१९॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

जनकादि महात्मा पुरुषों ने कर्म से ही सिद्धि प्राप्त की है। तुमको भी लोक संग्रह का ध्यान करके कर्म करना चाहिए ॥२०॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥२०॥

जिन २ बातों का श्रेष्ठ पुरुष आचरण करता है, उसी का साधारण पुरुष भी अनुकरण करता है। श्रेष्ठ पुरुष जिस बात को प्रमाण मानता है, साधारण लोग भी उसी को स्वीकार करते हैं।

न मे पार्थाऽस्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नाऽनवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥२२॥

हे पार्थ ! तीनों लोकों में अब मुझे कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है। न मुझे कुछ त्याज्य है और न कुछ ग्रहण करने योग्य है-तो भी मैं कर्म में ही संलग्न रहता हूं ॥२२॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्माऽनुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

जो मैं सावधानी के साथ कभी कर्मों में प्रवृत्त नहीं होऊँ तो हे पार्थ! ये साधारण मनुष्य सब तरह मेरे ही मार्ग का अनुसरण करेंगे ॥२३॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

यदि मैं कर्म न करूँ तो यह सारा संसार उलट पलट हो जावे। मैं ही संसार में वर्णों के कर्मों के संकर करने वाला होऊँगा और इस प्रजा का घातक माना जाऊँगा ॥ २४ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

हे भारत! आत्मज्ञान हीन पुरुष कर्मों में लिप्त होकर कर्म करते हैं, परन्तु ज्ञानी पुरुष लोक-संग्रह की दृष्टि से असक्त होकर कर्म करता रहता है ॥ २५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

जो पुरुष, सकाम कर्मों में लिप्त हैं, उन अज्ञानियों में बुद्धि भेद न उत्पन्न करे। जो विद्वान् कर्म-योग की कसोटी पर कस कर सब कर्मों का आचरण करते हैं, वे सब कर्मों को निष्काम बुद्धि से प्रीति युक्त होकर करते हैं ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताऽहमिति मन्यते ॥२७॥

जो प्रकृति के गुण, सत्व, रज और तम द्वारा कर्म किये जाते हैं, अहङ्कार से विमूढ़ हुए पुरुष उनको अपना करना मानते हैं ॥ २७ ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्त्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

हे महाबाहो ! गुण और कर्मों के विभाग के तत्व का जानने वाला, इन झगड़ों में नहीं फँसता है, क्योंकि वह जानता है, कि सत्व आदि गुण अपने सजातीय अन्य गुणों का व्यवहार करतेहैं। उत्तम पुरुष, यह मान कर ही किसी में भी आसक्त नहीं होता है।

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदोमन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥२९॥

प्रकृति के गुणों में मोहित हुए, पुरुष, गुण और कर्मों में लिप्त हो जाते हैं । सब वस्तुओं के तत्व को नहीं जानने वाले उन मूर्खों को सब कुछ जानने वाला ज्ञानी पुरुष, विचलित न करे ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याऽध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

हे अर्जुन ! अध्यात्म बुद्धि से मुझ में सब कर्मों का संन्यास करके निरभिलाषी और निर्मोही होकर सब दुःखों से रहित हुआ युद्ध कर ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

जो श्रद्धावान् और अनिन्दक, पुरुष, मेरे इस मत का नित्य अनुष्ठान करते हैं, वे भी कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ॥३१॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नाऽनुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

जो इस मेरे मत का खण्डन करके अनुष्ठान नहीं करते, उनको सब ज्ञान से विमूढ़, नष्ट, समझदारी से रहित समझना चाहिए ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

ज्ञानवान् मनुष्य भी इस प्रकृति के अनुसार चेष्टा करते देखे गए हैं । प्राणी प्रायः अपने संस्कारों के अधीन चल पड़ते हैं, इसमें निग्रह कुछ भी सहायता नहीं कर पाता है ॥ ३३ ॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्याऽर्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

इन्द्रियों का इन्द्रियों के विषयों के साथ राग-द्वेष लगा ही रहता है, मनुष्य को चाहिए, कि वह इन राग द्वेष के वश में न होवे, क्योंकि वह दोनों इसके विरोधी हैं ॥ ३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

अन्य वर्ण के धर्मों का अच्छी तरह आचरण करने से अपने वर्ण के धर्म का कुछ त्रुटियों के साथ आचरण करना भी उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी अच्छा है, परन्तु अन्य वर्ण के धर्म का अनुष्ठान करना भयजनक है ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

अर्जुन ने कहा-हे वार्ष्णेय! पुरुष नहीं चाहता हुआ भी बलपूर्वक किसकी प्रेरणा से प्रेरित किया हुआ होकर पाप का आचरण करता है ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

श्रीभगवान् बोले-यह काम और क्रोध, रजो गुण से उत्पन्न होते हैं। यही महापापी, काम और क्रोध, सारे शुभ गुणों का खा जाने वाला है। तुम काम और क्रोध को अपना वैरी समझो ॥३७॥

धूमेनाऽऽव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनाऽऽवृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

जैसे धूम से अग्नि और मल से दर्पण ढक दिया जाता है तथा उल्व (जेर) से गर्भ आवृत रहता है, ऐसे ही रजोगुण ने सारा जगत् ढक रखा है ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणाऽनलेन च ॥३९॥

हे कौन्तेय ! ज्ञानी के नित्य वैरी इस काम रूपी दुष्कर अग्नि ने मनुष्य का ज्ञान आवृत कर रखा है ॥ ३९ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याऽधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

इस काम (वासनाओं) का स्थान, इन्द्रिय, मन और बुद्धि है। यह इनके द्वारा ज्ञान को रोक कर प्राणी को मोहित कर देता है।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

हे भरतर्षभ ! इससे तुम प्रथम अपनी इन्द्रियों को रोक कर ज्ञान विज्ञान के नाशक, इस पापी काम का नाश करो ॥ ४१ ॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

देह से उत्कृष्ट इन्द्रियां, इन्द्रियों से उत्कृष्ट मन, मन से उत्कृष्ट बुद्धि और बुद्धि से उत्कृष्ट वही आत्मा है ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्याऽऽत्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीऽध्यायः ॥३॥ पर्वणि तु सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

हे महाबाहो ! इस प्रकार बुद्धि से भी उत्कृष्ट आत्मा को जान कर एवं आत्म ज्ञान से अपने आप को रोक कर काम रूपी (वासनामय) दुरासद शत्रु का नाश करो ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में तीसरा अध्याय) भीष्मपर्वान्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्व में कर्मयोग का सत्ताइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

अट्ठाईसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

चौथा अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! इस अव्यय कर्म-योग को मैंने पूर्वकाल में विवस्वान् नामक राजर्षि से कहा। विवस्वान् ने मनु से और मनु ने इक्ष्वाकु से कहा ॥१॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥२॥

इस परम्परा से आये हुए कर्म योग-मार्ग को इस प्रकार राजर्षियों ने जाना। हे परन्तप ! इस लम्बे काल में फिर यह कर्म-योग नष्ट सा हो गया ॥२॥

स एवाऽयं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

अब उसी प्राचीन कर्म-योग का मैंने तुमको उपदेश किया है। तुम मेरे भक्त और सखा हो तथा यह रहस्य बड़ा अद्भुत है ॥३॥

अर्जुन उवाच—

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४॥

अर्जुन ने कहा—हे भगवन् ! आपका जन्म तो पीछे हुआ है और विवस्वान् का जन्म पूर्वकाल में हो चुका। अब यह कैसे जाना जा सकता है, कि तुमने ही आदि में विवस्वान् को इस योग का उपदेश किया हो ॥४॥

श्रीभगवानुवाच—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चाऽर्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥५॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म व्यतीत हो गए। हे परन्तप ! परन्तु उन सब को मैं जानता हूं, तू नहीं जानता ॥५॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥६॥

मैं अजन्मा, अविनाशी और भूतों का ईश्वर होकर भी अपनी माया से अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर बार २ प्रादुर्भूत होता हूं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

हे अर्जुन! जब २ धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब २ मैं अपना अवतार धारण करता हूं ॥७॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥

सत्पुरुषों की रक्षा और असत्पुरुषों के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं युग २ में प्रादुर्भूत होता हूँ ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

हे अर्जुन! जो मेरे इन दिव्य जन्म और कर्मों को तत्व रूप से जानता है, वह अपनी देह के परित्याग के अनन्तर फिर जन्म ग्रहण नहीं करता और मुझ में लीन हो जाता है ॥९॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

राग, भय और क्रोध से हीन, मेरे ध्यान में तत्पर, मेरा एक मात्र आश्रय रखने वाले, ज्ञान रूप तप से पवित्र होकर बहुत से पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त हो गए हैं ॥१०॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्माऽनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

जो जैसे मुझे प्राप्त होते हैं, मैं उनको वैसे ही प्राप्त होता हूँ। हे पार्थ ! सब ओर से मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

अपने कर्मों की सिद्धि चाहने वाले पुरुष, इस संसार में देवों की उपासना करते हैं। उनको शीघ्र ही उस कर्म से उत्पन्न सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥१२॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥१३॥

हे अर्जुन ! गुण और कर्म के विभाग से मैंने ही चारों वर्णों की रचना की है। यद्यपि मैं अविनाशी और अकर्ता हूँ, तो भी इन सब का कर्ता तुम मुझको ही समझो ॥१३॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

मेरी कर्मों के फलों में लालसा नहीं है, इससे कर्म-फल मुझसे नहीं लिपटते हैं। इस प्रकार जो शुद्ध आत्मस्वरूप मुझे जान लेता है, वह भी कर्मों से नहीं बंधता है ॥१४॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

पूर्वज मोक्ष के अभिलाषियों द्वारा किए हुए कर्मों को जानकर तुम कर्म करो, क्योंकि यह कर्म-योग बड़ा प्राचीन और प्राचीन आचार्यों से स्वीकृत है। ॥१५॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

किस समय कौनसा कर्म कर्तव्य है और किस समय कौन कर्म अकर्तव्य है—इस विषय में बड़े २ विद्वान् भी चूक जाते हैं। मैं तुमको इस कर्म की कसोटी बता देता हूं, जिसको जानकर तुम अशुभ-बन्धन से छुटकारा पा जाओगे ॥१६॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

हे पार्थ ! तुमको कर्म विकर्म (बुराकर्म) और अकर्म का तत्व जान लेना चाहिए, क्योंकि कर्म की गति बड़ी गहन है ॥१७॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

जो पुरुष कर्म को भी समय के अनुसार अकर्म और अकर्म को भी काल भेद से कर्म समझता है, वही मनुष्यों में बुद्धिमान् और कर्म-योग के तत्व का जानने वाला, सारे कर्म करने का अधिकारी है ॥१८॥

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥१९॥

जिसके सारे कर्मों के आरम्भ फल की कामना से रहित हैं। उसने अपने ज्ञान की अग्नि से सारे कर्मों को दग्ध कर दिया है। बुद्धिमान् इसी को पण्डित कहते हैं ॥१९॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥२०॥

जो पुरुष, कर्म फलों की लालसा को छोड़ कर नित्य तृप्त हुआ, किसी भी संसारी वस्तु का आश्रय नहीं लेता है, वह कर्म करने में प्रवृत्त हुआ भी कुछ नहीं करता है ॥२०॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाऽऽप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥

जो ज्ञानी, सब आशाओं में मुक्त, अपने चित्त को वश में करने वाला, सारे परिग्रहों (झंझटों) से रहित है, वह शरीर से स्वाभाविक कर्म करता हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता है ॥२१॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबध्यते ॥२२॥

जो मनुष्य, ईश्वर की इच्छा से प्राप्त होने वाली घटनाओं से सन्तुष्ट, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों से अतीत, मत्सरहीन और सिद्धि तथा असिद्धि में समान है, वह कर्म करके भी बन्धन को प्राप्त नहीं होता है ॥२२॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाऽऽचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

जो सङ्ग (आसक्ति) से रहित, राग द्वेष से मुक्त और ज्ञान में चित्त को स्थिर करता है, उसके लोक के उपकार करने के लिए किये हुए सारे कर्म लीन हो जाते हैं। उसको उनका बन्धन नहीं होता है ॥२३॥

ब्रह्माऽर्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

ब्रह्म ही अर्पण क्रिया, ब्रह्म ही हवि, ब्रह्म ही अग्नि और ब्रह्म द्वारा ही हवन किया है। इस प्रकार एक मात्र ब्रह्म के ध्यान में परायण होने से उसको ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है ॥२४॥

दैवमेवाऽपरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

कर्म-योगी, निष्काम कर्म द्वारा इन्द्रादि देवों के निमित्त यज्ञ करते हैं और ज्ञान-योगी, अपने ज्ञान से ब्रह्माग्नि में यज्ञ का आचरण करते हैं ॥२५॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चाऽपरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

कोई योगी, श्रोत्र आदि इन्द्रियों को संयम की आग में हवन कर डालते हैं तथा कोई संसारी जीव शब्दादि विषयों को इन्द्रियों की अग्नि में डालते रहते हैं। जो कर्म-योगी हैं, वे सारे इन्द्रिय और प्राणों के कर्मों को ज्ञान से प्रज्वलित अपने संयम योग की अग्नि में हवन करते हैं ॥२६-२७॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

कोई मनुष्य, द्रव्य-यज्ञ, कोई तपो यज्ञ और कोई योग मय यज्ञ करते हैं। जो उत्तम व्रत परायण हैं, वे यति, स्वाध्याय और ज्ञान-यज्ञ करते हैं ॥२८॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ।
प्राणापानगती रुध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥

कोई प्राणायाम द्वारा अपान में प्राण वायु और कोई प्राण में अपान वायु का हवन करता है। इस प्रकार प्राणायाम परायण योगी, प्राण और अपान वायु की गति को रोक लेते हैं ॥२९॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

कुछ लोग, बहुत ही स्वल्प आहार करके प्राण वायु का प्राणों में हवन करते हैं। ये सब पृथक् २ यज्ञों के जानने वाले हैं, जो अपने २ यज्ञों से अपने पापों को क्षीण कर लेते हैं ॥३०॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नाऽयं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

जो पुरुष, यज्ञ शेष का भोजन करते हैं, वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। हे कुरुसत्तम ! यज्ञ हीन पुरुष का यह लोक नहीं बन सकता है ॥३१॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

इस प्रकार ब्रह्म के मुख में ये सारे यज्ञ विस्तृत हुए हैं, परन्तु ये सब कर्म से उत्पन्न हैं; तुमको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। इस प्रकार जानने से तुम कर्म बन्धनों से छुटकारा पा जाओगे ॥३२॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

हे परन्तप ! हवनीय वस्तुओं के द्वारा किये हुए यज्ञ से ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है। हे पार्थ ! सारे यज्ञादि कर्म, ज्ञान में जाकर समाप्त हो जाते हैं ॥३३॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

तुम बड़ी नम्रता, प्रश्न और सेवा द्वारा इस ज्ञान योग का ज्ञान प्राप्त करो। तत्वदर्शी ज्ञानी, तुम्हें इस ज्ञान-योग का उपदेश करेंगे ॥३४॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

हे पाण्डव ! इस ज्ञान-योग के जान लेने पर तुम आजका सा मोह फिर प्राप्त नहीं करोगे। इसके द्वारा सारे प्राणियों को अपने में या मुझ में देखने लगोगे ॥३५॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥३६॥

यदि तुम सारे पापियों से भी अधिक पापी होओ-तो भी इस ज्ञान की नौका से सारे पापों को तर जाओगे ॥३६॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

हे अर्जुन ! प्रज्वलित अग्नि, जैसे-सारे काष्ठ को जलाकर भस्म कर डालता है, इसी तरह ज्ञान का अग्नि भी सब कर्मों को भस्म कर देता है ॥३७॥

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनाऽऽत्मनि विन्दति ॥३८॥

इस लोक में ज्ञान के सदृश और कुछ भी पवित्र नहीं है। यह ज्ञान-योग, कर्मयोगी को समय पर स्वयं प्राप्त हो जाता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाऽधिगच्छति ॥३९॥

ज्ञान के अभिलाषी, जितेन्द्रिय, श्रद्धालु, जन, ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं और ये लोग, ज्ञान की प्राप्ति करके बहुत शीघ्र ही शान्ति पा जाते हैं ॥३९॥

अज्ञश्चाऽश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नाऽयं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

जो ज्ञानहीन, श्रद्धा से रहित, संशय परायण है, वह नष्ट हो जाता है। संशय में डूबे हुए पुरुष को इस लोक और परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति नहीं होती है ॥४०॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥४१॥

हे धनञ्जय ! जिसने, कर्म-योग के द्वारा सारे कर्मों के संकल्पों को त्याग दिया है और ज्ञान से सारे संशयों को छिन्न भिन्न कर दिया है, उस आत्मज्ञानी को कर्मोंका बन्धन नहीं होता है

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे यज्ञविभागयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ पर्वणि तु अष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

हे भारत ! इससे अब तुम अज्ञान से उत्पन्न, हृदय में स्थित, संशय को ज्ञान के खड्ग से काट डालो और कर्मयोग का आश्रय लेकर खड़े हो जाओ ॥४२॥

इति श्रीमहाभारत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में चौथा अध्याय) भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में यज्ञ विभाग योग का अट्ठाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उनतीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

पांचवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥१॥

अर्जुन बोले—हे कृष्ण ! कभी तो आप कर्मों का स्वरूप से त्याग बताते हो और कभी निष्काम बुद्धि से कर्म करने का उपदेश देते हो । अब तो आप इन दोनों में जो अधिक कल्याणकारी हो, उसी का मुझको निश्चित रूप से उपदेश करो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच—

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे कौन्तेय ! कर्म-संन्यास और कर्म-योग-ये दोनों ही कल्याणकारी हैं, परन्तु इन दोनों में भी कर्म संन्यास की अपेक्षा कर्म-योग की योग्यता विशेष है; क्योंकि कर्म-योग में लोक-संग्रह होता रहता है ॥२॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥३॥

उसे ही नित्य कर्मों का संन्यासी समझना चाहिए, जो न तो किसी से द्वेष करता है और न किसी प्रकार के भोगों की आकांक्षा करता है। हे महाबाहो ! जो मनुष्य, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों से मुक्त है, वही सुखपूर्वक बन्ध से विमुक्त हो सकता है ।।३।।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।४।।

जो ज्ञान से हीन है, वे ही ज्ञान-योग और कर्म-योग को पृथक् २ समझते हैं, पण्डित ऐसा नहीं मानते हैं। जो मनुष्य इन दोनों में एक का भी अच्छी तरह आचरण कर लेता है, वही दोनों का फल पा लेता है ।।४।।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।।५।।

जो स्थान ज्ञानयोगी प्राप्त कर लेता है, उसे ही कर्म-योगी भी प्राप्त करता है। जो मनुष्य ज्ञान-योग और कर्म-योग को एक देखता है, वही ठीक देखना जानता है ।।५।।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाऽधिगच्छति ।।६।।

हे महाबाहो ! जो कर्म-योग की प्रक्रिया को नहीं जानता है, उसको कर्म-संन्यास केवल दुःख का कारण होता है। जो मुनि, कर्म-योग की निष्काम कर्म करने की कसोटी जानता है, वह शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ।।६।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

जो विशुद्ध आत्मज्ञानी पुरुष इन्द्रियों का विजय करके आत्मा को प्राप्त कर लेता है और समस्त प्राणियों को अपनी ही आत्मा समझता है, वह कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता है ॥७॥

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन् ॥९॥

जो तत्व-ज्ञानी, कर्म-योगी, यह समझता है, कि मैं कुछ नहीं करता हूं, वह देखता, सुनता, छूता, सूंघता, खाता, जाता, सोता, श्वास लेता, बोलता, छोड़ता, ग्रहण करता, पलक खोलता या मूंदता हुआ भी कुछ नहीं करता है। वह तो यही समझता है, कि इन्द्रियां इन्द्रियों के अर्थों में प्रवृत्त हो रही हैं, मेरा इनसे कुछ सम्बध नहीं है ॥८-९॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाऽम्भसा ॥१०॥

जो मनुष्य कर्मों में फलासक्ति छोड़ कर ब्रह्म को अपने कर्मों का फल अर्पण कर देता है, वह जल में पद्मपत्र की भांति पाप से लिप्त नहीं होता है ॥१०॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ॥११॥

कर्म-योगी, देह, मन, बुद्धि और केवल इन्द्रियों से कर्म करते हैं, परन्तु वे आत्मा की शुद्धि के लिए कर्मों में आसक्ति नहीं करते हैं ॥११॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

जो कर्मयोगी, कर्मफल का त्याग करता है, वह नैष्ठिकी (अन्तिम) शान्ति प्राप्त करता है एवं जो निष्काम कर्म न करके कामनाओं के पीछे दौड़ता है, वह फल में आसक्त होने से बन्धन को प्राप्त होता है ॥१२॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्याऽऽस्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

जो मनुष्य, मन से सब कर्मों के फलों का त्याग करता है, वही जितेन्द्रिय सुखी होता है । इस नो इन्द्रियों के छिद्रों की देह में प्राणी न तो वास्तव में कुछ करता है और न कुछ कराता है ॥१३॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

परमात्मा ने कर्तृत्व, कर्म और कर्म फल का संयोग जीवों के निमित्त नहीं रचा है, कर्तृत्व आदि तो सारा स्वभाव अर्थात् प्रकृति का खेल है ॥१४॥

नाऽऽदत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनाऽऽवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

परमात्मा किसी के पापों को ग्रहण नहीं करता और न सुकृत को स्वीकार करता है । अज्ञान से केवल ज्ञान आवृत हो जाता है, इससे जन्तु मोहित होते रहते हैं ॥१५॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

जिन्होंने अपने आत्मा का अज्ञान, ज्ञानसे नष्ट कर लिया है, उनका सूर्य के सदृश ज्ञान उस आत्माको प्रकाशित कर देता है ।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

जिनकी परमार्थ तत्व में बुद्धि, मन और निष्ठा हो गई है तथा जो केवल आत्मचिन्तन में ही तत्पर रहते हैं, वे ज्ञान से पाप रहित होकर पुनरावृत्ति से रहित मुक्ति को प्राप्त होते हैं ।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥१८॥

जो आत्मज्ञानी पण्डित हैं, वे विद्या विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और श्वपाक में एक ही आत्मतत्व को देखते हैं ।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१९॥

जिनका मन साम्यभाव में स्थित हो गया है, उन्होंने संसार को जीत लिया है। ब्रह्म निर्दोष और सम है, इससे वे ब्रह्म में स्थित हो जाते हैं ॥१६॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाऽप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

प्रिय वस्तु को पाकर कभी प्रसन्न न हो और अप्रिय पदार्थ को पाकर कभी उद्विग्न नहीं हो, ऐसा ब्रह्मज्ञानी, स्थिर-बुद्धि, मोह रहित पुरुष, ब्रह्म में स्थित होता है ॥२०॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥२१॥

बाह्य पदार्थों के आनन्द में जो असक्त है, आत्मा में जो सुख प्राप्त करता है, वह ब्रह्मज्ञानी पुरुष अक्षय सुख को प्राप्त करता है ॥२१॥

ये हि संस्पर्शजा भोग दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

जो इन्द्रियों के संयोग से सुख प्राप्त होते हैं, वे दुःख के ही कारण हैं। हे कौन्तेय ! ये तो आने जाने वाले क्षणिक सुख हैं, इनमें बुद्धिमान् मनुष्य आनन्द नहीं मानता है ॥२२॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः ससुखी नरः ॥२३॥

जो शरीर के त्याग या शरीर से बाहर होने से पूर्व काम और क्रोध के वेगों के सहन में समर्थ होता है, वही कर्मयोगी है और वही मनुष्य जगत् में सुखी है ॥ २३ ॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथाऽन्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

जो कर्मयोगी अन्तरात्मा में सुखी, अन्तरात्मा में रमण करने वाला और अन्तर्ज्योतिः पुरुष है, वह योगी ब्रह्म भाव को प्राप्त होकर ब्रह्म-निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

जिन्होंने द्वैत-ज्ञान को काट फेंका है और आत्मा में लीन हैं, वे सब प्राणियों के हित में लगे रहते हैं। वे ही पापों से रहित हुए ऋषि लोग ब्रह्म-निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं ॥ २६ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

जिन्होंने अपने चित्त को वश में कर लिया है और जो काम क्रोध से रहित होकर जितेन्द्रिय हो चुके हैं, उन आत्मज्ञानियों को अपने चारों ओर ब्रह्म निर्वाण पद (मोक्ष) प्रतीत होता है।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवाऽन्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

जो विषयों के स्पर्शों को बाहर करके और अपनी दृष्टि को भ्रुकुटी के मध्य में लगा कर तथा प्राण और अपान को समान करके नासिका के भीतर आलोडित करे, वही मन और इन्द्रियों का विजेता, मोक्ष-परायण, मुनि, इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो जाता है एवं वह सदा ही मुक्त है-ऐसा जानना चाहिये ॥२८॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ पर्वणि तु ऊनत्रिंशोऽध्यायः ।२९।

यज्ञ और तपों का भोक्ता, सब लोकों का महेश्वर तथा समस्त प्राणियों का सुहृद् मुझे समझता है, वही पुरुष शान्ति को प्राप्त करता है ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत (श्रीभगवद्गीतोपनिषद् में पांचवां अध्याय)
भीष्मपर्वान्तर्गत श्रीभगवद्गीतापर्व में सांख्य-योग वर्णन का
उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

तीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

छठा अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे कौन्तेय! जो पुरुष, कर्म-फल का आश्रय नहीं लेकर अपने कर्तव्य कर्म को करता है, वही कर्म संन्यासी या कर्मयोगी है, अग्निहोत्र के अग्नि का परित्याग करने या निष्क्रिय बैठे रहने से कोई कर्म-संन्यासी नहीं बना करता है ॥१॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।

नह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

हे पाण्डव! जिसको कर्म-सन्यास कहा है, वही तो कर्म-योग है, क्योंकि कर्मयोगी भी तो कार्य के विषय में फल की आशा के परित्याग किये बिना सच्चा कर्मयोगी नहीं हो सकता है ॥२॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

जब मुनि कर्म-योग के पद पर आरूढ़ होना चाहता है, तब उसका कर्म ही शम का कारण बनता है और जब वह कर्म-योगी साधनावस्था से सिद्ध हो जाता है, तब उसका काम ही निष्काम कर्म का कारण बनता है ।॥३॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥

जब मुनि, इन्द्रियों के विषय, शब्द, स्पर्शादि तथा कर्मों में लिप्त नहीं होता और सारे कर्मों के फलों की आकांक्षा को त्याग बैठता है, तब वह सच्चा कर्म-योगी हो जाता है ॥४॥

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नाऽऽत्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

हे अर्जुन ! तुम अपने आत्मा का आप ही उद्धार करो । अपने आत्मा को कीचड़ में न फंसाओ । यह आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है ॥५॥

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनाऽऽत्मैवाऽऽत्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेताऽऽत्मैव शत्रुवत् ॥६॥

जिसने अपने आत्म-ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा को जान लिया है, उसका आत्मा ही उसका बन्धु है और जो अपने आत्माको नहीं पहिचानता है, उसका आत्मा ही उससे शत्रु की तरह शत्रुता करने लगता है ॥६॥

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥७॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥८॥

जिसने अपने आत्मा को जीत लिया है और प्रशान्त-भाव से रहता है, उसका आत्मा सम हो गया है । अब वह शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों तथा मानापमान में भी शान्त ही रहता है, जो ज्ञान विज्ञानसे सन्तुष्ट, कूटस्थ (साक्षी मात्र) जितेन्द्रिय, निष्काम कर्म करने वाला है और मिट्टी पत्थर तथा सुवर्ण को समान समझता है, वही सच्चा कर्म-योगी है ॥७-८॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

सुहृद्, मित्र, उदासीन, मध्यस्थ, शत्रु, बन्धु, सज्जन और पापी सब के साथ समान बुद्धि से व्यवहार करने वाला महात्मा ही उत्तम है ॥९॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्याऽऽसने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

कर्म-योगी भी एकान्त में स्थित होकर सदा आत्म साधन का अभ्यास करे। यह अपने चित्त और आत्मा को वश में करके आशा और धन-संग्रह आदि से दूर रह कर अकेला योग-चिन्तन का अभ्यास करे। यह पवित्र प्रदेश में अपने को स्थिर आसन पर स्थित करे, जो आसन न तो अत्यन्त ऊंचा हो और न अत्यन्त नीचा ही होना चाहिए। उस पर ऊनी वस्त्र, मृग-चर्म या कुशा का आसन बिछा होना चाहिए। उस पर बैठ कर योगी अपने मन को एकाग्र करे और चित्त (मन) तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को जीत ले। इस प्रकार आसन पर बैठ कर अपने आत्मा की विशुद्धि के लिए आत्मज्ञानी को योगाभ्यास करना चाहिए ॥१०-१२॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चाऽनवलोकयन् ॥१३॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥
युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

यह योगाभ्यासी स्थिर होकर अपने देह, शिर और ग्रीवा को अचल करके धारण करे। यह केवल अपने नासिका के अग्र-भाग को देखे और अन्य दिशा की ओर बिल्कुल ध्यान भी न दे। इस प्रकार शान्त भाव को प्राप्त होकर निर्भयता के साथ ब्रह्मचर्य के भाव में स्थित हो। यह अपने मन को विषयों से रोक कर मुझ

में ही चित्त लगावे तथा मुझ में परायण होकर स्थित हो, जो योगी अपने आत्माको इस प्रकार साध लेता है, वही मुझमें स्थित परम शान्ति पद को प्राप्त करता है, जिसमें दुःखों का अत्यन्त भाव हो जाता है ॥१३-१५॥

नाऽत्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाऽतिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चाऽर्जुन ॥१६॥

जो अत्यन्त भोजन करता है या बिल्कुल निराहार रहता है, ये दोनों ही योग साधन नहीं कर सकते हैं । हे अर्जुन ! अत्यन्त सोने वाले या बहुत जागने वाले को भी योग साधन के मार्ग से च्युत ही समझना चाहिए ॥१६॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

जो ठीक २ आहार विहार करता है और कर्मों में ठीक २ चेष्टा करता है तथा ठीक २ सोता या जागता है, उसी का योग दुःख नाशक होता है ॥१७॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवाऽवतिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

जिसका विषयों से रोका हुआ चित्त आत्मा में स्थित होता है, वही सब कामनाओंसे रहित युक्त या योगी कहाता है ।॥१८॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

वायु से रहित स्थान में रखा हुआ दीपक, जैसे कुछ चेष्टा नहीं करता है, यही दशा चित्त को रोकने वाले और योग साधन में तत्पर योगी की हो जाती है, वह विषयों को पाकर चल चित्त नहीं होता है। ॥१९॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवाऽयं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

जब योग-साधन से रोका हुआ चित्त, विषयों से निवृत्त हो जाता है एवं जब आत्म द्वारा आत्मा को देखकर आत्मा सन्तुष्ट होता है तथा बुद्धि से ग्रहण करने योग्य, इन्द्रियों से बाह्य, आत्यन्तिक सुख (मोक्ष पद) का साक्षात्कार करता है, तो इस दशा में पहुंचा हुआ योगी, फिर अपने स्थान से भ्रष्ट नहीं होता है ॥१९-२१

यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाऽधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते ॥२२॥
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

इस अनुपम स्थान को पाकर उसे अन्य कुछ भी अधिक लाभ दिखाई नहीं देता और जिस पद में स्थित होकर बड़े भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता, उसी दुःख से रहित दशा को

योग-स्थिति कहते हैं। इस योग का आचरण शान्त मन से बड़े निश्चय के साथ करना चाहिए ॥२२-२३॥

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥२५॥

संकल्प से उत्पन्न होने वाली सारी कामनाओं को छोड़ कर और सब ओर से मन के द्वारा इन्द्रिय समूह को जीत कर धैर्य के साथ निश्चल की हुई बुद्धि से धीरे २ विषयों से निवृत्त हो जावे। योगी को अपना मन, आत्मा के अधीन करके कुछ भी नहीं सोचना चाहिए ॥२४-२५॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

जिधर २ यह अस्थिर चञ्चल मन जाता है, उधर २ से ही रोक कर इसे आत्मा के वश में कर दे ॥२६॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

जब योगी का मन शान्त हो जाता है, तो उसको उत्तम सुख प्राप्ति होती है। इस समय यह रजोगुण से रहित, मलिन भाव शून्य, ब्रह्मभूत (मुक्ति) अवस्था को प्राप्त होता है ॥२७॥

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

कल्मषभाव से रहित योगी, इस प्रकार अपने आत्मा को सदा युक्त करे-तो वह सुख-पूर्वक ब्रह्म साक्षात्कार नामक अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है ॥२८॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

जो समस्त प्राणियों में अपने को और अपने में समस्त प्राणियों को देखता है, वही योग से युक्त आत्मा-वाला पुरुष, सब स्थानों में सम दृष्टि हो जाता है ॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याऽहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

हे अर्जुन ! जो मुझे (ब्रह्म) सब स्थानों में और सबको मुझ में अन्तर्भूत देखता है, मैं उससे दूर नहीं होता और वह पुरुष, मुझ से पृथक् नहीं होता है ॥३०॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते ॥३१॥

समस्त प्राणियों में स्थित मुझे जो एक आत्म-बुद्धि से भजता है, वह कर्म-योगी किसी भी तरह का व्यवहार करता हुआ मुझ में ही वर्तमान होता है ॥३१॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

हे अर्जुन ! सब प्राणियों को अपनी आत्मा समझ कर सबसे जो समभाव व्यवहार करता है तथा सुख या दुःख को समान भाव से देखता है, वही कर्म-योगी सबसे अधिक श्रेष्ठ माना गया है ॥३२॥

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याऽहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥

हे मधुसूदन ! साम्य-बुद्धि करके जो निष्काम कर्म-योग का व्यवहार आपने बताया है, इसकी स्थिर स्थिति को मैंने अपने मन के चञ्चल होने के कारण नहीं जान पाया है ॥३३॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याऽहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

हे कृष्ण ! मन बड़ा चञ्चल, हृदय को बलपूर्वक आलोडन करने वाला कठोर है । मैं इसका रोकना वायु के निग्रह के समान दुष्कर समझता हूँ ॥३४॥

श्रीभगवानुवाच—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाबाहो ! यह निश्चय है, कि मन बड़ा चञ्चल और कठिनता से रोका जा सकता है। हे कौन्तेय ! यह बड़े अभ्यास और वैराग्य से रोका जा सकता है ॥३५॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।

वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

जिसने अपनी आत्मा को नियम में नहीं किया है, उसको इस कर्म-योग की सिद्धि दुर्लभ है। जिसके आत्मा वश में हैं, वह यदि उपाय से प्रयत्न करे-तो वह इस योग को प्राप्त कर सकता है।

अर्जुन उवाच—

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! अपने को संयम में नहीं रखने वाले, श्रद्धालु पुरुष का योग से मन भ्रष्ट हो जाता है, तो वह योग-सिद्धि को न पाकर किस गति को प्राप्त होता है ॥३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

हे महाबाहो ! कृष्ण ! क्या वह दोनों पदों से भ्रष्ट होकर छिन्न भिन्न हुए बादलों की भांति नष्ट नहीं हो जावेगा ? क्योंकि उसकी किसी भी स्थान पर दृढ़ता से स्थिति नहीं है और वह ब्रह्म के मार्ग में विमूढ हो रहा है ॥३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्याऽस्य छेत्ता नह्युपपद्यते ॥३९॥

हे कृष्ण ! तुमको प्रथम मेरे इस संशय को नष्ट कर देना चाहिए । तुम्हारे बिना इस सन्देह का काटने वाला अन्य कोई नहीं है ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच—

पार्थ नैवेह नाऽमुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ ! जो कर्म-योग का अनुष्ठान करता है, उसका इस लोक और परलोक में कभी विनाश नहीं होता है । हे तात ! जो अपने कल्याण मार्ग पर चल पड़ा है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती है ॥४०॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

योगभ्रष्ट पुण्यात्मा पुरुष, पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त करके और अनेक वर्ष तक उनमें निवास करके शुद्धात्मा श्रीमानों के घर में जन्म लेता है अथवा बुद्धिमान् योगियों के कुल में ही उनका जन्म हो जाता है । संसार में इस प्रकार योगियों के समूह में पूर्व संस्कार वश जन्म लेना बड़ा ही दुर्लभ है ॥४१-४२॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥४३॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्माऽतिवर्तते ॥४४॥

हे कुरुनन्दन ! वह योग-भ्रष्ट पुरुष, अपने पूर्व देह के बुद्धि संयोग को प्राप्त करता है और फिर वह सम्यक् सिद्धि की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। वह पुरुष, अपने पूर्व अभ्यास के कारण बल-पूर्वक ज्ञान की ओर खिंच जाता है। जिसको कर्म-योग के जानने की इच्छा मात्र हो गई है, वह भी शब्द ब्रह्म का अतिक्रमण कर लेता है अर्थात् ऐसे पुरुष का भी वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥४३-४४॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगात्संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

ऐसा पुरुष, प्रयत्न करता हुआ कर्म-योग द्वारा सब पापों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उसको अनेक जन्म में सिद्धि मिल जाती है और अन्त में वह परमगति मुक्ति को पालेता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाऽधिको योगी तस्माद्योगी भवाऽर्जुन ॥४५॥

तपस्वियों से अधिक कर्म-योगी तथा ज्ञानियों से भी कर्म-योगी अधिक माना गया है। हे अर्जुन ! कर्मकाण्ड-परायण

मीमांसकों से भी कर्म-योगी ही अधिक है, इससे तुम भी कर्म-योगी ही बनो ॥४६॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनाऽन्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अध्यात्मयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ पर्वणि तु त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

सारे कर्म-योगियों में भी जिसका अन्तरात्मा मुझ में निमग्न है तथा जो श्रद्धा-पूर्वक मुझे भजता है, वही कर्म-योगी श्रेष्ठ माना गया है ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में छठा) भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में अध्मात्म योग नाम का तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



इकतीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

सातवां अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ! जब तुम मुझ में मन को संलग्न करके मेरे आधार से कर्म-योग का आश्रय करोगे-तो उस समय जो तुमको मेरा संशयहीन समग्र ज्ञान होगा-उसका प्रकार सुनो ॥१॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

हे पार्थ! मैं तुमको विज्ञान (सृष्टि-ज्ञान) के सहित सम्पूर्ण ज्ञान (आत्म-ज्ञान) कहता हूँ, जिसके जान लेने पर अन्य कुछ भी जान लेने योग्य शेष नहीं रह जाता है ॥२॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

सहस्रों मनुष्यों में से कोई ही मनुष्य सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है और प्रयत्न करने वालों में भी कोई ही मुझे ठीक २ जान पाता है ॥३॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार यह मेरी आठ प्रकार की प्रकृति भिन्न २ है। हे महाबाहो ! यह मेरी अपरा (निकृष्ट) प्रकृति कहाती है । इससे पृथक् मेरी परा (उत्कृष्ट) प्रकृति है। जिसे जीव माना गया है, इसी से सारे जगत् का धारण किया जाता है ॥५॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥
मत्तः परतरं नाऽन्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

इन्हीं दोनों प्रकृतियों के आधार पर सारे भूतों की उत्पत्ति है। मैं ही सम्पूर्ण जगत् का उत्पत्ति केन्द्र और प्रलय स्थान हूँ। हे धनञ्जय ! मुझसे उत्कृष्ट, संसार में कुछ भी नहीं है। सूत में मणियोंके समान यह सारा जगत् मुझमें अनुस्यूत (पोया हुआ) है।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चाऽस्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चाऽस्मि तपस्विषु ॥६॥
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।

हे कौन्तेय! मैं जल में रस, शशि और सूर्य में प्रभा, सब वेदों में प्रणव, आकाश में शब्द, मनुष्यों में पुरुषार्थ, पृथिवी में पवित्र गन्ध, अग्नि में तेज, समस्त प्राणियों में जीवन, तपस्वियों में तप हूँ। हे पार्थ! तुम मुझे समस्त प्राणियों का सनातन बीज समझो ॥८-६॥

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥
बलं बलवतां चाऽहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

बुद्धिमानों में बुद्धि, तेजस्वियों में तेज, बलवानों में कामराग से विवर्जित बल हूं। हे भरतर्षभ! प्राणियों में जो धर्म के अविरोधी काम है, वह भी मैं ही हूं ॥१०-११॥

ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

जो सात्विक, राजस और तामस भाव हैं, वे सब मुझ से प्रादुर्भूत होते हैं, मेरे वे आश्रय नहीं है, मैं ही उनका आश्रय हूं।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।

मोहितं नाऽभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

सत्व, रज और तम इन तीन गुणमय भावों से यह सारा जगत् मोहित है। इसी कारण से इन गुणों से अतीत मुझ अव्यय, सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म को लोग नहीं जान पाते हैं ॥१३॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

यह मेरी त्रिगुणात्मक दिव्य माया, बड़ी दुरत्यय (दुस्तर) है। जो मेरी शरण को प्राप्त हो जाते हैं, वे इस माया को तर जाते हैं।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

जो दुष्कर्म करने वाले माया में लिपटे पड़े हैं, वे नराधम मुझे प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इन लोगों का माया से ज्ञान नष्ट हो रहा है, अतएव ये आसुर-भाव को प्राप्त हो रहे हैं ॥१५॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवाऽनुत्तमां गतिम् ॥

हे भरतर्षभ ! अर्जुन ! आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकार के पुण्यात्मा पुरुष मुझे भजते हैं। इनमें जो ज्ञानी, नित्य कर्म-योग का आचरण करता है, वही अनन्य भक्तिभाव धारी पुरुष सब में श्रेष्ठ है। मैं ज्ञानी पुरुष को प्रिय हूँ और ज्ञानी मुझे प्रिय है। ये चारों प्रकार के भक्त उत्तम माने गए हैं, परन्तु इनमें ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है। यह आत्मज्ञानी, मुझ सर्वोत्तम गति को प्राप्त करके स्थित होता है ॥१६-१८॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

जो आत्म ज्ञानी हैं, वह बहुत जन्मों के अनन्तर मुझे प्राप्त कर लेते हैं, जो सारे संसार को वासुदेव (आत्म) रूप देखता है- ऐसा महात्मा परम दुर्लभ है ॥१९॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

कुछ भक्त अन्य २ कामनाओं से प्रेरित होकर ज्ञान-मार्ग को छोड़कर पृथक् २ देवताओं को अपनी २ प्रकृति के अनुसार विशेष २ नियमों का आश्रय लेकर प्राप्त करते हैं ॥२०॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याऽचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

जो २ भक्त मेरे जिस २ रूप को श्रद्धा के साथ पूजना चाहता है, उस २ की मैं वैसी ही अचल श्रद्धा कर देता हूँ ॥२१॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याऽऽराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

वह पुरुष, उसी श्रद्धा से युक्त होकर मेरे उसी रूपकी आराधना करना चाहता है और वह अपनी उन २ कामनाओं को मुझ से ही प्राप्त कर लेता है ॥२२॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

उन क्षुद्र-बुद्धियों को उन २ उपासनाओं का विनाशी फल प्राप्त होता है। जो देवों की उपासना करते हैं, वे देवों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझे प्राप्त होते हैं ॥२३॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाऽव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

अज्ञानी पुरुष, मुझ अव्यक्तको व्यक्त हुआ मानते हैं, परन्तु वे लोग मेरे उस उत्कृष्ट अव्यय भाव को नहीं जानते हैं ॥२४॥

नाऽहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाऽभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

मैं अपनी योग-माया से आवृत रहता हूं, इससे सबको प्रकाश रूप नहीं दिखाई देता हूँ। इसी कारण से मूर्ख संसार, मुझे अव्यय और अजन्मा नहीं जान पाता है ॥२५॥

वेदाऽहं समतीतानि वर्तमानानि चाऽर्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

हे अर्जुन ! मैं परोक्ष भूतकाल, वर्तमान, सामान्य भूत और भविष्य सबको जान पाता हूँ, परन्तु मुझे कोई नहीं जान पाता ।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥२७॥

हे भारत ! परन्तप ! इच्छा-द्वेष से उत्पन्न सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के मोहसे सारे प्राणी, सृष्टि में मोह को प्राप्त होते रहते हैं।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

हे अर्जुन ! जिन पुण्यात्मा मनुष्यों के पापों का अन्त हो गया है, वे शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों से मुक्त होकर बड़ी दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ मुझे भजते हैं ॥२८॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाऽखिलम् ॥२६॥

जो मनुष्य, जरा मरण के दुःखों से छुटकारा पाने के लिए मेरा आश्रय लेकर मेरी प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं, वे समस्त ब्रह्म, सम्पूर्ण अध्यात्म और सारे कर्मों को जान लेते हैं ॥२६॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ पर्वणि तु एकत्रिंशोऽध्यायः

जो भूत, देव और यज्ञ सब का आधार मुझे ही जानते हैं, वे योग युक्त चित्त वाले महात्मा, मृत्यु के समय मुझे अवश्य जान लेते हैं ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में सातवां अध्याय) भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीतापर्व में ज्ञानयोग का इकतीसवां अध्याय समाप्त हुआ



बत्तीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

आठवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

अर्जुन बोले-हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म की क्या परिभाषा है। अध्यात्म किसे कहते हैं, कर्म के क्या लक्षण हैं। अधिभूत और अधिदैव क्या हैं। हे मधुसूदन ! अधियज्ञ क्या वस्तु है । इस देह में कौन निवास करता है तथा आत्म-ज्ञानी अपनी मृत्यु के समय तुम्हें कैसे जान पाते हैं ॥१-२॥

श्रीभगवानुवाच—

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाऽधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवाऽत्र देहे देहभृतां वर ॥४॥
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नाऽस्त्यत्र संशयः ॥५॥

श्रीभगवान् बोले--हे अर्जुन ! अविनाशी आत्म-तत्व ब्रह्म है। आत्मा के आधार से रहने वाला स्वभाव (माया या ईश्वर की अतर्क्य लीला) ही अध्यात्म कहाता है। प्राणियों की उत्पत्ति करने वाला सृष्टि का व्यापार कर्म कहाता है। नाम-रूपात्मक विनाशी भाव, अधि-भूत संज्ञक है। ब्रह्माण्ड के भीतर व्यापक ब्रह्म अधि-दैवत है। हे देहधारियों में श्रेष्ठ ! मैं सारे यज्ञों का अधिष्ठान या अधिपति तथा मैं ही देह में अधिदेह रूप से रहता हूं। जो मनुष्य, अन्तकाल में मेरा स्मरण करता हुआ, शरीर छोड़ता है, वह मेरे ही स्वरूप में मिल जाता है-इसमें सन्देह नहीं है ॥३-५॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

हे कौन्तेय! जिस जिस भाव का स्मरण करता हुआ पुरुष अन्त में शरीर का त्याग करता है, उसी भाव के अभ्यास से वह उसी भाव को प्राप्त हो जाता है ॥६॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७॥

इस कारण सब काल में मेरा स्मरण कर और युद्ध (कर्तव्य) कर। जो कर्म करने के समय मुझ में ही अपनी बुद्धि और मन का अर्पण कर दोगे-तो अन्त में मुझे प्राप्त करोगे ॥७॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नाऽन्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थाऽनुचिन्तयन् ॥८॥

हे पार्थ! अन्य ओर चित्त को न जाने देकर अभ्यास के साथ मेरा ही चिन्तन करने वाला पुरुष, मुझ दिव्य परम पुरुष को प्राप्त हो जाता है ॥८॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्

जो पुरुष, क्रान्तदर्शी, सनातन, सृष्टि को नियम में चलाने वाले, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सब का रचयिता, अचिन्त्य-रूप, अन्धकार

से रहित आदित्य के सदृश प्रकाशमान, पर ब्रह्म को मृत्यु के समय अचल मन, भक्ति और योग-बलसे भ्रुवोंके मध्य में अच्छी तरह प्राण वायु का आवेश करके स्मरण करता है, वह उस दिव्य परम पुरुष (परब्रह्म) को अवश्य प्राप्त करता है ॥९-१०॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

वेद के ज्ञाता, जिसे अक्षर (अविनाशी) आत्म-तत्व कहते हैं अथवा वीतराग यति जिसमें प्रवेश करते हैं, जिसकी प्राप्ति की इच्छा से मुनि लोग ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, मैं उसी आत्म-पद को तुम्हें संक्षेप में कहता हूं ॥११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायाऽऽत्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

मुमुक्षु पुरुष, समस्त इन्द्रियों के द्वारों को उनके विषयों से रोक कर और मन को हृदय में लीन करके एवं अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर योग-धारणा करे ॥१२॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

जो पुरुष ॐ इस एक और अविनाशी, ब्रह्म का मुख से उच्चारण तथा मेरा ध्यान करता हुआ, देह का परित्याग करता है, वह परम-गति को प्राप्त करता है ॥१३॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।

तस्याऽहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

जो मनुष्य, अन्य विषयादि में चित्त न लगा कर सब काल मेरा ही स्मरण करता है। हे पार्थ ! नित्य अभ्यास में तत्पर उस योगी को मैं बड़ा ही सुलभ हूँ ॥१४॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।

नाऽऽप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

महात्मा लोग मुझे प्राप्त करके दुःखों के आलय, बार २ होने वाले पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते हैं, क्योंकि वे तो परम सिद्धि को प्राप्त कर चुके ॥१५॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक से लेकर जितने स्वर्गादि लोक हैं, उन सब में उत्तम गति पाकर भी फिर पुरुष को लौटना ही पड़ता है । हे कौन्तेय ! परन्तु मुझे प्राप्त कर लेने पर पुनर्जन्म नहीं हो सकता है

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।

रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

अहोरात्र (दिन रात) के विभाग के जानने वाले, यह जानते हैं, कि सहस्रों युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है और सहस्रों युगों की ही ब्रह्मा की रात्रि होती है ॥१७॥

महाभारत चित्र संख्या ७२



राजकुमार वीर अभिमन्यु का भीष्म पितामह के साथ घोर युद्ध

महा० भीष्म पर्व अ० ४७। ८ पृ० ४५४

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाऽव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥

जब ब्रह्मदेव का दिन होता है, तब अव्यक्त से सारी व्यक्त सृष्टि होती है और जब रात्रि आती है, तभी सारी व्यक्त सृष्टि अव्यक्त में लीन हो जाती है ॥१८॥

भूतग्रामः स एवाऽयं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

हे पार्थ ! इस प्रकार यह भूत समूह रात आने पर सर्वदा हो २ कर बलात् प्रलय में लीन हो जाता है और दिन होने पर प्रादुर्भूत हो जाता है ॥१९॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

इस अव्यक्त (प्रकृति या माया) से भी उत्कृष्ट सनातन अव्यक्त है, जो सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है ॥२०॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

इस अव्यक्त (परब्रह्म) को अक्षर भी कहते हैं, जो प्राणियों की परम गति है। जिसको प्राप्त करके मनुष्य फिर नहीं लौटता है, वह मेरा परम धाम है ॥२१॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्याऽन्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

हे पार्थ ! वह परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होता है। जिसके अन्तर्भूत ये सारे प्राणी हैं और जिसने सारे संसार को व्याप्त कर रखा है ॥२२॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

हे भरतर्षभ ! अब मैं तुमको उस काल को बताता हूं, जिस काल में मृत्यु के प्राप्त होने पर कर्म-योगी लौट कर नहीं आते या लौट कर आ जाते हैं ॥२३॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

अग्नि, (अर्चि) मार्ग, प्रकाशमान, (सूर्यकी ज्योति) दिन, शुक्ल-पक्ष और वर्ष के छः मास उत्तरायण हैं, इस समय में मृत्यु को प्राप्त हुए ब्रह्मज्ञानी मनुष्य, ब्रह्म को प्राप्त करते हैं ॥२४॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते ॥२५॥

धूम्रमार्ग, रात्रि, कृष्ण-पक्ष और वर्ष के छः मास दक्षिणायन है, इसमें चन्द्रमा की ज्योति रहती है और इसमें मृत्यु को प्राप्त करके कर्म-योगी लौट भी आता है ॥२५॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्त्तते पुनः ॥२६॥

शुक्ल और कृष्ण (देवयान या पितृयाण अर्चिमार्ग या धूम्रमार्ग) गति जगत् में सनातन काल से चली आती है। इनमें अर्चिमार्ग से ब्रह्म को प्राप्त करके नहीं लौटता है और धूम्रमार्ग से फिर लौट आता है ॥२६॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवाऽर्जुन ॥२७॥

हे पार्थ ! इन दोनों देवयान और पितृयान मार्गों के तत्व को जानने वाला कर्म-योगी कभी मोहित नहीं होता है । हे अर्जुन ! इन सब कारणों से तुमको निष्काम कर्म-योग का आचरण करना चाहिए ॥२७॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाऽऽद्यम्
इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ पर्वणि तु द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२

वेद, यज्ञ, तप और दान में जो फल कहा है, उसको जान कर कर्म-योगी, इन सब का परित्याग कर देता है और सर्वोत्कृष्ट आदि स्थान को प्राप्त करता है ॥२८॥

इति श्री महाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्) में भगवद्गीतापर्व में अक्षर ब्रह्म-योगका बत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

तेतीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

नौवां अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! अब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, जिससे तू निन्दनीय नहीं रहा है। अब मैं तुझ से गुप्त से भी गुप्त, विज्ञान-सहित ज्ञान कहता हूं, जिसको जान कर तेरा अशुभ कर्मों से छुटकारा हो जावेगा ॥१॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

यह ज्ञान सर्वोत्तम विद्या है तथा सबसे अधिक गोपनीय है। यह पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष ज्ञान में आने वाला, धर्मानुसार सुख से करने योग्य और अव्यय है ॥२॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्याऽस्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्त्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

हे परन्तप ! जो पुरुष, इस धर्म में श्रद्धा नहीं रखते हैं, वे मुझे प्राप्त नहीं कर सकते और बार २ मृत्यु समुद्र के मार्ग में पड़ते हैं ॥३॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाऽहं तेष्ववस्थितः ॥४॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममाऽऽत्मा भूतभावनः ॥५॥

मैंने ही अव्यक्तमूर्ति से इस सारे जगत् को व्याप्त कर रखा है। समस्त भूत-जात (प्राणी-मात्र) मुझ में स्थित हैं, परन्तु मैं किसी में स्थित नहीं हूँ अर्थात् मैं किसी के आश्रित नहीं हूं अथवा मुझ में भूत (पञ्चतत्व) स्थित नहीं है, क्योंकि उनकी स्वतन्त्र-सत्ता है ही नहीं। तुम मेरी इस ईश्वरीय योग-माया को देखो, कि मैं पञ्च महाभूतों का उत्पन्न करने वाला होकर भी उन में नहीं रहता हूँ। मेरा आत्मा समस्त प्राणीमात्र का पवित्र करने वाला है ॥५॥

यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

जैसे आकाशचारी महान् वायु, सर्वत्र घूमता है-इसी प्रकार सारे भूत (प्राणी) मुझ में स्थित हैं, तुम यह समझ लो ॥६॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

हे कौन्तेय ! सारे पञ्चमहाभूत, प्रलय काल में मेरी प्रकृति में लीन हो जाते हैं और मैं ही फिर कल्प के आदि में उनको प्रकट करता हूँ ॥७॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

मैं अपनी अतर्क्य लीला का आश्रय करके बार २ इन सारे पञ्च महाभूतों को रचता हूँ। ये सब मेरी माया के वश में हुए परतन्त्रता से उत्पन्न होते रहते हैं ॥८॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

हे धनञ्जय ! मुझे इन सारे कर्मों का बन्धन नहीं होता है । मैं तो इन कर्मों में निर्लिप्त होकर उदासीन की भांति स्थित हूँ ॥९॥

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

मेरी प्रेरणा से मेरी माया इस सारे चराचर जगत् को रचती है। हे कौन्तेय ! इसी हेतु से यह सारा जगत् उलट पलट होता रहता है ॥१०॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

मूर्ख लोग तो मुझे मनुष्य शरीर धारण करने वाला जानते हैं, परन्तु भूत-मात्र के स्वामी मेरे सर्वोत्कृष्ट रूप को वे नहीं जानते हैं ॥११॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

ऐसे लोग, निष्फल आशा, निष्फल कर्म, निष्फल ज्ञान वाले मूर्ख होते हैं। ये लोग, राक्षसी और आसुरी प्रकृति का आश्रय लिए हुए हैं, जो मोहन करने वाली है ॥१२॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

हे पार्थ! दैवी प्रकृति का आश्रय करने वाले, महात्मा लोग, मुझे भूतों के आदि और अव्यय जान कर अनन्य मन से भजते हैं ॥१३॥

सततं कीर्त्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

ये महात्मा, सदा मेरा कीर्तन करके दृढ़ व्रत के साथ मेरे जानने का यत्न और मुझे नमस्कार करते हैं और भक्ति-पूर्वक नित्य योग के साथ मेरी उपासना करते हैं ॥१४॥

ज्ञानयज्ञेन चाऽप्यन्ते यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

कुछ-महात्मा, मेरा यजन ज्ञान-यज्ञ से करते हैं। कोई अद्वैत और कोई द्वैत भाव से सबकी उपासना ग्रहण करने वाले मेरी उपासना करते हैं ॥१५॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाऽऽज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

मैं ही क्रतु (श्रौत-यज्ञ) और मैं ही यज्ञ (स्मार्त-यज्ञ) हूं । मैं ही स्वधा अर्थात् पितरों का अन्न और मैं ही औषध हूँ । वेदों के मन्त्र, हवनीय घृत, अग्नि और हवि सब कुछ मैं ही हूँ ॥१६॥

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥१७॥

मैं इस जगत् का पिता, माता, धाता (रचने वाला) और पितामह आदि सब कुछ हूँ । इसी भांति जानने योग्य पवित्र ओङ्कार, ऋक् साम और यजुर्वेद मैं ही हूं ॥१७॥

गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥

मैं ही सब संसार की गति भरण पोषण करने वाला प्रभु साक्षी (कूटस्थ) सब का आधार, रक्षक और मित्र हूं । उत्पत्ति, प्रलय और स्थिति तथा सब का धारण करनेवाला अविनाशी बीज मैं ही हूं ॥१८॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाऽहमर्जुन ॥१९॥

हे अर्जुन ! मैं ही तो सूर्य रूपसे तपता हूँ और मैं ही मेघ रूप से वरसता हूं । मैं ही अमृत और मैं ही मृत्यु तथा मैं ही सत् (तीनों काल में एक रस रहने वाला) तथा मैं ही असत् (संसार) हूं ॥१९॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्

जो तीनों ऋक्, यजुः, साम वेद के जानने वाले, सोमयागी, पाप रहित पुरुष, यज्ञों द्वारा मेरा यजन करके स्वर्ग की गति की अभिलाषा करते हैं, वे पवित्र, स्वर्गलोक में पहुंचकर वहाँ दिव्य देवों के भोगों को भोगते हैं ॥२०॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकंविशालंक्षीणेपुण्येमर्त्यलोकं विशन्ति
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

पुण्यात्मा लोग कुछ दिन तक विशाल स्वर्ग लोक में सुख भोग करने के अनन्तर पुण्यों के क्षीण होने पर मर्त्यलोक में आ जाते हैं। इस प्रकार वेदत्रयी के धर्म यज्ञ याग में लिपटे हुए पुरुष, कामनाओं में बंधे हुए इधर उधर आवागमन में भटकते रहते हैं ॥२१॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

जो पुरुष, अन्य का भरोसा न करके मेरा चिन्तन करते रहते हैं, उन नित्य योग में अनुरक्त रहने वाले पुरुषों का योग-क्षेम मैं ही चलाता हूँ ॥२२॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

जो अन्य देवताओं के भक्त हैं और श्रद्धा से युक्त होकर उनकी पूजा करते हैं। हे अर्जुन ! वे भी विधि-हीन हुए मेरा ही यजन करते हैं ॥२३॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।

न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनाऽतश्च्यवन्ति ते ॥२४॥

मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता प्रभु हूं, क्योंकि वे मुझे तत्त्व से नहीं जानते, इसी कारण से वे अपने स्थान से गिर जाते हैं ।

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

जो देवों का यजन करते हैं, वे देवों को और जो पितरों का यजन करते हैं, वे पितरों को तथा जो भूतों की उपासना करते हैं, वे भूतों को और जो मेरी उपासना करते हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं ॥२५॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

जो पुरुष, पत्र, पुष्प फल, जल, मुझे भक्ति से अर्पण करता है, उस चित्त के निरोध करने वाले योगी का भक्तिपूर्वक अर्पण किया हुआ पदार्थ मैं ही भोगता हूं ॥२६॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

हे अर्जुन ! जो तुम कुछ करते हो, जो कुछ खाते हो, जो हवन करते हो और जो दान देते हो एवं तप करते हो, वह सब कुछ तुम मेरे अर्पण कर दो ॥२७॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

हे कौन्तेय ! इस तरह मनुष्य, शुभ और अशुभ फल वाले कर्मों के बन्धनों से छुटकारा पा लेते हैं और फिर कर्मों के संन्यास या कर्मयोग द्वारा विमुक्त होकर मुझे ही प्राप्त करते हैं ॥२८॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाऽप्यहम् ॥२९

मैं समस्त प्राणियों में समभाव रखता हूँ। न तो मेरा कोई द्वेष्य है और न प्रिय है। जो पुरुष, मुझे भक्ति से भजते हैं, वे मुझ में और मैं उनमें स्थित हूं ॥२९॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

कोई मनुष्य चाहे कितना ही दुराचारी क्यों न हो-परन्तु यदि वह अनन्य भक्त होकर मुझे भजता है, तो उसको श्रेष्ठ पुरुष ही मानना चाहिए, क्योंकि वह ठीक २ उद्योग कर रहा है ॥३०॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

हे कौन्तेय ! ऐसा मनुष्य, शीघ्र ही महात्मा बन जाता है और शान्ति प्राप्त कर लेता है। हे अर्जुन ! तुम खूब अच्छी तरह जान लो, कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता है ॥३१॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
किं पुनर्ब्राह्मणा पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।

हे पार्थ ! जो पाप-योनि चण्डालादि और सामान्य योनि स्त्री, वैश्य और शूद्र मेरा आश्रय ग्रहण करते हैं, वे भी परम पद को पा लेते हैं। फिर पवित्र ब्राह्मण और भक्त क्षत्रियों का तो कहना ही क्या है ॥३२॥

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगोनामनवमोऽध्यायः पर्वणि तु त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

हे अर्जुन ! यह लोक, अनित्य, असुखकारी है, तू इसको प्राप्त करके मेरा भजन कर तू। मुझमें ही मन लगा, मेरा ही भक्त बन, मेरे निमित्त ही यजन और मुझे ही नमस्कार कर। जो मुझ में परायण होकर अपनी आत्मा को रोक लेता है, वह मुझे ही प्राप्त कर लेता है ॥३३-३४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में नौवां अध्याय) भगवद्गीतापर्व में तेतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ

चौतीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

दसवां अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाबाहो ! अर्जुन ! तुम फिर मेरे वचनों को सुनो, जो मैं प्रीति रखनेवाले तुझ शिष्य की हित कामना से कहने वाला हूं ॥१॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥

मेरी उत्पत्ति को देव या महर्षि भी नहीं जानते हैं, क्योंकि मैं सारे देव और महर्षियों का आदि कारण हूं ॥२॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

जो मुझ अज, अनादि, लोक के महेश्वर को जानते हैं, मनुष्यों में ज्ञानी हैं तथा वे सब पापों से छुटकारा पा लेते हैं ॥३॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥४॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।

भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

बुद्धि, ज्ञान, मोह का अभाव, क्षमा, सत्य, इन्द्रियों का दम, मन का विजय, सुख, दुःख, उत्पत्ति, नाश, भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, यश, अप-यश, आदि अनेक प्राणियोंके पृथक् भाव मुझसे ही उत्पन्न होते हैं ॥४-५॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।

मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

पूर्वज, सप्त महर्षि, चार मनु, मेरे ही मानसिक भाव अर्थात् मानस सृष्टि हैं, जिनसे इस लोकमें यह सारी प्रजा उत्पन्न हुई है ।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः

सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥७॥

जो मेरी इस विभूति और योग (विस्तार करने की शक्ति) को तत्व-पूर्वक जानते हैं, वे सदा स्थायी रहने वाले कर्म-योग से युक्त हो जाते हैं—इसमें सन्देह नहीं है ॥७॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।

इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥

मैं सब का उत्पत्ति स्थान हूँ, मुझसे ही सारी सृष्टि उत्पन्न होती है । इस प्रकार मानकर बुद्धिमान भाव-पूर्वक मेरी ही भक्ति करते हैं ॥८॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥९॥

मुझ में चित्त लगाने तथा मुझ में ही प्राणों के निवेश करने वाले एवं परस्पर एक दूसरे को मेरा तत्व बताने वाले और मेरा कीर्तन करने वाले ही नित्य सन्तुष्ट रहकर आनन्दमें रहते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥

सदा से योग में लीन रहने वाले और मुझे प्रीति-पूर्वक भजने वाले, मुमुक्षुओं को मैं ऐसा बुद्धि-योग प्रदान करता हूं, जिससे वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं ॥१०॥

तेषामेवाऽनुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

हे अर्जुन ! मैं ऐसे मोक्षके इच्छुक जनों पर अनुकम्पा करने के लिए अपने स्वरूप में स्थित हुआ, देदीप्यमान ज्ञान के दीपक से उनका अज्ञान से उत्पन्न अन्धकारको नष्ट कर देता हूं ॥११

अर्जुन उवाच—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

अर्जुन बोले—हे भगवन्! आप परब्रह्म, परमधाम, परम-पवित्र, सनातन दिव्य पुरुष, आदिदेव, अज और सर्वव्यापक हो। इस बात को सारे ऋषि, देवर्षि नारद, असित, देवल और व्यास भी ऐसा ही कहते हैं तथा आप स्वयं ऐसा कह रहे हैं ॥१२-१३॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
नहि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

हे केशव! आप जो मुझसे कह रहे हैं, मैं सबको सत्य मानता हूं। हे भगवन! आपके स्वरूप को देव और दानवों में कोई नहीं जानता है ॥१४॥

स्वयमेवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥
वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

हे पुरुषोत्तम! भूतभावन! प्राणियों के स्वामी! देवों के देव! जगत्पते! तुम अपने स्वरूप को आप ही जानते हो। तुम अपनी विभूतियों का आप ही वर्णन करो, जिनसे इन लोकों को व्याप्त करके आप स्थित हो ॥१५-१६॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

हे योगेश्वर ! तुम्हारा सर्वदा चिन्तन करता हुआ, मैं कैसे तुम्हारे स्वरूप को जान सकता हूं। हे भगवन् ! मैं तुम्हारा किन २ भावों में किस प्रकार चिन्तन करूँ ॥१७॥

विस्तरेणाऽऽत्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नाऽस्ति मेऽमृतम् ॥१८

हे जनार्दन ! तुम अपने सृष्टि विस्तार के कारण योग और अपनी विभूतियों का विस्तार से फिर वर्णन करो। इस अमृत कथा के सुनने से मुझे तृप्ति नहीं होती है ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच—

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नाऽस्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥

श्रीभगवान् बोले—हे कुरुश्रेष्ठ ! मैं तुम्हें अपनी दिव्य प्रधान २ विभूतियों को बड़े प्रेम से सुनाता हूँ। यदि मैं विस्तार करने लगूंगा-तो उनका अन्त ही नहीं होगा ॥१९॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

हे गुडाकेश ! समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा मैं ही हूं। मैं ही प्राणियों का आदि, मध्य और अन्त हूं ॥२०॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चाऽस्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

रुद्राणां शङ्करश्चाऽस्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चाऽस्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चाऽस्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

हे अर्जुन ! मैं देवों में विष्णु प्रकाशमान, पदार्थों में किरण-धारी सूर्य, वायुओं में मरीचि नामक वायु, नक्षत्रों में चन्द्रमा, वेदों में सामवेद, ऐश्वर्यशालियों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन, प्राणियों में चेतना, रुद्रों में शङ्कर, यक्ष रक्षों में कुबेर, वसुओं में पावक, पर्वतों में मेरु पर्वत हूं और पुरोहितों में मुख्य पुरोहित मुझे बृहस्पति समझो । मैं सेनापतियों में स्कन्द, जलाशयों में समुद्र,

महर्षियों में भृगु, वाक्यों के मध्य में एक अक्षर, (प्रणव) यज्ञों में जप-यज्ञ, स्थावरों में हिमालय, सब वृक्षों में अश्वत्थ, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में कपिलमुनि हूं और अश्वों में समुद्र से उत्पन्न उच्चैश्रवा अश्व मुझे ही समझो। मैं ही उत्तम २ हाथियों में ऐरावत, नरों में नराधिप, शस्त्रों में वज्र और धेनुओं में कामधेनु हूं। सन्तानोत्पादक कामदेव तथा सर्पों में वासुकि नागराज मैं ही हूं ॥२१-२८॥

अनन्तश्चाऽस्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चाऽस्मि यमः संयमतामहम् ॥२६॥
प्रह्लादश्चाऽस्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।
पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चाऽस्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥३१॥
सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाऽहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

हे अर्जुन ! नागों में शेष नाग, जल के निवासियों में वरुण, पितरों में अर्यमा और दण्ड देने वालों में यमराज, दैत्यों में प्रह्लाद, गिनती करने वालों में काल, मृगों में मृगेन्द्र, पक्षियों में गरुड़, पवित्र करने वालों में पवन, शस्त्रधारियों में परशुराम, मछलियों में मकर, नदियों में गङ्गा तथा सृष्टि का आदि, मध्य और

अन्त एवं विद्याओं में अध्यात्म-विद्या और वाद कराने वालों में मूर्तिमान् मैं ही हूं ॥२६-३२॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाऽक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ॥३३॥

अक्षरों में अकार और समासों में द्वन्द्व समास मैं हूं तथा मैं ही अक्षय काल और सब ओर फैला हुआ, सबका रचयिता हूं ॥३३॥

मृत्युः सर्वहरश्चाऽहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥३४

मैं ही सब का संहार करने वाला मृत्यु, उत्पन्न होने वालों का उत्पत्ति स्थान एवं मैं ही स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ ॥३४॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥
द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६

सामवेद में बृहत्साम और छन्दों में गायत्री छन्द मैं ही हूं । मैं ही मासों में मार्गशीर्ष, (मगशिर) ऋतुओं में बसन्त, छलने वालों में द्यूत और तेजस्वियों में तेज हूं । मैं ही विजय-शीलों का विजय, उद्योग-शीलों का उद्योग और सत्व (बल) धारियों का सत्व हूँ ॥३५-३६॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥३७॥
दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवाऽस्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

वृष्णिवंशजों में वासुदेव, पाण्डवों में धनञ्जय, मुनियों में व्यास, कवियों में शुक्राचार्य, दमन करने वालों में दण्ड, विजयाभिलाषियों में नीति गुप्त बात रखने वालों में मौन, ज्ञानियों में ज्ञान मैं ही हूँ ॥३७-३८॥

यच्चाऽपि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३९॥
नाऽन्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०॥

हे अर्जुन ! जो सब प्राणियों का बीज है, वह मैं हूं । इस चराचर भूत समूह में कोई स्थान मुझसे शून्य नहीं हैं । हे परन्तप ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है । यह तो मैंने विभूतियों के स्थूल २ नाम गिनाए हैं ॥३९-४०॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवाऽवगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥४१॥

जो २ पदार्थ, विभूतिधारी, शोभा से संयुक्त और उत्कृष्ट गुणधारी है, उसे तुम मेरे ही अंश से उत्पन्न हुआ जानो ॥४१॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवाऽर्जुन ।
विष्टभ्याऽहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नामदशमोऽध्यायः॥१०॥पर्वणितुचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

हे अर्जुन ! अधिक कहने की क्या आवश्यकता है। मैं सारे विश्व को एकांश से व्याप्त करके स्थित हूँ ॥४२॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में दशवां अध्याय) भगवद्गीतापर्व में विभूति-योग का चौतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ



पैंतीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

ग्यारहवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

अर्जुन बोले–हे भगवन्! मुझ पर अनुग्रह करके आपने अत्यन्त गोपीनीय अध्यात्म-विद्या का उपदेश किया। इस विषय में जो आपने वचन कहे हैं, उनसे मेरा मोह नष्ट हो गया है।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाऽव्ययम् ॥२॥

हे कमललोचन! तुमसे जो प्राणियों की उत्पत्ति और संहार होता है, वह भी मैंने विस्तार के साथ सुना तथा तुम्हारे अविनाशी माहात्म्य को भी जान लिया है ॥२॥

एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

हे परमेश्वर! आपने आत्म-तत्व के विषय में जो कुछ कहा-वह बिल्कुल सत्य है। हे पुरुषोत्तम! अब तो मैं तुम्हारे ऐश्वर्यशाली प्रत्यक्ष रूप को देखना चाहता हूँ ॥३॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयाऽऽत्मानमव्ययम् ॥४॥

हे प्रभो! यदि तुम यह मानते हो-कि मैं तुम्हारे उस रूप को देख सकता हूं, तो हे योगेश्वर! अब आप अपने उस अविनाशी रूप को मुझे दिखाइये ॥४॥

श्रीभगवानुवाच—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ ! अब तुम मेरे सैकड़ों हजारों अनेक वर्ण और आकृति धारी, नाना भाँति के दिव्य रूपों को देखो ॥५॥

पश्याऽऽदित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याऽऽश्चर्याणि भारत ॥६॥

हे भारत ! तुम मेरे शरीर में आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, मरुत् आदि देवों को तथा अन्य बहुत से पूर्व में नहीं देखे हुए आश्चर्यों को देखो ॥६॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याऽद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चाऽन्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

हे गुडाकेश ! अर्जुन ! इस मेरे शरीर में इकट्ठे ही सम्पूर्ण चराचर जगत् के दर्शन कर लो या अन्य जो कुछ देखना चाहते हो-वह भी देख लो ॥७॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

तुम इन संसारी आंखों से मेरे स्वरूप को नहीं देख सकते हो। अब मैं तुमको दिव्य नेत्र प्रदान करता हूं, उससे तुम मेरे ऐश्वर्य-मय योग को देखो ॥८॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! महा योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने इतना कहकर अपना ऐश्वर्यमय परम रूप अर्जुन को दिखलाया।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

इस रूप में अनेक मुख और नेत्र थे। इसमें अनेक अद्भुत २ देखने योग्य दृश्य दिखाई दे रहे थे। अनेक दिव्य आभरण और अनेक उठे हुए दिव्य शस्त्रों से यह रूप युक्त था। उस स्वरूप में नाना प्रकार की दिव्य मालाएँ और दिव्य गन्धों का अनुलेपन था। समस्त आश्चर्यों से युक्त, सब दिशाओं में मुख किय हुए, अनन्त प्रकाशमान, दिव्य रूप के अर्जुन ने दर्शन किए ॥१०-११॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

अन्तरिक्ष लोक में यदि सहस्रों सूर्यों की आभा एक साथ उठ खड़ी हो, तो उस महात्मा, योगेश्वर श्रीकृष्ण के इस रूप की कान्ति से समानता हो सकती है ॥१२॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

उस रूप में इकट्ठा ही सारा विश्व दिखाई दे रहा था, जो अनेक रूपों में विभक्त था। पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने देवों के देव श्रीकृष्ण के शरीर में यह सब कुछ देखा ॥१३॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

यह देखकर अर्जुन आश्चर्य में भर गया और उसके शरीर के रोमाञ्च खड़े हो गए। इसने हाथ जोड़ और शिर नवाकर भगवान् कृष्ण को प्रणाम किया और कहा ॥१४॥

अर्जुन उवाच—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥

अर्जुन बोले—हे देव ! मैं आपके देह में सारे देव, सम्पूर्ण विशेष २ भूतों के समूह, कमलासन पर स्थित, ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा, सारे ऋषि, दिव्य उरग आदि देव जाति विशेषों को देख रहा हूं।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नाऽन्तं मध्यं न पुनस्तवाऽऽदिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥

हे विश्वेश्वर ! मैं अनेक बाहु, उदर, मुख और नेत्रधारी सब ओर दिखाई देने वाले आपके अनन्तरूप को देख रहा हूँ। हे विश्वरूप ! मुझे तो आपका आदि, मध्य और अन्त का कुछ पता नहीं चलता है ॥१६॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥

हे भगवान् ! मुकुट, गदा, चक्र आदि धारण किये हुए, तेज से समन्वित, सब ओर से देदीप्यमान, चमकते हुए अग्नि, सूर्य की कान्तिधारी, आँखों को चुंधिया देने वाला, अचिन्त्य आपका रूप मैं देख रहा हूं ॥१७॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

तुम्हें परम अविनाशी तत्व समझना चाहिए । तुम ही इस सारे विश्व के परम निधि रूप हो । मुझे तो तुम अविनाशी, सनातन धर्म के रक्षक, सनातन पुरुष प्रतीत होते हो ॥१८॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥

आपका आदि, मध्य और अन्त कुछ भी नहीं है । आपका अनन्त पराक्रम, अनन्त बाहु और शशि सूर्यधारी यह विराट् रूप है । इस समय प्रदीप्त अग्नि के सदृश मुखधारी, अपने तेज से समस्त विश्व को तपाते हुए आपके स्वरूप को मैं देख रहा हूं ।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥

आकाश और पृथिवी का मध्य भाग तथा सारी दिशाएँ तुम अकेले ने व्याप्त कर रखी हैं । हे महात्मन् ! तुम्हारे इस अद्भुत, उग्र रूप को देखकर त्रिलोकी कांप उठी है ॥२०॥

अमी हि त्वा सुरसङ्घाविशन्तिकेचिद्भीताःप्राञ्जलयोगृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वामहर्षिसिद्धसङ्घाःस्तुवन्तित्वांस्तुतिभिःपुष्कलाभिः

यह सारा देवों का समूह आपके स्वरूप में प्रविष्ट हो रहा है। कोई भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपकी स्तुति करते हैं। महर्षि और सिद्धों का संघ, स्वस्ति शब्द का उच्चारण करते बहुत सी स्तुतियों से तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥२१॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥

रुद्र, आदित्य, वसु, सारे साध्य, अश्विनी कुमार, मरुत, ऊष्मपा पितर, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्धों का समूह, ये सारे चकित होकर आपको देख रहे हैं ॥२२॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाऽहम् ॥

हे महाबाहो! बहुत से मुख, नेत्र, बाहु, ऊरु, चरण, उदर, कराल-दंष्ट्रा-मय रूप को देखकर सारे लोग व्याकुल हो रहे हैं ॥२३

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिंनविन्दामिशमंचविष्णो

हे विष्णो! आकाश को छूने वाला, प्रदीप्त, अनेक वर्णधारी, मुख खोले हुए, विशाल नेत्रों से संयुक्त, आपको देखकर मैं भीतर ही भीतर भयभीत हो गया हूँ और मुझे धैर्य तथा शान्ति प्राप्त नहीं होती है ॥२४॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

हे देवेश ! आपके मुख में भयङ्कर दंष्ट्राएँ हैं, जो कालाग्नि के सदृश दिखाई दे रही हैं। इनको देखकर न तो मुझे दिशाओं का ज्ञान रहा है और न मुझे कुछ चैन पड़ता है। हे जगदाधार ! आप प्रसन्न हो जाइए ॥२५॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवाऽवनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ सहाऽस्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥

अपने साथी राजाओं के साथ ये सारे धृतराष्ट्र-पुत्र एवं हमारे मुख्य २ योद्धाओं के साथ भीष्म, द्रोण और सूत-पुत्र, कर्ण आपके भयानक और कराल दंष्ट्राओं से चमकीले मुख में बड़ी शीघ्रता से प्रविष्ट हो रहे हैं। इनमें बहुत से तुम्हारे दाँतों के मध्य में चूर्णित मस्तक हुए दिखाई दे रहे हैं ॥२६-२७॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाऽभिमुखा द्रवन्ति ।
तथातवाऽमी नरलोकवीरा विशन्तिवक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥

जैसे—नदियों के बहुत जल के प्रवाह समुद्र की ओर दौड़ते हैं, उसी भाँति ये नरवीर, तेरे प्रज्वलित मुख में बड़े वेग से घुसे जा रहे हैं ॥२८॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवाऽपि वक्त्राणि समृद्धवेगाः

जैसे—बड़े वेग से नाश होने के लिए पतङ्ग, प्रदीप्त अग्नि में प्रविष्ट होते हैं, उसी वेग से अपने नाश के लिए ये सारे लोक, आपके मुख में प्रविष्ट हो रहे हैं ॥२६॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥

आप सब ओर से समस्त लोकों को अपने जलते हुए मुख से ग्रसते हुए सबको चाट रहे हो । हे विष्णो ! अपने तेज से सारे जगत् को व्याप्त करके तुम्हारो उग्र चमक चारों ओर पड़ रही है ।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

हे देववर ! आप बताइए-तो सही-आप उग्र रूपधारी, सचमुच कौन हैं । आपको नमस्कार है-आप प्रसन्न हो जाइए । मैं तो तुम्हारे आद्य-रूप को जानना चाहता हूँ, परन्तु मुझे आपके विषय में कुछ भी पता नहीं चलता है ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपित्वानभविष्यन्तिसर्वेयेऽवस्थिताःप्रत्यनीकेषु योधाः ॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! लोकों का क्षय करने वाला बढ़ा चढ़ा काल मैं ही हूं । मैं लोकों के संहार के लिए ही प्रवृत्त

हुआ हूं। जो सामने की सेना में योद्धा खड़े हैं, उनमें कोई भी नहीं बच सकेगा। केवल तुम ही इस युद्ध में शेष रहोगे ॥३२॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशोलभस्व जित्वाशत्रून्भुङ्क्ष्वराज्यंसमृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥

अब तुम खड़े हो जाओ और यश प्राप्त करो। इन सारे शत्रुओं को जीत कर इस विशाल समृद्धिशाली राज्य का उपभोग प्राप्त करो। हे सव्यसाची ! अर्जुन ! ये राजा तो मैंने पूर्व से ही मार रखे हैं, तुम तो केवल मेरे निमित्त बन जाओ ॥३३॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठायुद्ध्यस्वजेतासिरणेसपत्नान्

हे अर्जुन ! द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्य वीर योधाओं को मैंने पूर्व से ही मार रखा है, अब तुम मारे हुए इन को मार लो-कोई चिन्ता न करो। तुम युद्ध करो-शत्रुओं को रणमें अवश्य जीत लोगे ॥३४॥

सञ्जय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाऽऽह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! भगवान् कृष्ण के इतने वचन सुनकर हाथ जोड़े हुए मुकुटधारी अर्जुन काँपने लगा और वह भयभीत होकर प्रणाम-पूर्वक फिर गद्गद वाणी से श्रीकृष्ण से कहने लगा ॥३५॥

अर्जुन उवाच--

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः

अर्जुन ने कहा—हे हृषीकेश ! आपके कीर्तन से जगत् प्रसन्न और सन्तुष्ट होता है-यह ठीक ही है । ये सारे यक्ष रक्ष भयभीत होकर इधर उधर दिशाओं को भाग रहे हैं और सारे सिद्ध संघ प्रणाम कर रहे हैं ॥३६॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥

हे महात्मन् ! ब्रह्मा के भी आदि कर्ता, गौरवशाली आपको क्यों न नमस्कार किया जावे । हे देवेश ! आप अनन्त और जगत् के आधार हो । तुम अविनाशी और सत् असत् से परे हो ॥३७

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

तुम सनातन पुरुष, आदि देव हो । तुम ही इस विश्व के परम निधान (धारण करने वाले) हो । हे अनन्त रूप ! तुम जानने योग्य वस्तु के जानने वाले परमधाम हो । तुमने ही इस सारे विश्व को रचा है ॥३८॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

तुम ही वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति, प्रपितामह हो। आपको सहस्रों बार नमस्कार है और फिर नमस्कार के अनन्तर नमस्कार है ॥३६॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥

आपको आगे और पीछे से नमस्कार प्राप्त हो तथा सब ओर से नमस्कार स्वीकार हो। तुम्हारी अनन्त सामर्थ्य और पराक्रम है। तुम सर्वत्र व्यापक तथा सब विश्व तुम्हारा ही रूप है ॥४०॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तंहे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वाऽपि॥

हे कृष्ण! हे यादव! हे सखा! मैंने तुमको अपना सखा जानकर जो इस प्रकार कुछ वाचालता में कह दिया, वह सब कुछ आपकी महिमा न जानकर प्रमाद या प्रेम से कहा है ॥४१॥

यच्चाऽवहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥

हे अच्युत! जो कुछ हँसी में विहार, शय्या और बैठने उठने में आपका एक भी अनादर ज्ञान या अज्ञानमें हो गया हो, उसकी मैं अचिन्त्य शक्ति आपसे क्षमा याचना करता हूं ॥४२॥

पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकःकुतोऽन्योलोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव

तुम इस चराचर सृष्टि के उत्पादक या पालक तथा इस लोक के गौरवशाली पूज्य गुरु हो। ब्रह्माण्ड में तुम्हारे तुल्य जब कोई नहीं है, तो अधिक कहां से हो सकता है। आप त्रिलोकी में अतुल प्रभाव के धारण करने वाले हो ॥४३॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायाऽर्हसि देव सोढुम्

हे केशव! मैं शरीर को आपके सन्मुख डालकर साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूं और सबके ईश्वर, पूज्य आपको प्रसन्न करना चाहता हूं। पुत्र के अपराध को पिता, मित्र के अपराध को मित्र एवं प्रिय जनों के अपराधों को प्रियजन सह लेते हैं, ऐसे ही आप मेरे अपराध को सहन करें ॥४४॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

हे देव! मैंने आपका जो रूप कभी नहीं देखा, उसको देखकर मैं रोमाञ्चित हो रहा हूं और भय से मेरा मन व्यथित हो रहा है। हे जगत् में निवास करने वाले, देवेश! आप प्रसन्न होकर मुझे तो अब अपना प्रथम ही रूप दिखाइए ॥४५॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

हे विश्वमूर्ते! अब तो मैं पूर्ववत् मुकुट, गदा और चक्रधारी आपके स्वरूप के देखने की अभिलाषा करता हूं। हे सहस्रबाहो! आप तो अब अपने पूर्व रूप को ही प्राप्त करके चतुर्भुज हो जाइये।

श्रीभगवानुवाच—

मया प्रसन्नेन तवाऽर्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! मैंने तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर अपनी योगमाया से यह उत्कृष्ट रूप तुमको दिखाया है। जिसको तुम्हारे अतिरिक्त अभी तक किसी ने नहीं देख पाया। जो तेजोमय, विश्वरूप, अनन्त और सबका आदि है ॥४७॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

हे कुरुप्रवीर ! वेद, यज्ञ, अध्ययन, दान, क्रिया और उग्रतप से भी संसार में मेरे इस रूप को कोई नहीं देख सकता है। तुम ही मेरे अनुग्रह के कारण इस रूप के देखने में समर्थ हुए हो ॥४८॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वारूपंघोरमीदृङ् ममेदम्
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥

मेरे इस घोर भयानक रूप को देखकर तुमको व्यथा और मोह भाव प्राप्त नहीं होना चाहिए। अब तुम भय का त्याग करके प्रसन्न चित्त वाले हो जाओ और मेरे उसी पूर्व के रूप को देखो।

सञ्जय उवाच—

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा

सञ्जय बोले—हे राजन्! वासुदेव श्रीकृष्ण ने अर्जुन से इतना कह कर फिर उसको अपना पूर्वरूप दिखाया। इस महात्मा ने फिर सौम्य शरीर धारण करके इस भयभीत अर्जुन को आश्वासन दिया ॥५०॥

अर्जुन उवाच—

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

अर्जुन ने कहा—हे जनार्दन! आपके इस सुन्दर मानुष रूप को देखकर अब मैं सचेत और अपनी प्रकृति को प्राप्त हो गया हूं

श्रीभगवानुवाच—

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥५२॥

श्रीकृष्ण कहने लगे—हे अर्जुन! जो बड़ी कठिनता से देखने में आ सके-ऐसे इस मेरे रूपको तुमने देखा है। देवता भी मेरे इस रूपके दर्शन के लिए नित्य अभिलाषी रहते हैं ॥५२॥

नाऽहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

हे पार्थ! जिस प्रकार तुमने मेरे स्वरूप को देख लिया, उस प्रकार मेरे स्वरूप को कोई भी वेद, तप, दान और यज्ञ-याग द्वारा भी देखने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥५३॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥५४॥

हे अर्जुन! मेरे इस स्वरूप को तो कोई २ भक्त अनन्य भक्ति द्वारा ही ठीक २ जान और देख सकता है। हे परन्तप! अनन्य भक्ति द्वारा ही पुरुष मुझमें प्रवेश करने में समर्थ होता है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनं नामैकादशोऽध्यायः ।११। पर्वणि तु पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

हे पाण्डव! जो मुझे अर्पण करके सम-बुद्धि से कर्म करता है, मेरा ही सर्वदा ध्यान रखता है और विषयों की आसक्ति छोड़कर मेरा भक्त होता है एवं जो समस्त प्राणियों में वैर-हीन है, वही मुझे प्राप्त कर सकता है ॥५५॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में ग्यारहवां) भगवद्गीतापर्व में विश्वरूप दर्शन का पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

——***——

छत्तीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

बारहवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाऽप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

अर्जुन बोले—हे भगवन्! इस प्रकार जो सर्वदा योग-युक्त होकर भक्त तुम्हारी उपासना करते हैं तथा जो अविनाशी अव्यक्त (मूर्तिरहित) ब्रह्म की उपासना करते हैं, उनमें कौन सत्य तत्व का ज्ञाता (योगी) है? ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! मुझ में मन को अर्पण करके जो भक्त साम्य बुद्धि द्वारा उत्कृष्ट श्रद्धा के साथ मेरी उपासना करते हैं, वे ही सच्चे योगी (कर्म-योगी) हैं ॥२॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

जो अविनाशी, इन्द्रियों से जानने में नहीं आने वाले, अव्यक्त, (अप्रकट) सर्व व्यापक, अचिन्त्य, (विचार में नहीं आने वाले) कूटस्थ, अचल और निश्चल तत्व ब्रह्म की उपासना करते हैं और सर्वत्र सम-बुद्धि होकर इन्द्रिय समूह को रोके रखते हैं, जो समस्त प्राणियों के हित में तत्पर हैं, वे आत्मज्ञानी भी मुझे ही प्राप्त करते हैं ॥३-४॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

जो अव्यक्त ब्रह्म में अपना चित्त लगाते हैं, उनको अधिक कठिनाई उठानी पड़ती है, क्योंकि देहधारियों को अव्यक्त गति का प्राप्त करना बहुत ही दुःखदायी है ॥५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

हे पार्थ ! जो पुरुष, सारे कर्मों को मुझ में अर्पण करके, मुझ में लीन होकर अनन्य-योग द्वारा मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उनका मैं मृत्युमय संसार सागर से बहुत शीघ्र उद्धार करने वाला होता हूं, क्योंकि उन्होंने अपने चित्त को मुझमें निविष्ट कर दिया है ॥६-७॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

तुम मुझ में ही मन को लगाओ और मुझ में ही बुद्धि को प्रविष्ट करो । इसके अनन्तर तुम मुझमें ही निविष्ट हो जाओगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥८॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाऽऽप्तुं धनञ्जय ॥९॥

हे धनञ्जय ! यदि तुम मुझ में अपने चित्त को स्थिर करने में समर्थ नहीं हो, तो अभ्यास के साथ मुझे प्राप्त करने की इच्छा करो

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

हे अर्जुन ! यदि तुम मन को वश में करने के अभ्यास में भी असमर्थ हो-तो मेरे अर्पण करके कर्मों को करो । मुझ में अर्पण करके कर्म करते हुए भी शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त कर लोगे ॥१०

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

यदि इस प्रकार करने में भी असमर्थ हो-तो मेरे निष्काम कर्म-योग का आश्रय करके सब कर्मों के फलों का जितेन्द्रियता के साथ त्याग करो ॥११॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

मन के वश में करने के अभ्यास से ज्ञान-योग उत्तम है। ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान से सब कर्मों के फलों का त्याग और इसके अनन्तर त्याग से शान्ति प्राप्त होती है ॥१२॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

समस्त प्राणियों से द्वेष नहीं करने वाला, सबसे मित्रता और सब पर दयाभाव रखने वाला ममता और अहंकार से हीन, सुख दुःख में समभाव, क्षमावान्, सर्वदा सन्तुष्ट रहने वाला, जितेन्द्रिय, दृढ़निश्चयी, योगी, मेरा भक्त और प्रिय है, क्योंकि उसने अपना मन और बुद्धि मुझ में समर्पित कर दी हैं ॥ १३-१४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

जिससे संसार को उद्वेग या क्लेश नहीं होता है एवं जो संसार से उद्वेग या क्लेश नहीं मानता। हर्ष, शोक, भय आदि के वेग से जो मुक्त है, वही मेरा प्रिय है ॥ १५ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

सब प्रकार की आकांक्षाओं से रहित, शुचि, चतुर, विषयों से उदासीन, शोकहीन, सब कर्मों के फलों का परित्यागी पुरुष, मेरा भक्त और प्रिय है ॥ १६ ॥

योन हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जो न तो प्रिय वस्तु को पाकर हर्षित होता है, न अप्रिय से द्वेष करता है, न अप्राप्त प्रिय वस्तु का शोक करता है और न किसी वस्तु की अभिलाषा करता है, ऐसा शुभ अशुभ कर्मोंका परित्यागी भक्तिमान् पुरुष मेरा प्रिय भक्त है ॥ १७ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

शत्रु और मित्र, मान और अपमान तथा शीतोष्ण और सुख दुःख में जो सङ्ग रहित समभाव से स्थित होता है एवं निन्दा और प्रशंसा को जो समान मानता है। जो कुछ प्राप्त हो, उसी से सन्तुष्ट, मौनभाव में रहने वाला, गृह आदि के परिग्रह से हीन, स्थिरबुद्धि, भक्तिवान् पुरुष मेरा प्रिय-भक्त है ॥ १८-१९ ॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्धाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णाऽर्जुन संवादे यज्ञविभागयोगो नाम द्वादशोऽध्याय ॥४॥पर्वणि तु षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

धर्म से उत्पन्न होने वाले, इस अमृत का मेरे कथनानुसार जो श्रद्धावान् मेरे आश्रित होकर ठीक २ सेवन करते हैं, वे मेरे परम प्रिय भक्त हैं ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में बारहवां अध्याय)भगवद्गीतापर्व में यज्ञविभागयोग का छत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



सैंतीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

तेरहवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥१॥

अर्जुन बोले-हे केशव! अब मैं प्रकृति और पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञान और ज्ञेय-इनको जानना चाहता हूं ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले-हे कौन्तेय ! यह शरीर क्षेत्र कहलाता है और इसका जानने वाला आत्मा है, वह क्षेत्रज्ञ है-ऐसा इस विषय के जानने वाले विद्वान् मानते हैं ॥१॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

हे भारत ! सम्पूर्ण शरीरों में मैं ही क्षेत्रज्ञ हूं । जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान है, मैं इसे ही ज्ञान मानता हूं ॥२॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्

स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥३॥

वह क्षेत्र, क्या और किस प्रकार का है । क्या इसमें विकार है, किससे क्या हो जाता है । इसका क्षेत्रज्ञ कौन है और उसका प्रभाव क्या है-यह सब कुछ तुम संक्षेप में श्रवण करो ॥३॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के स्वरूप को ऋषियों ने पृथक् २ अनेक छन्दों तथा भ्रम-रहित हेतुओं से युक्त ब्रह्म-सूत्रों के पदों द्वारा वर्णित किया है ॥४॥

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥५॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

पञ्च महाभूत, अहङ्कार, बुद्धि, प्रकृति, दश इन्द्रियाँ एक मन, शब्द आदि पांचों इन्द्रियों के विषय-ये चौबीस तत्व इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, देहेन्द्रियों का मेल, प्राणों का व्यापार, धैर्य-यह विकार-सहित क्षेत्र का वर्णन किया जाता है ॥५-६॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥
मयि चाऽनन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

मान और दम्भ का त्याग, अहिंसा, क्षमा, नम्रता, गुरुसेवा, पवित्रता, स्थिरता, मन का निग्रह, इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में वैराग्य, अहङ्कार का अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःखों

का दोषानुदर्शन, कर्मों में अनासक्ति, पुत्र, स्त्री और गृह आदि में मोह का अभाव, प्रिय और अप्रिय वस्तु की प्राप्ति में एक भाव, अनन्य योग के साथ मुझ में दृढ़ भक्ति, एकान्त-सेवन, जन समूह से विरक्ति, अध्यात्म ज्ञान में निष्ठा, तत्वज्ञान का विचार-यह सब कुछ ज्ञान है और इससे विपरीत अज्ञान कहाता है ॥११

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥

अब मैं ज्ञेय बताता हूं, जिसको जानकर पुरुष अमृत (मोक्ष) प्राप्त करता है। वह अनादि परब्रह्म है, जिसे सत् न और न असत् ही कहा जा सकता है अर्थात् जहां वाणी का व्यापार नहीं जा सकता है। उस परब्रह्म के सब ओर हाथ, पैर, आंख, शिर और मुख एवं कान हैं, वह सब को घेरकर स्थित है ॥१२-१३॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चाऽन्तिके च तत् ॥१५

वह ब्रह्म, सब इन्द्रिय और उनके गुणों का प्रकाशक होकर भी सब इन्द्रियों के बन्धनों से मुक्त है। वह सबसे पृथक् होकर भी सबका आधार है। वह गुणों से रहित होकर भी गुणों

का उपभोग करता है अर्थात् सगुण होता है। यह सब भूतों (प्राणियों) और चर अचर सृष्टि के बाहर और भीतर स्थित है। ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म है, अतएव अविज्ञेय है। वह दूर और निकट है ॥१४-१५॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६॥

वह (आत्मा) भूतों में व्याप्त है, परन्तु पृथक् सा स्थित है। वह प्राणियों का धारण करने वाला तथा संहार कर्ता और रचने वाला है ॥१६॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥१७॥
इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

यह (ब्रह्म) सूर्यादि ज्योतिष्मान् पदार्थों को भी ज्योतिः देने वाला, अन्धकार से दूर है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञान से जानने योग्य वही है, जो सबके हृदय में स्थित है। इस प्रकार मैंने क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय आदि का संक्षेप में वर्णन कर दिया है। जो मेरा भक्त इसको जान लेगा-वह मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जावेगा।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥१९॥

प्रकृति और पुरुष-ये दोनों अनादि हैं तथा विकार और गुणों को प्रकृति से उत्पन्न समझना चाहिए ॥१६॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥

कार्य कारण अर्थात् देह और इन्द्रियों के कर्तृत्व में प्रकृति हेतु है और सुख दुःख के भोगने में पुरुष कारण है ॥२०॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

पुरुष प्रकृति के भीतर स्थित होकर प्रकृति के गुणों का उपभोग करता है। गुणों के साथ पुरुष का संयोग होना-इसके अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण हो जाता है ॥२१॥

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाऽप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥२२॥

इस देह में जो परम पुरुष है, वही द्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता और महेश्वर है। इसी को परमात्मा कहा जाता है ॥२२॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥

जो इस प्रकार गुणों के सहित प्रकृति और पुरुष को जानता है, वह किसी भी अवस्था में विचरता हुआ फिर जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥२३॥

ध्यानेनाऽऽत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चाऽपरे ॥२४॥

कोई ध्यान से और कोई आत्मज्ञान से आत्मा का दर्शन करते हैं। कोई सांख्य-योग (ज्ञान-योग) तथा कोई कर्म-योग द्वारा आत्मा को देखता है ॥२४॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चाऽतितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥२५॥

कुछ पुरुष ऐसे भी हैं, जो उपर्युक्त बातों को न जानकर सुन सुनाकर मेरी उपासना में प्रवृत्त हो जाते हैं। ये यदि उत्तम प्रकार से सुनकर मेरी उपासना करने में प्रवृत्त हो जाते हैं, तो ये भी मृत्यु से पार हो जाते हैं ॥२५॥

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

हे भरतर्षभ! जो कुछ भी स्थावर-जङ्गम वस्तु समूह है, उनको तुम क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न समझो ॥२६॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

जो समस्त प्राणियों में समभाव से स्थित, परमेश्वर है, वह विनाशी वस्तुओं के मध्य में रहता हुआ भी उनके विनाश होने पर आप अविनाशी रहता है। जो इस ब्रह्म को देखता है, वही सच्चा देखने वाला है ॥२७॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८

सब स्थानों में परमात्मा को स्थित समझकर ज्ञानी सबको समभाव देखता है। जब अपने आप जिज्ञासु अपने आत्मा का हनन नहीं करता-तो फिर वह परमगति मोक्ष को पा लेता है ॥२८॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

जो पुरुष, सारे कर्मों को प्रकृति के किये हुए मानता है और अपने आत्मा को अकर्ता समझता है, वही सच्चा देखने वाला है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥३०॥

जब समस्त प्राणियों की भिन्नता को एक आत्मा में स्थित देखता है, इसी आत्म-तत्व से इसका विस्तार जानता है, तब ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है ॥३०॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

अनादि और निर्गुण होने से परमात्मा अविनाशी है। हे कौन्तेय ! वह शरीर के भीतर स्थित होकर भी न कुछ करता है और न कर्म बन्धनों में लिप्त होता है ॥३१॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्राऽवस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

यद्यपि आकाश सर्वव्यापी है, परन्तु सूक्ष्म होने से किसी भी वस्तु से लिप्त नहीं होता है, इसी भांति आत्मा भी सर्वत्र स्थित है, परन्तु वह किसी भी पाप-कर्म से लिप्त नहीं होता है।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

जिस तरह यह सूर्य सारे जगत् को अकेला ही प्रकाशित करता है। हे भारत! इसी तरह यह क्षेत्री (आत्मा) सारे क्षेत्र (शरीर) को प्रकाशित करता है ॥३३॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ पर्वणि तु सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद, भूतों के स्वभाव और मोक्ष के साधनों को जो जान लेते हैं, वे ही परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में तेरहवां अध्याय) भगवद्गीतापर्व में क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के विभाग का सैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

—※※※—

अड़तीसवां अध्याय
श्रीमद्भगवद्गीता
का
चौदहवां अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! इसके अनन्तर अब मैं ज्ञानों में सर्वोत्तम ज्ञान को कहता हूं, जिसको जानकर सारे मुनि परम-सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं ॥१॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥२॥

जो इस ज्ञान का आश्रय लेकर मेरे भाव को प्राप्त हो जाते हैं, वे सृष्टि के आरम्भ में जन्म और प्रलय में पीड़ित नहीं होते हैं अर्थात् आवागमन के चक्कर से छुट जाते हैं ॥२॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

हे भारत ! देश और काल की मर्यादा से मुक्त, जो प्रकृति है, वही मेरे बीज बोने का स्थान है । मैं उसमें ही सृष्टि-रचना

का गर्भ धारण करता हूँ। इसके अनन्तर सारे भूतों की उत्पत्ति होने लगती है ॥३॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

हे कौन्तेय! सब पशु पक्षी आदि की योनियों में जो मूर्तियां उत्पन्न होती हैं, उन सब का उत्पत्ति स्थान प्रकृति और मैं बीज बोने वाला पिता हूँ ॥४॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

हे महाबाहो! सत्व, रज और तम, ये प्रकृति से उत्पन्न गुण हैं। ये ही देह में स्थित अविनाशी आत्माको बांध सा बना लेते हैं

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चाऽनघ ॥६॥

इन गुणों में सत्वगुण निर्मल होने से प्रकाशक और अनामय (क्लेश रहित) है। हे अनघ! यह सुख और ज्ञान के सङ्ग से प्राणी को संयुक्त करता है ॥६॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥७॥

रजोगुण, रागात्मक है, जो तृष्णा के आसङ्ग से उत्पन्न होता है। हे कौन्तेय! यह कर्म के सङ्ग से प्राणी को बांध लेता है ॥७॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥

हे भारत ! तम अज्ञान से उत्पन्न होता है, जो सब मनुष्यों का मोहक है। यह प्रमाद, आलस्य, निद्रा से प्राणियों को संयुक्त करता है ॥८॥

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥९॥

हे भारत ! सत्वगुण, सुख (आत्मसुख) और रजोगुण कर्म में लगा देता है एवं तमोगुण, ज्ञान को ढक कर प्रमाद में लीन करता है ॥९॥

रजस्तमश्चाऽभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा ॥१०॥

हे भारत ! रज और तमको दबाकर सत्व की स्थिति होती है। सत्वगुण और तमोगुण को पृथक् करके रजोगुण और सत्व एवं रजोगुण को अभिभूत करके तमोगुण की स्थिति है ॥१०॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥११॥

जिस समय सारी इन्द्रियों में प्रकाश और ज्ञान उत्पन्न हो जावे, तो समझना चाहिए, कि अब सत्वगुण का उद्रेक (वृद्धि) है

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

हे भरतर्षभ ! लोभ, कर्मों में प्रवृत्ति, कर्मों का आरम्भ, कर्मों की अशान्ति, कर्मों की इच्छा-यह सब कुछ रजोगुण के बढ़ने पर होता है ॥१२॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३॥

हे कुरुनन्दन ! अन्धकार, किसी काम के नहीं करने में प्रवृत्ति, प्रमाद, मोह, ये सब तमोगुण के बढ़ने पर होते हैं ॥१३॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदांल्लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४॥

जब सत्वगुण की वृद्धि होती है और उस समय प्राणी का प्राण वियोग होता है, तो उत्तम तत्वों के जानने वाले देवों के निर्मल लोकों को वह प्राणी प्राप्त करता है ॥१४॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

रजोगुण के उद्रेक में मृत्यु पाने पर प्राणी, कर्म से प्राप्त होने वाले लोकों में पहुँचता है । इसी प्रकार तमोगुण में मरने से प्राणी मूढ़ योनियों (पशुओं) में जा फँसता है ॥१५॥

कर्मणः सुकृतस्याऽऽहुः सात्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

पुण्यकर्मों का सात्विक निर्मल फल माना गया है । रजोगुण का दुःख और तमोगुण का अज्ञान फल है ॥१६॥

सत्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।

प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

सत्वगुण से ज्ञान, रजोगुण से लोभ, तमोगुण से प्रमाद, मोह और अज्ञान होते हैं ॥१७॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥

सत्वगुण में स्थिति करने वाले ऊर्ध्वलोक, रजोगुणी मध्य लोक और तमोगुणी नीच वृत्ति के आचरण करने से अधो लोकों में जाते हैं ॥१८॥

नाऽन्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।

गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

जब पुरुष, प्रकृति के गुणों के अतिरिक्त आत्मा को कर्त्ता नहीं मानता है और आत्माको गुणों से पृथक् समझता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है ॥१९॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।

जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

देह में उत्पन्न होने वाले इन तीन गुणों का जो पुरुष उल्लंघन कर लेता है, वह जन्म, मृत्यु, जरा और दुःखों से छुटकारा पा कर मुक्त हो जाता है ॥२०॥

अर्जुन उवाच—

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चेतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

अर्जुन ने कहा—हे प्रभो ! जो इन तीन गुणों का अतिक्रमण कर जाता है, उसको किन लक्षणोंसे पहिचाना जा सकता है और उसके क्या आचरण हो जाते हैं एवं इन तीनों गुणों का किन उपायों से अतिक्रमण किया जा सकता है ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥२२॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥२४॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

श्रीभगवान् बोले—हे पाण्डव ! सत्व, रज और तम का क्रमसे प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह कार्य है, परन्तु जो इनके प्रवृत्त होने पर न द्वेष करता है और न निवृत्त होने पर प्राप्त करने की इच्छा करता है, जो बिल्कुल उदासीन होकर बैठा रहता है, इन गुणों से विचलित नहीं होता। गुण अपना कार्य कर रहे हैं, ऐसा जानकर

जो दुःख सुख नहीं मानता और कुछ भी चेष्टा नहीं करता है, अत्यन्त सन्तुष्ट रहकर मिट्टी और सुवर्ण को समान देखता है। जिसको प्रिय और अप्रिय वस्तु तुल्य प्रतीत होती है। जो धीर, निन्दा और स्तुति में एक सा रहता है। जो मान और अपमान, मित्र और शत्रु में समान भाव धारण करता है, ऐसा समस्त आरम्भों का परित्यागी मुमुक्षु पुरुष, गुणातीत कहाता है॥२२-२५॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥२६॥

जो अत्यन्त दृढ़ भक्ति योग से मेरी सेवा करता है, वह इन तीनों गुणों का अतिक्रमण करके ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है॥२६

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याऽव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥२७॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगोनामचतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥पर्वणितुअष्टत्रिंशोऽध्यायः

अमृत और अविनाशी ब्रह्म, शाश्वत धर्म, परमावधि के अत्यन्त सुख की स्थिति या अन्तिम स्थान मैं ही हूँ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में चौदहवां अध्याय) भगवद्गीतापर्व में गुणत्रय विभाग का अड़तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

उन्तालीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

पन्द्रहवां अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! एक अविनाशी अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष है, जिसका ऊपर की ओर मूल, जिसकी नीचे की ओर शाखा तथा वेद जिसके पत्ते हैं। जो इस वृक्ष को जान लेता है, वही वेद का जानने वाला है ॥१॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥

इस वृक्ष की नीचे ऊपर दोनों ओर शाखाएँ फैली हुई हैं। ये शाखाएँ सत्व, रज और तम आदि गुणों से बढ़ती हैं, रूप, रस आदि इन्द्रियों के विषयों से पल्लवित होती हैं। इस मनुष्य लोक में कर्म के अनुबँध से इसकी मूल (जटायें) ऊपर से नीचे की ओर चली गई हैं ॥२॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नाऽन्तो न चाऽऽदिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥

इस लोक में इसके रूप का ज्ञान बड़ा कठिन है। इसका आदि और अन्त तथा स्थिति का कुछ भी पता नहीं है। यह संसार रूपी अश्वत्थ के मूल बड़े दृढ़ हो रहे हैं। इनको तुम्हें अनासक्ति के शस्त्र से काट डालना चाहिए ॥३॥

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाऽऽद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥

इसके अनन्तर उस पद की खोज करो, जिसमें पहुँचने पर फिर नहीं लौटना पड़ता है। मैं तो उसी पुरातन पुरुष, ब्रह्म की शरण में प्राप्त होता हूँ, जिससे यह सारी अनादि सृष्टि उत्पन्न हुई है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

जिन्होंने मान और मोह छोड़ दिए हैं तथा इन्द्रियों के विषय आदि सङ्गों का परित्याग कर दिया है, जो अध्यात्म-ज्ञान में नित्य लगे रहते हैं, सारी कामनाओं को जिन्होंने भस्म कर डाला है, जो शीतोष्ण दुःख-सुख आदि द्वन्द्वों के क्लेशों की अपेक्षा (परवाह) नहीं करते हैं, वे ही अविद्या से रहित हुए ज्ञानी, उस अविनाशी मोक्ष को पाते हैं ॥५॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

उस पद (स्थान) को सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकता, क्योंकि वह तो स्वयं प्रकाश है, जिसमें पहुंच जाने लौटना नहीं पड़ता, वही मेरा परम धाम है ॥६॥

ममैवांऽशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥

हे अर्जुन ! इस सृष्टि में मेरा ही सनातन अंश जीव रूप में स्थित है । पांच इन्द्रियां और छठा मन—ये प्रकृति में स्थित हैं, इनको यह अपनी ओर खींच लेता है ॥७॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाऽप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाऽऽशयात् ॥८॥

जब यह ऐश्वर्यशाली जीवात्मा, किसी स्थूल शरीर में प्रवेश करता है या स्थूल शरीर से निकलता है, तो उस समय वायु जैसे पुष्पों में से गन्ध को ले जाता है, ऐसे ही यह भी इन छः इन्द्रियों और मन (लिङ्ग शरीर) को लेकर जाता है ॥८॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चाऽयं विषयानुपसेवते ॥९॥

यह मन, श्रोत्र, नेत्र, त्वचा, जिह्वा और नासिका का अवलम्बन करके विषयों का सेवन करता है ॥९॥

उत्क्रामन्तं स्थितं वाऽपि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नाऽनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥

मूर्ख लोग, मृत्यु के समय निकल कर जाते हुए, देह में स्थित तथा गुणों से युक्त होकर कर्म फलों के भोक्ता इस जीव को नहीं देख पाते हैं, परन्तु जिनके ज्ञान की आंखें हैं, वे सब कुछ जानते और देखते हैं ॥१०॥

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥११॥

जो योगी प्रयत्न करते हैं, वे आत्मा में स्थित इसको देखते हैं, परन्तु बुद्धि हीन मूढ़, प्रयत्न करने पर भी जीवात्मा का ज्ञान नहीं कर पाते हैं ॥११॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाऽग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१२॥

जो सूर्य में व्याप्त तेज सारे जगत को प्रकाशित करता है या चन्द्रमा और अग्नि में जो प्रकाश है, वह सब तेज मेरा ही है।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः १३॥

मैं पृथिवी में प्रविष्ट होकर अपने ओज से सारे भूत (प्राणियों) को धारण करता हूं और रसात्मक चन्द्रमा होकर मैं सारी औषधियों को पुष्ट करता हूं ॥१३॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥

मैं वैश्वानर अग्नि के रूप में प्राणियों के देह के भीतर स्थित हूं और प्राण तथा अपान से संयुक्त होकर खाद्य, पेय, चोष्य लेह्य-इन चारों प्रकार के अन्न को पचाता हूं ॥१४॥

सर्वस्य चाऽहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाऽहम् ॥१५॥

मैं सब के हृदय में प्रविष्ट हो रहा हूँ। मुझसे ही ज्ञान, स्मृति और इनका अपोहन (अभाव) भी होता है। मैं ही सारे वेदों से जानने योग्य हूं। वेदान्त का कर्ता और वेद का ज्ञाता भी मैं ही हूँ ॥१५॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाऽक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

इस लोक में दो प्रकार के पुरुष हैं, एक क्षर (विनाशी) और दूसरा अक्षर (अविनाशी)। इनमें ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सारे भूत-जात विनाशी और कूटस्थ आत्मा अविनाशी है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

इन दोनों से उत्कृष्ट पुरुष एक और है, जो परमात्मा कहाता है। यही अविनाशी ईश्वर, तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर सबका धारण-पोषण करता है ॥१७॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

मैं तो क्षर प्रकृति और अक्षर जीवात्मा-इन दोनों का अतिक्रमण कर चुका हूं। यही कारण है, कि लोक और वेद में मुझे पुरुषोत्तम कहा जाता है ॥१८॥

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

हे भारत ! जो आत्म-ज्ञानी मुझे पुरुषोत्तम समझ लेता है, वह सब कुछ ज्ञाता होकर सब भांति से मेरी ही उपासना करता है।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ।
एतद् बुध्वा बुद्धिमाँस्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः। पर्वणि तु ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः।३९

हे समस्त पापों से रहित! अर्जुन ! यह बड़ा ही रहस्यमय शास्त्र मैंने तुमको बताया है। हे भारत ! जो तुम इसको जान लोगे-तो आत्म-ज्ञानी होकर कृतार्थ हो जाओगे ॥२०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में पन्द्रहवां) भगवद्गीतापर्व में पुरुषोत्तम योग का उनतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।



चालीसवां अध्याय
श्रीमद्भगवद्गीता
का
सोलहवां अध्याय

श्रीभगवानुवाच—

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नाऽतिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

श्रीभगवान् बोले—हे भारत! निर्भयता, मन की शुद्धि, ज्ञान-योग में निष्ठा, दान, इन्द्रियों का विजय, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोधाभाव, त्याग, (दान) शान्ति, अपैशुन, (चुगली न करना) प्राणियों पर दया, लालच न करना, कोमलता, लज्जा, शीलता, चञ्चलता का अभाव, तेज क्षमा, धैर्य, पवित्रता, किसी भी प्राणी से द्रोह न करना, अपने को अधिक न मानना, ये गुण दैवी सम्पत्ति में उत्पन्न पुरुष को प्राप्त होते हैं ॥१-३॥

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाऽभिजातस्य पार्थ सम्पदमाऽसुरीम् ॥४॥

हे पार्थ ! पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध कठोरता और अज्ञान-ये बातें आसुरी सम्पत्ति धारण करने वाले पुरुष को प्राप्त होती हैं ॥४॥

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायाऽऽसुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥

दैवी सम्पत्ति मोक्ष देने वाली और आसुरी सम्पत्ति बन्ध का कारण है। हे पाण्डु-पुत्र अर्जुन ! चिन्ता न करो, क्योंकि तुम दैवी सम्पत्ति प्राप्त कर उत्पन्न हुए हो ॥५॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥६॥

इस लोक में प्राणियों की सृष्टि दैव और आसुर भेद से दो प्रकार की है। हे पार्थ ! दैवी श्रेणी का वर्णन विस्तार से किया जा चुका, अब तुम आसुर श्रेणी का वर्णन सुनो ॥६॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नाऽपि चाऽऽचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥

जो आसुर प्रकृति के मनुष्य होते हैं, वे प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जान पाते हैं अर्थात् कर्म-योग का क्या ढंग है और कर्म संन्यास का क्या तत्व है। उनमें शौच (पवित्रता) आचरण, और सत्यता नहीं होती ॥७॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥८॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥

ये आसुर प्रकृति के मनुष्य, जगत् को असत्य अर्थात् बौद्धों के सदृश स्वप्नवत् मिथ्या या सत्य तत्व ब्रह्म से रहित मानते हैं। ये इस जगत् की कोई स्थिति या आधार नहीं मानते। ये तो जगत को ईश्वर (आत्मा या परमेश्वर) से शून्य मानते हैं। ये जगत् के पदार्थों को किसी भी क्रम पर मिले हुए नहीं मानते तथा सारे जगत् के पदार्थों को काम वासना की तृप्ति का कारण मानते हैं। अल्प बुद्धि वाले नष्टात्मा (चार्वाकादि) इस प्रकार की दृष्टि बनाकर जगत् के विनाश के लिए उग्र कर्म करने वाले होते हैं और वे इस तरह संसार का बड़ा अहित कर डालते हैं ॥८-९॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद् गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्त्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

ये दम्भ, मान और मद में भरे हुए नहीं पूर्ण होने वाली कामनाओं के पीछे दौड़ने लगते हैं। बड़े अशुचि अभिप्राय के धारण करने वाले ये नास्तिक, नहीं ग्रहण करने योग्य बातों को मोह से ग्रहण करके संसार में घूमते हैं ॥१०॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥

इनको मृत्युपर्यन्त विषयोपभोगों की बहुत अधिक चिन्ता लगी रहती है। ये केवल कामोपभोग को ही पुरुषार्थ निश्चय करके भटकते रहते हैं ॥११॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनाऽर्थसञ्चयान् ॥१२॥

ये अनेक प्रकार की आशापाशों में बँधे हुए काम क्रोध में डूबे रहते हैं और फिर ये अपनी काम लालसा की पूर्ति के लिए अन्याय से भी धन इकट्ठा करने में चल पड़ते हैं ॥१२॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥

इतना धन तो मैंने आज उपार्जन कर लिया, अब मैं अपने मनोरथ को प्राप्त करूंगा। यह धन भी मेरा है, यह धन भी मेरा ही होगा, इस प्रकार के लालच में फँसा हुआ यह लालची रात दिन चैन नहीं लेता है ॥१३॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चाऽपरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥

अब मैंने यह शत्रु मार लिया, आगे चलकर इसे मारना है। मैं ही ईश्वर हूं, मैं ही भोक्ता हूं, मैं बलवान्, सुखी और सिद्ध हूं।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

मैं ऐश्वर्यशाली (मालदार) और कुलीन जनों से संयुक्त हूं, इस समय मेरे समान कौन हो सकता है। मैं यज्ञ करूँगा, दान दूंगा, आनन्द उड़ाऊंगा-इस प्रकार के मनोरथों के अज्ञान में डूबा हुआ, अनेक ओर चित्त को डुलाता है और मोहके जाल में फँसा रहता है। ये काम-भोग में आसक्त प्राणी, अन्त में अशुचि-नरक में जा गिरतें हैं ॥१५-१६॥

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाऽविधिपूर्वकम् ॥१७॥

ये नास्तिक, अपने को बहुत बड़ा समझने वाले, अड़ियल, धन, मान और मद से युक्त होते हैं। ये नाम के लिए दम्भ के साथ यज्ञ (शुभकर्म) किया करते हैं ॥१७॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

अहङ्कार, बल, दर्प, (घमण्ड) काम और क्रोध में फंसे हुए ये अज्ञानी, अपनी और अन्यों की देह में वर्तमान मुझसे द्वेष करते हैं और मेरी निन्दा भी करने लग जाते हैं ॥१८॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

जब वे मेरा द्वेष करने लगते हैं, तो मैं उन क्रूर, संसार में नराधम दुष्टों को सदा अशुभ आसुरी योनियों में डालता हूँ ॥१९

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥२०॥

हे कौन्तेय ! जब ये मूढ़ जन्म २ में आसुरी योनि में पड़ते हैं, तब वे मेरे प्राप्त करने में असमर्थ होते जाते हैं और अधम योनियों में जा पड़ते हैं ॥२०॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

ये तीन काम, क्रोध और लोभ ही नरक के द्वार और आत्मा के नाश करने वाले हैं, अतएव इन तीनों का परित्याग कर देना चाहिए ॥२१॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

हे कौन्तेय ! इन तीनों तमोगुण के द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष, अपने कल्याण मार्ग का आश्रय करता है, तो फिर वह मोक्ष गति को प्राप्त कर लेता है ॥२२॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥२३॥

जो शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी स्वच्छन्दता से घूमता है, वह न सिद्धि पाता है और न सुख तथा न मोक्ष ही पा सकता है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः पर्वणि तु चत्वारिंशोऽध्यायः

हे अर्जुन! इन सब कारणों से तुम्हें कार्य और अकार्य की व्यवस्था में शास्त्र को ही प्रमाण मानना चाहिए। इस प्रकार शास्त्र के विधान को जान कर तुम्हें निष्काम कर्म करने में प्रवृत्त हो जाना चाहिए ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में सोलहवाँ) भगवद्गीतापर्व में चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

इकतालीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

सत्रहवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्वमाहो रजस्तमः ॥१॥

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! जो शास्त्रविधि को छोड़ कर श्रद्धा के साथ यजन करते हैं, उनकी सात्विक निष्ठा है या राजसिक माननी चाहिए ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! प्राणियों में स्वभावानुसार सात्विकी, राजसी और तामसी-इस प्रकार तीन तरह की श्रद्धा होती है-तुम इसके विषय में कुछ श्रवण करो ॥२॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

हे भारत ! प्रत्येक मनुष्य की श्रद्धा उसकी प्रकृतियां बुद्धि पर अवलम्बित होती है । मनुष्य तो केवल श्रद्धामय है । जिस पुरुष की जैसी श्रद्धा होती है-वह वैसा ही हो जाता है ॥३॥

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चाऽन्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥४॥

जो पुरुष, सात्विक प्रकृति के हैं, वे देवों की, राजस यक्ष-रक्षों की और तामसी जन भूत प्रेतों की पूजा करते हैं ॥४॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवाऽन्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

जो मनुष्य, शास्त्र विधि से हीन, घोर तप करते हैं और दम्भ, अहंकार तथा काम और रागद्वेष से समन्वित हैं, वे अज्ञानी,

शरीर में स्थित पञ्च-महाभूतों (इन्द्रियाँदि) को सुखा डालते हैं और उनके साथ शरीर के भीतर वर्तमान, मुझे भी पीड़ा पहुंचाते हैं, तुम उनको आसुर भाव के मनुष्य समझो ॥५-६॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥७॥

इन तीन प्रकार के पुरुषों को तीन ही प्रकार का आहार प्रिय होता है। यज्ञ, तप और दान भी तीन तरह का है-तुम इनके भी भेद सुनो ॥७॥

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः

आयु, सत्व, (मन या बुद्धि) बल, आरोग्य-सुख प्रीति के बढ़ाने वाले, रसीले, चिकने, स्थिर और हृदय को सुन्दर प्रतीत होने वाले आहार, सात्विक मनुष्यों को प्रिय होते हैं ॥८॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

कटु, (चटपटा) खट्टा, खारा, अत्यन्त उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष और विदाह उत्पन्न करने वाले आहार रजोगुणी प्रवृत्ति वाले को प्रिय होते हैं, जो दुःख शोक और रोग के उत्पादक है ॥९॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चाऽमेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

जिस आहार को बने कई प्रहर हो चुके, जिसका रस चला गया, जो बासी, दुर्गन्ध से युक्त, अपवित्र और उच्छिष्ट भोजन है-यह तामसिक लोगों को प्रिय है ॥१०॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।

यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

जो शास्त्र-विधि के अनुसार, फल की कामना छोड़कर "यज्ञ करना मेरा कर्तव्य है" ऐसा मन से निश्चय करके जो यज्ञ किया जाता है-वह सात्विक यज्ञ है ॥११॥

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।

इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जिस यज्ञ को फल की अभिलाषा से या दम्भ (लाभ आदि) के लिए आरम्भ किया जाता है, वह यज्ञ राजस होता है ॥१२॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।

श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

विधिहीन, अन्न दान से रहित, मन्त्र रहित, दक्षिणा हीन, श्रद्धा-शून्य जो यज्ञ किया जाता है-वह तामस कहाता है ॥१३॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥

देवता, ब्राह्मण, विद्वानों की पूजा, शौच, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा-ये शरीर के तप हैं। ॥१४॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

किसी को उद्वेग नहीं करने वाले तथा सत्य, प्रिय और हितकारी वचन तथा स्वाध्याय का अभ्यास-ये वाणी का तप है।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥

मन की प्रसन्नता, सौम्यता, (कठोरता का त्याग) मौन, विषयों का त्याग, मन की शुद्धि-ये मन के तप कहाते हैं ॥१६॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते ॥१७॥

इस तीनों प्रकार के तप को मनुष्य अत्यन्त श्रद्धा के साथ करें और फल की इच्छा न करें-तो यह सात्विक तप हो जाता है।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥१८॥

जो तप, सत्कार, मान और पूजा के लिए दम्भ के आधार पर प्रारम्भ किया जाता है, उस चञ्चल, स्थिरता-हीन तप को राजस तप कहा है ॥१८॥

मूढग्राहेणाऽऽत्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥१९॥

मूर्खों के दुराग्रह के ढंग पर हठीलेपन से जो पीड़ा के साथ तप किया जाता है या अन्य को पीड़ा पहुंचाने को आरम्भ किया जाता है-यह तामस तप है ॥१९॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥२०॥

हमें दान देना ही चाहिए-ऐसा समझ कर अनुपकारी पुरुष को देश, काल और पात्र की योग्यता के अनुसार जो दान दिया जाता है-वह सात्त्विक दान कहाता है ॥२०॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥

जो प्रत्युपकार (बदले) के लिए फल के ध्यान से क्लेश-पूर्वक दान दिया जाता है-वह राजस दान है ॥२१॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

देश, काल से रहित, अपात्र को सत्कार से हीन, तिरस्कार पूर्वक जो दान दिया जाता है-वह तामस दान है ॥२२॥

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥

ॐ, तत, सत-इस प्रकार ब्रह्म का तीन प्रकार से निर्देश किया है। इसी से पूर्वकाल में ब्राह्मण, वेद और यज्ञों की सृष्टि हुई है।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥२४॥

यही कारण है, कि वेद के जानने वालों की यज्ञ, दान और तपकी क्रिया "ॐ" के उच्चारण के साथ विधि-पूर्वक प्रवृत्त होती है

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥२५॥

"तत्" शब्द का यही अभिप्राय है, कि यज्ञ, दान और तप की अनेक क्रियाओं का अनुष्ठान, फल की अभिलाषा के त्याग के साथ होना चाहिए और मोक्ष के अभिलाषी इसी तरह बताते भी हैं।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

मन के उत्तम और श्रेष्ठ भाव के लिए "सत्" शब्द का प्रयोग है। हे पार्थ ! जब २ उत्तम कर्म का अनुष्ठान किया जावे-तब तब ही "सत्" शब्द का प्रयोग होना चाहिए ॥२६॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाऽभिधीयते ॥२७॥

यज्ञ, तप और दान की स्थिति (स्थिर-भावना) "सत्" शब्द की प्रवृत्ति है। यज्ञादि के लिए भी जिस कर्म का आरम्भ किया जाता है, वहां भी "सत्" शब्द का ही उच्चारण उत्तम है ॥२७॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेश्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७ पर्वणि तु एकचत्वारिंशोऽध्यायः

हे पार्थ ! जो कुछ अश्रद्धा से हवन, दान, तप का आचरण किया है, वह असत् है, वह इस लोक और परलोक कहीं भी हितकारी नहीं होता है ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में सत्रहवाँ) भगवद्गीतापर्व में श्रद्धामय विभाग का इकतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

बयालीसवां अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता

का

अट्ठारहवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥१॥

अर्जुन बोले—हे महाबाहो ! हृषीकेश, केशिनिसूदन ! मैं संन्यास और त्याग का पृथक् २ तत्व जानना चाहता हूं ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! सकाम कर्मों के स्वरूप से त्याग को विद्वान् संन्यास कहते हैं और कर्मों को निष्काम भाव से करके उसके फल की आकांक्षा के त्याग करने को विद्वानों ने त्याग कहा है ॥२॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चाऽपरे ॥३॥

कुछ शास्त्र के ज्ञाता, पण्डित, कर्मों को दोषों की भाँति छोड़ देना शास्त्र का रहस्य समझते हैं और कुछ विद्वान, यज्ञ, दान और तप आदि कर्मों का स्वरूप से त्याग नहीं करना चाहिए-ऐसा मानते हैं ॥३॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ॥४॥

हे भरतसत्तम ! इस त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुनो । हे पुरुषव्याघ्र ! त्याग भी तीन प्रकार का माना गया है ॥४॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥५॥

यज्ञ, दान और तप आदि कर्मों का स्वरूप से त्याग नहीं करना चाहिए-उन्हें तो कर्तव्य कर्म समझकर करते ही रहना उचित है; क्योंकि यज्ञ, दान और तप, मननशील पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं ॥५॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।

कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥६॥

हे पार्थ ! इन सब कर्मों को आसक्ति और फल की अभिलाषा छोड़ कर करने चाहिए-मेरा यह निश्चित मत है ॥६॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।

मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

धर्मशास्त्रानुसार नियत किये हुए कर्मों का त्याग करना उचित प्रतीत नहीं होता। यदि अज्ञान से कोई इनका त्याग कर बैठेगा-तो यह तामस त्याग कहावेगा ॥७॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।

स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥

ये सांसारिक कर्म दुःख का कारण हैं-यह समझ कर जो शरीर के क्लेशों के भय से कर्मों को छोड़ता है, वह राजस त्याग है और इसका कुछ भी फल नहीं है ॥८॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।

सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

हे अर्जुन ! शास्त्र से निश्चित किये हुए कर्म मुझे करने ही चाहिए-ऐसा जान कर आसक्ति और फलाभिलाषा छोड़ कर जो कर्म किये जाते हैं, यह सात्विक त्याग माना गया है ॥९॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नाऽनुषज्जते ।
त्यागी सत्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

जो पुरुष, अनिष्ट कर्मों में द्वेष और इष्ट कर्मों में राग नहीं करता, उस सत्वगुण युक्त त्यागी को बुद्धिमान् समझना चाहिए, क्योंकि उसके सारे संशय नष्ट हो चुके हैं ॥१०॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११॥

कोई भी देह धारी सारे कर्मों का स्वरूप से त्याग कर ही नहीं सकता है, अतएव जो कर्म के फलों का त्याग करने वाला है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है ॥११॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

कर्म के प्रिय, अप्रिय और प्रियाप्रिय-ये तीन भेद माने गए हैं। जो इन कर्मोंके फलोंका त्याग नहीं करता-उसके ये बन्धनके कारण होते हैं. और जो कर्म के फलों के संन्यासी हैं, उनको इनका बन्धन नहीं होता है ॥१२॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

हे महाबाहो ! सब कर्मों की सिद्धि के लिए सांख्य-शास्त्र में पांच कारण माने हैं, तुम उन पांचों कारणों को मुझ से सुन कर धारण करो ॥१३॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवाऽत्र पञ्चमम् ॥१४॥

प्रथम स्थान, दूसरा कर्ता, तीसरा करण, चौथा पृथक् २ कर्ता की अनेक चेष्टाएँ और पांचवां दैव कारण हैं ॥१४॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥१५॥

जो पुरुष, शरीर, वाणी और मन से न्याय के अनुकूल या प्रतिकूल कर्म करता है, उन सबके ये पाँच ही कारण हैं ॥१५॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

इन पाँचों के कारण होने पर भी जो ज्ञान की न्यूनता के कारण अपने आपको ही कर्ता मानता है, वह मूर्ख कुछ भी देखना नहीं जानता ॥१६॥

यस्य नाऽहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१७॥

जिसको अपने कर्ता होने का अभिमान नहीं है और जिसकी बुद्धि भी रागद्वेष में लिप्त नहीं है-वह पुरुष, लोक-संग्रह के निमित्त यदि समस्त पुरुषों को भी मार डालें-तो भी वह न मारने वाला है और न उसको बन्धन होता है ॥१७॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता-यह त्रिपुटी ही कर्मों में प्रेरित करने वाली है और कर्ता, कर्म और करण की त्रिपुटी कर्म-संग्रह कहाती है ॥१८॥

ज्ञानं कर्म च कर्त्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१६॥

ज्ञान, कर्म और कर्ता तीन (सात्विक आदि) गुणों के भेद से गुणों की ये गिनती के समय तीन २ प्रकार के माने गए हैं। इनका भी तुम श्रवण करो ॥१६॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ॥२०॥

जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य, समस्त प्राणियों में एक ही अविनाशी भाव (आत्मा) का निरीक्षण करे। यह आत्मा भिन्न २ वस्तु में एक रूप से स्थित है। ऐसा जानना सात्विक-ज्ञान कहाता है ॥२०॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

भिन्न २ प्रकार की भिन्न २ वस्तुओं में जो पृथक् रूप से प्रतीति होती है तथा समस्त प्राणियों में जो भेद देखता है, यह राजस ज्ञान है ॥२१॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

जो किसी एक ही मोह मय हेतु रहित कार्य में सम्पूर्णता का ध्यान कर लेता है और तत्त्व का विचार नहीं करता-इस प्रकार का अल्प ज्ञान तामस ज्ञान कहाता है ॥२२॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥

आसक्ति रहित, रागद्वेष शून्य, फल प्राप्ति की आशा से हीन, जो नियत कर्म का अनुष्ठान किया जाता है-यह सात्त्विक कर्म है ।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥

जो फल की लालसा से संयुक्त, अहङ्कार के साथ बहुत कष्ट साध्य कर्म किया जाता है-यह राजस कर्म माना गया है ॥२४॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥

कर्म करने के अनन्तर होने वाले परिणाम, किसी की हानि और हिंसा को बिना देखे ही मोह से कर्म का आरम्भ कर देना और पुरुषार्थ का कुछ भी विचार न करना-तामस कर्म माना गया है ॥२५॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥२६॥

आसक्ति रहित, अहम्भाव से शून्य, धैर्य और उत्साह से समन्वित और सिद्धि तथा असिद्धि में समान भाव से रहने वाला, सात्त्विक कर्ता कहलाता है ॥२६॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥

रागद्वेष से युक्त, कर्म फल की अभिलाषा में आसक्त, लालची, हिंसक, अपवित्र, हर्ष और शोक से प्रसन्न तथा दुःखी होने वाला राजस कर्ता होता है ॥२७॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैकृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥

अयोग्य कर्मों का करने वाला, क्षुद्र विचारों से सम्पन्न; अड़ियल, दुष्ट, छली, आलसी, विषादी और दीर्घसूत्री तामस कर्ता होता है ॥२८॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥२९॥

हे धनञ्जय ! इसी तरह बुद्धि और धृति (धारणा) के भी ये ही सात्विक, राजस और तामस भेद होते हैं। मैं इनको पृथक् २ विस्तार के साथ कहता हूं-तुम ध्यान से सुनो ॥२९॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी ॥३०॥

प्रवृत्ति, (कर्मयोग) निवृत्ति, (ज्ञानयोग) कार्य-अकार्य, भय-अभय, बन्ध और मोक्ष-इन बातों को जो बुद्धि पहिचानती रहती है, वह सात्विकी बुद्धि है ॥३०॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाऽकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥

जिस बुद्धि से धर्म-अधर्म और कार्द-अकार्य की ठीक २ जांच न हो सके-वह बुद्धि राजस कहातीहै ॥३१॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

जो बुद्धि तमोगुण से आवृत होने के कारण धर्म को अधर्म तथा अन्य सारे कार्यों को विपरीत देखती है, वह तामसी बुद्धि होती है ॥३२॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियाक्रियाः ।
योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी॥३३॥

हे पार्थ ! इधर उधर न डिगने वाली, धृति (धारणा) से मन, प्राण और इन्द्रियों की चेष्टाओं को निष्काम कर्म-योग द्वारा जो पुरुप धारण करता है, वह सात्विकी धृति है ॥३३॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥

हे अर्जुन ! जिस धृति (धारणा) से धर्म, अर्थ और काम की धारणा की जाती है और जिससे पुरुष समय पर फलकी अभिलाषा में निमग्न रहता है, वह धृति राजसी कहाती है ॥३४॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥३५॥

दुर्बुद्धि पुरुष, जिस बुद्धि की प्रेरणा से निद्रा, भय, शोक, विषाद और मद आदि दुर्गुणों का परित्याग नहीं कर सकता है। वह तामसी धृति है ॥३५॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥३६॥

हे भरतर्षभ ! तीन प्रकार का ही सुख होता है। यदि उसमें अभ्यास योग-द्वारा परिश्रम करता रहे-तो मनुष्य दुःख के अन्त को पा लेता है ॥३६॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

जो प्रत्यक्ष में तो विप की भांति तीक्ष्ण और परिणाम में अमृत तुल्य सुखदायी होता है-वह सात्विक सुख है, जो आत्मा और बुद्धि की स्वच्छता से प्राप्त होता है ॥३७॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

विषय और इन्द्रियों के संयोग से जो प्रथम अमृत तुल्य सुखदायी और परिणाम में जो विष के तुल्य मारक होता है-वह सुख राजस है ॥३८॥

यदग्रे चाऽनुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

जो सुख प्रथम या परिणाम में भी आत्मा को मोहित (नष्ट) करने वाला है और जिसकी उत्पत्ति निद्रा, आलस्य और प्रमाद से होती है-वह तामस सुख है ॥३९॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

पृथिवी, आकाश और स्वर्गलोक में कोई ऐसा प्राणी नहीं है, जो इन प्रकृति से उत्पन्न, तीन गुणों के बन्धनों से मुक्त हो ॥४०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

हे परन्तप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनके भी स्वभाव (प्रकृति) से उत्पन्न गुणों के आधार पर कर्मोंकी व्यवस्था की गई है

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥

मन और इन्द्रियों का विजय करना, तप, शौच, क्षमा, नम्रता, ज्ञान, (आत्मज्ञान) विज्ञान, (सांसारिक ज्ञान) आस्तिकता, ये कर्म ब्राह्मण के स्वभाव (प्रकृति) अर्थात् दैव द्वारा निर्मित किये गए हैं।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाऽप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥४३॥

शूरता, तेज, धैर्य, राजनीति, कुशलता, युद्ध में पीठ नहीं फेरना, दान और दुष्टों को दण्ड देने की शक्ति-ये क्षत्रियों के दैव निर्मित कर्म हैं ॥४३

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्याऽपि स्वभावजम् ॥४४॥

कृषि, व्यापार, गोरक्षा, ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म और शिल्प आदि द्वारा सेवा करना शूद्र का स्वभाव-निर्मित कर्म हैं ॥४४॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥४५॥

प्रत्येक मनुष्य, अपने २ कर्म में लगा हुआ ही सिद्धि पाता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य किस तरह सिद्धि पाता है, उस रीति को सुनो ॥४५॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६॥

जिससे सारे प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सारा जगत् व्याप्त है, उसी को अपने कर्मों द्वारा पूजकर मनुष्य सिद्धि पाता है ॥४६॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाऽऽप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥

अन्य वर्ण के धर्म का समुचित रीति से अनुष्ठान करने और अपने वर्ण धर्म का ठीक २ अनुष्ठान न करने पर भी अपने ही वर्ण धर्म का आचरण करना उत्तम है। जो जिसका स्वभाव (दैव) द्वारा निश्चित कर्म है, उसके करने पर वह कभी पाप को प्राप्त नहीं होता है ॥४७॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाऽग्निरिवाऽऽवृताः ॥४८॥

हे कौन्तेय! अपना कर्म यद्यपि पूर्ण रीति से नहीं किया जा रहा है, तो भी उसका परित्याग नहीं करना चाहिए, क्योंकि सारे कर्मों में कुछ न कुछ त्रुटि होती ही है। कर्मों में तो दोषों का संसर्ग अग्नि में व्याप्त धूम की भांति रहता है ॥४८॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाऽधिगच्छति ॥४९॥

समस्त कर्मों में अनासक्ति रखने, मन और इन्द्रियों को जीतने, किसी भी कर्म के फल में लालसा न करने वाला पुरुष, कर्मों के संन्यास से निष्काम कर्म की परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥४९॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

हे कौन्तेय! इस प्रकार निष्काम कर्म की सिद्धि पर पहुंचा हुआ मुमुक्षु, जिस तरह ब्रह्म को प्राप्त करता है, उस रीति को संक्षेप से सुनो, जो ज्ञान की अन्तिम निष्ठा (स्थिति) है ॥५०॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

एकान्त सेवन का प्रेमी, स्वल्पाहार करने वाला, वाणी, शरीर और मन को रोकने वाला, नित्य ध्यान योग में तत्पर, वैराग्य युक्त, मुमुक्षु पुरुष, अपनी विशुद्ध बुद्धि से युक्त होकर धैर्य द्वारा आत्मा का संयमन करे और शब्दादि विषयों का परित्याग करके राग-द्वेष का मूलोच्छेद कर दे तथा अहङ्कार, बल, गर्व, काम, क्रोध और परिग्रह (धन संग्रहके लोभ) को छोड़कर मोह और वासना से रहित हो जावे-तो ऐसा शान्त पुरुष ब्रह्म पदको प्राप्त कर लेता है

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

इस प्रकार ब्रह्म पदवी को प्राप्त हुआ, प्रसन्न-चित्त मुमुक्षु न तो शोक करता है और न किसी बात की अभिलाषा करता है। जो सब प्राणियों में सम दृष्टि रखता है, वह मेरी उत्कृष्ट भक्ति को पा लेता है ॥५४॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चाऽस्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

मैं जितना और जैसा हूँ, इस बात को भी ठीक २ मेरी भक्ति ही से भक्त जान पाता है। फिर मुझे यथावत् (ठीक २) जानकर इसके अनन्तर वह मुझ में प्रविष्ट होता है ॥५५॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

जो मेरा अवलम्बन लेकर सारे कर्मों को करता है-वह मेरे अनुग्रह से अविनाशी, सनातन पद को प्राप्त कर लेता है ॥५६॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

हे अर्जुन ! तुम मन से सारे कर्मों के सङ्कल्पों का मुझ में संन्यास करके एक मात्र मेरा आश्रय ले लो । अब तुम साम्य बुद्धि का आश्रय लेकर मुझमें सदा के लिए अपना चित्त समर्पित करो ।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥५८॥

जब अपना चित्त मेरे समर्पण कर दोगे-तो मेरे अनुग्रह से सारी विपत्तियों को तर जाओगे । यदि तुम अहङ्कार वश मेरे वचन नहीं सुनोगे-तो नष्ट हो जाओगे ॥५८॥

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥५९॥

जो तुम अहङ्कार का आश्रय लेकर यह कह रहे हो, कि मैं युद्ध नहीं करता-तो यह तेरा अभिमान वृथा है । तुझे प्रकृति (दैव) स्वयं इस ओर प्रेरित कर देगी ॥५९॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥६०॥

हे कौन्तेय ! प्राणी अपने स्वभावानुसार कर्मों से बँधे हुए हैं। जिस सुकर्म को तू मोह के वश में होकर नहीं करता है, उसी को अन्त में परवश होकर करेगा ॥६०॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१॥

हे अर्जुन ! सब प्राणियों के हृदय में ईश्वर स्थित है, जो यन्त्र पर आरूढ़ हुए सारे प्राणियोंको अपनी मायासे घुमाता रहता है

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

हे भारत ! अब तुम सब तरह से उसी (परमात्मा) की शरण में पहुंचो, जिसकी कृपा से परम शान्ति और सनातन स्थान को प्राप्त कर लोगे ॥६२॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।

यह गुह्य से भी गुह्य ज्ञान मैंने तुमको सुना दिया है। सम्पूर्ण रीति से इस पर विचार करके आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो-वैसा करो ॥६३॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

अब और भी गुह्य से भी गुह्य मेरा वचन सुनो । तुम मेरे परम प्रिय हो-इससे मैं तुमको यह हितकारी बात बताता हूँ ॥६४

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥

तुम मुझ में मन लगाकर मेरे भक्त बनो और मेरे निमित्त यज्ञ करके मुझे नमस्कार करो । मैं तुम से सत्य कहता हूं, कि तुम मुझको प्राप्त होगे-क्योंकि तुम मेरे बड़े प्रिय हो ॥६५॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६

सब वर्ण और आश्रम के धर्मों को छोड़कर तुम केवल मेरी शरण में आ जाओ । मैं तुमको सब पापों से निवृत्त कर दूंगा-तुम चिन्ता न करो ॥६६॥

इदं ते नाऽतपस्काय नाऽभक्ताय कदाचन ।
न चाऽशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥

इस रहस्य को तपहीन, भक्ति-शून्य, सेवा भाव से रहित, सुनना नहीं चाहने वाले मेरे निन्दक को तुझे कभी नहीं बताना चाहिए ॥६७॥

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

जो मनुष्य इस परम गुप्त रहस्य को मेरे भक्तों को सुनावेगा-वह मेरी उत्कृष्ट भक्ति को करके निश्चय मुझे प्राप्त करेगा ॥६८॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

इस भक्त से अधिक मनुष्य समाज में मेरा कोई प्रिय नहीं है और न पृथिवी पर आगे चल कर कोई अन्य प्रिय हो सकेगा।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाऽहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥

जो मनुष्य, हमारे इस धार्मिक सम्वाद को पढ़ेगा-वह ज्ञान यज्ञ से मेरी पूजा करेगा-इसमें सन्देह नहीं है-ऐसा मेरा मत है।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥७१

जो श्रद्धालु, अनिन्दक पुरुष इसको सुनेगा-वह मुक्त होकर पुण्यात्माओं के शुभ लोकों को प्राप्त करेगा ॥७१॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥७२॥

हे पार्थ ! तुमने एकाग्र मन से यह मेरा उपदेश सुन लिया। हे धनञ्जय ! कहो ? क्या तुम्हारा कुछ अज्ञान नष्ट हो गया ॥७२॥

अर्जुन उवाच—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

अर्जुन बोले—हे अच्युत ! मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने तुम्हारी कृपा से अपने कर्तव्य की स्मृति प्राप्त कर ली है । अब मेरा सन्देह नष्ट हो गया । मैं आपकी आज्ञा में उपस्थित हूँ-अब जो तुम कहोगे-मैं वही करूंगा ॥७३॥

सञ्जय उवाच—

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन का मैंने यह रोमाञ्च खड़ा कर देने वाला अद्भुत सम्वाद सुना ॥७४॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

भगवान् वेदव्यास के अनुग्रह से मैंने यह अत्यन्त गुप्त कर्म-योग योगेश्वर श्रीकृष्ण से सुन लिया, जो उन्होंने स्वयं अपने मुखारविन्द से सुनाया है ॥७५॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥

हे राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस अद्भुत पवित्र सन्वाद का ज्यों २ मैं स्मरण करता हूँ-त्यों २ मेरे बार २ रोमाञ्च खड़े होते हैं ॥७६॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥७७॥

महाभारत चित्र संख्या ७३



भीष्म पितामह का भयानक रण संग्राम

महा० भीष्म पर्व अ० ४८। ६ पृ० ४७०

हे राजन् ! श्रीकृष्ण के उस अद्भुत रूप का ज्यों २ मुझे स्मरण आता है। त्यों २ मुझे महान् आश्चर्य होता है और मैं बार २ हर्षित होता हूँ ॥७४॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः। पर्वणि तु द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।

समाप्तं भगवद्गीतापर्व ।

जिस ओर योगेश्वर कृष्ण और जिधर धनुषधारी अर्जुन हैं, उधर राज्य-लक्ष्मी, विजय, वैभव और उत्तम राजनीति निवास करती रहेगी ॥७५॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत (श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में अट्ठारहवां) भगवद्गीतापर्व में संन्यासयोग का बयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर भगवद्गीतापर्व भी समाप्त हो गया

——***——

अथ भीष्मवधपर्व

तेतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! इस श्रीमद्भगवद्गीता का अहर्निश पठन पाठन करना चाहिए। इसके अध्ययन से अन्य शास्त्र समूह के अध्ययन की अवश्यकता नहीं रह जाती है। यह कमल-नेत्र श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकला हुआ अमृत है॥१॥

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः ॥२॥

इस गीता में सारे शास्त्रों का सार है। भगवान् श्रीकृष्ण भी सारे देवों के तेज के धारण करने वाले हैं। जैसे-समस्त तीर्थों को धारण करने वाली गङ्गा और सारे वेदों के स्वरूप मनु हैं॥२

गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥३॥

जिस मनुष्य के हृदय में गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द-ये चार गकार स्थित हैं-वह इन चार गकारादि शब्दों वाली वस्तुओं मनन से मोक्ष प्राप्त करके फिर जन्म धारण नहीं करता है।

षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः ।
अर्जुनः सप्तपञ्चाशत्सप्तषष्टिं तु सञ्जयः ॥४॥
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ।

इस गीता में भगवान् कृष्ण ने छः सौ बीस, अर्जुन ने सत्तावन, सञ्जय ने सड़सठ और धृतराष्ट्र ने एक श्लोक कहा है । यही गीता के श्लोकों की सङ्ख्या का प्रमाण है ॥४॥

भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च ॥
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥५॥

महाभारत के सारभूत गीता ग्रन्थ को मथकर भगवान् कृष्ण ने उसका तत्त्व (घृत) निकाल कर अर्जुन के मुख में हवन किया है

सञ्जय उवाच—

ततो धनञ्जयं दृष्ट्वा बाणगाण्डीवधारिणम् ।
पुनरेव महानादं व्यसृजन्त महारथाः ॥६॥

सञ्जय बोले-हे राजन् ! फिर अर्जुन को गाण्डीव धनुष और बाण धारण किया हुआ देखकर उनके पक्ष के महारथी फिर बड़े वेग से महान् हर्ष ध्वनि करने लगे ॥६॥

पाण्डवाः सोमकाश्चैव ये चैषामनुयायिनः ।
दध्मुश्च मुदिताः शङ्खान्वीराः सागरसम्भवान् ॥७॥

पाण्डव, सोमक आदि क्षत्रिय वीर और उनके अनुयायी राजा, समुद्र से उत्पन्न उत्तम २ शङ्खों को बजाने लगे ॥७॥

ततो भेर्यश्च पेश्यश्च क्रकचा गोविषाणिकाः ।
सहसैवाऽभ्यहन्यन्त ततः शब्दो महानभूत् ॥८॥

इसके अनन्तर भेरी, काहलो, क्रकच, गोविषाण आदि बाजे एक दम बजने लगे-जिनसे महान् कोलाहल उठ खड़ा हुआ ॥८॥

तथा देवाः सगन्धर्वाः पितरश्च जनाधिप ।
सिद्धचारणसङ्घाश्च समीयुस्ते दिदृक्षया ॥९॥

ऋषयश्च महाभागाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ।
समीयुस्तत्र सहिता द्रष्टुं तद्वैशसं महत् ॥१०॥

हे जनाधिप ! देवता, गन्धर्व, पितर, महानुभाव अनेक महर्षि सिद्ध चारणों के संघ इन्द्र-देव को आगे करके उस महान् विश्व-व्यापी युद्ध के देखने के लिए इकट्ठे होकर आ गए ॥१०॥

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समवस्थिते ।
ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप ॥११॥

विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम् ।
अवरुह्य रथात्क्षिप्रं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः ॥१२॥

पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥१३॥

हे नृप ! जब धर्मराज राजा युधिष्ठिर ने समुद्र के समान उछलती और आगे बढ़ती हुई, युद्ध को सन्नद्ध दोनों सेनाओं को

देखा-तो वे अपने तीक्ष्ण शस्त्र एवं कवच को फैंक और रथसे उतर कर पैदल ही हाथ जोड़े हुए, भीष्म पितामह को देखकर पूर्वाभिमुख हुए चुपचाप शत्रु की सेना में घुसे चले गए ॥११-१३॥

तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात् ॥१४॥

उनको शत्रु सेना में जाते देखकर कुन्ती-पुत्र अर्जुन भी शीघ्र रथ से उतर कर अपने अन्य भाइयों के साथ पीछे २ चल दिया।

वासुदेवश्च भगवान्पृष्ठतोऽनुजगाम तम् ।
तथा मुख्याश्च राजानस्तच्चित्ता जग्मुरुत्सुकाः ॥१५॥

भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुन के पीछे २ चल दिए। इसी तरह अन्य मुख्य २ राजा भी धर्मराज के अभिप्रायके जानने की अभिलाषा से बड़ी उत्सुकता के साथ उनके पीछे २ चले ॥१५॥

अर्जुन उवाच—

किं ते व्यवसितं राजन्यदस्मानपहाय वै ।
पद्भ्यामेव प्रयातोऽसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥१६॥

अर्जुन बोले-हे राजन् ! आप क्या कर रहे हैं, जो हम लोगों को छोड़कर पैदल ही पूर्वाभिमुख हुए शत्रु सेना में घुसे जा रहे हो।

भीमसेन उवाच—

क्व गमिष्यसि राजेन्द्र निक्षिप्तकवचायुधः ।
दंशितेष्वरिसैन्येषु भ्रातृनुत्सृज्य पार्थिव ॥१७॥

भीमसेन बोले-हे राजेन्द्र! आप कवच और शस्त्र फेंककर अपने भाइयों को छोड़कर कहां चले जा रहे हैं। आप देखते नहीं हैं, कि शत्रुसेना किस प्रकार सन्नद्ध (तय्यार) खड़ी है ॥१७॥

नकुल उवाच—

एवं गते त्वयि ज्येष्ठे मम भ्रातरि भारत।
भीमें दुनोति हृदयं ब्रूहि गन्ता भवान्क नु ॥१८॥

नकुल ने कहा—हे भारत! आप हम सबके बड़े भ्राता हैं। यह आप क्या करने लगे हैं। इस दृश्य को देख कर मेरा हृदय भय-भीत हो गया है-कहिए-आप कहां चले ॥१८॥

सहदेव उवाच—

अस्मिन्रणसमूहे वै वर्तमाने महाभये।
उत्सृज्य क्व नु गन्तासि शत्रूनभिमुखो नृप ॥१९॥

सहदेव कहने लगे—हे राजन्! इस भयङ्कर रण भेरी के बज जाने पर आप हम लोगों को छोड़ कर शत्रुओं की ओर कैसे चले जा रहे हो ॥१९॥

सञ्जय उवाच—

एवमाभाष्यमाणोऽपि भ्रातृभिः कुरुनन्दनः।
नोवाच वाग्यतः किञ्चिद्गच्छत्येव युधिष्ठिरः ॥२०॥

सञ्जय बोले-हे राजन्! जब इस प्रकार भाइयों ने कहा; तब भी कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर कुछ भी नहीं बोले और चुपचाप शत्रु-सेना की ओर चलते रहे ॥२०॥

तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः ।
अभिप्रायोऽस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव ॥२१॥

इन सबसे महामनस्वी वसुदेव-पुत्र महा-बुद्धिमान् श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुए बोले कि मैंने धर्मराज का अभिप्राय जान लिया है।

एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च ।
अनुमान्य गुरून्सर्वान्योत्स्यते पार्थिवोऽरिभिः ॥२२॥

ये धर्मराज, भीष्म, द्रोण, गौतम, शल्य आदि समस्त पूज्यों का शिष्टाचार करके अपने शत्रुओं से लड़ना चाहते हैं ॥२२॥

श्रूयते हि पुराकल्पे गुरूननुमान्य यः ।
युद्ध्यते स भवेद्व्यक्तमपध्यातो महत्तरैः ॥२३॥

पुराकल्प ग्रन्थों में लिखा है, कि जो पूज्यों की अवहेलना करके युद्ध करता है, वह अपने पूज्यों से घृणा प्राप्त करता है ॥२३॥

अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युद्ध्येन्महत्तरैः ।
ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे भवेदिति मतिर्मम ॥२४॥

जो अपने पूज्यों का शास्त्रानुसार सत्कार (शिष्टाचार) करके पूज्यों के साथ युद्ध करता है, उसकी युद्ध में भी विजय होती है ऐसा मेरा मत है ॥२४॥

एवं ब्रुवति कृष्णेऽत्र धार्त्तराष्ट्रचमूं प्रति ।
हाहाकारो महानासीन्निःशब्दास्त्वपरेऽभवन् ॥२५॥

जब श्रीकृष्ण इस प्रकार कह रहे थे, तो कौरवों की सेना में महान् कोलाहल मच गया। कुछ वीर चुपचाप निःस्तब्ध (सन्न) खड़े रहे ॥२५॥

दृष्ट्वा युधिष्ठिरं दूराद्धार्त्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
मिथः सङ्कथयाञ्चक्रुरेषो हि कुलपांसनः ॥२६॥

राजा युधिष्ठिर को दूर से आता हुआ देख कर धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन के सैनिक आपस में कहने लगे, कि यही कुल नाश की नींव रखने वाला राजा युधिष्ठिर है ॥२६॥

व्यक्तं भीत इवाऽभ्येति राजाऽसौ भीष्ममन्तिकम् ।
युधिष्ठिरः ससोदर्यः शरणार्थं प्रयाचकः ॥२७॥

यह राजा युधिष्ठिर भयभीत होकर भीष्म के समीप जा रहा है-यह स्पष्ट है। अब तो यही ज्ञात होता है, कि अपने भाइयों के साथ धर्मराज भीष्म से रक्षा की याचना करेंगे ॥२७॥

धनञ्जये कथं नाथे पाण्डवे च वृकोदरे ।
नकुले सहदेवे च भीतिरभ्येति पाण्डवम् ॥२८॥

पाण्डु-पुत्र, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव के साथी रहने पर भी धर्मराज को यह भय कैसे प्राप्त हो गया ॥२८॥

न नूनं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रथिते भुवि ।
यथाऽस्य हृदयं भीतमल्पसत्त्वस्य संयुगे ॥२९॥

इससे तो यही ज्ञात होता है, कि परम प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल में धर्मराज ने जन्म ही नहीं लिया है, जो इस दुर्बल का युद्ध में हृदय भयभीत हो उठा है ॥२९॥

ततस्ते सैनिकाः सर्वे प्रशंसन्ति स्म कौरवान् ।
हृष्टाः सुमनसो भूत्वा चैलानि दुधुवुश्च ह ॥३०॥

अब ये सारे कौरवों के सैनिक बड़े प्रसन्न होकर कौरवों की प्रशंसा करने लगे तथा प्रफुल्लित होकर वस्त्रों को कँपाने लगे।

न्यनिन्दंश्च तथा सर्वे योधास्तव विशाम्पते।
युधिष्ठिरं ससोदर्यं सहितं केशवेन हि ॥३१॥

हे विशाम्पते ! इस समय तुम्हारे सारे योद्धा, भीमादि भाइयों और श्रीकृष्ण के सहित राजा युधिष्ठिर की निन्दा करने लगे ॥३१॥

ततस्तत्कौरवं सैन्यं धिक्कृत्वा तु युधिष्ठिरम्।
निःशब्दमभवत्तूर्णं पुनरेव विशाम्पते ॥३२॥

हे विशाम्पते ! इस तरह कौरव सेना राजा युधिष्ठिर को धिक्कार देकर फिर शीघ्र ही चुप हो गई ॥३२॥

किं नु वक्ष्यति राजाऽसौ किं भीष्मः प्रतिवक्ष्यति।
किं भीमः समरश्लाघी किं नु कृष्णार्जुनाविति ॥३३॥

विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत्।
उभयोः सेनयो राजन्युधिष्ठिरकृते तदा ॥३४॥

हे राजन् ! इस समय राजा युधिष्ठिर के विषय में दोनों सेनाओं में बड़ा संशय उठ रहा था, कि धर्मराज कौरव सेना में जाकर न जाने क्या कहेंगे ? भीष्म उसका क्या उत्तर देंगे ? जो सदा युद्ध का समर्थन करता था, उस भीम की क्या दशा होगी और श्रीकृष्ण और अर्जुन क्या कहेंगे ॥३३-३४॥

सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम्।
भीष्ममेवाऽभ्ययात्तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः ॥३५॥

बाण और शक्ति आदि शस्त्रों से सुसज्जित, शत्रु सेना को पार करके अपने भाइयों के साथ धर्मराज, भीष्म के पास बड़ी शीघ्रता से पहुंचे ॥३५॥

तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीडच पाण्डवः ।
भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम् ॥३६॥

पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर, अपने हाथों से युद्ध के लिए उपस्थित, शान्तनु-पुत्र भीष्म के चरणों को छूकर कहने लगे ॥३६

युधिष्ठिर उवाच—

आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह ।
अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय ॥३७॥

युधिष्ठिर बोले—हे दुर्धर्ष ! अब हमारा आपके साथ युद्ध होने वाला है, कृपया आप इसकी आज्ञा दीजिए। हे तात ! आपको युद्ध की अनुमति के साथ २ आशीर्वाद भी देना होगा ॥३७॥

भीष्म उवाच—

यद्येवं नाऽभिगच्छेथा युधि मां पृथिवीपते ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत ॥३८॥

हे पृथिवीपते ! भरतवंशश्रेष्ठ ! महाराज ! युधिष्ठिर ! यदि तुम इस तरह आदर प्रकट करने के लिए मेरे पास युद्ध भूमि में न आते, तो मैं तुमको पराजित होने का शाप दे डालता ॥३८॥

प्रीतोऽहं पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव ।
यत्तेऽभिलषितं चाऽन्यत्तदवाप्नुहि संयुगे ॥३९॥

हे पुत्र ! मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हूं। हे पाण्डव ! अब तुम युद्ध करके जय प्राप्त करो। इसके अतिरिक्त युद्ध में जो २ तुम्हारी इच्छा हो-वह तुमको प्राप्त हो ॥३६॥

व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकांक्षसि ।
एवङ्गते महाराज न तवाऽस्ति पराजयः ॥४०॥

हे पार्थ ! तुम वर मांगो, कि तुम मुझसे क्या चाहते हो। हे महाराज ! अब तुमने यह शिष्टाचार दिखाया है, जिससे प्रतीत होता है, कि तुम्हारा पराजय नहीं होगा ॥४०॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥४१॥

पुरुष धन का दास है, धन किसी का दास नहीं है। हे महारज ! यह सत्य बात निकली। मैं भी कौरवों के धन दान से बँधा हुआ हूँ अर्थात् धन लेकर सेवक का जो कर्तव्य है, वह पूरा कर रहा हूं ॥४१॥

अतस्त्वां क्लीबवद्वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन ।
भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥४२॥

हे कुरुनन्दन ! यही कारण है, कि मैं तुमसे इतने निर्बल वचन कह रहा हूं। हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! मैंने दुर्योधन के धन से अपना निर्वाह किया है, इससे युद्ध करना मेरा कर्तव्य है, अब तुम युद्ध छोड़ने के अतिरिक्त कुछ ही माँग लो ॥४२॥

युधिष्ठिर उवाच—

मन्त्रयस्व महाबाहो हितैषी मम नित्यशः ।
युध्यस्व कौरवस्याऽर्थे ममैष सततं वरः ॥४३॥

राजा युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! आप ही कुछ सोच लीजिए, क्योंकि आप हमारे हितैषी हैं। आप दुर्योधन के लिए युद्ध करें-मुझे तो यही वरदान है ॥४३॥

भीष्म उवाच -

राजन्किमत्र साह्यं ते करोमि कुरुनन्दन ।
कामं योत्स्ये परस्याऽर्थे ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥४४॥

भीष्म बोले—हे कुरुनन्दन ! धर्मराज ! इस समय मैं तेरी क्या सहायता कर सकता हूँ। यह तो ठीक ही है, कि हम तुम्हारे विरोधी की ओर से युद्ध करेंगे। अब कहिए-हम तुम्हारे लिए क्या कर सकते हैं ॥४४॥

युधिष्ठिर उवाच—

कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम् ।
एतन्मे मन्त्रय हितं यदि श्रेयः प्रपश्यसि ॥४५॥

युधिष्ठिर बोले-हे पितामह ! आप पराजित होने वाले नहीं हैं, फिर हमारी युद्ध में विजय कैसे हो सकती है। आप इस मेरे हित पर दृष्टि डाल लें, जो आप मेरा कुछ कल्याण करना चाहते हैं।

भीष्म उवाच—

नैनं पश्यामि कौन्तेय यो मां युध्यन्तमाहवे ।
विजयेत पुमान्कश्चित्साक्षादपि शतक्रतुः ॥४६॥

भीष्म ने कहा–हे कौन्तेय ! मैं संसार में कोई भी ऐसा पुरुष नहीं देखता हूं, जो मेरे युद्ध करने पर युद्ध में मुझ से विजयी हो जावे-चाहे वह इन्द्र ही क्यों न होवे ॥४६॥

युधिष्ठिर उवाच—

हन्त पृच्छामि तस्मात्त्वां पितामह नमोऽस्तु ते ।
वधोपायं ब्रवीहि त्वमात्मनः समरे परैः ॥४७॥

राजा युधिष्ठिर बोले–हे पितामह ! यही तो कारण है, जो मैं तुमसे पूछता हूं। आपको नमस्कार है । अब तो तुम युद्ध में अपनी मृत्यु का उपाय हमको स्वयं बतलादो ॥४७॥

भीष्म उवाच—

न स्म तं तात पश्यामि समरे यो जयेत माम् ।
न तावन्मृत्युकालोऽपि पुनरागमनं कुरु ॥४८॥

भीष्म बोले–हे तात ! मेरे जीतने वाला कोई पुरुष युद्ध में हो-ऐसा मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता है और न अभी मेरी मृत्यु का समय आया है। अब तुम एक बार फिर आना ॥४८॥

सञ्जय उवाच—

ततो युधिष्ठिरो वाक्यं भीष्मस्य कुरुनन्दन ।
शिरसा प्रतिजग्राह भूयस्तमभिवाद्य च ॥४९॥

प्रायात्पुनर्महाबाहुराचार्यस्य रथं प्रति ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां मध्येन भ्रातृभिः सह ॥५०॥

सञ्जय ने कहा-हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार भीष्म के वाक्य राजा युधिष्ठिर ने सुनकर उनको मस्तक झुकाकर ग्रहण किया और फिर उनको प्रणाम करके सारे भाइयों के मध्य में स्थित हुए महाबाहु धर्मराज, सारे सैनिकों के देखते २ आचार्य द्रोण के रथ की ओर चल दिए ॥४९-५०॥

स द्रोणमभिवाद्याऽथ कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥५१॥

धर्मराज ने द्रोणाचार्य को प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा की । अब वे दुर्धर्ष द्रोण से अपने हितकारी वचन इस प्रकार कहने लगे ॥५१॥

आमन्त्रये त्वां भगवन्योत्स्ये विगतकल्मषः ।
कथं जये रिपून्सर्वाननुज्ञातस्त्वया द्विज ॥५२॥

हे भगवन् ! आपसे कोई हमारा द्वेष नहीं है । अब आपसे हमारा युद्ध होना है—आप अनुमति दीजिए। हे द्विज ! ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे आपकी आज्ञानुसार हम शत्रुओं को विजय कर लें ॥५२॥

द्रोण उवाच—

यदि मां नाऽभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥५३॥

द्रोण बोले—हे महाराज ! यदि युद्ध का निश्चय करके तुम सत्कार प्रदर्शन करने को मेरे पास न आते—तो मैं तुम्हारे पराजय का अवश्य शाप देता ॥५३॥

तद्युधिष्ठिर तुष्टोऽस्मि पूजितश्च त्वयाऽनघ ।
अनुजानामि युध्यस्व विजयं समवाप्नुहि ॥५४॥

हे युधिष्ठिर ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं । हे अनघ ! तुमने मेरा बड़ा गौरव किया है । मैं तुमको अनुमति देता हूं, कि तुम युद्ध करके विजय प्राप्त करो ॥५४॥

करवाणि च ते कामं ब्रूहि त्वमभिकांक्षितम् ।
एवङ्गते महाराज युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥५५॥

तुम अपनी अभिलाषा कहो—हो सका तो मैं उसको पूर्ण करूँगा । हे महाराज ! इस परिस्थिति में युद्ध नहीं करने को छोड़ कर अन्य क्या चाहते हो, उसे बतलाओ ॥५५॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥५६॥

हे महाराज ! धन का दास संसार है, धन किसी का दास नहीं है । यह बात बिल्कुल सत्य है, कि मैं कौरवों के धन दान से (नौकरी के कारण) बँधा पड़ा हूं ॥५६॥

ब्रवीम्येतत्क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ।
योत्स्येऽहं कौरवस्यार्थे तवाऽऽशास्यो जयो मया ॥

मैं तुमसे निर्बल की भांति वचन कहता हूं, कि युद्ध के सम्बन्ध के अतिरिक्त तुम मुझसे क्या प्राप्त करना चाहते हो। मुझे लड़ना तो कौरवों की ओर से अवश्य है, परन्तु तुमको आशीर्वाद भी देता हूं, कि तुम्हारी विजय हो ॥५७॥

युधिष्ठिर उवाच—

जयमाशास्व मे ब्रह्मन्मन्त्रयस्व च मद्धितम् ।
युद्ध्यस्व कौरवस्याऽर्थे वर एष वृतो मया ॥५८॥

युधिष्ठिर ने कहा–हे ब्रह्मन् ! आप मुझे विजय का आशीर्वाद दें और मेरे हित पर विचार करें । आप कौरवों की ओर से ही युद्ध करिये-मेरा तो यही वर है ॥५८॥

द्रोण उवाच—

ध्रुवस्ते विजयो राजन्यस्य मन्त्री हरिस्तव ।
अहं त्वामभिजानामि रणे शत्रून्विमोक्ष्यसे ॥५९॥

द्रोण बोले—हे राजन् ! तुम्हारा अवश्य विजय होगा, क्योंकि तुम लोगों के मन्त्री श्रीकृष्ण हैं। मैं तुमको अनुमति (इजाजत) देता हूं, कि तुम युद्ध करो। तुम अवश्य रण में शत्रुओं का नाश करोगे ॥५९॥

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।
युध्यस्व गच्छ कौन्तेय पृच्छ मां किं ब्रवीमि ते ॥६०॥

हे कौन्तेय ! जिस ओर धर्म है, उधर कृष्ण हैं, जिधर कृष्ण होंगे-उधर ही विजय है। अब तुम जाओ और युद्ध करो। मुझसे जो पूछना हो, पूछो-परन्तु मैं इससे अधिक क्या कह सकता हूँ।

युधिष्ठिर उवाच—

पृच्छामि त्वां द्विजश्रेष्ठ शृणु यन्मेऽभिकांक्षितम्।
कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम् ॥६१॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं जो कहना चाहता हूं, उसे सुनो-आप तो किसी के भी जीतने में नहीं आने वाले हो-फिर आपको हम संग्राम में कैसे जीत सकते हैं ॥६१॥

द्रोण उवाच—

न तेऽस्ति विजयस्तावद्यावद्युद्ध्याम्यहं रणे।
ममाऽऽशु निधने राजन्यतस्व सह सोदरैः ॥६२॥

द्रोण ने कहा—हे राजन् ! जब तक मैं रणभूमि में लड़ता रहूंगा, तब तक तुम विजयी नहीं हो सकते यह ठीक है, इसलिए सबसे प्रथम तुम अपने भाइयों के साथ मेरे शीघ्र मारने का प्रयत्न करो ॥६२॥

युधिष्ठिर उवाच—

हन्त तस्मान्महाबाहो वधोपायं वदाऽऽत्मनः।
आचार्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते ॥६३॥

राजा युधिष्ठिर बोले—हे महाबाहो ! कृपा कर आप ही बता दीजिए, कि आपके मारने का क्या प्रकार है। हे आचार्य ! हम तो मस्तक झुका कर आप से पूछ रहे हैं-आपको नमस्कार है ॥६३॥

द्रोण उवाच—

न शत्रुं तात पश्यामि यो मां हन्याद्रथे स्थितम् ।
युद्ध्यमानं सुसंरब्धं शरवर्षौघवर्षिणम् ॥६४॥

द्रोण बोले—हे तात ! मैं तो ऐसे किसी शत्रु को नहीं देखता-जो रथ में बैठे हुए, बड़े आवेश में भरे हुए, बाणों के समूहकी वर्षा करते हुए और तीव्रता के साथ युद्ध करते हुए मुझे मार सके ॥६४॥

ऋते प्रायगतं राजन्न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
हन्यान्मां युधि योधानां सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥६५॥

हे राजन् ! जब मैं ध्यान परायण होकर शस्त्र छोड़कर मृत्यु के निमित्त विचार करूँगा-बस ! मुझे उसी समय कोई मार सकता है, यह मैं सारे योद्धाओं के सन्मुख सत्य कहता हूँ ॥६५॥

शस्त्रं चाऽहं रणे जह्यां श्रुत्वा तु महदप्रियम् ।
श्रद्धेयवाक्यात्पुरुषादेतत्सत्यं ब्रवीमि ते ॥६६॥

मैं युद्ध भूमि में शस्त्र भी तभी छोड़ सकता हूं, जब कोई महान् अप्रिय समाचार सुन लूंगा और उस बात को भी मैं तभी सत्य मानूंगा-जब कोई श्रद्धा करने योग्य व्यक्ति आकर मुझे ऐसा कहेगा । यह सब कुछ मैंने सत्य कहा है ॥६६॥

सञ्जय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा महाराज भारद्वाजस्य धीमतः ।
अनुमान्य तमाचार्यं प्रायाच्छारद्वतं प्रति ॥६७॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! विद्वान् भरद्वाज-पुत्र, द्रोणाचार्य के ये वचन सुन कर और अच्छी बात है-ऐसा आचार्य से कह कर धर्मराज, शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य की ओर चले ॥६७॥

सोऽभिवाद्य कृपं राजा कृत्वा चाऽपि प्रदक्षिणम् ।
उवाच दुर्मर्षतमं वाक्यं वाक्यविदाम्वरः ॥६८॥

राजा युधिष्ठिर ने कृपाचार्य को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की। वाक्य बोलने में कुशल, धर्मराज ने महा दुर्धर्ष कृप से यह वचन कहा ॥६८॥

अनुमानये त्वां योस्त्येऽहं गुरो विगतकल्मषः ।
जयेयं च रिपून्सर्वाननुज्ञातस्त्वयाऽनघ ॥६९॥

हे गुरो ! हम द्वेष को छोड़ कर आप लोगों से युद्ध करेंगे-कहिए-आपकी आज्ञा तो है, हे अनघ ! आप आशीर्वाद दें, कि हम सारे शत्रुओं को जीत सकें ॥६९॥

कृप उवाच—

यदि मां नाऽभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥७०॥

कृपाचार्य बोले—यदि युद्ध की धारणा निश्चय करके तुम मेरे पास न आते—तो मैं तुमको शाप दे देता, जिससे तुम्हारा सब तरह पराजय हो जाता ॥७०॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥७१॥

हे महाराज ! हम क्या करें-मनुष्य तो धन से बँध जाता है, धन किसी के बन्धन में नहीं है। यह सत्य है और इसीलिए हम कौरवों के साथ धन के (नौकरी के पालन करने के) कारण से ही बँधे हुए हैं ॥७१॥

तेषामर्थे महाराज योद्धव्यमिति मे मतिः ।
अतस्त्वां क्लीबवद् ब्रूयां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥७२॥

हे महाराज ! वेतन पाने के कारण लड़ना तो हमको उनकी ओर से ही पड़ेगा-इसीलिए मैं तुम से दबी भाषा में कहता हूँ, कि तुम युद्ध को छोड़ कर हमसे अन्य क्या मांगते हो।

युधिष्ठिर उवाच—

हन्त पृच्छामि ते तस्मादाचार्य शृणु मे वचः ।
इत्युक्त्वा व्यथितो राजा नोवाच गतचेतनः ॥७३॥

युधिष्ठिर बोले-हे आचार्य ! मैं इसी कारण से आप से यह बात पूछना चाहता हूँ, तुम मेरे वचन सुनो। इतना कह कर राजा बड़ा दुःखी हुआ और अचेत सा हुआ कुछ भी नहीं कह सका।

उवाच—

तं गौतमः प्रत्युवाच विज्ञायाऽस्य विवक्षितम् ।
अवध्योऽहं महीपाल युद्धयस्व जयमाप्नुहि ॥७४॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! धर्मराज के अभिप्राय को समझ कर स्वयं गौतम गोत्रोत्पन्न कृपाचार्य बोले—हे महीपाल ! मैं तो अवध्य हूं, परन्तु तुम लड़ो और विजय प्राप्त करो ॥७४॥

प्रीतस्तेऽभिगमेनाऽहं जयं तव नराधिप ।
आशासिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥७५॥

हे नराधिप! तुम्हारे यहां आने से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। तुमको विजय प्राप्त हो। मैं तो सदा प्रातःकाल उठ कर तुम लोगों को आशीर्वाद देता हूँ-यह तुम सत्य समझना ॥७५॥

एतच्छ्रुत्वा महाराज गौतमस्य विशाम्पते ।
अनुमान्य कृपं राजा प्रययौ येन मद्रराट् ॥७६॥

हे विशाम्पते! महाराज! कृपाचार्य के ये वचन सुनकर और उनकी अनुमति लेकर राजा उधर को चल दिए, जिधर इनके मामा मद्राधिपति शल्य थे ॥७६॥

स शल्यमभिवाद्याऽथ कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥७७॥

धर्मराज ने शल्य को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की। फिर राजा युधिष्ठिर ने दुर्धर्ष शल्य से अपने कल्याणकारी वचन कहे ॥७७॥

अनुमानये त्वां दुर्धर्ष योत्स्ये विगतकल्मषः ।
जयेयं तु परान्राजन्ननुज्ञातस्त्वया रिपून् ॥७८॥

हे दुर्धर्ष! मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ, क्योंकि हम आपसे लड़ने वाले हैं, यद्यपि हमारे मन में आप से कोई द्वेष नहीं है। हे राजन्! आपके आशीर्वाद से हम शत्रुओं को जीतना चाहते हैं।

शल्य उवाच—

यदि मां नाऽधिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय वै रणे ॥७९॥

शल्य बोले—हे महाराज ! यदि तुम युद्ध में प्रवृत्त होने को सन्नद्ध होकर मेरे पास न आते, तो मैं आपके सर्वथा युद्ध में पराजय के लिए शाप देता ॥७९॥

तुष्टोऽस्मि पूजितश्चाऽस्मि यत्कांक्षसि तदस्तु ते ।
अनुजानामि चैव त्वां युद्ध्यस्व जयमाप्नुहि ॥८०॥

अब मैं प्रसन्न हो गया हूँ, क्योंकि तुमने मेरा बड़ा आदर किया है । जो तुम्हारा मनोरथ है, वह पूर्ण हो । मैं तुमको आज्ञा (इजाज़त) देता हूँ, कि तुम युद्ध करके विजय प्राप्त करो ॥८०॥

ब्रूहि चैव परं वीर केनाऽर्थः किं ददामि ते ।
एवङ्गते महाराज युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥८१॥

हे वीर ! अब तुम आगे की बात करो । तुम्हारा क्या प्रयोजन है और मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूं । हे महाराज ! इस दशा में युद्ध के बिना आप कुछ ही मांगलें-मैं प्रदान करूंगा ।

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥८२॥

मनुष्य तो धन का दास है-धन किसी का दास नहीं है । हे महाराज ! यह सत्य है, कि हम लोग धन से ही कौरवों के साथ बँधे हुए हैं ॥८२॥

करिष्यामि हि ते कामं भागिनेय यथेप्सितम् ।
ब्रवीम्यतः क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥८३॥

हे भागिनेय ! मैं तुम्हारी कामना अच्छी तरह पूर्ण करूंगा, परन्तु मैं कायर की भांति कहता हूं-कि आप युद्ध के अतिरिक्त अन्य कुछ मांगें । कहिए-क्या चाहते हैं ? ॥८३॥

युधिष्ठिर उवाच—

मन्त्रयस्व महाराज नित्यं मद्धितमुत्तमम् ।
कामं युद्ध्य परस्यार्थे वरमेतं वृणोम्यहम् ॥८४॥

राजा युधिष्ठिर ने कहा-हे महाराज ! आप ही जो मेरा उत्तम हित हो-उसका विचार करो । आप दुर्योधन की ओर से अच्छी तरह लड़ें-मैं तो यही चाहता हूं ॥८४॥

शल्य उवाच—

किमत्र ब्रूहि साह्यं ते करोमि नृपसत्तम ।
कामं योत्स्ये परस्यार्थे बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥८५॥

शल्य ने कहा -हे नृपसत्तम ! आप यह बताइए, कि मैं आपकी क्या सहायता करूं । मुझे तो कौरवों ने धन (वेतन) देकर बांध लिया है, इससे मैं तो तुम्हारे विरोधियों की ओर से खूब लड़ूंगा ।

युधिष्ठिर उवाच—

स एव मे वरः शल्य उद्योगे यस्त्वया कृतः ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे कार्यस्तेजोवधस्त्वया ॥८६॥

युधिष्ठिर बोले-हे मद्रराज! शल्य! मेरे लिए तो आपका यही वर होगा; जो उद्योग (पर्व) में तुमने प्रतिज्ञा की है, कि जिस समय सूत-पुत्रका तुम लोगों के साथ संग्राम होगा-तब उनका तेज क्षय करता रहूंगा। बस? आप तो इतना ही कीजिए ॥८६॥

शल्य उवाच—

सम्पत्स्यत्येष ते कामः कुन्तीपुत्र यथेप्सितम्।
गच्छ युध्यस्व विश्रब्धः प्रतिजाने वचस्तव ॥८७॥

शल्य बोले-हे कुन्ती-पुत्र! तेरी इस कामना को यथाशक्ति तेरी इच्छा के अनुसार पूरी करने की चेष्टा करूंगा। अब तुम जाओ और निःशङ्क होकर युद्ध करो-मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ।

सञ्जय उवाच—

अनुमान्याऽथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरम्।
निर्जगाम महासैन्याद्भ्रातृभिः परिवारितः ॥८८॥

सञ्जय ने कहा-हे राजन्! इस प्रकार मद्रेश्वर अपने मामा शल्य से अनुमति लेकर धर्मराज, अपने भाइयों के साथ दुर्योधन की विशाल सेना से बाहर निकल आया ॥८८॥

वासुदेवस्तु राधेयमाहवेऽभिजगाम वै।
तत एनमुवाचेदं पाण्डवार्थे गदाग्रजः ॥८९॥

श्रीकृष्ण, इस समय युद्ध में राधा-पुत्र कर्ण के पास पहुंचे। गदाग्रज श्रीकृष्ण, पाण्डवों का हित करने के निमित्त से कर्ण से कहने लगे ॥८९॥

श्रुतं मे कर्ण भीष्मस्य द्वेषात्किल न योत्स्यसे।
अस्मान्वरय राधेय यावद्भीष्मो न हन्यते ॥६०॥

हते तु भीष्मे राधेय पुनरेष्यसि संयुगम्।
धार्त्तराष्ट्रस्य साहाय्यं यदि पश्यसि चेत्समम् ॥६१॥

हे कर्ण ! हमने सुना है, कि तुम भीष्म के द्वेष से जब तक भीष्म नहीं मारा जावेगा-तब तक युद्ध ही नहीं करोगे । हे राधेय ! यदि ऐसी ही इच्छा है, तो जब तक भीष्म का वध न होवे-तब तक तुम हमारी ओर चले चलो । हे राधेय ! जब भीष्म मार लिया जावे, तब तुम इधर ही चले आना । जो तुम्हें धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की सहायता करनी ही अभीष्ट है ॥६०-६१

कर्ण उवाच—

न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव।
त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधनहितैषिणम् ॥६२॥

कर्ण ने कहा—हे केशव ! मैं राजा दुर्योधन के कुछ भी अहित की बात नहीं कर सकता हूं। मैं तो दुर्योधन का हित अपने प्राणों को अर्पण करके भी करना चाहता हूं ॥६२॥

सञ्जय उवाच—

तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः संन्यवर्तत भारत।
युधिष्ठिरपुरोगैश्च पाण्डवैः सह सङ्गतः ॥६३॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! इतना सुनकर श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर और उनके भाइयों के साथ वापिस लौट गए ॥६३॥

अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत्पाण्डवाग्रजः ।
योऽस्मान्वृणोति तमहं वरये साह्यकारणात् ॥९४॥

अब सेना के मध्य में खड़े होकर सबसे बड़े भ्राता, राजा युधिष्ठिर ने घोषणा की, कि जो हमारी सहायता करना चाहे, वह हमारी ओर आ सकता है; मैं उनका आह्वान करता हूं ।

अथ तान्समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत् ।
प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥९५॥

उन सारे पाण्डवों को इस प्रकार घोषणा करते हुए देखकर आपका पुत्र युयुत्सु, कुन्ती-पुत्र, धर्मराज युधिष्ठिर से बोला-क्योंकि वह पाण्डवों से प्रीति रखता था ॥९५॥

अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धृतराष्ट्रजान् ।
युष्मदर्थे महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ ॥९६॥

हे महाराज ! मैं इस युद्ध में आपकी ओर से कौरवों से आपकी विजय के लिए युद्ध करना चाहता हूं । हे अनघ ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपकी ओर चला आऊं ॥९६॥

युधिष्ठिर उवाच—

एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान् ।
युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः ॥९७॥

युधिष्ठिर बोले—हे युयुत्सो ! तुम हमारी ओर चले आओ । यह बात हम और श्रीकृष्ण आदि सब कह रहे हैं । हम लोग सब मिलकर तुम्हारे अनसमझ भाइयों से युद्ध करेंगे ॥९७॥

वृणोमि त्वां महाबाहो युद्ध्यस्व मम कारणात् ।
त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते ॥९८॥
भजस्वाऽस्मान्राजपुत्र भजमानान्महाद्युते ।
न भविष्यति दुर्बुद्धिर्धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥९९॥

हे महाबाहो ! मैं तुमको स्वीकार करता हूं तुम हमारी ओर से बड़े हर्ष के साथ युद्ध करो । इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र के वंश-तन्तु और पिण्डदानकी स्थिति तुम्हारे आधारसे बची रह जावेगी। हे राजपुत्र ! हम तुम्हारे साथ मिलना चाहते हैं, तुम भी हमारे साथ मिल जाओ। हे महाद्युते ! अब अन्य की उन्नति नहीं सहने वाला, दुर्बुद्धि, दुर्योधन जीता नहीं बचेगा ॥९८-९९॥

सञ्जय उवाच—

ततो युयुत्सुः कौरव्यान्परित्यज्य सुतांस्तव ।
जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम् ॥१००

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर कुरुवंशश्रेष्ठ, तुम्हारे दुर्योधनादि पुत्रों को छोड़कर तुम्हारा पुत्र युयुत्सु अपना ढोल बजाता हुआ पाण्डवों की सेना में जा सम्मिलित हुआ ॥१००॥

ततो युधिष्ठिरो राजा सम्प्रहृष्टः सहानुजः ।
जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत्कनकोज्ज्वलम् ॥१०१॥

इस बात से राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ बड़ा प्रसन्न हुआ । इसने अब अपना फिर चमकता हुआ सुवर्ण का उज्ज्वल कवच ग्रहण कर लिया ॥१०१॥

प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे स्वरथान्पुरुषर्षभाः ।
ततो व्यूहं यथापूर्वं प्रत्यव्यूहन्त ते पुनः ॥१०२॥

अन्य पुरुष श्रेष्ठ, अर्जुनादि भी अपने २ रथों पर चढ़ गए। अब दोनों ओर से फिर उसी तरह अपनी २ सेना का व्यूह बना लिया गया ॥१०२॥

अवादयन्दुन्दुभींश्च शतशश्चैव पुष्करान् ।
सिंहनादांश्च विविधान्विनेदुः पुरुषर्षभाः ॥१०३॥

ये पुरुष प्रवीर, सैंकड़ों प्रकार से दुन्दुभि (नगाड़े) और पुष्कर नामक बाजों को बजाने लगे और नाना भांति से सिंहनाद (गर्जना) करने लगे ॥१०३॥

रथस्थान्पुरुषव्याघ्रान्पाण्डवान्प्रेक्ष्य पार्थिवाः ।
धृष्टद्युम्नादयः सर्वे पुनर्जहृषिरे तदा ॥१०४॥

रथ के ऊपर चढ़े हुए पुरुष श्रेष्ठ पाण्डवों को देखकर राजा लोग तथा धृष्टद्युम्न आदि सेनापति फिर बड़े प्रसन्न हुए ॥१०४

गौरवं पाण्डुपुत्राणां मान्यान्मानयतां च तान् ।
दृष्ट्वा महीक्षितस्तत्र पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ॥१०५॥

मान्य पुरुषों के मान करने वाले पाण्डु-पुत्रों के गौरव को देखकर राजा लोग उन पाण्डवों की बड़ी पूजा करने लगे ॥१०५

सौहृदं च कृपां चैव प्राप्तकालं महात्मनाम् ।
दयां च ज्ञातिषु परां कथयाञ्चक्रिरे नृपाः ॥१०६॥

महात्मा पाण्डवों की समय २ पर होने वाली कृपा, प्रीति और बान्धवों पर अत्यन्त दयाभाव को देखकर राजा लोग पाण्डवों की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे ॥१०६॥

साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुतिसंहिताः ।
वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनोहृदयहर्षणाः ॥१०७॥

सब ओर से पाण्डवों की प्रशंसा के साथ धन्य २ की ध्वनि आने लगी। इन पुण्यात्माओं की पवित्र कीर्ति के कहने वाली वाणी, सब के मन और हृदयों को प्रसन्न करने वाली थी ॥१०७॥

म्लेच्छाश्चाऽऽर्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तथा ।
वृत्तं तत्पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥१०८॥

इस समय क्या आर्य और क्या म्लेच्छ, जिन्होंने पाण्डवों का आचरण देखा वा सुना, वे सब गद्गद कण्ठ से रोने लगे।

ततो जघ्नुर्महाभेरीः शतशश्च सहस्रशः ।
शङ्खांश्च गोक्षीरनिभान्दध्मुर्हृष्टा मनस्विनः ॥१०९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मादिसम्मानने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अब बड़ी २ भेरी, सैंकड़ों और हज़ारों की संख्या में बजने लगे तथा गोक्षीर के समान शुक्ल शंखों को प्रसन्न हुए वीर बड़े वेग से बजाने लगे ॥१०९॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म आदि के सम्मान का तेतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

चवालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र कुरवः पाण्डवा नु किम् ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! जब फिर इस भांति मेरे पुत्रों और पाण्डवों की सेना का व्यूह बना लिया गया तो मेरे पुत्र कौरव या पाण्डवों में से प्रथम किसने प्रहार किया ॥१॥

सञ्जय उवाच—

भ्रातृभिः सहितो राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! अपने भाइयों के साथ तुम्हारा पुत्र दुःशासन, भीष्म को आगे करके सेना के साथ चल दिया।

तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः ।
भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥३॥

इसी तरह सारे पाण्डव भी भीमसेन को आगे करके भीष्म के साथ युद्ध करने की वाञ्छा से बड़ी प्रसन्नता से आगे बढे ।

क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दा क्रकचा गोविषाणिकाः ।
भेरीमृदङ्गमुरजा हयकुञ्जरनिःस्वनाः ॥४॥

उभयोः सेनयोरासंस्ततस्तेऽस्मान्समाद्रवन् ।
वयं तान्प्रतिनर्दन्तस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥५॥

इस सिंहनाद, किलकिला शब्द, क्रकच, गोविषाण, भेरी, मृदङ्ग, मुरज आदि बाजे, हाथी घोड़ों के शब्द, दोनों सेनाओं में होने लगे। अब पाण्डवों की सेना गर्जना करती हुई हमारी ओर और हमारी सेना पाण्डवों की ओर झपटी। इस समय बड़ा घोर शब्द उपस्थित हो गया ॥४-५॥

महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये समागमे पाण्डवधार्त्तराष्ट्रयोः
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना

पाण्डु और धृतराष्ट्र-पुत्रों के इस विशाल युद्ध के समागम में दोनों ओर की विशाल सेना शङ्ख, मृदङ्ग आदि बाजों के शब्दों को करती हुई, वायु से कँपाये हुए वन की भांति झिलमिला रही थी ॥६॥

नरेन्द्रनागाश्वरथाकुलानामभ्यागतानामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥

इस अशुभ समय में आये हुए, राजा, हाथी, अश्व और रथों का दोनों ओर की सेनाओं में पवन से कंपायमान किए हुए समुद्र की भांति घोर गर्जना हो रही थी ॥७॥

तस्मिन्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
भीमसेनो महाबाहुः प्राणदद्गोवृषो यथा ॥८॥

जब यह महा घोर रोमाञ्च खड़ा कर देने वाला कोलाहल हो रहा था, तो इस समय वृषभ (साँड़) की भाँति शब्द करता हुआ महाबाहु भीमसेन गर्जना करने लगा ॥८॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वारणानां च बृंहितम् ।
सिंहनादं च सैन्यानां भीमसेनरवोऽभ्यभूत् ॥९॥

इस भीमसेन की गर्जना ने शङ्ख, दुन्दुभि आदि बाजे, हाथियों की चिंघाड़ और सेनाओं के सिंहनाद को बिल्कुल फीका कर दिया ९॥

हयानां हेषमाणानामनीकेषु सहस्रशः ।
सर्वानभ्यभवच्छब्दान्भीमस्य नदतः स्वनः ॥१०॥

इन सेना में सहस्रों अश्वों के हिनहिनाने का शब्द हो रहा था, परन्तु भीमसेनकी गर्जनाके शब्दने एक बार सबको दबा लिया।

तं श्रुत्वा निनदं तस्य सैन्यास्तव वितत्रसुः ।
जीमूतस्येव नदतः शक्राशनिसमस्वनम् ॥११॥

भीमसेन के इस सिंहनाद को सुनकर तुम्हारी सेना के सैनिक चौंक उठे। भीमसेन की यह गर्जना गर्जते हुए मेघ से निकले हुए इन्द्र वज्र के शब्द के समान थी ॥११॥

वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
शब्देन तस्य वीरस्य सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥१२॥

इस वीर के शब्द को सुनकर सिंह के शब्द को अन्य वन के जन्तुओं की भांति, आपकी सेना के हाथी घोड़े मल-मूत्र छोड़ने लगे ॥१२॥

दर्शयन्घोरमात्मानं महाभ्रमिव नादयन् ।
विभीषयंस्तव सुतान्भीमसेनः समभ्ययात् ॥१३॥

भीमसेन अपने घोर स्वरूप को दिखाता और महामेघ के तुल्य गर्जता हुआ एवं आपके पुत्रों को भयभीत करता हुआ, बड़े वेग से सन्मुख आ धमका ॥१३॥

तमायान्तं महेष्वासं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
छादयन्तः शरव्रातैर्मेघा इव दिवाकरम् ॥१४॥

इस महा धनुर्धर भीम को आता हुआ देख कर तुम्हारे पुत्र, सारे भ्राताओं ने उसको घेर लिया और शर समूह से इतना ढक दिया, जैसे-सूर्य को मेघ ढक देते हैं ॥१४॥

दुर्योधनश्च पुत्रस्ते दुर्मर्षखो दुःशलः शलः ।
दुःशासनश्चाऽतिरथस्तथा दुर्मर्षणो नृपः ॥१५॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ॥१६॥
महाचापानि धुन्वन्तो मेघा इव सविद्युतः ।
आददानाश्च नाराचान्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥१७॥

हे राजन्! आपके पुत्र, दुर्योधन, दुर्मुख, दुःशल, शल, महारथी दुःशासन, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, महारथी विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज, वीर्यवान् सौमदत्ति, ये सारे ही अपने २ धनुषों को कंपा रहे थे, जो मेघों में बिजली के सदृश प्रतीत होते थे। इन्होंने स्वतन्त्र घूमने वाले सर्पों के तुल्य बाणों को ले रखा था ॥१७॥

अथ ते द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥१८॥
धार्त्तराष्ट्रान्प्रतिययुरर्दयन्तः शितैः शरैः ।
वज्रैरिव महावेगैः शिखराणि धराभृताम् ॥१९॥

अब इधर से द्रौपदी के पुत्र, महारथी सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, पर्षत वंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न आदि वीर, तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करते हुए, तुम्हारे पुत्रों की ओर दौड़े । ये बाण इतने तीक्ष्ण थे, जो पर्वतों के शिखर पर पड़ने वाले इन्द्र के वज्र के तुल्य प्रतीत होते थे ॥१८-१९॥

तस्मिन्प्रथमसंग्रामे भीमज्यातलनिःस्वने ।
तावकानां परेषां च नाऽऽसीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥२०॥

भयानक धनुष की डोरी और करतल ध्वनि से भीषण, इस प्रथम दिन के सग्राम में तुम्हारी और पाण्डवों की ओर का कोई भी वीर, युद्ध से पराङ्-मुख नहीं हुआ ॥२०॥

लाघवं द्रोणशिष्याणामपश्यं भरतर्षभ ।
निमित्तवेधिनां चैव शरानुत्सृजतां भृशम् ॥२१॥

हे भरतर्षभ ! मैंने इस युद्ध में द्रोण-शिष्यों का लाघव(फुर्ती) देखा । ये अपने लक्ष्य को तत्क्षण बेंध लेते थे और लगातार अति-तीव्र बाण वर्षा कर रहे थे ॥२१॥

नोपशाम्यति निर्घोषो धनुषां कूजतां तथा ।
विनिश्चेरुः शरा दीप्ता ज्योतींषीव नभस्तलात् ॥२२॥

इस समय धनुषों की गर्जना का शब्द शान्त नहीं होता था। आकाश में नक्षत्रों के सदृश उन धनुष से लगातार चमकते हुए बाण निकल रहे थे ॥२२॥

सर्वे त्वन्ये महीपालाः प्रेक्षका इव भारत ।
ददृशुर्दर्शनीयं तं भीमं ज्ञातिसमागमम् ॥२३॥

हे भारत ! अन्य राजा तो उस समय खड़े हुए तुम्हारे पुत्रों और पाण्डु-पुत्रों के देखने योग्य इस बन्धु बान्धवों के युद्ध नाटक को नाटक देखने वालों की तरह देखते रहे ॥२३॥

ततस्ते जातसंरम्भाः परस्परकृतागसः ।
अन्योन्यस्पर्धया राजन्व्यायच्छन्त महारथाः ॥२४॥

हे राजन् ! इन महारथियों को परस्पर क्रोध चढ़ आया और वे परस्पर एक दूसरे का अपराध करने लगे । ये एक दूसरे की स्पर्धा से वेग के साथ परस्पर प्रहार करने लगे ॥२४॥

कुरुपाण्डवसेने ते हस्त्यश्वरथसंकुले ।
शुशुभाते रणेऽतीव पटे चित्रार्पिते इव ॥२५॥

हाथी, अश्व और रथों से भरी हुई कौरवों और पाण्डवों की सेना वस्त्र पर खींचे हुए चित्र की भांति अत्यन्त शोभित हो रही थी ॥२५॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।
सहसैन्याः समापेतुः पुत्रस्य तव शासनात् ॥२६॥

अब सारे राजाओं ने भी धनुष बाण उठाए और तुम्हारे पुत्र दुर्योधन की आज्ञा से सैनिकों के साथ चल पड़े ॥२६॥

युधिष्ठिरेण चाऽऽदिष्टाः पार्थिवास्ते सहस्रशः ।
विनदन्तः समापेतुः पुत्रस्य तव वाहिनीम् ॥२७॥

राजा युधिष्ठिर ने भी अपने सहस्रों राजाओं को आज्ञा दी । भी गर्जना करते हुए, तुम्हारे पुत्र की सेना पर झपट पड़े ॥२७॥

उभयोः सेनयोस्तीव्रः सैन्यानां स समागमः ।
अन्तर्धीयत चाऽऽदित्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः ॥२८॥

इन दोनों सेना और सैनिक वीरों के समागम, में सेना की उठायी हुई धूलि में सूर्य अस्त सा हो गया ॥२८॥

प्रयुद्धानां प्रभग्नानां पुनरावर्तिनामपि ।
नाऽत्र स्वेषां परेषां वा विशेषः समदृश्यत ॥२६॥

युद्ध करते, पीछे हटते, फिर लौट पड़ते हुए, वीरों में अपने और पराये का विशेष भेद (फर्क) का कुछ पता नहीं लगता था ।

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ।
अतिसर्वाण्यनीकानि पिता तेऽभिव्यरोचत ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि युद्धारम्भे
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

इस प्रकार घोर घमसान भयानक युद्ध के छिड़ने पर तुम्हारे पिता भीष्म, सारी सेनाओं को उल्लांघ कर सबसे आगे जा चमके।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में युद्ध के आरम्भ का चवालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

पैंतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

पूर्वाह्णे तस्य रौद्रस्य युद्धमह्नो विशाम्पते।
प्रावर्तत महाघोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥१॥

सञ्जय बोले–हे विशाम्पते! उस भीषण दिन के पूर्वाद्ध में राजाओं की देहों के काटने छाटने वाले, महाघोर युद्ध का आरम्भ हुआ ॥१॥

कुरूणां सृञ्जयानां च जिगीषूणां परस्परम्।
सिंहानामिव संह्रादो दिवमुर्वीं च नादयन् ॥२॥
आसीत्किलकिलाशब्दस्तलशङ्खरवैः सह।
जज्ञिरे सिंहनादाश्च शूराणां प्रतिगर्जताम् ॥३॥

एक दूसरे को जीतने की इच्छा में तत्पर हुए कौरव और द्रुपद के सैनिक, सृञ्जयों का सिंहों का सा घोर शब्द, आकाश और पृथिवी को छू रहा था। इस समय तालों की फटकार और शंख-ध्वनि से बड़ी किलकिलाहट मची हुई थी। शूरवीरों की गर्जना और सिंहनाद बड़े वेग से उठा हुआ था। ॥२-३॥

तलत्राभिहताश्चैव ज्याशब्दा भरतर्षभ ।
पत्तीनां पादशब्दश्च वाजिनां च महास्वनः ॥४॥
तोत्रांकुशनिपातश्च आयुधानां च निःस्वनः ।
घण्टाशब्दश्च नागानामन्योन्यमभिधावताम् ॥५॥

हे भरतर्षभ ! करतल-त्राण से टकराए हुए धनुष की डोरी के शब्द, पैदल सैनिकों की चरण ध्वनि, अश्वों की हिनहिनाहट तोत्र (सांटे) और अंशों का टकराना, शस्त्रों और घण्टाओं का शब्द, एक दूसरे की ओर दौड़ते हुए हाथियों की चिंघाड़ बड़ी तीव्रता से बढ़ रही थी ॥४-५॥

तस्मिन्समुदिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
बभूवरथनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ॥६॥

इस लोमहर्षण, महाघोर शब्द के उठने पर इनमें रथों का निर्घोष, मेघ गर्जना के सदृश प्रतीत हो रहा था ॥६॥

ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः ॥७॥

कौरव लोग मन को क्रूर करके और जीवन की आशा छोड़ कर ध्वजा उठाए हुए पाण्डवों की ओर झपटे ॥७॥

अथ शान्तनवो राजन्नभ्यधावद्धनञ्जयम् ।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं कालदण्डोपमं रणे ॥८॥

हे राजन् ! अब शान्तनु-पुत्र भीष्म, रण में काल-दण्ड के सदृश घोर धनुष लेकर अर्जुन पर झपटा ॥८॥

अर्जुनोऽपि धनुर्गृह्य गाण्डीवं लोकविश्रुतम् ।
अभ्यधावत तेजस्वी गाङ्गेयं रणमूर्धनि ॥९॥

महातेजस्वी, अर्जुन भी लोक प्रसिद्ध, गाण्डीव धनुष को लेकर रणाङ्गण में गङ्गा-पुत्र भीष्म की ओर दौड़े ॥९॥

तावुभौ कुरुशार्दूलौ परस्परवधैषिणौ ।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थं विध्वा नाऽकम्पयद्बली ॥१०॥
तथैव पाण्डवो राजन्भीष्मं नाऽकम्पयद्युधि ।
सात्यकिस्तु महेष्वासः कृतवर्माणमभ्ययात् ॥११॥

हे राजन् ! ये दोनों कुरुवंश के सिंह, भीष्म और अर्जुन, एक दूसरे के मारने की घात में थे। महाबली भीष्म ने रण में अर्जुन को अपने बाणों से बींध दिया, परन्तु वे उसको पीछे हटाने में समर्थ न हुए और अर्जुन ने भी भीष्म को बींधा, परन्तु वे भी उन्हें रण से पराङ्-मुख न कर सके। महाधनुर्धर सात्यकि भी कृतवर्मा से जा भिड़े ॥१०-११॥

तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
सात्यकिः कृतवर्माणं कृतवर्मा च सात्यकिम् ॥१२॥
आनर्च्छतुः शरैर्घोरैस्तक्षमाणौ परस्परम् ।

इन दोनों का बड़ा लोमहर्षण युद्ध हुआ। सात्यकि ने कृतवर्मा को और कृतवर्मा ने सात्यकि को अपने २ तीक्ष्ण बाणों से परस्पर एक दूसरे को छेद डाला ॥१२॥

तौ शराचितसर्वाङ्गौ शुशुभाते महाबलौ ॥१३॥
वसन्ते पुष्पशबलौ पुष्पिताविव किंशुकौ ।
अभिमन्युर्महेष्वासं बृहद्बलमयोधयत् ॥१४॥

इन दोनों महाबलियों के शरीर बाणों से व्याप्त हो रहे थे और वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे-वसन्त ऋतु में पुष्पों से चित्र विचित्र, खिले हुए किंशुक (ढ़ाक) के वृक्ष होते हैं। महारथी अभिमन्यु, महाधनुर्धर बृहद्बल से युद्ध करने लगा ॥१३-१४॥

ततः कोसलराजाऽसावभिमन्योर्विशाम्पते ।
ध्वजं चिच्छेद समरे सारथिं च न्यपातयत् ॥१५॥

हे विशाम्पते ! कोसलदेशाधिपति बृहद्बल ने इस भीषण युद्ध में अभिमन्यु की ध्वजा काट गिराई और उसके सारथी को भी मार गिराया ॥१५॥

सौभद्रस्तु ततः क्रुद्धः पातिते रथसारथौ ।
बृहद्बलं महाराज विव्याध नवभिः शरैः ॥१६॥

हे महाराज ! अपने रथ के सारथि के गिरा देने पर सुभद्रा-नन्दन अभिमन्यु बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने राजा बृहद्बल को नौ बाणों से एक दम बेंध लिया ॥१६॥

अथाऽपराभ्यां भल्लाभ्यां शिताभ्यामरिमर्दनः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद पार्ष्णिमेकेन सारथिम् ॥१७॥
अन्योन्यं च शरैः क्रुद्धौ ततक्षाते परस्परम् ।

अरिमर्दन अभिमन्यु ने फिर अन्य दो तीखे बाणों में से एक से राजा बृहद्बल की ध्वजा और दूसरे से पृष्ठ-रक्षक और सारथि को बेंध डाला। ये दोनों क्रोध में भरे हुए थे, इसलिए बाणों से एक दूसरे को काटने लगे ॥१७॥

मानिनं समरे दृप्तं कृतवैरं महारथम् ॥१८॥
भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधनमयोधयत् ।

बड़े घमण्डी, युद्ध में गर्वीले, पूर्वकाल से वैर रखने वाले, तुम्हारे पुत्र महारथी दुर्योधन से भीमसेन लड़ने लगा ॥१८॥

तावुभौ नरशार्दूलौ कुरुमुख्यौ महाबलौ ॥१९॥
अन्योन्यं शरवर्षाभ्यां ववृषाते रणाजिरे ।

ये दोनों महाबली, नर श्रेष्ठ, कुरुवंश में विख्यात वीर थे। इन्होंने एक दूसरे को रणभूमि में बाणों की वर्षा से पाट दिया।

तौ वीक्ष्य तु महात्मानौ कृतिनौ चित्रयोधिनौ ॥२०॥
विस्मयः सर्वभूतानां समपद्यत भारत ।

हे भारत! अद्भुत रीति से युद्ध करने वाले, महावीर रण, कुशल, इन दोनों महारथियों को देखकर समस्त प्राणियों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥२०॥

दुःशासनस्तु नकुलं प्रत्युद्याय महाबलम् ॥२१॥
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः ।

दुःशासन ने भी महाबली नकुल के पास पहुंच कर मर्मभेदी बहुत से तीक्ष्ण बाणों से उसको बेंध डाला ॥२१॥

तस्य माद्रीसुतः केतुं सशरं च शरासनम् ॥२२॥
चिच्छेद निशितैर्बाणैः प्रहसन्निव भारत ।

हे भारत ! माद्री-पुत्र नकुल ने भी हँसते २ अपने तीक्ष्ण बाणों से दुःशासन की ध्वजा और बाण सहित धनुष को काट डाला ।

अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥२३॥
पुत्रस्तु तव दुर्धर्षो नकुलस्य महाहवे ।
तुरङ्गांश्चिच्छिदे बाणैर्ध्वजं चैवाऽभ्यपातयत् ॥२४॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्धर्ष दुःशासन ने इस महायुद्ध में नकुल के ऊपर फिर छोटे २ पच्चीस बाण चलाए । इसने नकुल के अश्वों को बाणों से छेद डाला और उसकी ध्वजा को काट गिराया ।

दुर्मुखः सहदेवं च प्रत्युद्याय महाबलम् ।
विव्याध शरवर्षेण यतमानं महाहवे ॥२५॥

तुम्हारा पुत्र दुर्मुख भी महाबली सहदेव से लड़ने लगा । जब सहदेव ने युद्ध में अधिक चेष्टा की-तो इसने उसे बाणों की वर्षा से बेंध लिया ॥२५॥

सहदेवस्ततो वीरो दुर्मुखस्य महारणे ।
शरेण भृशतीक्ष्णेन पातयामास सारथिम् ॥२६॥

महावीर सहदेव ने भी इस महारण में अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से दुर्मुख के सारथि को मार गिराया ॥२६॥

तावन्योन्यं समासाद्य समरे युद्धदुर्मदौ ।
त्रासयेतां शरैर्घोरैः कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥२७॥

ये दोनों युद्ध में बड़े ही दुर्मद थे। ये इस रण में एक दूसरे के पास पहुंचकर एक के प्रहार का बदला चुकाने के ध्यान से घोर बाणों से परस्पर पीड़ित करने लगे ॥२७॥

युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्रराजानमभ्ययात् ।
तस्य मद्राधिपश्चापं द्विधा चिच्छेद मारिष ॥२८॥

स्वयं राजा युधिष्ठिर भी मद्रराज शल्य की ओर चले । हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर के धनुष का मद्रराज शल्य ने दो टुकड़े कर दिए ॥२८॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय वेगवद्बलवत्तरम् ॥२९॥
ततो मद्रेश्वरं राजा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥३०॥

कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने उस कटे हुए धनुष को फेंक कर, दूसरा बड़ा वेगशाली दृढ़ धनुष लिया । अब धर्मराज ने क्रुद्ध होकर इस धनुष से छोड़े हुए, झुकी पर्व वाले बाणों से मद्रेश्वर को ढ़क दिया और कहा—जरा ठहरो ॥२९-३०॥

धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणमभ्यद्रवत भारत ।
तस्य द्रोणः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ॥३१॥
त्रिधा चिच्छेद समरे पाञ्चाल्यस्य तु कार्मुकम् ।

हे भारत ! धृष्टद्युम्न, द्रोणाचार्य की ओर चले । द्रोणाचार्य ने क्रोध में आकर अन्य वीरों की मृत्यु करने वाले, दृढ़ पाञ्चाल

राजकुमार धृष्टद्युम्न के धनुष को इस युद्ध में तीन स्थानों से काट डाला ॥३१॥

शरं चैव महाघोरं कालदण्डमिवाऽपरम् ॥३२॥
प्रेषयामास समरे सोऽस्य काये न्यमज्जत ।

द्रोण ने काल दण्ड के तुल्य महाघोर बाण उठाया और युद्ध में छोड़ दिया, जो धृष्टद्युम्न के शरीर में घुस गया ॥३२॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय सायकांश्च चतुर्दश ॥३३॥
द्रोणं द्रुपदपुत्रस्तु प्रतिविव्याध संयुगे ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ चक्रतुः सुभृशं रणम् ॥३४॥

द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने भी इस युद्ध में धनुष लेकर चौदह बाण छोड़े, जिनसे इसने द्रोणाचार्य को बींध दिया । ये एक दूसरे पर क्रुद्ध हो रहे थे । इससे इनका युद्ध बड़ा ही भीषण हुआ ।

सौमदत्तिं रणे शङ्खो रभसं रभसो युधि ।
प्रत्युद्ययौ महाराज तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥३५॥

हे महाराज ! इस युद्ध में बड़े वेगशील विराट-पुत्र शङ्ख ने सोमदत्त के पुत्र पर बड़े वेग से आक्रमण किया और कहा-जरा ठहर तो जाओ ॥३५॥

तस्य वै दक्षिणं वीरो निर्बिभेद रणे भुजम् ।
सौमदत्तिस्तथा शङ्खं जत्रुदेशे समाहनत् ॥३६॥

रण में सोमदत्त के पुत्र की दांयी भुजा को इस वीर शंख ने छेद डाला। सोमदत्त के पुत्र ने भी शंख के जत्रुप्रदेश (जोतों) पर गहरा प्रहार किया ॥३६॥

तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं विशाम्पते।
दृप्तयोः समरे पूर्वं वृत्रवासवयोरिव ॥३७॥

हे विशाम्पते! उन दोनों युद्धोन्मत्तों का बड़ा घोर युद्ध हुआ जैसा-कभी वृत्रासुर और इन्द्र का हुआ था ॥३७॥

बाह्लीकं तु रणे क्रुद्धं क्रुद्धरूपो विशाम्पते।
अभ्यद्रवदमेयात्मा धृष्टकेतुर्महारथः ॥३८॥

हे राजन्! रण में क्रोध में भरे हुए बाह्लीकराज पर क्रोध में भरे हुए, महाबली, महारथी, धृष्टकेतु ने आक्रमण किया।

बाह्लीकस्तु रणे राजन्धृष्टकेतुममर्षणः।
शरैर्बहुभिरानर्च्छत्सिंहनादमथाऽनदत् ॥३९॥

हे राजन्! असहनशील, बाल्हीक ने राजा धृष्टकेतु को अनेक बाणों से बींध लिया और बड़ा भारी सिंहनाद किया ॥३९॥

चेदिराजस्तु संक्रुद्धो बाह्लीकं नवभिः शरैः।
विव्याध समरे तूर्णं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥४०॥

क्रोध में भरे हुए चेदिराज धृष्टकेतु ने क्रोध में भर कर बाल्हीक पर नौ बाणों से प्रहार किया। एक मदोन्मत्त हाथी दूसरे मदोन्मत्त हाथी को जैसे घायल कर देता है, ऐसे ही धृष्टकेतु ने इस युद्ध में बड़े वेग से बाल्हीक को बींधा ॥४०॥

तौ तत्र समरे क्रुद्धौ नर्दन्तौ च पुनः पुनः ।
समीयतुः सुसंक्रुद्धावङ्गारकबुधाविव ॥४१॥

ये दोनों युद्ध में क्रुद्ध हो रहे थे और वार २ गर्जते थे। ये तो क्रोध में भरे हुए दोनों मंगल और बुध तारे के तुल्य चमक रहे थे।

राक्षसं रौद्रकर्माणं क्रूरकर्मा घटोत्कचः ।
अलम्बुषं प्रत्युदियाद्बलं शक्र इवाऽऽहवे ॥४२॥

क्रूर कर्म करने वाला राक्षस, घटोत्कच, रौद्र-कर्मा अलम्बुष पर वल असुर पर इन्द्र के सदृश झपटा ॥४२॥

घटोत्कचस्ततः क्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ।
नवत्या सायकैस्तीक्ष्णैर्दारयामास भारत ॥४३॥

हे भारत ! अब क्रुद्ध होकर घटोत्कच ने उस महाबली अलम्बुष राक्षस को नौ तीक्ष्ण वाणों से बींध दिया ॥४३॥

अलम्बुषस्तु समरे भैमसेनिं महाबलम् ।
बहुधा दारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४४॥

अलम्बुष ने भी भीमसेन के पुत्र महाबली घटोत्कच को झुकी पर्व वाले वाणों से अनेक स्थानों पर छेद डाला ॥४४॥

व्यभ्राजेतां ततस्तौ तु संयुगे शरविक्षतौ ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥४५॥

वाणों से विक्षत(जख्मी) हुए, ये दोनों देवासुर संग्राम में महाबली बलासुर और इन्द्र के तुल्य सुशोभित हो रहे थे ॥४५॥

शिखण्डी समरे राजन्द्रौणिमभ्युद्ययौ बली।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धः शिखण्डिनमुपस्थितम् ॥४६॥

हे राजन्! महारथी शिखण्डी ने भी युद्ध में द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर आक्रमण किया। अश्वत्थामा भी क्रोध में भरकर शिखण्डी के सन्मुख आया ॥४६॥

नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं विध्वा ह्यकम्पयत्।
शिखण्ड्यपि ततो राजन्द्रोणपुत्रमताडयत् ॥४७॥
सायकेन सुपीतेन तीक्ष्णेन निशितेन च।
तौ जघ्नतुस्तदाऽन्योन्यं शरैर्बहुविधैर्मृधे ॥४८॥

हे राजन्! अश्वत्थामा ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाण से शिखण्डी को छेद दिया और आप वहीं गर्व से घूमने लगा। शिखण्डी ने भी अब द्रोणपुत्र पर तीक्ष्ण, विष में बुझे हुए, उत्तम लोह से निर्मित बाण से प्रहार किया। इस प्रकार इस युद्ध में इन दोनों ने एक दूसरे पर अनेक प्रकार के बाणों से प्रहार किया ॥४७ ४८॥

भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः।
अभ्ययात्त्वरितो राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥४९॥

बड़ी भारी सेना के नेता, विराट भी शूरवीर भगदत्त से जा भिड़े। हे राजन्! अब इन दोनों का युद्ध होने लगा ॥४९॥

विराटो भगदत्तं तु शरवर्षेण भारत।
अभ्यवर्षत्सुसंक्रुद्धो मेघो वृष्ट्या इवाऽचलम् ॥५०॥

हे भारत ! विराट ने क्रोध में भर कर अपने बाणों की वर्षा से भगदत्त को इस तरह ढक दिया जैसे-मेघ वर्षा की झड़ी से पर्वत को ढक देता है ॥५०॥

भगदत्तस्ततस्तूर्णं विराटं पृथिवीपतिम् ।
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ॥५१॥

भगदत्त ने भी युद्ध में राजा विराट को शीघ्र ही मेघों से ढके हुए उदित सूर्य की भांति अपने बाणों से ढक दिया ॥५१॥

बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ ।
तं कृपः शरवर्षेण च्छादयामास भारत ॥५२॥

कैकयराज, बृहत्क्षत्र को शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने जा दबाया । हे भारत ! कृपाचार्य ने अपने बाणों की वर्षा से उसको ढक दिया ।

गौतमं कैकयः क्रुद्धः शरवृष्ट्याऽभ्यपूरयत् ।
तावन्योन्यं हयान्हत्वा धनुश्छित्वा च भारत ॥५३॥

हे भारत ! कैकयराज बृहत्क्षत्र ने भी क्रुद्ध होकर बाण वर्षा से गौतम-वंश-श्रेष्ठ, कृप को स्थान २ पर छेद दिया । इन दोनों ने एक दूसरे के अश्व मार दिए और धनुष काट डाले ॥५३॥

विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ।
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ॥५४॥

असहनशील दोनों वीर, रथ छोड़ कर तलवारों से लड़ने के लिए चले । इस समय अब इन दोनों का बड़ा दारुण और भयानक युद्ध हुआ ॥५४॥

द्रुपदस्तु ततो राजन्सैन्धवं वै जयद्रथम् ।
अभ्युद्ययौ हृष्टरूपो हृष्टरूपं परन्तपः ॥५५॥

हे राजन् ! शत्रु विजयी राजा द्रुपद ने भी सिन्धुराज जयद्रथ पर बड़ी प्रसन्नता के साथ आक्रमण किया। राजा जयद्रथ भी बड़े उल्लास में भर रहा था ॥५५॥

ततः सैन्धवको राजा द्रुपदं विशिखैस्त्रिभिः ।
ताडयामास समरे स च तं प्रत्यविध्यत ॥५६॥

सिन्धुराज जयद्रथ ने राजा द्रुपद पर तीन बाण छोड़े। उन तीन बाणों से जयद्रथ ने द्रुपद को बींध दिया ॥५६॥

तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ।
ईक्षणप्रीतिजननं शुक्राङ्गारकयोरिव ॥५७॥

अब इन दोनों का घोर और दारुण युद्ध प्रवृत्त हुआ। जो इनको देखता था, उसको इनका रूप बड़ा ही प्रीति देने वाला था। ये शुक्र और मङ्गल ग्रह से प्रतीत होते थे ॥५७॥

विकर्णस्तु सुतस्तुभ्यं सुतसोमं महाबलम् ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैस्ततो युद्धमवर्तत ॥५८॥

तुम्हारे पुत्र विकर्ण ने भी महाबली सुतसोम पर वेगशील अश्वों द्वारा आक्रमण किया। इसके बाद युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥५८॥

विकर्णः सुतसोमं तु विध्वा नाऽकम्पयच्छरैः ।
सुतसोमो विकर्णं च तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥५९॥

विकर्ण ने सुतसोम को बाणों से बींध दिया, जिससे वह कुछ भी विचलित नहीं हुआ। सुतसोम ने भी विकर्ण को बींधा। यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत था ॥५६॥

सुशर्माणं नरव्याघ्रश्चेकितानो महारथः।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धः पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥६०॥

महा पराक्रमी नरश्रेष्ठ महारथी चेकितान भी क्रोध में भर कर पाण्डवों की विजय के लिए चल दिया ॥६०॥

सुशर्मा तु महाराज चेकितानं महारथम्।
महता शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥६१॥

हे महाराज ! सुशर्मा ने भी महारथी चेकितान को इस युद्ध में बाणों की वर्षा से ढक लिया ॥६१॥

चेकितानोऽपि संरब्धः सुशर्माणं महाहवे।
आच्छादयत्तमिषुभिर्महामेघ इवाऽचलम् ॥६२॥

इस महायुद्ध में क्रोध में भरे हुए चेकितान ने भी राजा सुशर्मा को बाणों से ढक लिया जैसे महा मेघ वर्षा से पर्वत को ढक लेता है ॥६२॥

शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु पराक्रान्तं पराक्रमी।
अभ्यद्रवत राजेन्द्र मत्तः सिंह इव द्विपम् ॥६३॥

हे राजेन्द्र ! पराक्रमी शकुनि ने पराक्रम करने वाले प्रतिविन्ध्य (युधिष्ठिर-पुत्र) पर आक्रमण किया। इसका आक्रमण ऐसा प्रतीत हुआ जैसा हाथी पर सिंह का आक्रमण होता है ॥६३॥

यौधिष्ठिरस्तु संक्रुद्धः सौबलं निशितैः शरैः।
व्यदारयत संग्रामे मघवानिव दानवम् ॥६४॥

युधिष्ठिर-पुत्र प्रतिविन्ध्य ने भी सुबल-पुत्र शकुनि को इस युद्ध में तीक्ष्ण बाणों से दानवों को इन्द्र के तुल्य चीर डाला।

शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु प्रतिविध्यन्तमाहवे।
व्यदारयन्महाप्राज्ञः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥६५॥

युद्ध विद्या में कुशल शकुनि ने भी युद्ध में बाण वर्षा करते हुए राजकुमार प्रतिविन्ध्य को झुकी पर्व वाले बाणों से विक्षत कर दिया ॥६५॥

सुदक्षिणं तु राजेन्द्र काम्बोजानां महारथम्।
श्रुतकर्मा पराक्रान्तमभ्यद्रवत संयुगे ॥६६॥

हे राजेन्द्र! महा पराक्रमी काम्बोज देशाधिपति, महारथी सुदक्षिण पर इस युद्ध में श्रुतकर्मा ने चढ़ाई की ॥६६॥

सुदक्षिणस्तु समरे साहदेविं महारथम्।
विध्वा नाऽकम्पयत वै मैनाकमिव पर्वतम् ॥६७॥

इस युद्ध में सुदक्षिण ने सहदेव-पुत्र महारथी श्रुतकर्मा को वेंध डाला, जो मैनाक पर्वत की भांति डटा खड़ा था और स्वयं कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥६७॥

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम्।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्दारयन्निव सर्वशः ॥६८॥

काम्बोज वीर सुदक्षिण पर श्रुतकर्मा को बड़ा क्रोध आया। यह सब स्थानों से इसको चीरता हुआ अनेक बाण छोड़ने लगा।

इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुपमरिन्दमम्।
प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपं परन्तपः ॥६९॥

शत्रु विजयी इरावान् बड़ी सावधानी के साथ लड़ते हुए, अरि विजयी श्रुतायुष पर झपटा ॥६९॥

आर्जुनिस्तस्य समरे हयान्हत्वा महारथः।
ननाद बलवन्नादं तत्सैन्यं प्रत्यपूरयत् ॥७०॥

इस अर्जुन-पुत्र महारथी इरावान् ने युद्ध में श्रुतायु अश्वों को मार गिराया और बड़ा भारी सिंह-नाद किया, जो इनकी सारी सेना में भर गया ॥७०॥

श्रुतायुस्तु ततः क्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान्।
निजघान गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत ॥७१॥

श्रुतायु ने भी क्रोध में भरकर अर्जुन-पुत्र इरावान् के अश्व युद्ध में गदा से मार डाले। फिर दोनों का भीषण युद्ध होने लगा।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कुन्तिभोजं महारथम्।
ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे ॥७२॥

इस युद्ध में अवन्ति देश के राजकुमार विन्द और अनुविन्द ने महारथी कुन्तीभोज पर आक्रमण किया। इस समय कुन्तीभोज की सारी सेना और उसका पुत्र भी इसी के साथ था ॥७२॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम तयोर्घोरं पराक्रमम् ।
अयुध्येतां स्थिरौ भूत्वा महत्या सेनया सह ॥७३॥

इन दोनों का बड़ा घोर संग्राम हुआ, जो बड़ा ही अद्भुत सा दिखाई देता था। ये बड़ी भारी सेना साथ लेकर बड़ी दृढता से युद्ध कर रहे थे ॥७३॥

अनुविन्दस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत् ।
कुन्तिभोजश्च तं तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत् ॥७४॥

अनुविन्द ने अपनी गदा से कुन्तिभोज पर प्रहार किया। कुन्तिभोज ने भी शीघ्र ही बाणवर्षा से उसको ढक दिया।

कुन्तिभोजसुतश्चाऽपि विन्दं विव्याध सायकैः ।
स च तं प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥७५॥

राजा कुन्तीभोज के पुत्र ने भी विन्द को अपने बाणों से बींधा। उसने इसको छेद डाला। यह बड़ा ही अद्भुत दृश्य था।

केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान्पञ्च मारिष ।
ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे ॥७६॥

हे राजन्! केकय देश के पांच राजकुमारों ने गान्धार देश के पांच राजकुमारों पर आक्रमण किया। ये इस युद्ध में अपनी २ सेना को साथ लेकर घमसान युद्ध करने लगे ॥७६॥

वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम् ।
उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः ॥७७॥

हे राजन्! वीरबाहु नामक तुम्हारा-पुत्र, विराट-पुत्र महारथी उत्तर से जा भिड़ा। इसने उत्तर से युद्ध किया और तीखे बाणों से उसे विक्षत कर दिया ॥७७॥

उत्तरश्चाऽपि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः।
चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत् ॥ ७८ ॥

राजकुमार उत्तर ने भी तीक्ष्ण बाणों से उसे प्रत्युत्तर दिया। हे राजन्! युद्ध में चेदिराट् ने शकुनि-पुत्र उलूक पर आक्रमण किया

तथैव शरवर्षेण उलूकं समविद्ध्यत।
उलूकश्चाऽपि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः ॥७९॥

इसने बाण वर्षा से उलूक को ढक दिया। उलूक ने भी पक्षियों के लोम धारी बाणों से चेदिराट् के राजकुमार को बेंध डाला ॥७९॥

तयोर्युद्धं समभवद् घोररूपं विशाम्पते।
दारयेतां सुसंक्रुद्धावन्योन्यमपराजितौ ॥८०॥

हे विशाम्पते! इन दोनों का घोर युद्ध हुआ, किसी से पराजित नहीं होने वाले इन वीरों ने क्रोध में भर कर एक दूसरे को विक्षत (जख्मी) कर दिया ॥८०॥

एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम्।
पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले ॥८१॥

इस प्रकार महारथी, हाथी और अश्वों के सवार वीरों के सहस्रों जोड़े युद्ध में भिड़ गए। इस समय तुम्हारे और पाण्डवों के पैदल सैनिकों के युद्ध भी चल रहे थे ॥८१॥

मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।

तत उन्मत्तवद्राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥८२॥

हे राजन् ! थोड़ी देर तक यह युद्ध बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता रहा । इसके अनन्तर दोनों ओर के योद्धा- उन्मत्त (पागल) की तरह भिड़ गए । इस धुँआधार में कुछ भी नहीं दिखाई देता था ।

गजो गजेन समरे रथिनं च रथी ययौ ।

अश्वोऽश्वं समभिप्रायात्पदातिश्च पदातिनम् ॥८३॥

हाथी के सवार के साथ हाथी का सवार, रथी के साथ रथी, अश्वारोही के साथ अश्वारोही और पैदल सैनिक के साथ पैदल सैनिक भिड़ गए ॥८३॥

ततो युद्धं सुदुर्धर्षं व्याकुलं समपद्यत ।

शूराणां समरे तत्र समासाद्येतरेतरम् ॥८४॥

जब दोनों ओर के शूरवीर एक दूसरे से भिड़ रहे थे, तो इस समय यह युद्ध बड़ा दुर्धर्ष और भीषण हो चला था ॥८४॥

तत्र देवर्षयः सिद्धाश्चारणाश्च समागताः ।

प्रैक्षन्त तद्रणं घोरं देवासुरसमं भुवि ॥८५॥

देवासुर संग्राम के समान इस भीषण युद्ध को देवर्षि, सिद्ध और चारण आकर देखने लगे ॥८५॥

ततो दन्तिसहस्राणि रथानां चाऽपि मारिष ।

अश्वौघाः पुरुषौघाश्च विपरीतं समाययुः ॥८६॥

हे राजन् ! सहस्रों हाथी-सवार, महारथी, अश्वारोहियों का समूह और पैदलों का संघ विपरीत रीति अर्थात् रथियों का अश्वारोही आदि से युद्ध होने लगा ॥८६॥

तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते रथवारणपत्तयः ।
सादिनश्च नरव्याघ्र युद्ध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥८७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वंद्वयुद्धे पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

हे नरव्याघ्र ! रथी, हाथी के सवार, पैदल और अश्वारोही बार २ बड़े वेग से युद्ध करते दिखाई पड़ रहे थे ॥८७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में द्वन्द्व-युद्ध का पैंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



छियालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

राजञ्शतसहस्राणि तत्र तत्र पदातिनाम् ।
निर्मर्यादं प्रयुद्धानि तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जहां तहां लाखों पैदलों का ऐसा भीषण युद्ध हो रहा था, कि जिसकी कोई मर्यादा या सीमा नहीं रह गई थी ॥१॥

न पुत्रः पितरं जज्ञे पिता वा पुत्रमौरसम् ।
न भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलः ॥२॥
न मातुलं च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा ।
आविष्टा इव युध्यन्ते पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥३॥

उस समय पुत्र पिता को और पिता अपने औरस (खास) पुत्र को, भ्राता भ्राता को, मामा भानजे को, भानजा मातुल को, मित्र मित्र को नहीं पहिचान रहे थे। पाण्डवों के सैनिक बड़े आवेश में भरे हुए कौरवों से लड़ रहे थे ॥२-३॥

रथानीकं नरव्याघ्राः केचिदभ्यपतन्रथैः ।
अभज्यन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ ॥४॥

हे भरतर्षभ ! कुछ भिड़ने वाले, वीर अपने २ रथ लेकर रथों की सेना के मध्य में पहुंच गए। इन्होंने अपने युगों (जुओं) की टक्कर से दूसरे के युगों को तोड़ दिया ॥४॥

रथेषाश्च रथेषाभिः कूबरा रथकूबरैः ।

सङ्गतैः सहिताः केचित्परस्परजिघांसवः ॥५॥

रथ की ईषा से रथों की ईषा, कूबर से रथ कूबर चकनाचूर हो गए । कुछ वीरों की टोली दूसरे वीरों की टोली से भड़ गई । ये परस्पर एक दूसरी को जीतना चाह रही थी ॥५॥

न शेकुश्चलितुं केचित्सन्निपत्य रथा रथैः ।

प्रभिन्नास्तु महाकायाः सन्निपत्य गजा गजैः ॥६॥

एक रथ दूसरे रथ से इतना अड़ गया, कि निकल ही नहीं सका । एक विशाल काय हाथी दूसरे हाथी से टक्कर खाकर अपना मद टपकाने लगा ॥६॥

बहुधाऽदारयन्क्रुद्धा विषाणैरितरेतरम् ।

सतोरणपताकैश्च वारणा वरवारणैः ॥७॥

ये हाथी क्रोध में भर कर अपने दाँतों से एक दूसरे को चीर रहे थे । इन हाथियों पर तोरण और पताका सुशोभित हो रही थी ॥७॥

अभिसृत्य महाराज वेगवद्भिर्महागजैः ।

दन्तैरभिहतास्तत्र चुक्रुशुः परमातुराः ॥८॥

हे महाराज ! बड़े २ वेगशील, विशाल काय हाथियों ने वेग से दौड़ कर दूसरे हाथी के टक्कर मारी, जिससे दूसरा हाथी बड़ा व्याकुल होकर चिल्लाने लगा ॥८॥

अभिनीताश्च शिक्षाभिस्तोत्रांकुशसमाहताः ।
अप्रभिन्नाः प्रभिन्नानां सम्मुखाभिमुखा ययुः ॥६॥

अनेक शिक्षाओं से शिक्षित, तोत्र (साटे) अंकुश आदि से प्रेरित किए हुए मद रहित छोटे हाथी भी मदोन्मत्त हाथियों के सन्मुख लड़ने को अड़ गए ॥ ६ ॥

प्रभिन्नैरपि संसक्ताः केचित्तत्र महागजाः ।
क्रौञ्चवन्निनदं कृत्वा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥१०॥

बड़े हाथी, मदोन्मत्त हाथियों से भिड़ गए, परन्तु उनकी टक्कर से क्रौंच पक्षी की तरह चिल्ला कर जिधर मौका लगा-उसी दिशा को भाग निकले ॥१०॥

सम्यक्प्रणीता नागाश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
ऋष्टितोमरनाराचैर्निर्विद्धा वरवारणाः ॥११॥

अच्छी तरह सिखाए और आगे ले जाये गए, कपोलों से मद टपकाने वाले हाथियों का शरीर, ऋष्टि, तोमर और नाराचों (बाण) से खूब छिद गया। यही हाल अच्छे से अच्छे हाथी का हो गया ॥११॥

प्रणेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ।
प्राद्रवन्त दिशः केचिन्नदन्तो भैरवान्रवान् ॥१२॥

जिनके मर्म कट गए-वे चीखने लगे, जो मर गए-वे गिर गए और कोई २ तो भैरव शब्द करते हुए इधर उधर दिशाओं में भाग खड़े हुए थे ॥१२॥

गजानां पादरक्षास्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः ।
ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः ॥१३॥

गदाभिर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सतोमरैः ।
आयसैः परिघैश्चैव निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः ॥१४॥

प्रगृहितैः सुसंरब्धा द्रवमाणास्ततस्ततः ।
व्यदृश्यन्त महाराज परस्परजिघांसवः ॥१५॥

हाथियों के रक्षक पैदल सैनिकों की बड़ी दृढ़ छाती थी, जो अच्छी चोट करना जानते थे। ये ऋष्टि (शस्त्र) धनुष, चमकते हुए परशु, गदा, मुसल, भिन्दिपाल (पत्थर फैंकने का साधन गोपिया) तोमर, धन, परिघ, चमकती हुई तीक्ष्ण तलवार आदि शस्त्रों को लेकर इधर उधर प्रहार की इच्छा से दौड़ रहे थे। हे महाराज ! ये एक दूसरे के नाश करने की चेष्टा में थे।

राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्ता नरशोणितैः ।
प्रत्यदृश्यन्त शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ॥१६॥

बड़े २ खड्ग चमक रहे थे और वे मनुष्यों के रक्त में भीग रहे थे। एक शूरवीर, दूसरे शूरवीर पर झपटता ही दिखाई देता था ॥१६॥

अवक्षिप्तावधूतानामसीनां वीरबाहुभिः ।
सञ्जज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु ॥१७॥

वीरों की बाहुओं द्वारा फैंकी हुई और कांपती हुई शत्रुओं के मर्म स्थानों पर पड़ती हुई असिओं (तलवारों) का बड़ा घोर शब्द हो रहा था ॥१७॥

गदामुसलरुग्णानां भिन्नानां च वरासिभिः ।
दन्तिदन्तावभिन्नानां मृदितानां च दन्तिभिः ॥१८॥
तत्र तत्र नरौघाणां क्रोशतामितरेतरम् ।
शुश्रुवुर्दारुणा वाचः प्रेतानामिव भारत ॥१६॥

हे भारत! गदा और मुसलों की चोट से आहत, शत्रु के खड्ग से कटे हुए, हाथियों के दांत से टक्कर देकर पीड़ित किये गए तथा हाथियों द्वारा पीसे हुए, मनुष्यों के समूह की एक दूसरे के बुलाने की दारुण चिल्लाहट, जहाँ तहां प्रेत की चीत्कार सी दिखाई पड़ती थी ॥१८-१६॥

हयैरपि हयारोहाश्चामरापीडधारिभिः ।
हंसैरिव महावेगैरन्योन्यमभिविद्रुताः ॥२०॥

चामर, मालाधारी अश्वों से अश्वारोही, एक दूसरे पर झपटे, मानो महावेगशाली हंस, एक दूसरे पर झपटे हो ॥२०॥

तैर्विमुक्ता महाप्रासा जाम्बूनदविभूषणाः ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ॥२१॥

सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित, चमकते हुए तीक्ष्ण, महाप्रास, (भाले) इतने वेग से चल रहे थे, जैसे-विषधारी सर्प दौड़ रहे हों।

अश्वैरग्र्यजवैः केचिदाप्लुत्य महतो रथान् ।
शिरांस्याददिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः ॥२२॥

बड़े वेगशील अश्वों से बड़े २ रथों को दाब कर वीर लोग, रथ में स्थित, रथी और अश्वारोहियों के शिर काट रहे थे ॥२२॥

बहूनपि हयारोहान्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
रथी जघान सम्प्राप्य बाणगोचरमागतान् ॥२३॥

झुकी पर्व वाले बहुत से बाणों से बहुत से अश्वारोहियों को जो रथियों के बाण के मार्ग में आ गए थे, उनके पास पहुंचकर रथियों ने मार डाला ॥२३॥

नवमेघप्रतीकाशाश्चाऽऽक्षिप्य तुरगान्गजाः ।
पादैरेव विमृद्नन्ति मत्ताः कनकभूषणाः ॥२४॥
पाट्यमानेषु कुम्भेषु पार्श्वेष्वपि च वारणाः ।
प्रासैर्विनिहताः केचिद्विनेदुः परमातुराः ॥२५॥

नये मेघ के समान हाथी अश्वों को पैरों से दबाकर कुचल रहे थे। हाथी भी बड़े मदोन्मत्त और सुवर्ण के भूषण धारण किये हुए थे। जब वीरों ने प्रास आदि शस्त्रों से हाथियों के कुक्षिभाग और मस्तक को छेद डाला, तो वे हाथी बड़ी चिंघाड़ मार कर चिल्लाने लगे ॥२४-२५॥

साश्वारोहान्हयान्कांश्चिदुन्मथ्य वरवारणाः ।
सहसा चिक्षिपुस्तत्र संकुले भैरवे सति ॥२६॥

सवारों के साथ अनेक अश्वों को अपने चरणों से मसल कर मदोन्मत्त हाथी इस भीषण संग्राममें उनको इधर उधर फैंकने लगे।

साश्वारोहान्विषाणाग्रैरुत्क्षिप्य तुरगान्गजाः ।
रथौघानभिमृद्नन्तः सध्वजानभिचक्रमुः ॥२७॥

सवारों सहित अश्वों को हाथी, अपने दांतों के ऊपर उठा लेते थे और ध्वजा सहित, रथों को चकनाचूर करते हुए युद्धभूमि में घूमते थे ॥२७॥

पुंस्त्वादतिमदत्वाच्च केचित्तत्र महागजाः ।
साश्वारोहान्हयाञ्जघ्नुः करैः सचरणैस्तथा ॥२८॥

बड़े बल और मद के कारण, भीषण, बड़े २ हाथी, अपनी सूंड और पैरों से अश्वारोही और अश्वों का नाश कर रहे थे।

अश्वारोहैश्च समरे हस्तिसादिभिरेव च ।
प्रतिमानेषु गात्रेषु पार्श्वेष्वभि च वारणान् ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ॥२९॥

अश्वारोही और गजारोहियों के छोड़े हुए सर्पोपम, तीखे चमकते हुए बाण, हाथियों के पुष्ट शरीर और पसलियों में प्रवेश कर रहे थे ॥२९॥

नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च ।
निपेतुर्विमलाः शक्त्यो वीरबाहुभिरर्पिताः ॥३०॥

वीरों की भुजाओं से फैंकी हुई, चमकीली, शक्ति, वीर और अश्वों के शरीर तथा लोहके कवचों को काट २ कर चलने लगीं।

महोल्काप्रतिमा घोरास्तत्र तत्र विशाम्पते ।
द्वीपिचर्मावनद्धैश्च व्याघ्रचर्मच्छदैरपि ॥३१॥
त्रिकोशैर्विमलैः खड्गैरभिजग्मुः परान्रणे ।

हे विशाम्पते ! बड़े २ उल्कापात (तारे टूटने) के सदृश, तेजस्वी, वीर, द्वीपि (गैंडे) के चर्म (म्यान) से निकाली तथा व्याघ्र चर्म (सिंह चर्म के म्यान) से बाहर की हुई, नङ्गी चमकीली, तलवारें ले २ कर रण में शत्रुओं के सन्मुख आने लगे ॥३१॥

अभिप्लुतमभिक्रुद्धमेकपार्श्वावदारितम् ॥३२॥
विदर्शयन्तः सम्पेतुः खड्गचर्मपरश्वधैः ।

क्रोध में भरे हुए, सामने ही रण-कौशल दिखाते हुए, वीर का एक पार्श्व चीरकर ढाल-तलवार और परशुओं को धारण किये हुए वीर, युद्धभूमि में झपट रहे थे ॥३२॥

केचिदाक्षिप्य करिणः साश्वानपि रथान्करैः ॥३३॥
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः ।

कोई २ हाथी, अश्वों सहित रथों को अपनी सूँड़ों से उठाकर
चाहते, उसी दिशा को खैंच ले जाते थे, जिसे देखकर
उनकी सब भांति से प्रशंसा करते थे ॥३३॥

शंकुभिर्दारिताः केचित्सम्भिन्नाश्च परश्वधैः ॥३४॥
हस्तिभिर्मृदिताः केचित्क्षुण्णाश्चाऽन्ये तुरङ्गमैः ।

कितने ही वीरों को शंकु (भाले की नोक) से चीर डाला और कितने ही वीरों को परशुओं से काट दिया। कुछ को हाथियों ने और कुछ को अश्वों ने मसलकर डाल दिया ॥३४॥

रथनेमिनिकृत्ताश्च निकृत्ताश्च परश्वधैः ॥३५॥
व्याक्रोशन्त नरा राजंस्तत्र तत्र स्म बान्धवान्।

हे राजन्! रथ की नेमि तथा परशुओं से काटे हुए, अनेक वीर, जहां तहां अपने २ बान्धवों को सहायताके लिए पुकार रहे थे

पुत्रानन्ये पितृनन्ये भ्रातॄंश्च सह बन्धुभिः ॥३६॥
मातुलान्भागिनेयांश्च परानपि च संयुगे।

कोई पुत्र, कोई पिता, कोई भ्राता, कोई अन्य बान्धव तथा मामा, भगिनी पुत्र (भानजा) तथा अन्य मित्रादि को रक्षा के लिए इधर उधर पुकार रहे थे ॥३६॥

विकीर्णान्त्राः सुबहवो भग्नसक्थाश्च भारत ॥३७॥
बाहुभिश्चाऽपरे छिन्नैः पार्श्वेषु विदारिताः।
क्रन्दन्तः समदृश्यन्त तृषिता जीवितेप्सवः ॥३८॥

हे भारत! किसी की आंखें बाहर निकली पड़ी थी। बहुतों की टांग की हड्डी टूट गई थी, किसी की भुजा कट गई और किसी की पार्श्व चिरी पड़ी थी। ये प्यास से व्याकुल जीवन की अभिलाषा से रक्षा के लिए पुकार रहे थे ॥३७-३८॥

तृषापरिगताः केचिदल्पसत्वा विशाम्पते।
भूमौ निपतिताः सङ्ख्ये मृगयाश्चक्रिरे जलम् ॥३९॥

हे विशाम्पते! कुछ इस युद्ध में मानसिक बल की न्यूनता वाले वीर, तृषा से व्याकुल हुए पृथिवी में पड़े २ ही जल की याचना कर रहे थे ॥३६॥

रुधिरौघपरिक्लिन्नाः क्लिश्यमानाश्च भारत।
व्यनिन्दन्भृशमात्मानं तव पुत्रांश्च सङ्गतान् ॥४०॥

हे भारत! रक्त के समूह से व्याप्त, क्लेशित हुए, अनेक सैनिक तुम्हारे पुत्रों के साथ देने से अपने आपकी निन्दा कर रहे थे ॥४०॥

अपरे क्षत्रियाः शूराः कृतवैराः परस्परम्।
नैव शस्त्रं विमुञ्चन्ति नैव क्रन्दन्ति मारिष ॥४१॥

हे राजन्! कुछ क्षत्रिय वीर स्वयं भी परस्पर वैर रखते थे, इससे वे न तो शस्त्र ही छोड़ते थे और न किसी प्रकार चिल्लाते ही थे। वे तो आवेश में भरे हुए युद्ध में ही तत्पर थे ॥४१॥

तर्जयन्ति च संहृष्टास्तत्र तत्र परस्परम्।
आदश्य दशनैश्चाऽपि क्रोधात्सरदनच्छदम् ॥४२॥
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षन्ति च परस्परम्।

कुछ वीर, परस्पर एक दूसरे को फटकार रहे थे और क्रोध में भरे हुए दांतों से होठ काट रहे थे। ये अपनी टेढी भौंहे और टेढ़ा मुख करके क्रोध पूर्ण दृष्टि से एक दूसरे को देख रहे थे।

अपरे क्लिश्यमानास्तु शरार्ता व्रणपीडिताः ॥४३॥
निष्कूजाः समपद्यन्त दृढसत्वा महाबलाः।

बाण से पीड़ित, क्षत विक्षत हुए महाबली, मानसिक शक्ति वाले कुछ वीर, चुपचाप युद्धभूमि में पड़े थे ॥४३॥

अन्ये च विरथाः शूराः रथमन्यस्य संयुगे ॥४४॥
प्रार्थयाना निपतिताः सङ्क्षुण्णा वरवारणैः ।
अशोभन्त महाराज सपुष्पा इव किंशुकाः ॥४५॥

कुछ रथ-हीन वीर, अन्य से रथ मांग ही रहे थे, कि पृथिवी में गिर पड़े और हाथियोंने कुचल डाला । हे महाराज ! रक्त से भीगे हुए ये वीर ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे-ढाक का वृक्ष खिल रहा हो ।

सम्बभूवुरनेकेषु बहवो भैरवस्वनाः ।
वर्तमाने महाभीमे तस्मिन्वीरवरक्षये ॥४६॥

वीरों के विध्वंस कारी इस भीषण युद्ध में अनेक वीर, बड़ा ही भीषण शब्द कर रहे थे ॥४६॥

निजघान पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे ।
स्वस्रीयो मातुलं चाऽपि स्वस्रीयं चाऽपि मातुलः ।४७।
सखा सखायं च तथा सम्बन्धी बान्धवं तथा ।
एवं युयुधिरे तत्र कुरवः पाण्डवैः सह ॥४८॥

यह अद्भुत रण था, जिसमें पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, भगिनी पुत्र, (भानजा) मातुल (मामा) को, मातुल भानजे को, सखा सखा को और सम्बन्धी अपने सम्बन्धी बान्धवों को मार रहे थे । इस प्रकार कौरव पाण्डवों के साथ घमसान युद्ध कर रहे थे ॥४७-४८॥

वर्त्तमाने तथा तस्मिन्निर्मर्यादे भयानके ।
भीष्ममासाद्य पार्थानां वाहिनी समकम्पत ॥४९॥

सीमा से वाहर इस युद्ध के निकल जाने पर पाण्डवों की सेना भीष्म के सन्मुख जाकर लहराने लगी ॥४९॥

केतुना पञ्चतारेण तालेन भरतर्षभ ॥
राजतेन महावाहुरुच्छ्रितेन महारथे ।
वभौ भीष्मस्तदा राजंश्चन्द्रमा इव मेरुणा ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

हे भरतर्षभ ! पाँच तारों से युक्त तालवृक्ष के चिह्न से चिन्हित वड़े भारी रथ पर फड़फड़ाती हुई चांदी की ध्वजासे महावाहु, भीष्म इस भांति सुशोभित हो रहे थे, जैसे मेरु पर्वत, चन्द्रमा के योग से सुशोभित होता है ॥५०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में महान् युद्ध का छियालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



सैंतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे ।
वर्तमाने तथा रौद्रे महावीरवरक्षये ॥१॥

दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः ।
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! जब इस प्रकार दिन का पूर्वार्द्ध समाप्त होने पर आ गया था और अच्छे २ योद्धाओं का भयानक रीति से संहार हो रहा था, तो तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की प्रेरणा से दुर्मुख, कृतवर्मा, कृप, शल्य और विविंशति भीष्म की रक्षा के लिए पहुँचे ॥१-२॥

एतैरतिरथैर्गुप्तः पञ्चभिर्भरतर्षभः ।
पाण्डवानामनीकानि विजगाहे महारथः ॥३॥

जब इन पाँचों वीरों से भरतवंशश्रेष्ठ, महारथी, भीष्म सुरक्षित हो गये-तो वे अब पाण्डवों की सेनाओं को मथने लगे।

चेदिकाशिकरूषेषु पञ्चालेषु च भारत ।
भीष्मस्य बहुधा तालश्चलत्केतुरदृश्यत ॥४॥

हे भारत ! चेदि, काशी, करूष और पञ्चाल क्षत्रिय वीरों में ही भीष्म की ताल ध्वजा उड़ती दिखाई देने लगी ॥४॥

स शिरांसि रणेऽरीणां रथांश्च सयुगध्वजान् ।
निचकर्त महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः

इसने रण में शत्रुओं के मस्तक, युग (जुये) और ध्वजाओं के साथ रथों को झुकीपर्व वाले महा वेगशील बाणों से काट गिराया।

नृत्यतो रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभः ।
भृशमार्तस्वरं चक्रुर्नागा मर्मणि ताडिताः ॥६॥

हे भारत ! रथों के मार्ग में इस प्रकार भीष्म चक्कर लगा रहे थे। इनके बाणों से मर्म स्थानों में आहत हुए हाथी बड़ा ही चीत्कार कर रहे थे ॥६॥

अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।
संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद्भीष्मरथं प्रति ॥७॥

जाम्बूनदविचित्रेण कर्णिकारेण केतुना ।
अभ्यवर्तत भीष्मं च तांश्चैव रथसत्तमान् ॥८॥

अभिमन्यु भी क्रोध में भर कर पिङ्गल (भूरे) रंग के उत्तम २ अश्वों से युक्त, रथ पर बैठ कर भीष्म के रथ की ओर चल दिया। अभिमन्यु की ध्वजा में सुवर्ण जड़ा हुआ था और कर्णिकार का आकार सुशोभित था। यह अभिमन्यु, भीष्म और उन दुर्मुख आदि पांचों महारथियों की ओर चला ॥७-८॥

स तालकेतोस्तीक्ष्णेन केतुमाहत्य पत्रिणा ।
भीष्मेण युयुधे वीरस्तस्य चाऽनुरथैः सह ॥९॥

ताल ध्वजाधारी भीष्म की ध्वजा को अपने तीक्ष्ण बाण से छेदकर यह वीर अभिमन्यु, भीष्म और उनके सात महारथियों से लड़ने लगा ॥९॥

कृतवर्माणमेकेन शल्यं पञ्चभिराशुगैः ।
विध्वा नवभिरानर्च्छच्छिताग्रैः प्रपितामहम् ॥१०॥

अभिमन्यु ने एक बाण से कृतवर्मा, पाँच बाणों से शल्य को बींध कर नौ तीक्ष्ण बाणोंसे अपने पितामह भीष्म पर प्रहार किया

पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च ।
ध्वजमेकेन विव्याध जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥११॥

शुद्ध सुवर्ण से जटित, चमकीली भीष्म पितामह की ध्वजा को बड़ी शक्ति से कान तक खैंचे हुए और सावधानी से चलाए हुए एक बाण से बेंध दिया ॥११॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन सर्वावरणभेदिना ।
जहार सारथेः कायाच्छिरः सन्नतपर्वणा ॥१२॥

सारे कवच आदि शरीर के आवरणों को बेंध देने वाले झुकी पर्व वाले बाण से अभिमन्यु ने दुर्मुखके सारथिके मस्तक को उसके शरीर से पृथक् कर दिया ॥१२॥

धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्तस्वरविभूषितम् ।
कृपस्य निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्णमुखैः शरैः ॥१३॥
जघान परमक्रुद्धो नृत्यन्निव महारथः ।
तस्य लाघवमुद्वीक्ष्य तुतुषुर्देवता अपि ॥१४॥

अत्यन्त क्रुद्ध हुए अभिमन्यु ने अपने तीक्ष्ण नोक वाले बाण से सुवर्ण से विभूषित कृपाचार्यके धनुष को काट डाला और

तीक्ष्ण मुख वाले बाणों से उन महारथियों पर प्रहार किया। यह इस युद्ध में नाच सा रहा था। इसकी लाघव (फुर्ती) देखकर देवता भी सन्तुष्ट हो गए ॥१३-१४॥

लब्धलक्षतया कार्ष्णेः सर्वे भीष्ममुखा रथाः।
सत्ववन्तममन्यन्त साक्षादिव धनञ्जयम् ॥१५॥

अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का ठीक २ लक्ष्य भेदना देखकर भीष्म आदि महारथी, इसको भी साक्षात् अर्जुन के सदृश ही बलशाली मानने लगे ॥१५॥

तस्य लाघवमार्गस्थमलातसदृशप्रभम्।
दिशः पर्यपतच्चापं गाण्डीवमिव घोषवत् ॥१६॥

शीघ्रता (फुर्ती) के मार्ग में वर्तमान, अलात-चक्र (अग्नि से जलता हुआ पलीता) के समान देदीप्यमान, गाण्डीव के सदृश घोष करने वाले धनुष को लेकर अभिमन्यु प्रत्येक दिशा में पहुंचने लगा ॥१६॥

तमासाद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः।
विव्याध समरे तूर्णमार्जुनिं परवीरहा ॥१७॥

शत्रु वीरों के नाश करने वाले भीष्म ने अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के सन्मुख पहुंच कर उसको महा-वेग-शाली नौ बाणों से बड़ी शीघ्रता से बेंध दिया ॥१७॥

ध्वजं चाऽस्य त्रिभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमौजसः।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान यतव्रतः ॥१८॥

अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ रहने वाले भीष्म ने परम ओजस्वी अभिमन्यु की ध्वजा और सारथि को तीन तीन बाणों से काट गिराया ॥१८॥

तथैव कृतवर्मा च कृपः शल्यश्च मारिष ।
विध्वा नाऽकम्पयत्कार्ष्णि मैनाकमिव पर्वतम् ॥१९॥

हे राजन्! इसी तरह कृतवर्मा, कृप और शल्य ने भी मैनाक पर्वत के समान अचल अभिमन्यु को बींध दिया और ये अपने स्थान से तनिक भी नहीं डिगे ॥१९॥

स तैः परिवृतः शूरो धार्तराष्ट्रै र्महारथैः ।
ववर्ष शरवर्षाणि कार्ष्णिः पञ्च रथान्प्रति ॥२०॥

कौरव के इन पांचों महारथियों से छिदा हुआ, शूरवीर, अभिमन्यु, इन ही पांचों महारथियों पर बाणों की वर्षा करने लगा।

ततस्तेषां सहस्राणि संवार्य शरवृष्टिभिः।
ननाद बलवान्कार्ष्णिर्भीष्माय विसृजञ्शरान् ॥२१॥

बलवान् अभिमन्यु अपनी बाण वर्षा से उनके सहस्रों बाणों के प्रहारों को रोककर बड़ी गर्जना करने लगा। अब इसने भीष्म के ऊपर बाण फैंकना आरम्भ किया ॥२१॥

तत्राऽस्य सुमहद्राजन्बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः ॥२२॥

हे राजन्! अपने बाणों से भीष्म को पीड़ित और युद्ध में महान् प्रयत्न करते हुए, इस अभिमन्यु की भुजाओं का बल इस युद्ध में चमक उठा ॥२२॥

पराक्रान्तस्य तस्यैव भीष्मोऽपि प्राहिणोच्छरान् ।
स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युताञ्शरान् ॥२३॥

इस प्रकार पराक्रम करते हुए अभिमन्यु को देखकर भीष्म ने भी अभिमन्यु पर वाण छोड़े । अभिमन्यु ने भीष्म के धनुष से निकलते ही उनके वाणों को काट गिराया ॥२३॥

ततो ध्वजममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः ।
चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥२४॥

निष्फल वाण नहीं चलाने वाले वीर अभिमन्यु ने इस युद्ध में नौ वाणों से भीष्म की ध्वजा काट गिराई; जिसको देखकर लोग अभिमन्यु की प्रशंसा करने लगे ॥२४॥

स राजतो महास्कन्धस्तालो हेमविभूषितः ।
सौभद्रविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत ॥२५॥

हे भारत ! सुवर्ण से भूषित, लम्बे २ स्कन्धों वाली, तालवृक्ष धारी, चांदी की ध्वजा, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के वाण से कटकर नीचे भूमि पर गिर गई ॥२५॥

तं तु सौभद्रविशिखैः पातितं भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा भीमो ननादोच्चैः सौभद्रमभिहर्षयन् ॥२६॥

हे भरतर्षभ ! अभिमन्यु के वाणों से कटकर नीचे गिरी हुई, भीष्म की ध्वजा को देखकर अभिमन्यु को उत्तेजित करता हुआ भीम गर्जना करने लगा ॥२६॥

अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि सुबहूनि च ।
प्रादुश्चक्रे महारौद्रे रणे तस्मिन्महाबलः ॥२७॥

अब महाबली भीष्म ने इस भयानक संग्राम में बहुत से दिव्य अस्त्रों को प्रकट किया ॥२७॥

ततः शरसहस्रेण सौभद्रं प्रपितामहः ।
अवाकिरदमेयात्मा तदद्भुतमिवाऽऽभवत् ॥२८॥

महा-शक्ति-सम्पन्न, प्रपितामह, भीष्म ने सहस्रों की संख्या में बाण छोड़े, जिनसे अभिमन्यु को ढक दिया। यह दृश्य बड़ा कुतूहल-जनक था ॥२८॥

ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ।
रक्षार्थमभ्यधावन्त सौभद्रं त्वरिता रथैः ॥२९॥

अब पाण्डवों की ओर के दश धनुर्धर, महारथी, शीघ्रगामी रथों से सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु की रक्षा के लिए दौड़ पड़े ॥२९॥

विराटः सह पुत्रेण धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
भीमश्च केकयाश्चैव सात्यकिश्च विशाम्पते ॥३०॥

हे विशाम्पते ! उन वीरों में विराट, उसका पुत्र, उत्तर, पर्षत-वंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न, भीम, पांच केकय राजकुमार और सात्यकि-ये दश महारथी थे ॥३०॥

तेषां जवेनाऽऽपततां भीष्मः शान्तनवो रणे ।
पाञ्चाल्यं त्रिभिरानर्च्छत्सात्यकिं नवभिः शरैः॥३१॥

इनको वेग से आता हुआ देखकर युद्ध में शान्तनु-पुत्र भीष्म ने पञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न को पांच और सात्यकि को नौ बाणों से आहत किया ॥३१॥

पूर्णायतविसृष्टेन क्षुरेण निशितेन च।
ध्वजमेकेन चिच्छेद भीमसेनस्य पत्रिणा ॥३२॥

पूर्ण लम्बाई में खैंचे हुए धनुष से छोड़े हुए क्षुर के तुल्य तीक्ष्ण एक बाण से भीष्म ने भीम की ध्वजा काट डाली ॥३२॥

जाम्बूनदमयः श्रीमान्केसरी स नरोत्तम।
पपात भीमसेनस्य भीष्मेण मथितो रथात् ॥३३॥

हे नरोत्तम! सुवर्ण से जटित, कान्तिमान्, सिंह ध्वजा, भीष्म द्वारा काटी हुई भीम के रथ से नीचे गिर पड़ी ॥३३॥

ततो भीमस्त्रिभिर्विध्वा भीष्मं शान्तनवं रणे।
कृपमेकेन विव्याध कृतवर्माणमष्टभिः ॥३४॥

अब भीम ने भी रण में तीन बाणों से शान्तनु-पुत्र भीष्म को तथा एक बाण से कृपाचार्य को और आठ बाणों से कृतवर्मा को बेंध डाला ॥३४॥

प्रगृहीताग्रहस्तेन वैराटिरपि दन्तिना।
अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपतिमुत्तरः ॥३५॥

विराट-पुत्र उत्तर भी कुण्डली कृत, सूंड के अग्रभाग वाले हाथी पर चढ़कर मद्रदेश के अधिपति शल्य पर झपटा ॥३५॥

तस्य वारणराजस्य जवेनाऽऽपततो रथे ।
शल्यो निवारयामास वेगमप्रतिमं शरैः ॥३६॥

जब शल्य ने देखा, कि एक गजराज उसके रथ पर झपटा हुआ चला आता है, तो उसने अपने बाणों से इस अद्भुत वेग वाले हाथी को बड़े प्रयत्न से रोका ॥३६॥

तस्य क्रुद्धः स नागेन्द्रो बृहतः साधुवाहिनः ।
पदा युगमधिष्ठाय जघान चतुरो हयान् ॥३७॥

शल्य के ऊपर कुपित हुए उस नागराज ने अपने पैर से युग (जुये) को दाबकर अच्छी तरह शल्य के रथ को ले जाने वाले बड़े २ चारों अश्वों को मार डाला ॥ ३७ ॥

स हताश्वे रथे तिष्ठन्मद्राधिपतिरायसीम् ।
उत्तरान्तकरीं शक्तिं चिक्षेप भुजगोपमाम् ॥३८॥

मद्राधिपति, अब अश्व रहित रथ में बैठा रह गया, तो इसने उत्तर के अन्त करने वाली सर्प के सदृश भीषण लोह की शक्ति उस पर चलाई ॥ ३८ ॥

तया भिन्नतनुत्राणः प्रविश्य विपुलं तमः ।
स पपात गजस्कन्धात्प्रमुक्तांकुशतोमरः ॥३९॥

इस शक्ति से इसका कवच फट गया और इसको बड़ा मोह (बेहोशी) प्राप्त हुआ। इसके हाथ से अंकुश और तोमर आदि शस्त्र छुट पड़े और यह स्वयं भी हाथी के ऊपर से नीचे गिर पड़ा।

असिमादाय शल्योऽपि अवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
तस्य वारणराजस्य चिच्छेदाऽथ महाकरम् ॥४०॥

मद्रराज शल्य भी अपने रथ से कूद पड़ा और इसने तलवार हाथ में लेकर उस गजराज की सूँड़ काट डाली ॥४० ॥

भिन्नमर्मा शरशतैश्छिन्नहस्तः स वारणः ।
भीममार्तस्वरं कृत्वा पपात च ममार च ॥४१॥

सैकड़ों बाणों से इस गजराज के मर्म आहत हो रहे थे और शल्य ने इसकी सूँड काट डाली थी । अब यह भयानक आर्त स्वर करके गिर गया और मर गया ॥ ४१ ॥

एतदीदृशकं कृत्वा मद्रराजो नराधिप ।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥४२॥

हे नराधिप ! मद्रराज, शल्य, इतना काम करके फिर चमकते हुए, कृतवर्मा के रथ पर शीघ्र जा चढ़ा ॥ ४२ ॥

उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा ।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥४३॥
श्वेतः क्रोधात्प्रजज्वालहविषा हव्यवाडिव ।
स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥४४॥
अभ्यधावज्जिघांसन्वै शल्यं मद्राधिपं बली ।

विराट के दूसरे पुत्र श्वेत ने जब अपने भाई उत्तर को मरा हुआ समझा और कृतवर्मा के साथ शल्य को बैठा हुआ देखा, तो वह क्रोध से इस तरह जल उठा जैसे घृत से अग्नि प्रज्वलित हो

उठता है । इस महाबली ने इन्द्र धनुष के सदृश विशाल धनुष को फैलाया और मद्रराज शल्य के मारने की आकांक्षा से उस पर आक्रमण किया ॥४३-४४॥

महता रथवंशेन समन्तात्परिवारितः ॥४५॥
मुञ्चन्बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति ।

यद्यपि श्वेत विरोधियों के अनेक महारथियों से घिरा हुआ था, तो भी बाण वर्षा करता हुआ शल्य की ओर लपका चला जा रहा था ॥४५॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥४६॥
तावकानां रथाः सप्त समन्तात्पर्यवारयन् ।
मद्रराजमभीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥४७॥

मदोन्मत्त हाथी के सदृश पराक्रम करने वाले, श्वेत को झपट कर आता हुआ देखकर तुम्हारी सेना के सात महारथियों ने चारों ओर से श्वेत को घेर लिया । ये मृत्यु की दाढ़ों में गये हुए शल्य की रक्षा करना चाहते थे ॥४६-४७॥

बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः ।
तथा रुक्मरथो राजञ्शल्यपुत्रः प्रतापवान् ॥४८॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥४९॥

हे राजन् ! कोसलराज बृहद्बल, मगधराज जयत्सेन, शल्य का पुत्र, प्रतापी, रुक्मरथ, अवन्ती राजकुमार विन्द और

अनुविन्द, कम्बोज देशाधिपति सुदक्षिण तथा बृहत्क्षत्र का पुत्र, सिन्धुराज-जयद्रथ, ये सात महारथी शल्य की रक्षा को दौड़े।

नानावर्णविचित्राणि धनूंषि च महात्मनाम्।
विस्फारितानि दृश्यन्ते तोयदेष्विव विद्युतः ॥५०॥

इन महावीरों के अनेक वर्ण के विचित्र २ धनुष, खोले हुए बादलों में बिजली के सदृश चमकीले दिखाई दे रहे थे ॥५०॥

ते तु बाणमयं वर्षं श्वेतमूर्धन्यपातयन्।
निदाघान्तेऽनिलोद्धूता मेघा इव नगे जलम् ॥५१॥

इन्होंने भी राजकुमार श्वेत के मस्तक पर बाण वर्षा करना आरम्भ किया। जैसे वर्षाकाल में वायु से लाये हुए मेघ, पर्वत पर जल वर्षा रहे हो ॥५१॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः।
धनूंषि तेषामाच्छिद्य समर्द पृतनापतिः ॥५२॥

यह छोटा सेनापति, महाधनुर्धर, श्वेत भी बड़े क्रोध में आ रहा था। इसने सात तेज बाणों से इनके धनुष काट कर टुकड़े २ करके भूमि पर गिरा दिए ॥५२॥

निकृत्तान्येव तानि स्म समदृश्यन्त भारत।
ततस्ते तु निमेषार्धात्प्रत्यपद्यन्धनूंषि च ॥५३॥
सप्त चैव पृषत्कांश्च श्वेतस्योपर्यपातयन्।

हे भारत ! उनके धनुष कटे ही थे, कि थोड़ी ही देर में उन्होंने अन्य धनुष अपने हाथों में ले लिए। इन्होंने इकट्ठे ही सात बाण श्वेत के ऊपर फैंके ॥५३॥

ततः पुनरमेयात्मा भल्लैः सप्तभिराशुगैः ॥
निचकर्त महाबाहुस्तेषां चापानि धन्विनाम् ॥५४॥

महा बलवान्, महाबाहु, श्वेत ने भी सात तीव्रगामी बाणों से इनके सातों धनुष काट डाले ॥५४॥

ते निकृत्तमहाचापास्त्वरमाणा महारथाः ।
रथशक्तीः परामृश्य विनेदुर्भैरवान्रवान् ॥५५॥

जब इनके ये भी बड़े २ धनुष काट डाले गए-तो इन महारथियों ने अपने रथों में से शक्तियां उठाई और ये भीषण शब्द करने लगे।

अन्वयुर्भरतश्रेष्ठ सप्त श्वेतरथं प्रति ।
ततस्ता ज्वलिताः सप्त महेन्द्राशनिनिःस्वनाः ॥५६॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब ये सातों महारथी, राजकुमार श्वेत के रथ की ओर चले। ये सातों तेजस्वी महारथी, महेन्द्र के वज्र के समान शब्द करने लगे ॥५६॥

अप्राप्ताः सप्तभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमास्त्रवित् ।
ततः समादाय शरं सर्वकायविदारणम् ॥५७॥
प्राहिणोद्भरतश्रेष्ठ श्वेतो रुक्मरथं प्रति ।
तस्य देहे निपतितो बाणो वज्रातिगो महान् ॥५८॥

ये शक्तियाँ अभी तक श्वेत तक आकर भी नहीं पहुंची थी, कि परम अस्त्रों के ज्ञाता श्वेत ने सात बाणों से उनको काट गिराया। अब सब की देह के भेदने में समर्थ, बाण को लेकर राजकुमार श्वेत ने उस बाण को शल्य के पुत्र रुक्मरथ पर चलाया। यह वज्र से भी तीक्ष्ण बाण उसकी देह में जाकर लगा ॥५७-५८॥

ततो रुक्मरथो राजन्सायकेन दृढाहतः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाऽविशन्महत् ॥५६॥

हे राजन्! रुक्मरथ इस बाण से बड़ा आहत (जख्मी) हुआ। यह रथ के एक किनारे चुपचाप बैठ गया और इसको अचेतनता सी आ गई ॥५६॥

तं विसंज्ञं विमनसं त्वरमाणस्तु सारथिः ।
अपोवाह न सम्भ्रान्तः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥६०॥

इस अचेत और दुःखी रुक्मरथ को सारथि बड़ी शीघ्रता के साथ सब के देखते २ रण से बाहर ले गया। सारथि ने इस समय कुछ भी प्रमाद नहीं किया ॥६०॥

ततोऽन्यान्षट् समादाय श्वेतो हेमविभूषितान् ।
तेषां षण्णां महाबाहुर्ध्वजशीर्षाण्यपातयत् ॥६१॥

राजकुमार श्वेत ने सुवर्ण से जटित मूल वाले छः बाण और उठाए। महाबाहु श्वेत ने उन बाणों से उन छः वीरों की ध्वजाओं के अग्र भाग काट गिराये ॥६१॥

हयांश्च तेषां निर्भिद्य सारथींश्च परन्तप ।
शरैश्चैतान्समाकीर्य प्रायाच्छल्यरथं प्रति ॥६२॥

हे परन्तप ! श्वेत ने उनके अश्व और सारथियों को भी भेद डाला। अपने बाणों से इनको व्याप्त करके श्वेत, शल्य के रथ की ओर चला ॥६२॥

ततो हलहलाशब्दस्तव सैन्येषु भारत ।
दृष्ट्वा सेनापतिं तूर्णं यान्तं शल्यरथं प्रति ॥६३॥

हे भारत ! जब छोटे सेनापति श्वेत को लोगों ने शल्य की ओर बढ़ते देखा, तो उस समय तुम्हारी सेना में हाहाकार सा मच गया ॥६३॥

ततो भीष्मं पुरस्कृत्य तव पुत्रो महाबलः ।
वृतस्तु सर्वसैन्येन प्रायाच्छ्वेतरथं प्रति ॥६४॥

हे राजन् ! अब भीष्म को साथ लेकर तुम्हारा पुत्र महाबली दुर्योधन सारी सेना के सहित श्वेत के रथ की ओर चला ॥६४॥

मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मद्रराजममोचयत् ।
ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥६५॥
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ।

इन्होंने पहुंच कर मृत्यु के मुख से मद्रराज शल्य को बचाया। इसके अनन्तर बड़ा घमसान युद्ध हुआ, जिसके देखने मात्र से रोमाञ्च खड़े हो आते थे। तुम्हारे और पाण्डवोंके रथी और हाथी सब परस्पर भिड़ रहे थे ॥६५॥

सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ॥६६॥

कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ।

एतेषु नरसिंहेषु चेदिमत्स्येषु चैव ह ।

ववर्ष शरवर्षाणि कुरुवृद्धः पितामहः ॥६७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां

भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेतयुद्धे

सप्तचत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

इसके अनन्तर कुरुवृद्ध पितामह भीष्म, अभिमन्यु, भीमसेन, सात्यकि, पर्षतवंशोद्भव, धृष्टद्युम्न, पांच केकय राजकुमार, विराट-इन नर वीरों पर तथा चेदि और मत्स्य देश के वीरों पर बाणों की प्रबल वर्षा करने लगे ॥६६-६७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में श्वेत के युद्ध का सैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ



अड़तालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

एवं श्वेते महेष्वासे प्राप्ते शल्यरथं प्रति ।
कुरवः पाण्डवेयाश्च किमकुर्वत सञ्जय ॥१॥
भीष्मः शान्तनवः किं वा तन्ममाऽऽचक्ष्य पृच्छतः ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महाधनुष धारी, श्वेत का शल्य के रथ के समीप पहुंच जाने पर कौरव और पाण्डव एवं भीष्म ने क्या किया । मैं तुमसे अब यही पूछता हूं-तुम मुझे प्रथम यह बताओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

राजञ्शतसहस्राणि ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥२॥
श्वेतं सेनापतिं शूरं पुरस्कृत्य महारथाः ।
राज्ञो बलं दर्शयन्तस्तव पुत्रस्य भारत ॥३॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य त्रातुमैच्छन्महारथाः ।
अभ्यवर्तन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥४॥
जिघांसन्तं युधां श्रेष्ठं तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि महावैशसमच्युत ॥५॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस समय लाखों की संख्या में महारथी, क्षत्रिय वीर, शूरवीर सेनापति श्वेत को आगे करके तुम्हारे पुत्रों को राजा युधिष्ठिर की शक्ति दिखाने को शिखण्डी को

साथ लेकर ये महारथी श्वेत की रक्षा करने को आगे बढ़े। इन्होंने सुवर्ण से परिष्कृत(उज्ज्वल)भीष्म के रथ को घेर लिया। हे राजन्! ये वीर-श्रेष्ठ, भीष्म को मार देना चाह रहे थे। इस समय बड़ा घमसान युद्ध हुआ। मैं इस महान् मारकाट को तुम्हें सुनाता हूं ॥२-५

तावकानां परेषां च यथा युद्धमवर्तत ।
तत्राऽकरोद्रथोपस्थाञ्शून्याञ्शान्तनवो बहून् ॥६॥

हे राजन्! आपकी सेना और शत्रु-सेना में जिस भांति युद्ध हुआ-उसे सुनो। इस समय जो वीर वेग से भीष्म के रथ के पास पहुंच गए थे, शान्तनु-पुत्र भीष्म ने इन बहुत से वीरों को प्रथम समेटा ॥६॥

तत्राऽद्भुतं महच्चक्रे शरैराच्छेद्रथोत्तमान् ।
समावृणोच्छरैरर्कमर्कतुल्यप्रतापवान् ॥७॥
नुदन्समन्तात्समरे रविरुद्यन्यथा तमः ।

भीष्म ने उसी समय बड़ा ही रण कौशल दिखाया, कि बड़े २ महारथियों को बाणों से ढक दिया। इस सूर्य के तुल्य पराक्रमी भीष्म ने अपने बाणों से सूर्य को भी ढक दिया। हे राजन! सूर्य उदय होता हुआ जैसे अन्धकार का नाश कर देता है, उसी तरह युद्ध में चारों ओर भीष्म, विरोधी वीरों को इधर उधर हटा रहा था ॥७॥

तेनाऽऽजौ प्रेषिता राजञ्शराः शतसहस्रशः ॥८॥
क्षत्रियान्तकराः संख्ये महावेगा महाबलाः ।

हे राजन्! भीष्म ने इस युद्ध में कोई लाखों की संख्या में बाण फैंके होंगे, जो बड़े वेगशील, शक्तिसम्पन्न और क्षत्रिय वीरों के घातक थे ॥८॥

शिरांसि पातयामासुर्वीराणां शतशो रणे ॥९॥
गजान्कण्टकसन्नाहान्वज्रेणेव शिलोच्चयान् ।
रथा रथेषु संसक्ता व्यदृश्यन्त विशाम्पते ॥१०॥

भीष्म ने रण में सहस्रों वीरों के शरीर काट २ कर बिछा दिए और वज्र से पर्वत के सदृश कांटेदार कवच पहिने हुए हाथियों को भी मार गिराया। हे विशाम्पते! जहां देखा वहीं एक रथी दूसरे रथी से भिड़ रहा था ॥९-१०॥

एके रथं पर्यवहंस्तुरगाः सतुरङ्गमम् ।
युवानं निहतं वीरं लम्बमानं सकार्मुकम् ॥११॥

कुछ अश्व, अश्वों सहित विरोधी के रथ पर चढ़ गए। जिसमें धनुष धारण किये हुए रथी युवा वीर मरा हुआ लटक रहा था।

उदीर्णाश्च हया राजन्वहन्तस्तत्र तत्र ह ।
बद्धखड्गनिषङ्गाश्च विध्वस्तशिरसो हताः ॥१२॥

हे राजन्! इस समय अनेक अश्व चौंक पड़े—जिससे वे जहां तहां अपने रथों को ले उड़े। इस समय तलवार और तूणीर कसे हुए भी अनेक वीरों के शिर चकना चूर हो गए ॥१२॥

शतशः पतिता भूमौ वीरशय्यासु शेरते ।
परस्परेण धावन्तः पतिताः पुनरुत्थिताः ॥१३॥

सैंकड़ों सैनिक भूमि में गिर गए और वीरगति को प्राप्त होकर सदा के लिए वीर-शय्या पर सो गए। इस समय वीर एक दूसरे पर धावा बोल रहे थे, जिसमें बहुत से गिर पड़ते थे और वे फिर उठकर दौड़ते थे।

उत्थाय च प्रधावन्तो द्वन्द्वयुद्धमवाप्नुवन्।
पीडिताः पुनरन्योन्यं लुठन्तो रणमूर्धनि ॥१४॥

ये वीर जब उठकर दौड़ते थे, तो विरोधी वीर से द्वन्द्व-युद्ध (कुश्ती) करने लगते थे। ये एक दूसरे से पीड़ित किये हुए वीर रणभूमि में लोट लगा रहे थे ॥१४॥

सचापाः सनिषङ्गाश्च जातरूपपरिष्कृताः।
विस्रब्धहतवीराश्च शतशः परिपीडिताः ॥१५॥

धनुष, तूणीर और शुद्ध सुवर्ण के भूषणों से विभूषित सैंकड़ों वीर, पूर्ण आघातों से हत हुए बड़े पीड़ित हो रहे थे ॥१५॥

तेन तेनाऽभ्यधावन्त विसृजन्तश्च भारत।
मत्तो गजः पर्यवर्त्तद्धयांश्च हतसादिनः ॥१६॥

हे भारत! एक वीर दूसरे वीर पर धावा बोलकर बाण वर्षा कर रहा था। मदोन्मत्त हाथी, अश्वरोही के मारे जाने पर उन खाली अश्वों को पकड़ २ कर इधर उधर फैंक फांक रहे थे ॥१६॥

सरथा रथिनश्चापि विमृद्नन्तः समन्ततः।
स्यन्दनादपतत्कश्चिन्निहतोऽन्येन सायकैः ॥१७॥

अनेक रथी अपने रथों के पास में पड़े हुए वीरों को कुचल रहे थे। इतने में ही किसीने बाण मारा, कि वह रथी निहत होकर अपने रथ से नीचे गिर पड़ा ॥१७॥

हतसारथिरप्युच्चैः पपात काष्ठवद्रथः ।
युध्यमानस्य संग्रामे व्यूढे रजसि चोत्थिते ॥१८॥

इस प्रकार संग्राम में युद्ध करते हुए रथी का जब सारथी मारा गया-तो फिर काष्ठ की भांति रथ भी ऊंचे से नीचे आ गिरा, क्योंकि धूलि के उठने से बड़ा अन्धकार होरहा था ॥१८॥

धनुःकूजितविज्ञानं तत्राऽऽसीत्प्रतियुद्ध्यतः ।
गात्रस्पर्शेन योधानां व्यज्ञास्त परिपन्थिनम् ॥१६॥

सेना में युद्ध हो रहा है-इसका पता धनुप के कूजन से लगता था तथा योद्धाओं के गात्र स्पर्श से विरोधी योद्धाओं के आने का ज्ञान होता था ॥१६॥

युद्ध्यमानं शरै राजन्सिञ्जिनीध्वजिनीरवात् ।
अन्योन्यं वीरसंशब्दो नाऽश्रूयत भटैः कृतः ॥२०॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार बाणों से युद्ध चल रहा था, तो धनुप की डोरी में लगी हुई छोटी २ घण्टियों की ध्वनि से युक्त सेना के कोलाहल से योद्धाओं द्वारा किया वीरोचित उच्चारण भी किसी के कान में नहीं पड़ रहा था ॥२०॥

शब्दायमाने संग्रामे पटहे कर्णदारिणि ।
युध्यमानस्य संग्रामे कुर्वतः पौरुषं स्वकम् ॥२१॥
नाऽश्रौषं नामगोत्राणि कीर्तनं च परस्परम् ।

संग्राम में जब कानों को फोड़ देने वाला पटह (नगाड़ा) बज रहा था और प्रत्येक योद्धा अपना २ पराक्रम दिखा रहा था,तो

उस समय वीरों द्वारा उच्चारण किया हुआ नाम और गोत्र भी मुझे सुनाई नहीं देता था ॥२१॥

भीष्मचापच्युतैर्बाणैरार्तानां युद्ध्यतां मृधे ॥२२॥
परस्परेषां वीराणां मनांसि समकम्पयन् ।

इस भीषण युद्ध में भीष्म के धनुष से निकले हुए, बाणों से व्याकुल, परस्पर युद्ध करने वाले वीरों के मन कांपने लगे ॥२२॥

तस्मिन्नत्याकुले युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥२३॥
पिता पुत्रं च समरे नाऽभिजानाति कश्चन ।

जब यह दारुण युद्ध बहुत बढ़ गया, जिसके देखने से भी रोमाञ्च हो आते थे-तो इस समय कोई पिता या पुत्र एक दूसरे की पहिचान तक नहीं कर पाता था ॥२३॥

चक्रे भग्ने युगेच्छिन्ने एकधुर्ये हये हतः ॥२४॥
आक्षिप्तः स्यन्दनाद्वीरः ससारथिरजिह्मगैः ।

भीष्म ने अपने बाणों से चक्र के भग्न कर देने, जुये के तोड़ देने और सबसे आगे चलने वाले प्रधान अश्व के मार लेने पर सारथि सहित रथी को भी रथ से नीचे गिरा लिया ॥२४॥

एवं च समरे सर्वे वीराश्च विरथीकृताः ॥२५॥
तेन तेन स्म दृश्यन्ते धावमानाः समन्ततः ।

इस प्रकार भीष्म ने प्रायः वीरों को रथ से रहित कर दिया। ये वीर कुछ छिपकर इधर उधर भाग रहे थे, परन्तु फिर भी कोई न कोई देख ही लेता था ॥२५॥

गजो हतः शिरश्छिन्नं मर्म भिन्नं हयो हतः ॥२६॥
अहतः कोऽपि नैवाऽऽसीद्भीष्मे निघ्नति शात्रवान् ।

जब इस तरह भीष्म शत्रुओं का विध्वंस उड़ा रहे थे, तो कहीं हाथी मारा गया, कहीं किसी का शिर कट गया, कहीं किसी वीर के मर्म स्थान पर चोट पहुंची और कहीं पर अश्व मारा गया। परन्तु कोई विना चोट खाये बच नहीं सका ॥२६॥

श्वेतः कुरूणामकरोत्क्षयं तस्मिन्महाहवे ॥२७॥
राजपुत्रान्रथोदारानवधीच्छतसङ्घशः ।

राजकुमार श्वेत ने भी कौरवों का नाश कर डाला। इसने भी सैंकड़ों की संख्या में अनेक महारथी राजपूतों को मार लिया।

चिच्छेद रथिनां बाणैः शिरांसि भरतर्षभ ॥२८॥
साङ्गदा बाहवश्चैव धनूंषि च समन्ततः ।
रथेषां रथचक्राणि तूणीराणि युगानि च ॥२९॥
छत्राणि च महार्हाणि पताकाश्च विशाम्पते ।

हे भरतर्षभ ! विशाम्पते ! इसने अपने बाणों से अनेक सारथियों के अङ्गादि आभूषणों से भूषित, भुजाएँ, धनुष, रथों के चक्र, और ईषा (धुर) तूणीर. युग (जुये) बड़े २ मूल्यवान, छत्र और पताकाएँ काट गिराई ॥२८-२९॥

हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्चैव भारत ॥३०॥
वारणाः शतशश्चैव हताः श्वेतेन भारत ।

हे भारत ! अश्व, रथ और मनुष्यों के समूह तथा सैंकड़ों हाथी राजकुमार श्वेत ने मार गिराए ॥३०॥

वयं श्वेतभयाद्भीता विहाय रथसत्तमम् ॥३१॥
अपयातास्तथा पश्चाद्विभुं पश्याम धृष्णवः ।

हम भी श्वेत से भयभीत होकर रथ छोड़ कर दूर चले गए। इसी कारण से बचे हुए हम आपके दर्शन कर रहे हैं ॥३१॥

शरपातमतिक्रम्य कुरवः कुरुनन्दन ॥३२॥
भीष्मं शान्तनवं युद्धे स्थिताः पश्याम सर्वशः ।
अदीनो दीनसमये भीष्मोऽस्माकं महाहवे ॥३३॥
एकस्तस्थौ नरव्याघ्रो गिरिर्मेरुरिवाऽचलः ।

हे कुरुनन्दन ! राजकुमार श्वेत के बाण के मार्ग से बच कर हम लोग और कुछ कौरव वीर, स्थित हुए शान्तनु-पुत्र भीष्म को इस युद्ध में अच्छी तरह देखने लगे। इस महायुद्ध में बड़ा भयकारी समय उपस्थित था, जिसमें प्रत्येक मनुष्य दीन हो जाता है, परन्तु इस कठिन समय में भी हमारा वीर नरश्रेष्ठ, अकेला भीष्म ही अदीन (दीठ) होकर मेरु पर्वत की भांति अचल ही रहा ॥३२-३३॥

आददान इव प्राणान्सविता शिशिरात्यये ॥३४॥
गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यस्तस्थौ शरमरीचिमान् ।

शिशिर ऋतु के समाप्त होने पर तीक्ष्ण किरणों से अदिति-पुत्र सूर्य जैसे प्राणियों के प्राणों का शोषण करता है, तैसे ही बाण रूपी किरणों का धारी भीष्म भी सब के प्राण हर रहा था।

स मुमोच महेष्वासः शरसङ्घाननेकशः ॥३५॥
निघ्नन्नमित्रान्समरे वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ।

महा धनुर्धर भीष्म अनेक भांति से शर समूह फैंक कर युद्ध में शत्रुओं का नाश कर रहा था। यह अब असुरों के घातक इन्द्र के सदृश ज्ञात होता था ॥३५॥

ते वध्यमाना भीष्मेण प्रजहुस्तं महाबलम् ॥३६॥
स्वयूथादिव ते यूथान्मुक्तं भूमिषु दारुणम् ।

जब भीष्म ने पृष्ठ रक्षकों की यह दशा कर दी तो वे इस महाबली दारुण कर्म करने वाले को यूथ से भ्रष्ट हुए जन्तु की भांति अपने यूथ से छिटका कर चल दिए ॥३६॥

तमेवमुपलक्ष्यैको हृष्टः पुष्टः परन्तप ॥३७॥
दुर्योधनप्रिये युक्तः पाण्डवान्परिशोचयन् ।
जीवितं दुस्त्यजं त्यक्त्वा भयं च सुमहाहवे ॥३८॥
पातयामास सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते ।

हे परन्तप ! राजकुमार श्वेत को इस प्रकार देखकर हृष्ट-पुष्ट, दुर्योधन के हित में तत्पर, पाण्डवों को चिन्तातुर करते हुए, अकेले भीष्म, इस महायुद्ध में अपने दुस्त्यज प्राणों का मोह और भय छोड़ कर पाण्डवों की सेना को गिराने लगे ॥३७-३८॥

प्रहरन्तमनीकानि पिता देवव्रतस्तव ॥३९॥
दृष्ट्वा सेनापतिं भीष्मस्त्वरितः श्वेतमभ्ययात् ।

हे राजन्! जब इस प्रकार तुम्हारे पिता देवव्रत ने बहुत वेगसे सेना का विध्वंस करते हुए सेनापति श्वेत को देखा, तो वे बड़े वेग से श्वेत के पास पहुंचे ॥३९॥

स भीष्मं शरजालेन महता समवाकिरत् ॥४०॥
श्वेतं चापि तथा भीष्मः शरौघैः समवाकिरत् ।

श्वेत ने अपने महती बाण वर्षा से भीष्म को ढक दिया और भीष्म ने अपने बाण समूह से श्वेत को आच्छादित कर लिया ॥४०॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ ॥४१॥
व्याघ्राविव सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

ये दोनों वृषभ (सांड) की भांति नाद कर रहे थे और हाथी की तरह मदोन्मत्त हो रहे थे। इन्होंने आवेश में भर कर सिंहों की तरह एक दूसरे पर प्रहार किया ॥४१॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य ततस्तौ पुरुषर्षभौ ॥४२॥
भीष्मः श्वेतश्च युयुधे परस्परवधैषिणौ ।

ये दोनों पुरुष प्रवीर, अपने अस्त्रों से दूसरे के अस्त्रों को रोक रहे थे। भीष्म और श्वेत एक दूसरे के मारने की घात में प्रहार कर रहे थे ॥४२॥

एकाह्ना निर्दहेद्भीष्मः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥४३॥
शरैः परमसंक्रुद्धो यदि श्वेतो न पालयेत् ।

भीष्म, पाण्डवों की सेना को एक ही दिन में जलाकर भस्म कर देते, जो अत्यन्त क्रुद्ध हुआ श्वेत सेनाकी रक्षा न कर लेता।

पितामहं ततो दृष्ट्वा श्वेतेन विमुखीकृतम् ॥४४॥
प्रहर्षं पाण्डवा जग्मुः पुत्रस्ते विमना भवत् ।

जब श्वेत ने इस प्रकार भीष्म पितामह को युद्ध से विमुख कर दिया, तो पाण्डव बड़े आनन्दित और तुम्हारा पुत्र दुर्योधन बड़ा चिन्तातुर हुआ ॥४४॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धः पार्थिवैः परिवारितः ॥४५॥
ससैन्यः पाण्डवानीकमभ्यद्रवत संयुगे ।

राजा दुर्योधन कुपित हुआ अन्य राजाओं को साथ लेकर बहुत सी सेना के साथ रणभूमि में पाण्डवों की सेना में घुस गया

दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विशाम्पतिः ॥४६॥
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण नोदिताः ।

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन की आज्ञा से दुर्मुख, कृतवर्मा, कृप, राजा शल्य, भीष्म के पास पहुंच कर उसकी रक्षा करते रहे ॥४६॥

दृष्ट्वा तु पार्थिवैः सर्वैर्दुर्योधनपुरोगमैः ॥४७॥
पाण्डवानामनीकानि वध्यमानानि संयुगे।

श्वेतो गाङ्गेयमुत्सृज्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥४८॥
नाशयामास वेगेन वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
द्रावयित्वा चमूं राजन्वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ॥४९॥
आपतत्सहसा भूयो यत्र भीष्मो व्यवस्थितः ।

जब राजकुमार श्वेत ने देखा, कि दुर्योधन के साथ अनेक राजा पाण्डवों की सेना का विध्वंस कर रहे हैं, तो वह गङ्गा-पुत्र भीष्म को छोड़ कर दुर्योधन की सेना की टुकड़ी की ओर दौड़ा और वायु जैसे वेग से वृक्षों को गिराने लगती है, वैसे ही वह भी राजा दुर्योधन की सेना को गिराने लगा। हे राजन् ! विराट-पुत्र श्वेत क्रोध, में भरकर इस सेना को हटाकर फिर जहां भीष्म था, वहीं आ पहुंचा ॥४९॥

तौ तत्रोपगतौ राजञ्शरदीप्तौ महाबलौ ॥५०॥
अयुध्येतां महात्मानौ यथोभौ वृत्रवासवौ ।
अन्योन्यं तु महाराज परस्परवधैषिणौ ॥५१॥

हे राजन् ! ये दोनों महाबली परस्पर जुट गए, जो अपने २ बाणों से देदीप्यमान हो रहे थे। इन दोनों वीरों का इन्द्र और वृत्रासुरके युद्ध के समान भीषण युद्ध होने लगा। हे महाराज ! ये दोनों ही आपस में एक दूसरे के मारने की इच्छा कर रहे थे।

निगृह्य कार्मुकं श्वेतो भीष्मं विव्याध सप्तभिः ।
पराक्रमं ततस्तस्य पराक्रम्य पराक्रमी ॥५२॥
तरसा वारयामास मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।

महाभारत चित्र संख्या ७४



गुरु द्रोणाचार्य एवं धृष्टद्युम्न का भयंकर युद्ध

महा० भीष्म पर्व अ० ५३ । २८ पृ० ५५०

श्वेत ने सात बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाए और उनसे भीष्म को बेंध लिया। महापराक्रमी भीष्म ने अपना पराक्रम करके श्वेत के पराक्रम को बड़े वेग से इस तरह दबा दिया जैसे-एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी को रोक लेता है ॥५२॥

श्वेतः शान्तनवं भूयः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥५३॥
विव्याध पञ्चविंशत्या तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

राजकुमार श्वेत ने फिर अपने झुकी पर्व वाले पचीस बाणों से शान्तनु-पुत्र भीष्म को बेंध डाला, जो बड़ा ही अद्भुत दृश्य था।

तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥५४॥
स विद्धस्तेन बलवान्नाऽकम्पत यथाऽचलः ।

शान्तनु-पुत्र भीष्म ने भी उसको उलटे दश बाणों से बींधा, परन्तु यह बलवान् उन बाणों से कुछ भी विचलित नहीं हुआ और पर्वत की भांति अचल ही बना रहा ॥५४॥

वैराटिः समरे क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ॥५५॥
आजघान ततो भीष्मं श्वेतः क्षत्रियनन्दनः ।

विराट राजकुमार, क्षत्रियों को आनन्द देने वाला श्वेत, इस युद्ध में बड़ा कुपित हुआ और इसने अपने धनुष को शक्तिपूर्वक खैंचकर भीष्म पर प्रहार किया ॥५५॥

सम्प्रहस्य ततः श्वेतः सृक्किणी परिसंलिहन् ॥५६॥
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य नवभिर्दशधा शरैः ।

अब श्वेत हँसता भी जाता था और क्रोध से अपने होठों को भी चाब रहा था। इसने नौ बाण ऐसे छोड़े, कि जिससे भीष्म के धनुष के दश टुकड़े हो गए ॥५६॥

सन्धाय विशिखं चैव शरं लोमप्रवाहिनम् ॥५७॥
उन्ममाथ ततस्तालं ध्वजशीर्षं महात्मनः।

इसने लोमधारी एक बाण ऐसा चढ़ाया, कि जिससे महात्मा भीष्म की ताल ध्वजा का शिर काट कर गिरा दिया ॥५७॥

केतुं निपतितं दृष्ट्वा भीष्मस्य तनयास्तव ॥५८॥
हतं भीष्ममन्यन्त श्वेतस्य वशमागतम्।
पाण्डवाश्चाऽपि संहृष्टा दध्मुः शङ्खान्मुदा युताः॥५९॥

जब भीष्मकी ध्वजा कटकर गिर गई-तो तुम्हारे पुत्रोंने समझा, कि अब भीष्म को श्वेत ने दबा लिया और थोड़ी ही देर में भीष्म मार लिया जायगा। इस दृश्य को देख कर पाण्डव भी बड़े प्रफुल्लित हो रहे थे। उन्होंने भी आनन्द में भर कर शंख बजाया।

भीष्मस्य पतितं केतुं दृष्ट्वा तालं महात्मनः।
ततो दुर्योधनः क्रोधात्स्वमनीकमनोदयत् ॥६०॥

महात्मा भीष्म की ताल ध्वजा को कट कर गिरी हुई देख राजा दुर्योधन क्रोध में भर गया और उसने अपनी सेना को आगे चलता किया और कहा—॥६०॥

यत्ता भीष्मं परीप्सध्वं रक्षमाणाः समन्ततः ।
मा नः प्रपश्यमानानां श्वेतान्मृत्युमवाप्स्यति ॥६१॥
भीष्मः शान्तनवः शूरस्तथा सत्यं ब्रवीमि वः ।

तुम लोग सब ओर से बड़ी सावधानी के साथ भीष्म की रक्षा करते रहो । हमारे देखते २ श्वेत कहीं शान्तनु-पुत्र, शूरवीर भीष्म का वध न कर डाले । यह बात मैं तुमको बड़े आग्रह से कहता हूँ ॥६१॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ॥६२॥
बलेन चतुरङ्गेण गाङ्गेयमन्वपालयन् ।

राजा दुर्योधन के वचनों को सुनकर महारथी अन्य राजा बड़ी शीघ्रता से भीष्म के समीप पहुंचे और अपनी चतुरङ्गिणी सेना से भीष्म की रक्षा करने लगे ॥६२॥

बाह्लीकः कृतवर्मा च शलः शल्यश्च भारत ॥६३॥
जलसन्धो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले परिवार्य समन्ततः ॥६४॥
शस्त्रवृष्टिं सुतुमुलां श्वेतस्योपर्यपातयन् ।

हे भारत ! बाल्हीक, कृतवर्मा, शल, शल्य, जलसन्ध, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति, इस शीघ्रता के समय में बड़ी शीघ्रता से भीष्म के पास पहुंचे और सब ओर से घेर कर भीष्म की रक्षा तथा श्वेत के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे ।

तान्क्रुद्धो निशितैर्बाणैस्त्वरमाणो महारथः ॥६५॥
अवारयदमेयात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ।

क्रोध में भरे हुए महाबली महारथी, श्वेत ने भी बड़ी शीघ्रता से अपने हाथों का कौशल दिखाया और तीक्ष्ण बाणों से इन सबको वहीं रोक दिया ॥६५॥

स निवार्य तु तान्सर्वान्केसरी कुञ्जरानिव ॥६६॥
महता शरवर्षेण भीष्मस्य धनुराच्छिनत् ।

मदोन्मत्त हाथियों को सिंह के तुल्य उन सब वीरों को वहीं रोक कर, श्वेत ने महान् शर वर्षा से फिर भीष्म के धनुष को काट गिराया ॥६६॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय भीष्मः शान्तनवो युधि ॥६७॥
श्वेतं विव्याध राजेन्द्र कङ्कपत्रैः शितैः शरैः ।

हे राजेन्द्र ! शान्तनु-पुत्र भीष्म ने फिर इस युद्ध में दूसरा धनुष ग्रहण किया और कङ्कपक्षी के पक्षों से सुशोभित तीक्ष्ण बाणों से राजकुमार श्वेत को बींध डाला ॥६७॥

ततः सेनापतिः क्रुद्धो भीष्मं बहुभिरायसैः ॥६८॥
विव्याध समरे राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः ।

हे राजन् ! अब सेनापति श्वेत क्रुद्ध हो गया और इसने बहुत से लोहमय बाणों से समस्त वीरों के देखते २ युद्ध में भीष्म को छेद लिया ॥६८॥

ततः प्रव्यथितो राजा भीष्मं दृष्ट्वा निवारितम् ॥६९॥
प्रवीरं सर्वलोकस्य श्वेतेन युधि वै तदा ।
निष्टानकश्च सुमहांस्तव सैन्यस्य चाऽभवत् ॥७०॥

जब भीष्म की शक्ति श्वेत द्वारा इस युद्ध में इस प्रकार रोक दी गई, तो राजा दुर्योधन बड़ा चिन्तित हुआ, क्योंकि भीष्म तो संसार का माना हुआ एक महान् योद्धा था। हे राजन्! इस समय तुम्हारी सारी सेना भौचक सी खड़ी रह गई ॥६९-७०॥

तं वीरं वारितं दृष्ट्वा श्वेतेन शरविक्षतम् ।
हतं श्वेतेन मन्यन्ते श्वेतस्य वशमागतम् ॥७१॥

श्वेत द्वारा बाणों से क्षत विक्षत और सब ओर से रुके हुए भीष्म को देख कर सारे वीर यही समझने लगे, कि भीष्म श्वेत के वश में आ गया और अब थोड़ी देर में मार लिया जाता है।

ततः क्रोधवशं प्राप्तः पिता देवव्रतस्तव ।
ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा तां च सेनां निवारिताम् ॥७२॥
श्वेतं प्रति महाराज व्यसृजत्सायकान्बहून् ।

हे राजन्! अब तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म, अपनी ध्वजा को कटी और सेना को परास्त देखकर क्रोध में भर गए। हे महाराज! इस समय भीष्म ने श्वेत के ऊपर बहुत से बाण छोड़े ॥७२॥

तानावार्य रणे श्वेतो भीष्मस्य रथिनां वरः ॥७३॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पुनरेव पितुस्तव ।

रथियों में श्रेष्ठ श्वेत ने भी उन वाणों को वहीं रोक दिया और अपने तीखे बाण से तुम्हारे पिता का धनुष काट गिराया।

उत्सृज्य कार्मुकं राजन्गाङ्गेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥७४॥
अन्यत्कार्मुकमादाय विपुलं बलवत्तरम्।
तत्र सन्धाय विपुलान्भल्लान्सप्त शिलाशितान् ॥७५॥
चतुर्भिश्च जघानाऽश्वाञ्श्वेतस्य पृतनापतेः।
ध्वजं द्वाभ्यां तु चिच्छेद सप्तमेन च सारथेः ॥७६॥
शिरश्चिच्छेद भल्लेन संक्रुद्धोऽलघुविक्रमः।

हे राजन्! गङ्गा-पुत्र भीष्म ने वह धनुष तो फैंक दिया और यह बड़े आवेश में भर गया। इसने अब बड़ा दृढ-बल-शाली धनुष उठाया। इस पर इसने शाण (शिल्ली) पर तीक्ष्ण किये हुए सात बड़े २ बाण चढाये। इनमें चार बाणों से सेनापति श्वेत के चारों अश्व, दो से ध्वजा और सातवें बाण से सारथि का शिर काट लिया। भीष्म भी उस वक्त बड़े क्रोध में था और इसका पराक्रम भी अपरमित था ॥७४-७६॥

हताश्वसूतात्स रथादवप्लुत्य महाबलः ॥७७॥
अमर्षवशमापन्नो व्याकुलः समपद्यत।

महा बलवान् श्वेत भी अश्व और सारथि के मारे जाने पर रथ से कूद पड़ा और क्रोध में भरकर बड़ा व्याकुल हुआ।

विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पितामहः ॥७८॥
ताडयामास निशितैः शरसङ्घैः समन्ततः।

भीष्मपितामह, रथियों में श्रेष्ठ, श्वेत को रथ हीन देखकर सब ओर से तीखे बाणों द्वारा छेदने लगा ॥७८॥

स ताड्यमानः समरे भीष्मचापच्युतैः शरैः ॥७९॥

स्वरथे धनुरुत्सृज्य शक्तिं जग्राह काञ्चनीम् ।

इस युद्ध में भीष्म के धनुष से निकलते हुए तीखे बाणों से ताड़ित हुए, श्वेतने अपना धनुष अपने रथ में फैंक दिया और एक सुवर्णमयी शक्ति उठाई ॥७९॥

ततः शक्तिं रणे श्वेतो जग्राहोग्रां महाभयाम् ॥८०॥

कालदण्डोपमां घोरां मृत्योर्जिह्वामिव श्वसन् ।

यह शक्ति बड़ी उग्र, भीषण, कालदण्ड के सदृश घोर, मृत्यु की जिह्वा के तुल्य थी । सर्प के समान श्वास लेते हुए श्वेत ने उस शक्ति का प्रयोग किया ॥८०॥

अब्रवीच्च तदा श्वेतो भीष्मं शान्तनवं रणे ॥८१॥

तिष्ठेदानीं सुसंरब्धः पश्य मां पुरुषो भव ।

अब इस भीषण रण में शान्तनु-पुत्र भीष्म से सेनापति श्वेत बोला-अब तू सावधान होकर ठहरा रह । तू मेरे पराक्रम को देख । हट न जाना, वीर बन कर यहीं ठहरे रहना ॥८१॥

एवमुक्त्वा महेष्वासो भीष्मं युधि पराक्रमी ॥८२॥

ततः शक्तिममेयात्मा चिक्षेप भुजगोपमाम् ।

पाण्डवार्थे पराक्रान्तस्तवाऽनर्थं चिकीर्षुकः ॥८३॥

महा धनुर्धर, पराक्रमी, महामनस्वी श्वेत ने इतना कहकर युद्ध में सर्प के सदृश भयङ्कर उस शक्ति को भीष्म पर छोड़ दिया। यह सब कुछ पराक्रम, उसने पाण्डवों की विजय और तुम्हारे पक्ष की पराजय के लिए किया था ॥८२-८३॥

हाहाकारो महानासीत्पुत्राणां ते विशाम्पते ।
दृष्ट्वा शक्तिं महाघोरां मृत्योर्दण्डसमप्रभाम् ॥८४॥

हे विशाम्पते ! मृत्यु के दण्ड के समान महाघोर इस शक्ति को देखकर तुम्हारे पुत्रों के मध्य में हाहाकार मच गया ॥८४॥

श्वेतस्य करनिर्मुक्तां निर्मुक्तोरगसन्निभाम् ।
अपतत्सहसा राजन्महोल्केव नभस्तलात् ॥८५॥
ज्वलन्तीमन्तरिक्षे तां ज्वालाभिरिव संवृताम् ।
असम्भ्रान्तस्तदा राजन्पिता देवव्रतस्तव ॥८६॥

हे राजन् ! छोड़े हुए भुजङ्ग के तुल्य भीषण, श्वेत के हाथ से छोड़ी हुई, वह शक्ति, आकाश से गिरने वाले महान् उल्कापात की भांति भीष्म पर आकर गिरी। यह आकाश में जल रही थी और इसके चारों ओर लपटें निकल रही थी, परन्तु इस समय भी तुम्हारे पिता देवव्रत धैर्य से निश्चिन्त वहीं डटे रहे ॥८५-८६॥

अष्टभिर्नवभिर्भीष्मः शक्तिं चिच्छेद पत्रिभिः ।
उत्कृष्टहेमविकृतां निकृतां निशितैः शरैः ॥८७॥
उच्चुक्रुशुस्ततः सर्वे तावका भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! भीष्म ने अपने आठ बाणों से शक्ति के नौ टुकड़े कर डाले । उत्तम सुवर्ण से जटित, इस शक्ति को तीक्ष्ण बाणों से कटी हुई देखकर तुम्हारे पुत्रों ने बड़े उच्च-स्वर से बड़ी उच्च ध्वनि की ॥८७॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ॥८८॥
कालोपहतचेतास्तु कर्तव्यं नाऽभ्यजानत ।

अपनी शक्ति को नष्ट हुई देखकर विराट राजकुमार, श्वेत, क्रोध से जल उठा । इस समय इसका चित्त कुछ काम नहीं देता था और किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो रहा था ॥८८॥

क्रोधसम्मूर्च्छितो राजन्वैराटिः प्रहसन्निव ॥८९॥
गदां जग्राह संहृष्टो भीष्मस्य निधनं प्रति ।

हे राजन् ! क्रोध में भरा हुआ भी सेनापति श्वेत कुछ मुस्कुरा दिया और इसने अब भीष्म के वध के लिए बड़ी प्रसन्नता से गदा उठाई ॥८९॥

क्रोधेन रक्तनयनो दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥९०॥
भीष्मं समभिदुद्राव जलौघ इव पर्वतम् ।

इसके क्रोध से लाल नेत्र हो रहे थे । यह दण्डपाणि, काल के सदृश प्रतीत होता था । यह पर्वत पर जल के प्रवाह की भांति भीष्म पर टूट पड़ा ॥९०॥

तस्य वेगमसंवार्यं मत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥९१॥
प्रहारविप्रमोक्षार्थं सहसा धरणीं गतः ।

प्रतापी भीष्म, श्वेत का वेग रोकने में न आने वाला देखकर प्रहार से वचने के लिए वड़ी शीघ्रता से पृथिवी पर नीचा हो गया ॥६१॥

श्वेतः क्रोधसमाविष्टो भ्रामयित्वा तु तां गदाम् ॥६२
रथे भीष्मस्य चिक्षेप यथा देवो धनेश्वरः ।

श्वेत ने क्रोध में भरकर गदा को घुमाया और धनेश्वर कुबेर की भांति भीष्म के रथ पर मारी ॥६२॥

तया भीष्मनिपातिन्या स रथो भस्मसात्कृतः ॥६३॥
सध्वजः सह सूतेन साश्वः सयुगबन्धुरः ।

इस गदा का वड़ा भारी आघात पड़ता था । इसने रथ पर गिरते ही रथ को भस्मसात् कर दिया । रथकी ध्वजा, सारथि, अश्व और उसका ऊंचा नीचा युग (जुआ) भी टूट गया ॥६३॥

विरथं रथिनां श्रेष्ठं भीष्मं दृष्ट्वा रथोत्तमाः ॥६४॥
अभ्यधावन्त सहिताः शल्यप्रभृतयो रथाः ।

रथियों में श्रेष्ठ, शल्य आदि महारथी, महारथियों में श्रेष्ठ भीष्म को रथ विहीन देखकर इकट्ठे ही उसकी रक्षा को दौड़े ।

ततोऽन्यं रथमास्थाय धनुर्विस्फार्य दुर्मनाः ॥६५॥
शनकैरभ्ययाच्छ्वेतं गाङ्गेयः प्रहसन्निव ।

भीष्म यद्यपि मन में लज्जित हो गए थे, तो भी कुछ मुस्कुराते हुए, दूसरे रथ पर चढ़ गए और इन्होंने धनुष चढ़ा लिया । अब ये फिर धीरे २ श्वेत की ओर चल दिए ॥६५॥

एतस्मिन्नन्तरे भीष्मः शुश्राव विपुलां गिरम् ॥९६॥
आकाशादीरितां दिव्यामात्मनो हितसम्भवाम् ।

इसी समय भीष्म ने अपना हित करने वाली, दिव्य, बड़े उच्च स्वर में बोली हुई आकाश वाणी सुनी ॥९६॥

भीष्म भीष्म महाबाहो शीघ्रं यत्नं कुरुष्व वै ॥९७॥
एष ह्यस्य जये कालो निर्दिष्टो विश्वयोनिना ।

हे महाबाहो! भीष्म! तुम शीघ्र प्रयत्न करो। श्वेत के विजय करने का विश्वयोनि (ब्रह्मा) ने यही समय निश्चित किया है।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदूतेन भाषितम् ॥९८॥
सम्प्रहृष्टमना भूत्वा वधे तस्य मनो दधे ।

देवदूत द्वारा कहे हुए ये वचन सुनकर भीष्म बड़ा प्रफुल्लित हुआ और उसके वध के लिए विचार करने लगा ॥९८॥

विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पदातिनम् ॥९९॥
सहितास्त्वभ्यवर्तन्त परीप्सन्तो महारथाः ।

जब पाण्डवों के महारथियों ने रथि-श्रेष्ठ श्वेत को रथ विहीन और पैदल ही युद्ध करते हुए देखा—तो वे इसकी रक्षा करने को इकट्ठे ही दौड़ पड़े ॥९९॥

सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥१००॥
कैकेयो धृष्टकेतुश्च अभिमन्युश्च वीर्यवान् ।

इनमें सात्यकि, भीमसेन, पर्षत-वंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न, कैकय राजकुमार, धृष्टकेतु और वीर्यवान् अभिमन्यु थे ॥१००॥

एतानापततः सर्वान्द्रोणशल्यकृपैः सह ॥१०१॥
अवारयदमेयात्मा वारिवेगानिवाऽचलः ।

इन सब महारथियों को झपटते देखकर द्रोण, शल्य और कृप की सहायता से महाशक्तिशाली भीष्म ने इनको इस भांति से रोक लिया जैसे-वायु वेग को पर्वत रोक देता है ॥१०१॥

स निरुद्धेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥१०२॥
श्वेतः खड्गमथाऽऽकृष्य भीष्मस्य धनुराच्छिनत् ।

जब इन वीरों ने पाण्डवों के सारे योद्धा रोक लिए—तो राजकुमार श्वेत ने खड्ग निकालकर भीष्म का धनुष काट दिया।

तदपास्य धनुश्छिन्नं त्वरमाणः पितामहः ॥१०३॥
देवदूतवचः श्रुत्वा वधे तस्य मनो दधे ।

भीष्मपितामह ने उस कटे हुए धनुष को फैंक दिया और वह बड़ी शीघ्रता से देवदूत के सुने हुए वचनों के अनुसार श्वेत के वध के लिए प्रयत्न करने लगा ॥१०३॥

ततः प्रचरमाणस्तु पिता देवव्रतस्तव ॥१०४॥
अन्यत्कार्मुकमादाय त्वरमाणो महारथः ।
क्षणेन सज्यमकरोच्छक्रचापसमप्रभम् ॥१०५॥

हे राजन् ! इस समय युद्धभूमि में घूमते हुए तुम्हारे पिता महारथी देवव्रत भीष्म ने बड़ी शीघ्रता से दूसरा धनुष लिया और इन्द्र धनुष के सदृश इस विशाल धनुष को क्षण भर में चढ़ा लिया।

पिता ते भरतश्रेष्ठ श्वेतं दृष्ट्वा महारथैः ।
वृतं तं मनुजव्याघ्रैर्भीमसेनपुरोगमैः ॥१०६॥
अभ्यवर्तत गाङ्गेयः श्वेतं सेनापतिं द्रुतम् ।

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे पिता, गङ्गा-पुत्र भीष्म ने मनुजश्रेष्ठ भीमसेन आदि महारथियों से घिरे हुए सेनापति श्वेत को देख कर उस पर बड़े वेग से आक्रमण किया ॥१०६॥

आपतन्तं ततो भीष्मो भीमसेनं प्रतापवान् ॥१०७॥
आजघ्ने विशिखैः षष्ट्या सेनान्यं स महारथः ।

जब महारथी भीष्म ने झपटते हुए, प्रतापी सेनापति भीमसेन को देखा—तो भीष्म ने भीमसेन पर साठ बाण छोड़े ॥१०७॥

अभिमन्युं च समरे पिता देवव्रतस्तव ॥१०८॥
आजघ्ने भरतश्रेष्ठस्त्रिभिः सन्नतपर्वभिः ।

हे राजन् ! भरतवंशश्रेष्ठ, तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म ने उस युद्ध में झुके पर्ववाले तीन बाणों से अभिमन्यु को छेद दिया ।

सात्यकिं च शतेनाऽऽजौ भरतानां पितामहः ॥१०९॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या कैकेयं चाऽपि पञ्चभिः ।

भरतवंशज वीरों के पितामह भीष्म ने रण में सौ बाण सात्यकि पर, बीस धृष्टद्युम्न पर और पांच बाण कैकय राजकुमारों पर छोड़े ॥१०९॥

तांश्च सर्वान्महेष्वासान्पिता देवव्रतस्तव ॥११०॥
वारयित्वा शरैर्घोरैः श्वेतमेवाऽभिदुद्रुवे ।

हे राजन्! तुम्हारे पिता देवव्रत, इन सारे धनुर्धर पाण्डवों के महारथियों को रोक कर घोर बाणों के साथ राजकुमार श्वेत पर टूट पड़े ॥११०॥

ततः शरं मृत्युसमं भारसाधनमुत्तमम् ॥१११॥
विकृष्य बलवान्भीष्मः समाधत्त दुरासदम् ।

अब बलवान् भीष्म ने सारे भार के सहन करने में समर्थ, मृत्यु के तुल्य कठिन बाण को खैंचकर धनुष पर चढ़ाया ॥१११॥

ब्रह्मास्त्रेण सुसंयुक्तं तं शरं लोमवाहिनम् ॥११२॥
दद्दशुर्देवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।

इस बाण में पक्षी के पत्र लग रहे थे। भीष्म ने इसको ब्रह्मास्त्र द्वारा छोड़ा। इस बाण के वैभव को देव, गन्धर्व, पिशाच, उरग और राक्षस गण देखने लगे ॥११२॥

स तस्य कवचं भित्वा हृदयं चाऽमितौजसः ॥११३॥
जगाम धरणीं बाणो महाशनिरिव ज्वलन् ।

यह बाण कठिन वज्र की भांति प्रज्वलित हो रहा था। जिसने अत्यन्त बली श्वेत के कवच को बेंधकर उसका हृदय बेंध दिया और पीछे पृथिवी में जा घुसा ॥११३॥

अस्तं गच्छन्यथाऽऽदित्यः प्रभामादाय सत्वरः ॥११३
एवं जीवितमादाय श्वेतदेहाज्जगाम ह ।

जैसे-अपनी प्रभा (चमक) को लेकर सूर्य शीघ्र ही अस्त हो रहा हो-इसी तरह श्वेत के प्राणों को उसकी देह से निकाल कर बाण आर पार निकल गया ॥११४॥

तं भीष्मेण नरव्याघ्रं तथा विनिहतं युधि ॥११५॥
अपतन्तमपश्याम गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ।

भीष्म द्वारा युद्ध में मारे हुए, इस नर वीर को टूट कर पर्वत के शृङ्ग के समान हमने गिरते देखा था ॥११५॥

अशोचन्पाण्डवास्तत्र क्षत्रियाश्च महारथाः ॥११६॥
प्रहृष्टाश्च सुतास्तुभ्यं कुरवश्चाऽपि सर्वशः ।

महारथी, क्षत्रिय-श्रेष्ठ, पाण्डव, अब इस सेनापति श्वेत का बड़ा शोक करने लगे और तुम्हारे पुत्र तथा अन्य कौरव बड़े ही प्रसन्न हुए ॥११६॥

ततो दुःशासनो राजञ्श्वेतं दृष्ट्वा निपातितम् ॥११७॥
वादित्रनिनदैर्घोरैर्नृत्यति स्म समन्ततः ।

हे राजन् ! जब दुःशासनने श्वेत को रणभूमि में पड़ा देखा-तो वह अनेक बाजे बजा कर उनके साथ नांचने लगा ॥११७॥

तस्मिन्हते महेष्वासे भीष्मेणाऽऽहवशोभिना ॥११८॥
प्रावेपन्त महेष्वासाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः ।

युद्ध में सुशोभित होने वाले भीष्म द्वारा श्वेत के मारे जाने पर शिखण्डी आदि महाधनुर्धर वीर भी हिल गए ॥११८॥

ततो धनञ्जयो राजन्वार्ष्णेयश्चाऽपि सर्वशः ॥११९॥
अवहारं शनैश्चक्रुर्निहते वाहिनीपतौ ।

हे राजन्! अब अर्जुन और वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने सेनापति श्वेत के मारे जाने पर बड़ी कठिनाई से लोगों को सान्त्वना दी और सेना को पीछे हटाया ॥११६॥

ततोऽवहारः सैन्यानां तत्र तेषां च भारत ॥१२०॥
तावकानां परेषां च नर्दतां च मुहुर्मुहुः ॥

हे भारत! इस समय तुम्हारे और पाण्डवों के वीर यद्यपि गर्जना कर रहे थे, तो भी दोनों ओर से सेना पीछे हटा ली गई।

पार्था विमनसो भूत्वा न्यवर्तन्त महारथाः ।
चिन्तयन्तो वधं घोरं द्वैरथेन परन्तपाः ॥१२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेतवधेऽष्टा-चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

परन्तप, महारथी, पाण्डव, इस सेनापति के वध से बड़े उदास हुए और उन्होंने इस युद्ध में बड़े ही नाश होने की सम्भावना की ॥१२१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में राजकुमार श्वेत के [illegible] का अड़तालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

———

उनंचासवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

श्वेते सेनापतौ तात संग्रामे निहते परैः ।
किमकुर्वन्महेष्वासाः पञ्चाला पाण्डवैः सह ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे तात ! सञ्जय ! सेनापति श्वेत के भीष्म द्वारा संग्राम में मारे जाने पर महा धनुर्धर पञ्चालों ने पाण्डवों के साथ क्या किया ॥१॥

सेनापतिं समाकर्ण्य श्वेतं युधि निपातितम् ।
तदर्थं यततां चाऽपि परेषां प्रपलायिनाम् ॥२॥
मनः प्रीणाति मे वाक्यं जयं सञ्जय शृण्वतः ।
प्रत्युपायं चिन्तयन्तः सज्जनाः प्रस्नवन्ति मे ॥३॥

हे सञ्जय ! सेनापति श्वेत के मारे जाने और उसकी सहायता को आये हुए वीरों के भाग जाने की सुन कर इस विजय से मेरा मन बड़ा उच्छ्वसित होता है । मेरे सज्जन मित्र अब भी मेरी विजय की चिन्ता कर रहे होंगे ॥२-३॥

स हि वीरोऽनुरक्तश्च वृद्धः कुरुपतिस्तदा ।
कृतं वैरं सदा तेन पितुः पुत्रेण धीमता ॥४॥

वृद्ध कुरुपति भीष्म, बड़ा वीर और हमारे ऊपर अनुराग रखने वाला था । इसी भीष्म ने पिता (विराट) के वैर का बदला वीर पुत्र को मार कर पूरा किया है ॥४॥

तस्योद्वेगभयाच्चाऽपि संश्रितः पाण्डवान्पुरा।
सर्वं बलं परित्यज्य दुर्गं संश्रित्यः तिष्ठति ॥५॥

इसी भीष्म के भय से विराट ने पाण्डवों का आश्रय लिया था और यह सेना के बल का भरोसा छोड़ कर दुर्ग में घुस कर रहता था ॥५॥

पाण्डवानां प्रतापेन दुर्गं देशं निवेश्य च।
सपत्नान्सततं बाधन्नार्यवृत्तिमनुष्ठितः ॥६॥

विराटराज दुर्ग प्रदेश में अपनी सेना का प्रवेश करा कर पाण्डवों की सहायता से आर्य-वृत्ति के अनुसार अपने शत्रुओं को पीड़ित करता रहता था ॥६॥

आश्चर्यं वै सदा तेषां पुरा राज्ञां सुदुर्मतिः।
ततो युधिष्ठिरे भक्तः कथं सञ्जय सूदितः ॥७॥

हे सञ्जय! यह बड़ा आश्चर्य है, कि उन सब राजाओं के सन्मुख ही दुर्मति श्वेत कैसे मार लिया गया, जो राजा युधिष्ठिर का बड़ा भक्त और प्रिय था ॥७॥

प्रक्षिप्तः सम्मतः क्षुद्रः पुत्रो मे पुरुषाधमः।
न युद्धं रोचयेद्भीष्मो न चाऽऽचार्यः कथञ्चन ॥८॥
न कृपो न च गान्धारी नाऽहं सञ्जय रोचये।

हे सञ्जय! सच तो यह है, कि मेरा पुत्र मुझे तो विक्षिप्त (पागल) क्षुद्र विचार वाला, अधम पुरुष प्रतीत होता है। इस युद्ध को मैं, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृप, गान्धारी, आदि कोई भी नहीं चाहते हैं।

न वासुदेवो वार्ष्णेयो धर्मराजश्च पाण्डवः ॥९॥
न भीमो नाऽर्जुनश्चैव न यमौ पुरुषर्षभौ ।

पाण्डवों के पक्ष के वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, पाण्डु-पुत्र धर्मराज, भीम, अर्जुन, महावीर नकुल, सहदेव कोई भी इस युद्ध का होना पसन्द नहीं करते हैं ॥९॥

वार्यमाणो मया नित्यं गान्धार्या विदुरेण च ॥१०॥
जामदग्न्येन रामेण व्यासेन च महात्मना ।
दुर्योधनो युध्यमानो नित्यमेव हि सञ्जय ॥११॥
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च पापकृत् ।
दुःशासनस्य च तथा पाण्डवानन्वचिन्तयत् ॥१२॥

हे सञ्जय ! मैंने, गान्धारी ने, विदुर, जमदग्नि-पुत्र परशुराम और महात्मा व्यास ने कई बार इस युद्ध से दुर्योधन को मना किया; परन्तु यह पापी, कर्ण, सुबल पुत्र शकुनि और दुःशासन के बहकाने में आकर नित्य युद्ध की ही पुष्टि करता रहता है तथा पाण्डवों के अनिष्ट की ही चिन्ता में मग्न रहता है ॥१०-१२॥

तस्याऽहं व्यसनं घोरं मन्ये प्राप्तं तु सञ्जय ।
श्वेतस्य च विनाशेन भीष्मस्य विजयेन च ॥१३॥
संक्रुद्धः कृष्णासहितः पार्थः किमकरोद्युधि ।

हे सञ्जय ! मुझे तो यही प्रतीत होता है, दुर्योधन पर घोर विपत्ति आने वाली है । अब यह बताओ, कि श्वेत के मारे जाने

और भीष्म के विजय से क्रुद्ध हुए श्रीकृष्ण सहित अर्जुन ने युद्ध में क्या किया ॥१३॥

अर्जुनाद्धि भयं भूयस्तन्मे तात न शाम्यति ॥१४॥
स हि शूरश्च कौन्तेयः क्षिप्रकारी धनञ्जयः।
मन्ये शरैः शरीराणि शत्रूणां प्रमथिष्यति ॥१५॥

हे तात! अर्जुन से मुझे बड़ा भय है, जो किसी प्रकार भी शान्त नहीं होता है। यह कुन्ती-पुत्र धनञ्जय, बड़ा शूरवीर और क्षिप्रकारी (फुर्तीला) है। मेरे मत (खयाल) में यह शत्रुओं के शरीरों को मथ कर फैंक देगा ॥१५॥

ऐन्द्रिमिन्द्रानुजसमं महेन्द्रसदृशं बले।
अमोघक्रोधसङ्कल्पं दृष्ट्वा वः किमभून्मनः ॥१६॥

इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र के तुल्य पराक्रमी, इन्द्र के सदृश बलवान् और क्रोध के विचार को सफल करने वाले अर्जुन को देख कर तुम्हारे मन की क्या दशा होती है ॥१६॥

तथैव वेदविच्छूरो ज्वलनार्कसमद्युतिः।
इन्द्रास्त्रविदमेयात्मा प्रपतन्समितिञ्जयः ॥१७॥
वज्रसंस्पर्शरूपाणामस्त्राणां च प्रयोजकः।

यह शूरवीर, वेद का ज्ञाता, अग्नि और सूर्य के सदृश तेजस्वी है। यह महाबली, इन्द्र के सारे अस्त्रों का जानने वाला है और जब आक्रमण करता है, तो युद्ध को जीत कर ही छोड़ता है। यह

वज्र के तुल्य आघात करने वाले अस्त्रों के प्रयोगों को भी जानता है ॥१७॥

सखड्गाक्षेपहस्तस्तु घोषं चक्रे महारथः ॥१८॥
स सञ्जय महाप्राज्ञो द्रुपदस्याऽऽत्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नः किमकरोच्छ्वेते युधि निपातिते ॥१६॥

हे सञ्जय ! जो महारथी तलवार चलाता हुआ बड़ी भारी गर्जना करता है, उस द्रुपद के पुत्र महाबली धृष्टद्युम्न ने श्वेत के युद्ध में गिर जाने पर क्या किया ॥१८-१६॥

पुरा चैवाऽपराधेन वधेन च चमूपतेः ।
मन्ये मनः प्रजज्वाल पाण्डवानां महात्मनाम् ॥२०॥

पूर्व के दुर्योधन के अपराध और सेनापति श्वेत के वध हो जाने पर महावीर पाण्डवों का मन क्रोध से जल उठा होगा ॥२०॥

तेषां क्रोधं चिन्तयंस्तु अहःसु च निशासु च ।
न शान्तिमधिगच्छामि दुर्योधनकृतेन हि ।
कथं चाऽभून्महायुद्धं सर्वमाचक्ष्व सञ्जय ॥२१॥

हे सञ्जय ! उनके क्रोध को विचार कर रात दिन मुझे शांति प्राप्त नहीं होती है। अब तुम दुर्योधन के खड़े किये हुए इस महायुद्ध का सारा वृत्तान्त सुनाते जाओ ॥२१॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा तवाऽपनयनो महान् ।
न च दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥२२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! तुम स्थिर होकर सुनो। इसमें तो तुम्हारा ही अपराध है, दुर्योधन पर इस दोष को रख देना उचित नहीं है ॥२२॥

गतोदके सेतुबन्धो यादृक्तादृङ्मतिस्तव।
सन्दीप्ते भवने यद्वत्कूपस्य खननं तथा ॥२३॥

तुम्हारा तो ढंग ही ऐसा निराला है, कि तुम पानी निकल जाने पर सेतु बाँधते हो और घर में आग लगने पर कूप खोदने बैठते हो ॥२३॥

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे।
तावकानां परेषां च पुनर्युद्धमवर्तत ॥२४॥

जब दिन के दोपहर व्यतीत हो रहे थे—तो उस भीषण दिन में तुम्हारी सेना और पाण्डवों की सेना का युद्ध चल पड़ा ॥२४॥

श्वेतं तु निहतं दृष्ट्वा विराटस्य चमूपतिम्।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥२५॥
शङ्खः क्रोधात्प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव।

जब विराट की सेना का सेनापति श्वेत मारा गया—तो उसको मरा हुआ और उसके समीप कृतवर्मा और शल्य को उपस्थित देखकर घृत से अग्नि की भांति शङ्ख क्रोध से जल उठा ॥२५॥

स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥२६॥
अभ्यधावज्जिघांसन्वै शल्यं मद्राधिपं युधि।
महता रथसंघेन समन्तात्परिरक्षितः ॥२७॥
सृजन्बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति।

इस महाबली ने इन्द्र के धनुष के सदृश धनुष को चढ़ाया और यह युद्ध में मद्राधिप शल्यके मारने की इच्छा से बड़े वेग से दौड़ा। इसकी बहुत से रथी चारों ओर से रक्षा कर रहे थे। यह बाण वर्षा करता हुआ शल्य के रथ के पास पहुंचा ॥२६-२७॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥२८॥
तावकाना रथाः सप्त समन्तात्पर्यवारयन् ।
मद्रराजं परीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥२९॥

मदोन्मत्त हाथी की भांति लपकते हुए इसे देखकर तुम्हारे सात महारथियों ने इसको बीच में ही घेर लिया। ये सब मृत्यु की दाढ़ में पहुंचे हुए मद्रराज शल्य की रक्षा करना चाह रहे थे।

बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः ।
तथा रुक्मरथो राजन्पुत्रः शल्यस्य मानितः ॥३०॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥३१॥

हे राजन्! कौसलाधिप, बृहद्बल, मगधराज जयत्सेन, शल्य का पुत्र रुक्मरथ, अवन्ति राजकुमार विन्द और अनुविन्द, काम्बोजपति सुदक्षिण एवं बृहत्क्षत्र का पुत्र सिन्धुराज-ये सात महारथी थे ॥३१॥

नानाधातुविचित्राणि कार्मुकाणि महात्मनाम् ।
विस्फारितान्यदृश्यन्त तोयदेष्विव विद्युतः ॥३२॥

इन महावीरों के अनेक धातुओं से बने हुए विचित्र धनुष इस भाँति चमक रहे थे, जैसे—बादलों में बिजली चमकती है।

ते तु बाणमयं वर्षं शङ्खमूर्ध्नि न्यपातयन्।
निदाघान्तेऽनिलोद्भूता मेघा इव नगे जलम् ॥३३॥

इन्होंने शङ्ख के मस्तक पर इस तरह बाणों की वर्षा करना आरम्भ किया, जैसे वर्षा ऋतु में पर्वत पर वायु से प्रेरित मेघ, जल की वर्षा करते हैं ॥३३॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः।
धनूंषि तेषामाच्छिद्य ननर्द पृतनापतिः ॥३४॥

महाधनुर्धर, सेनापति शङ्ख ने क्रुद्ध होकर अत्यन्त तीक्ष्ण सात बाणों से उनके धनुष काटकर फेंक दिए और आप स्वयं गर्जना करने लगा ॥३४॥

ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा।
तालमात्रं धनुर्गृह्य शङ्खमभ्यद्रवद्रणे ॥३५॥

महाबाहु भीष्म ने भी मेघ के सदृश गर्जना की और ताल-वृक्ष के तुल्य विशाल धनुष लेकर रण में शंख पर आक्रमण किया ॥३५॥

तमुद्यन्तमुदीक्ष्याऽथ महेष्वासं महाबलम्।
सन्त्रस्ता पाण्डवी सेना वातवेगहतेव नौः ॥३६॥

महाधनुर्धर, महाबली भीष्म को झपटता देखकर, वायु के वेग से डावांडोल नौकाकी भांति पाण्डवों की सेना डगमगाने लगी।

ततोऽर्जुनः सन्त्वरितः शङ्खस्याऽऽसीत्पुरःसरः ।
भीष्माद्रक्ष्योऽयमद्येति ततो युद्धमवर्तत ॥३७॥

सेनापति शङ्ख की भीष्म से रक्षा करनी चाहिए-यह विचार कर बड़ी शीघ्रता से अर्जुन, शंख और भीष्म के बीच में पहुंचा। इसके अनन्तर युद्ध होने लगा ॥३७॥

हाहाकारो महानासीद्योधानां युधि युध्यताम् ।
तेजस्तेजसि सम्पृक्तमित्येवं विस्मयं ययुः ॥३८॥

इस समय युद्ध में लड़ने वाले योद्धाओं में महा हाहाकार मच रहा था। सारे योद्धाओं को यही विस्मय था, कि एक तेज से दूसरे तेज की आज टक्कर हुई है ॥३८॥

अथ शल्यो गदापाणिरवतीर्य महारथात् ।
शङ्खस्य चतुरो वाहानहनद्भरतर्षभ ॥३९॥

हे भरतर्षभ ! इस समय शल्य भी गदा हाथ में लेकर अपने विशाल रथ से नीचे उतरा और उसने शंख के चारों अश्वों को उस गदा से मार गिराया ॥३९॥

स हताश्वाद्रथात्तूर्णं खड्गमादाय विद्रुतः ।
बीभत्सोश्च रथं प्राप्य पुनः शान्तिमविन्दत ॥४०॥

वह अश्व-विहीन रथ से कूद पड़ा और तलवार लेकर दौड़ा। जब इसको अर्जुन का रथ मिल गया तब इसे शान्ति मिली ॥४०॥

ततो भीष्मरथात्तूर्णमुत्पतन्ति पतत्रिणः ।
यैरन्तरिक्षं भूमिश्च सर्वतः समवस्तृता ॥४१॥

अब भीष्म के रथ से बड़ी शीघ्रता के साथ बाण छूटने लगे, जिनसे सारा आकाश और सब ओर से भूमि भर गई ॥४१॥

पञ्चालानथ मत्स्यांश्च केकयांश्च प्रभद्रकान् ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः पातयामास पत्रिभिः ॥४२॥

प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ भीष्म ने पञ्चाल, मत्स्य, केकय और प्रभद्रक वीरों को अपने बाणों से गिराना आरम्भ किया ।

उत्सृज्य समरे राजन्पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।
अभ्यद्रवत पाञ्चाल्यं द्रुपदं सेनया वृतम् ॥४३॥
प्रियं सम्बन्धिनं राजञ्शरानवकिरन्बहून् ।
अग्निनेव प्रदग्धानि वनानि शिशिरात्यये ॥४४॥

हे राजन् ! भीष्म, सव्यसाची अर्जुन को छोड़कर सेना से युक्त, पञ्चालराज द्रुपद की ओर बढ़ा । यह द्रुपद, भीष्म का बड़ा प्रिय सम्बन्धी (समधी) था । इसने यहां पर बहुत बाण फैंके, जिन्होंने सेना को दग्ध कर दिया जैसे-अग्नि ग्रीष्म ऋतु में वन को जला डालती है ॥४३-४४॥

शरदग्धान्यदृश्यन्त सैन्यानि द्रुपदस्य ह ।
अत्यातिष्ठद्रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥४५॥

राजा द्रुपद की सेना बाणों से दग्ध हुई दिखाई दे रही थी और भीष्म रण में धूम रहित अङ्गारे की तरह जल रहा था ॥४५॥

मध्यन्दिने यथाऽऽदित्यं तपन्तमिव तेजसा ।
न शेकुः पाण्डवेयस्य योधा भीष्मं निरीक्षितुम् ॥४६॥

मध्यान्ह में तेज से तपते हुए सूर्य को जैसे-कोई देख नहीं सकता है, इसी तरह पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के योद्धा भीष्म के देखने में समर्थ नहीं हो सके ॥४६॥

वीक्षाञ्चक्रुः समन्तात्ते पाण्डवा भयपीडिताः ।
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त गावः शीतार्दिता इव ॥४७॥

पाण्डवों के योद्धा भयभीत हुए इधर उधर दृष्टि डालते थे, परन्तु शीत से पीड़ित गौ की तरह किधर भी अपना रक्षक नहीं पाते थे ॥४७॥

सा तु यौधिष्ठिरी सेना गाङ्गेयशरपीडिता ।
सिंहेनेव विनिर्भिन्ना शुक्ला गौरिव गोपतेः ॥४८॥

गङ्गा-पुत्र भीष्म के बाण से पीड़ित, राजा युधिष्ठिर की सेना इस तरह भाग निकली, जैसे-सिंह को देखकर ग्वाले के पास से शुक्ल (पालतू) गाय भाग निकलती है ॥४८॥

हते विप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते ।
हाहाकारो महानासीत्पाण्डुसैन्येषु भारत ॥४९॥

हे भारत ! मार देने, भगा देने, मसल डालने से निरुत्साहित राजा युधिष्ठिर की सेना में महान् हाहाकार होने लगा ॥४९॥

ततो भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान्दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥५०॥

अब शान्तनु-पुत्र भीष्म ने अपने धनुष का मण्डल-सा बांध दिया। इसके धनुष से विष से भरे हुए सर्पाकार धारी प्रदीप्त बाण निकल रहे थे ॥५०॥

शरैरेकायनीकुर्वन्दिशः सर्वा यतव्रतः।
जघान पाण्डवरथानादिश्याऽऽदिश्य भारत ॥५१॥

हे भारत! इस व्रतशील भीष्म ने अपने बाणों से चारों दिशाओं को एक कर दिया। भीष्म पाण्डवों के रथियों को सचेत कर २ के मार रहे थे ॥५१॥

ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः।
प्राप्ते चाऽस्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किञ्चन ॥५२॥

कुछ सेनाएँ भाग निकली और कुछ मथ डाली गई। अब सूर्य छुप गया। इससे कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥५२॥

भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्था महाहवे।
अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि शंखयुद्धे प्रथमदिवसावहारे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

हे भरतर्षभ! पाण्डवों ने इस समय इस महायुद्ध में भीष्म को बढ़ता देखा। अब दिन छुप चुका था, इससे इन्होंने अपनी सेना को पीछे हटाया ॥५३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में शंख क युद्ध में प्रथम दिवस की सेना के अवहार (पीछे हटाने) का उनंचासवां अध्याय समाप्त हुआ।

पचासवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रथमे भरतर्षभ।
भीष्मे च युद्धसंरब्धे हृष्टे दुर्योधने तथा ॥१॥

धर्मराजस्ततस्तूर्णमभिगम्य जनार्दनम्।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सर्वैश्चैव जनेश्वरैः ॥२॥

शुचा परमया युक्तश्चिन्तयानः पराजयम्।
वार्ष्णेयमब्रवीद्राजन्दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ॥३॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरतर्षभ! प्रथम दिन के युद्ध में सेना के लौटा लेने पर युद्धोत्साह में भीष्म के भरे रहने तथा दुर्योधन की प्रसन्नता को देखकर धर्मराज युधिष्ठिर सारे अपने भ्राता और सारे राजाओं के साथ शीघ्रता से श्रीकृष्ण के पास पहुंचे। इनको इस समय बड़ी ही चिन्ता हो रही थी। ये वार २ अपनी पराजय का विचार करते थे। हे राजन्! धर्मराज भीष्म के पराक्रम को देखकर श्रीकृष्ण से कहने लगे ॥१-३॥

कृष्ण पश्य महेष्वासं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
शरैर्दहन्तं सैन्यं मे ग्रीष्मे कक्षमिवाऽनलम् ॥४॥

हे कृष्ण ! तुमने महाधनुर्धर, भीम-पराक्रमी भीष्म का पराक्रम देख लिया होगा, जो बाणों से मेरी सेना को इस तरह दग्ध कर रहा है, जैसे-ग्रीष्म ऋतु में तृण की ढेरी (बागर) को अग्नि जला डालता है ॥४॥

कथमेनं महात्मानं शक्ष्यामः प्रतिवीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्यं मे हविष्मन्तमिवाऽनलम् ॥५॥

हम तो इस महावीर की ओर देखने में भी कैसे समर्थ हो सकते हैं। यह तो मेरी सेना को हवि से प्रज्वलित अग्नि की तरह चाट रहा है ॥५॥

एतं हि पुरुषव्याघ्रं धनुष्मन्तं महाबलम् ।
दृष्ट्वा विप्रद्रुतं सैन्यं समरे मार्गणाहतम् ॥६॥

इस महाधनुर्धर, महा बलवान, पुरुष प्रवीर, भीष्म को देखकर बाण से आहत मेरी सेना शीघ्र भाग खड़ी होती है ॥६॥

शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च संयुगे ।
वरुणः पाशभृच्चापि कुबेरो वा गदाधरः ॥७॥

न तु भीष्मो महातेजाः शक्यो जेतुं महाबलः ।
सोऽहमेवङ्गते मग्नो भीष्मागाधजलेऽप्लवे ॥८॥

क्रुद्ध हुआ यमराज, वज्रपाणि इन्द्र, पाशधारी वरुण, गदाधारी कुबेर भी युद्ध में जीता जा सकता है , परन्तु महाबली, महा

तेजस्वी भीष्म को जीतना बड़ा ही अशक्य है। मैं आज इस दशा में भीष्म रूपी अगाध जल में विना नौका के डूबा जा रहा हूं।

आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य केशव।
वनं यास्यामि वार्ष्णेय श्रेयो मे तत्र जीवितुम् ॥९॥
न त्वेतान्पृथिवीपालान्दातुं भीष्माय मृत्यवे।
क्षपयिष्यति सेनां मे कृष्ण भीष्मो महास्त्रवित् ॥१०॥

हे केशव! मैं अपनी बुद्धि की न्यूनता के कारण भीष्म के सामने पड़ गया। हे वार्ष्णेय! मुझे तो वन में चला जाना चाहिए और वहीं मेरा जीवन विताना श्रेष्ठ है। भीष्म रूपी मृत्यु के मुखमें इन राजाओं का वृथा डाल देना उचित नहीं है। यह महान् अस्त्रों का ज्ञाता भीष्म, मेरी सेना का विनाश करके छोड़ेगा ॥९-१०॥

यथाऽनलं प्रज्वलितं पतङ्गाः समभिद्रुताः।
विनाशायोपगच्छन्ति तथा मे सैनिको जनः ॥११॥

जिस तरह जलती हुई आग में भाग २ कर पतङ्गे पड़ते हैं, इसी तरह मेरे सैनिक भीष्म के सन्मुख पहुंचकर नष्ट हो जायेंगे।

क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी।
भ्रातरश्चैव मे वीराः कर्शिताः शरपीडिताः ॥१२॥

हे वार्ष्णेय! मैं तो राज्य के लालच में यह सारा उद्योग कर रहा हूं, परन्तु मैं इसी उद्योग में नष्ट होकर रहूंगा। मेरे वीर भ्राता भी बाणों से पीड़ित होकर बड़े क्षीण हो रहे हैं ॥१२॥

मत्कृते भ्रातृहार्देन राज्याद्भ्रष्टास्तथा सुखात् ।
जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ॥१३॥

मेरे निमित्त भ्रातृ-स्नेह से प्रेरित हुए, मेरे भ्राता, राज्य और सुख से भ्रष्ट हो रहे हैं। अब तो जीवन बचा लेना ही बहुत बड़ी बात है। इस समय तो जीवन ही दुर्लभ हो गया है ॥१३॥

जीवितस्य च शेषेण तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ।
न घातयिष्यामि रणे मित्राणीमानि केशव ॥१४॥

हे केशव ! अब तो मैं शेष जीवन में दुश्चर तप करूंगा। इन मित्र राजाओं को इस रण में वृथा नष्ट कराना ठीक नहीं है ॥१४॥

रथान्मे बहुसाहस्रान्दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ।
घातयत्यनिशं भीष्मः प्रवराणां प्रहारिणाम् ॥१५॥

महाबली भीष्म, मेरे कई सहस्रों रथियों को दिव्य अस्त्रों से लगातार मारता रहता है, जो प्रहार करने में बड़े ही कुशल होते हैं।

किं नु कृत्वा हितं मे स्याद् ब्रूहि माधव मा चिरम् ।
मध्यस्थमिव पश्यामि समरे सव्यसाचिनम् ॥१६॥

हे माधव ! अब क्या करने से मेरा हित होगा-मुझे यह शीघ्र बताओ-देर न करो। इस युद्ध में सव्यसाची अर्जुन तो मध्यस्थ सा दिखाई देता है अर्थात् आप युद्ध की कहो-तो युद्ध कर देगा और युद्ध बन्द कर दोगे-तो यह भी युद्ध नहीं करने को तय्यार है।

एको भीमः परं शक्त्या युध्यत्येव महाभुजः ।
केवलं बाहुवीर्येण क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥१७॥

महा-भुजधारी, अकेला भीम अपनी पूर्ण शक्ति से लड़ रहा है, इसे अपनी बाहुबल का भरोसा है और यह क्षत्रिय धर्म का पालन करना चाहता है ॥१७॥

गदया वीरघातिन्या यथोत्साहं महामनाः।
करोत्यसुकरं कर्म रथाश्वनरदन्तिषु ॥१८॥

यही महा शक्तिशाली भीम अपनी वीरघातिनी गदा से रथ, अश्व, मनुष्य और हाथियों में अपने उत्साह के अनुसार दुष्कर कर्म करके दिखा रहा है ॥१८॥

नाऽलमेष क्षयं कर्तुं परसैन्यस्य मारिष।
आर्जवेनैव युद्धेन वीरो वर्षशतैरपि ॥१९॥

हे कृष्ण! परन्तु यह अकेला ही वीर, शत्रु सेना के नाश करने में दिव्यास्त्र प्रयोग के बिना सरल युद्ध द्वारा सैकड़ों वर्षों में भी जीतने में समर्थ नहीं है ॥१९॥

एकोऽस्त्रवित्सखा तेऽयं सोऽप्यस्मानभ्युपेक्षते।
निर्दह्यमानान्भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥२०॥

यह तुम्हारा सखा अर्जुन ही हम लोगों में दिव्य अस्त्रों का प्रयोग जानता है, परन्तु आजकल यह हमारी उपेक्षा (लापरवाही) कर रहा है और हम लोग, महावीर भीष्म और द्रोण द्वारा जलाये जा रहे हैं ॥२०॥

दिव्यान्यस्त्राणि भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः।
धक्ष्यन्ति क्षत्रियान्सर्वान्प्रयुक्तानि पुनः पुनः ॥२१॥

महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य के दिव्य अस्त्रों का वार २ किया हुआ प्रयोग, हमारी ओर के समस्त क्षत्रियों को भस्म करके छोड़ेगा ॥२१॥

कृष्ण भीष्मः सुसंरब्धः सहितः सर्वपार्थिवैः ।

क्षपयिष्यति नो नूनं यादृशोऽस्य पराक्रमः ॥२२॥

हे कृष्ण ! भीष्म सारे राजाओं के साथ कोप में भर गया है । इसका जैसा पराक्रम है, इससे तो यह शीघ्र ही हम लोगों का नाश कर डालेगा ॥२२॥

स त्वं पश्य महाभाग योगेश्वर महारथम् ।

भीष्मं यः शमयेत्संख्ये दावाग्निं जलदो तथा ॥२३॥

हे महाभाग ! योगेश्वर ! अब तुम मेरी सेना में कोई ऐसा महारथी दिखाओ, जो युद्ध में भीष्म को इस तरह नष्ट कर दे जैसे—बादल दावाग्नि को शान्त कर देते हैं ॥२३॥

तव प्रसादाद्गोविन्द पाण्डवा निहतद्विषः ।

स्वराज्यमनुसम्प्राप्ता मोदिष्यन्ते सबान्धवाः ॥२४॥

हे गोविन्द ! यदि आपका अनुग्रह रहा, तो पाण्डव अपने शत्रुओं को अवश्य मार लेंगे और अपने राज्य को पाकर बन्धुओं के साथ आनन्द मनावेंगे ॥२४॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थो ध्यायन्नास्ते महामनाः ।

चिरमन्तर्मना भूत्वा शोकोपहतचेतनः ।

शोकार्त तमथो ज्ञात्वा दुःखोपहतचेतसम् ॥२५॥
अब्रवीत्तत्र गोविन्दो हर्षयन्सर्वपाण्डवान् ।

महामनस्वी धर्मराज इतना कह कर ध्यान मग्न सा हो गया। वह भीतर ही भीतर चिन्तातुर हो रहा था और शोक से इसकी चेतना (होशहवाश) उड़ चुकी थी। इसको शोकार्त और दुःख से व्याकुल चित्त देखकर सब पाण्डवों को हर्षित करते हुए श्रीकृष्ण बोले ॥२५॥

मा शुचो भरतश्रेष्ठ न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२६॥
यस्य ते भ्रातरः शूराः सर्वलोकेषु धन्विनः ।

हे भरतश्रेष्ठ! तुम चिन्ता न करो। तुम्हारे चिन्ता करने का कोई स्थान नहीं है। तुम जानते हो, कि तुम्हारे चारों भाई शूरवीर हैं और सब लोकों में सर्वश्रेष्ठ धनुषधारी सिद्ध हो चुके हैं।

अहं च प्रियकृद्राजन्सात्यकिश्च महायशाः॥२७॥
विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
तथैव सबलाश्चेमे राजानो राजसत्तम ॥२८॥
त्वत्प्रसादं प्रतीक्षन्ते त्वद्भक्ताश्च विशाम्पते।

हे राजन्! मैं तुम्हारे हितकारी कार्यों के करने में तत्पर रहता हूं। ऐसा ही महायशस्वी सात्यकि है। हे राजसत्तम! विराट और द्रुपद तथा पर्वतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न आदि वीर बड़े बलवान् हैं। हे विशाम्पते! ये तो तुम्हारे भक्त हैं, इससे तुम्हारा अनुग्रह चाहते हैं ॥२७-२८॥

एष ते पार्षतो नित्यं हितकामः प्रिये रतः ॥२९॥
सैनापत्यमनुप्राप्तो धृष्टद्युम्नो महाबलः ।
शिखण्डी च महाबाहो भीष्मस्य निधनं किल ॥३०॥

यह पर्वतराजकुमार महाबली धृष्टद्युम्न सब तरह से तुम्हारे हित की कामना करता है, जो तुम्हारा सेनापति है। हे महाबाहो! शिखण्डी ही इतना बलवान् है, कि यही भीष्म का वध कर देगा।

एतच्छ्रुत्वा ततो धर्मो धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
अब्रवीत्समितौ तस्यां वासुदेवस्य शृण्वतः ॥३१॥

हे राजन्! धर्मराज इतना सुनकर इस सभा में वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के सुनते २ महारथी धृष्टद्युम्न से कहने लगे ॥३१॥

धृष्टद्युम्न निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि मारिष ।
नाऽतिक्रम्यं भवेत्तच्च वचनं मम भाषितम् ॥३२॥

हे धृष्टद्युम्न! जो मैं तुमसे कह रहा हूं, उसको तुम समझ लो, तुम्हें मेरा वचन उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥३२॥

भवान्सेनापतिर्मह्यं वासुदेवेन सम्मितः ।
कार्तिकेयो यथा नित्यं देवानामभवत्पुरा ॥३३॥
तथा त्वमपि पाण्डूनां सेनानीः पुरुषर्षभ ।
स त्वं पुरुषशार्दूल विक्रम्य जहि कौरवान् ॥३४॥

वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण की सम्मति से तुम हमारे सेनापति हो, जैसे पूर्वकाल में देवों के कार्तिकेय सेनापति थे। हे पुरुषर्षभ! तुम

पाण्डवों के तुम भी इतने ही बलवान् सेनापति हो। हे पुरुषशार्दूल! अब तुम अपना पराक्रम दिखाओ और कौरवों का नाश करो ३३-३४

अहं च तेऽनुयास्यामि भीमः कृष्णश्च मारिष।
माद्रीपुत्रौ च सहितौ द्रौपदेयाश्च दंशिताः ॥३५॥
ये चाऽन्ये पृथिवीपालाः प्रधानाः पुरुषर्षभ।

हे पुरुषर्षभ! मैं भीम, श्रीकृष्ण, माद्री-पुत्र नकुल सहदेव और द्रौपदी-पुत्र तथा जितने भी अन्य प्रधान राजा हैं, वे सब तुम्हारी सहायता को तय्यार हैं। हम सब तुम्हारे पीछे २ चलेंगे।३५

तत उद्धर्षयन्सर्वान्धृष्टद्युम्नोऽभ्यभाषत ॥३६॥
अहं द्रोणान्तकः पार्थ विहितः शम्भुना पुरा।

अब सबको प्रहर्षित करते हुए धृष्टद्युम्न बोले—हे पार्थ! मुझे तो द्रोणका नाशक, भगवान् शंकरने प्रथमसे ही बना रखा है

रणे भीष्मं कृपं द्रोणं तथा शल्यं जयद्रथम् ॥३७॥
सर्वानद्य रणे दृप्तान्प्रतियोत्स्यामि पार्थिव।

हे राजन्! रण में भीष्म, कृप, द्रोण, शल्य, जयद्रथ आदि सारे गर्वीले वीरों के साथ आज मेरा युद्ध होगा ॥३७॥

अथोत्कृष्टं महेष्वासैः पाण्डवैर्युद्धदुर्मदैः ॥३८॥
समुद्यते पार्थिवेन्द्रे पार्षते शत्रुसूदने।

इस पर्षतवंशोत्पन्न, शत्रुसूदन राजाओं में श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न के इस तरह तय्यार हो जाने पर महाधनुर्धर, युद्ध में दुर्मद, पाण्डवों नेबड़ा उत्कर्ष प्राप्त किया॥३८॥

तमब्रवीत्ततः पार्थः पार्षतं पृतनापतिम् ॥३९॥

व्यूहः क्रौञ्चारुणो नाम सर्वशत्रुनिबर्हणः ।

अब कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने पर्षतवंशोद्भव, सेनापति धृष्टद्युम्न से कहा—हे सेनापति ! क्रौञ्चारुण नामक व्यूह सारे शत्रुओं का नाशक है ॥३९॥

यं बृहस्पतिरिन्द्राय तदा देवासुरेऽब्रवीत् ॥४०॥

तं यथावत्प्रतिव्यूहं परानीकविनाशनम् ।

अदृष्टपूर्वं राजानः पश्यन्तु कुरुभिः सह ॥४१॥

बृहस्पति ने देवासुर संग्राम में इस व्यूह को इन्द्र के लिए बताया था। शत्रु की सेना के नाशक, इस व्यूह रचना को मैं ज्यों का त्यों करके दिखाऊंगा-जिसको आज तक अन्य राजाओं ने कभी नहीं देखा होगा। आज कौरवों के साथ ये सारे राजा इस व्यूह रचना को देख लेंगे ॥४०-४१॥

यथोक्तः स नृदेवेन विष्णुर्वज्रभृता यथा ।

प्रभाते सर्वसैन्यानामग्रे चक्रे धनञ्जयम् ॥४२॥

आदित्यपथगः केतुस्तस्याऽद्भुतमनोरमः ।

शासनात्पुरुहूतस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ॥४३॥

इन्द्र ने जैसे विष्णु से कहा—वैसे ही राजा युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न से कहा। प्रातःकाल होते ही सब सेना के अग्रभाग में धनञ्जय अर्जुन को किया गया। इस अर्जुनकी ध्वजा सूर्य के मार्ग

आकाश में बड़ी अद्भुत और सुन्दर प्रतीत होती थी। इस ध्वजा को विश्वकर्मा ने इन्द्र की आज्ञानुसार बनाया था ॥४३॥

इन्द्रायुधसवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतः।
आकाशग इवाऽऽकाशे गन्धर्वनगरोपमः ॥४४॥
नृत्यमान इवाऽऽभाति रथचर्यासु मारिष।

यह महान् ध्वजा (झंडा) इन्द्र धनुष के आकार की विचित्र २ छोटी २ पताकाओं से अलंकृत थी। यह आकाश में गन्धर्व नगरके तुल्य उड़ रही थी। हे राजन्! ज्यों २ रथ चलता था, त्यों २ वह ध्वजा नाचती सी प्रतीत होती थी ॥४४॥

तेन रत्नवता पार्थः स च गाण्डीवधन्वना ॥४५॥
बभूव परमोपेतः सुमेरुरिव भानुना।

रत्नों से जटित उस ध्वजा से अर्जुन और गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन से वह ध्वजा इस तरह सुशोभित थी, जैसे सूर्य से मेरु और मेरु से सूर्य सुशोभित होता है ॥४५॥

शिरोऽभूद् द्रुपदो राजा महत्या सेनया वृतः ॥४६॥
कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्भ्यां तौ जनेश्वरौ।

बड़ी भारी सेना से युक्त राजा द्रुपद उस क्रौंचारुण व्यूह के मस्तक बनाए गए। कुन्तिभोज और चेदिपति (धृष्टकेतु) दोनों राजा उसकी आंख हुए ॥४६॥

दाशार्णकाः प्रभद्राश्च दाशेरकगणैः सह ॥४७॥
अनूपकाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ।

हे भरतर्षभ ! दाशेरकों के साथ दाशार्णक और प्रभद्रक, अनूपक और किरात उसकी ग्रीवा मानी गई ॥४७॥

पटच्चरैश्च पौण्ड्रैश्च राजन्पौरवकैस्तथा ॥४८॥
निषादैः सहितश्चाऽपि पृष्ठमासीद्युधिष्ठिरः ।
पक्षौ तु भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥४६॥

हे राजन् ! पटच्चर, पौण्ड्र, पौरव और निषादों के साथ राजा युधिष्ठिर उसके पृष्ठ भाग में थे । पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न और भीमसेन उसके पंख बने ॥४८-४६॥

द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः ।
पिशाचा दारदाश्चैव पुण्ड्राः कुण्डीविषैः सह ॥५०॥
मारुता धेनुकाश्चैव तङ्गणाः परतङ्गणाः ।
वाल्हिकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पाण्ड्याश्च भारत ॥५१॥
एते जनपदा राजन्दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ।

हे भारत ! द्रौपदी-पुत्र तथा अभिमन्यु, महारथी सात्यकि, पिशाच, दरद, कुण्डीविषों के साथ पुण्ड्र, मारुत, धेनुक, तङ्गण, परतङ्गण, वाल्हिक, तित्तिर, चोल, पाण्ड्य, आदि राजा उसकी दक्षिण पंख की ओर थे ॥५०-५१॥

अग्निवेशास्तुहुण्डाश्च मालवा दानभारयः ॥५२॥
शबरा उद्भसाश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः ।
नकुलः सहदेवश्च वामं पक्षं समाश्रिताः ॥५३॥

अग्निवेश, तुहुण्ड, मालव, दानभारी, शबर, उद्भस, नाकुल, वत्स आदि वीर और नकुल सहदेव उसकी बाँयी पंख की ओर थे ॥५२-५३॥

रथानामयुतं पक्षौ शिरस्तु नियुतं तथा।
पृष्ठमर्बुदमेवाऽऽसीत्सहस्राणि च विंशतिः ॥५४॥
ग्रीवायां नियुतं चाऽपि सहस्राणि च सप्ततिः।

इसके पक्ष स्थान में दश हजार रथी वीर रखे गए। शिर के भाग में एक लाख, पृष्ठ भाग में एक अरब बीस हजार, ग्रीवा में एक लाख सत्तर हजार वीर थे ॥५४॥

पक्षकोटिप्रपक्षेषु पक्षान्तेषु च वारणाः ॥५५॥
जग्मुः परिवृता राजंश्चलन्त इव पर्वताः।

हे राजन्! पक्ष के किनारों के पक्षों और पक्ष के अन्त पर हाथी लगाये गए, ये घेरे में इस तरह चल रहे थे जैसे पर्वत चक्कर लगा रहे हों ॥५५॥

जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः ॥५६॥
काशिराजश्च शैब्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः।

केकयों के साथ विराट, काशिराज तथा शैब्य तीस हजार रथी वीरों के साथ इसके जघन देश (पृष्ठ के समीप) की रक्षा कर रहे थे ॥५६॥

एवमेनं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ॥५७॥
सूर्योदयं त इच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः ।

हे भारत ! इस तरह पाण्डवों ने इस महा व्यूह की रचना की । अब सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे और युद्ध के लिए सजे खड़े थे ॥५७॥

तेषामादित्यवर्णानि विमलानि महान्ति च ॥
श्वेतच्छत्राण्यशोभन्त वारणेषु रथेषु च ॥५८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि क्रौंचव्यूहनिर्माणे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

इन वीरों और हाथियों के मस्तक पर बड़े २ चमकीले स्वच्छ सूर्य के समान श्वेत छत्र सुशोभित हो रहे थे ॥५८॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में क्रौंच व्यूह निर्माण का पचासवां अध्याय समाप्त हुआ ।



इक्यावनवाँ अध्याय

सञ्जय उवाच—

क्रौञ्चं दृष्ट्वा ततो व्यूहमभेद्यं तनयस्तव।
रक्ष्यमाणं महाघोरं पार्थेनाऽमिततेजसा ॥१॥

आचार्यमुपसङ्गम्य कृपं शल्यं च पार्थिव।
सौमदत्तिं विकर्णं च सोऽश्वत्थामानमेव च ॥२॥

दुःशासनादीन्भ्रातॄंश्च सर्वानेव च भारत।
अन्यांश्च सुबहूञ्शूरान्युद्धाय समुपागतान् ॥३॥

प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, अत्यन्त तेजस्वी अर्जुन से सुरक्षित, महाघोर, अभेद्य, क्रौञ्च नामक व्यूहको देख कर द्रोणाचार्य, कृप, शल्य, सोमदत्ति, विकर्ण, अश्वत्थामा, दुःशासन आदि सारे भाई तथा अन्य युद्ध के लिए आए हुए शूरवीर राजाओं के पास जाकर उनको हर्षित करता हुआ यह वचन बोला। ॥१-३॥

नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥४॥

एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः।
पाण्डुपुत्रान्रणे हन्तुं ससैन्यान्किमु संहताः ॥५॥

हे सज्जनो! तुम नाना प्रकार के शस्त्रों के धारण करने वाले, सारे ही रण कुशल हो। तुम प्रत्येक महारथी अकेले ही पाण्डवों

को सेना सहित मार देने की शक्ति रखते हो, इस पर तो तुम सारे इकट्ठे हो रहे हो। अब तो उनके मार लेने में सन्देह ही क्या है ॥४-५॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तमिदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥६॥

भीष्म से सुरक्षित हमारी सेना बहुत अधिक है और भीम से सुरक्षित पाण्डवों की सेना हमारी सेना से थोड़ी है ॥६॥

संस्थानाः शूरसेनाश्च वेत्रिकाः कुकुरास्तथा ।
आरोचकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा ॥७॥

शत्रुञ्जयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च ।
विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः ॥८॥

चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पारिभद्रकैः ।
भीष्ममेवाऽभिरक्षन्तु सहसैन्यपुरस्कृताः ॥९॥

वीर शत्रुञ्जय तथा दुःशासन, शूरवीर विकर्ण तथा नन्द और उपनन्दक, चित्रसेन और पारिभद्रकों के साथ २ संस्थान, शूरसेन, वेत्रिक, कुकुर, अरोचक, त्रिगर्त, मद्रक और यवन सब अपनी २ सेना को साथ लेकर भीष्म की रक्षा करते रहो ॥७-९॥

ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष ।
अव्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधकम् ॥१०॥

हे राजन् ! अब भीष्म, द्रोण और तुम्हारे पुत्रों ने भी पाण्डवों के व्यूह का बाधक महाव्यूह बनाया ॥१०॥

भीष्मः सैन्येन महता समन्तात्परिवारितः ।
ययौ प्रकर्षन्महतीं वाहिनीं सुरराडिव ॥११॥
तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ।

भीष्म एक बड़ी भारी सेना की टुकडी से घिरा हुआ था । यह भी इन्द्र के तुल्य अपनी विशाल सेना को लेकर आगे बढा । हे विशाम्पते ! इसके पीछे २ भरद्वाज वंशोत्पन्न प्रतापी महा धनुर्धर द्रोणाचार्य चले ॥११॥

कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशाम्पते ॥१२॥
विदर्भैर्मेकलैश्चैव कर्णप्रावरणैरपि ।
सहिताः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम् ॥१३॥

कुन्तल, दशार्ण, मागध, विदर्भ, मेकल और कर्ण प्रावरण क्षत्रिय वीर, अपनी २ सेना लेकर युद्ध में शोभा पाने वाले भीष्म की रक्षा में चल रहे थे ॥१२-१३॥

गान्धाराः सिन्धुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः ।
शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत् ॥१४॥

गान्धार, सिन्ध, सौवीर, (गुजरात) शिबि, वसाति और शकुनि अपनी २ सेना के साथ द्रोण की रक्षा में थे ॥१४॥

ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः ।
अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा चाऽम्बष्ठकोसलैः ॥१५॥
दरदैश्च शकैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ।
अभ्यरक्षत संहृष्टः सौबलेयस्य वाहिनीम् ॥१६॥

राजा दुर्योधन भी अपने सारे भाई तथा अश्वातक, विकर्ण, अम्बष्ठ, कोसल, दरद, शक, क्षुद्रक, मालव आदि वीरों के साथ सुबल-पुत्र शकुनि की बड़ी प्रसन्नता से रक्षा कर रहे थे ।१५-१६।

भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वामं पार्श्वमपालयन् ॥१७॥

हे राजन् ! भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त, अवन्ति देशोत्पन्न विन्द और अनुविन्द इस महाव्यूह के वाम पार्श्व की रक्षा कर रहे थे ॥१७॥

सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च दक्षिणं पक्षमास्थिताः ॥१८॥

सौमदत्ति, सुशर्मा, कम्बोजाधिपति सुदक्षिण, श्रुतायु, अच्युतायु, इस व्यूह के दक्षिण पार्श्व पर स्थित थे ॥१८॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थिताः ॥१०॥

अश्वत्थामा, कृप, यदुवंशश्रेष्ठ कृतवर्मा बड़ी सेना के साथ सेना के पृष्ठ भाग में लगे हुए थे ॥१६॥

पृष्ठगोपास्तु तस्याऽऽसन्नानादेश्या जनेश्वराः ।
केतुमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ॥२०॥

इस व्यूह के पृष्ठ भाग की रक्षा में अन्य भी अनेक देश के राजा थे, जिनमें केतुमान्, वसुदान, काशिराज के पुत्र अभिभू प्रधान थे ॥२०॥

ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत।

दध्मुः शङ्खान्मुदा युक्ताः सिंहनादांस्तथोन्नदन् ॥२१॥

हे भारत ! अब तुम्हारी सेना के सारे योद्धा, युद्ध के लिए बड़ी प्रसन्नता से शंख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥२१॥

तेषां श्रुत्वा तु हृष्टानां वृद्धः कुरुपितामहः।

सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥२२॥

कुरुवृद्ध प्रतापवान् भीष्मपितामह, इन हर्ष में भरे हुए अपने वीरों की गर्जना को सुन कर आप भी सिंहनाद करके बड़े उच्च स्वर से अपना शङ्ख बजाने लगे ॥२२॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पेश्यश्च विविधाः परैः।

आनकाश्चाऽभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥२३॥

इसके अनन्तर अन्य वीरों ने भी शङ्ख, भेरी, पेशी और आनक आदि अनेक बाजे बजाए, जिनका महान् शब्द होने लगा।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।

प्रदध्मतुः शङ्खवरौ हेमरत्नपरिष्कृतौ ॥२४॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।

पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥२५॥

इसके अनन्तर श्वेत अश्वों से सुशोभित विशाल रथ में स्थित, हृषीकेश श्रीकृष्ण और धनञ्जय अर्जुन ने भी सुवर्ण और रत्नों से जटित अपने २ पाञ्चजन्य और देवदत्त नामक शङ्ख

बजाए। भीमकर्म करने वाले वृकोदर भीम ने भी अपना विशाल पौण्ड्र नामक शंख बजाया ॥२४-२५॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥२६॥

कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय, नकुल ने सुघोष और सहदेव ने मणिपुष्पक नामक अपने २ शंख बजाये ॥२६॥

काशिराजश्च शैब्यश्च शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥२७॥
पाञ्चाल्याश्च महेष्वासा द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान्सिंहनादांश्च नेदिरे ॥२८॥

काशिराज, शैब्य, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, महारथी सात्यकि, महाधनुर्धर पाञ्चाल, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने अपने २ बड़े २ शंख बजाए और सिंह गर्जना की ॥२७-२८॥

स घोषः सुमहांस्तत्र वीरैस्तैः समुदीरितः।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत् ॥२९॥

इन वीरों का उठाया हुआ महान् कोलाहल विस्तृत होकर आकाश और पृथिवी में छा गया ॥२९॥

एवमेते महाराज प्रहृष्टाः कुरुपाण्डवाः।
पुनर्युद्धाय सञ्जग्मुस्तापयानाः परस्परम् ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीमवधपर्वणि कौरवव्यूहरचनायां
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

हे महाराज! इस प्रकार कौरव और पाण्डव बड़ी प्रसन्नता में भरे हुए परस्पर एक दूसरे को भयभीत करने की चेष्टा करते हुए फिर युद्ध को सुसज्जित होकर खड़े हो गए ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में कौरव के व्यूह रचना का इक्यावनवां अध्याय समाप्त हुआ

———***———

बावनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च।
कथं प्रहरतां श्रेष्ठाः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! जब इस प्रकार मेरे पुत्र और पाण्डवों ने व्यूह रचना कर ली, तो फिर प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ वीरों ने किस भांति प्रहार करना आरम्भ किया ॥१॥

सञ्जय उवाच—

समं व्यूढेष्वनीकेषु सन्नद्धरुचिरध्वजम्।
अपारमिव सन्दृश्य सागरप्रतिमं बलम् ॥२॥

तेषां मध्ये स्थितो राजन्पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वान्युद्ध्यध्वमिति दंशिताः ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन! जब इस प्रकार सेना का व्यूह बना लिया गया, तो सीधी कतार में खड़ी, सुन्दर ध्वजा उड़ाती और समुद्र के समान उमलती हुई, अपनी सेनाको देखकर उनके मध्य में स्थित हुआ राजा दुर्योधन, अपने सारे वीरों से कहने लगा। हे वीरो! अब तुम बड़ी सावधानी और तय्यारीके साथ युद्ध करना ॥२-३॥

ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः ॥४॥

इन वीरों ने भी अपने मन को क्रूर बना लिया और अपने जीवन की आशा छोड़कर अपनी २ ध्वजा उठाए हुए पाण्डवों पर टूट पड़े ॥४॥

ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ।
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥५॥

अब तुम्हारी सेना और पाण्डवों की सेना में महाघोर, लोमहर्षक युद्ध होने लगा। जिसमें रथी से रथी और गजपति से गजपति भिड़ गया ॥५॥

मुक्तास्तु रथिभिर्बाणा रुक्मपुङ्खाः सुतेजसः ।
सन्निपेतुरकुण्ठाग्रा नागेषु च हयेषु च ॥६॥

इन रथियों ने सुवर्ण से जटित मूलवाले बड़े तेजस्वी बाणों को छोड़ा। ये तीखी नोक वाले बाण भी हाथी और घोड़ों के आर पार कर लगने लगे ॥६॥

तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः।
अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः ॥७॥

जब इस प्रकार संग्राम का आरम्भ हो चुका, तो भीषण पराक्रम दिखाने वाले, महाबाहु भीष्म भी धनुष उठाकर और उछलकर बड़ी तय्यारी से आगे बढ़े ॥७॥

सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे।
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥८॥
एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाऽभिभूः।
ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः ॥९॥

सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, भीमसेन, महारथी सात्यकि, कैकय, विराट, पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न आदि महावीर पुरुष तथा अन्य चेदि और मत्स्यदेशज वीरों के मध्य में पहुंचकर सबको पराजित करने में समर्थ, कुरुवृद्ध, भीष्म पितामह बड़े वेग से बाणों की वर्षा करने लगे ॥८-९॥

अभिद्यत ततो व्यूहस्तस्मिन्वीरसमागमे।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥१०॥

इस वीर श्रेष्ठ भीष्म के युद्ध करने पर पाण्डवों का व्यूह छिन्न-भिन्न हो गया और सारी सेना में एक बार हलचल सी मच गई ॥१०॥

सादिनो ध्वजिनश्चैव हतप्रवरवाजिनः ।

विप्रद्रुतरथानीकाः समपद्यन्त पाण्डवाः ॥११॥

अश्वारोही, ध्वजाधारी, सैनिकों के उत्तम २ अश्व नष्ट हो चुके। रथियों की सेना में भी भगदड़ पड़ गई। पाण्डवों की सेना की इस समय यही निर्बल स्थिति (नाजुक हालत) हो गई थी।

अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथम् ।

वार्ष्णेयमब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः ॥१२॥

पुरुष प्रवीर, अर्जुन ने महारथी भीष्म को जब इस तरह आवेश में देखा-तो क्रुद्ध होकर वृष्णिवंशोत्पन्न श्रीकृष्ण से कहा-कि तुम मेरे रथ को वहाँ ले-चलो-जहां पर भीष्म पितामह युद्ध कर रहे हैं ॥१२॥

एष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम् ।

नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधनहिते रतः ॥१३॥

हे वार्ष्णेय! यह भीष्म बड़ा क्रुद्ध हो रहा है, जो हमारी सेना को राजा दुर्योधन के हित करने के लिए नष्ट भ्रष्ट कर देगा-यह स्पष्ट बात है ॥१३॥

एष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्दन ।

धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः ॥१४॥

पञ्चालान्निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्वना ।

सोऽहं भीष्मं वधिष्यामि सैन्यहेतोर्जनार्दन ॥१५॥

हे जनार्दन! यह द्रोण, कृप, शल्य विकर्ण तथा सारे इकट्ठे ही दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र, दृढ़ धनुष से सुरक्षित हुए भी पञ्चालों को मार लेंगे। हे कृष्ण! अपनी सेना के बचाने के लिए तो मुझे अब भीष्म का वध ही करना पड़ेगा ॥१५॥

तमब्रवीद्वासुदेवो यत्तो भव धनञ्जय।
एष त्वां प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति ॥१६॥

अब वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, अर्जुन से बोले—हे धनञ्जय! तुम सावधान हो जाओ—मैं तुमको अभी भीष्म पितामह के रथ के समीप पहुंचा देता हूं ॥१६॥

एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम्।
प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति जनेश्वर ॥१७॥

हे जनेश्वर! इतना कहकर श्रीकृष्ण ने लोक प्रसिद्ध अर्जुन के रथ को भीष्म के रथ के पास पहुंचा दिया ॥१७॥

चलद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना।
समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ॥१८॥
महता मेघनादेन रथेनाऽमिततेजसा।
विनिघ्नन्कौरवानीकं शूरसेनांश्च पाण्डवः ॥१९॥
आयाच्छरणदः शीघ्रं सुहृदां हर्षवर्धनः।

अर्जुन के रथ में बहुत सी पताकाएँ फड़फड़ा रही थीं। बलाका (बुगली) के तुल्य श्वेत वर्ण वाले अश्व उसमें जुते हुए थे। इस भयङ्कर शब्द करने वाले वानरराज से युक्त बहुत ऊंची ध्वजा

वाले तथा मेघ के समान गर्जना करने वाले, अत्यन्त तेजस्वी रथ से कौरवों की सेना में घुस कर शूरसेन वंशज क्षत्रिय और कौरवों की सेना का नाश करते हुए, सुहृदों को आनन्द देने वाले, सब की रक्षा करने में समर्थ, अर्जुन, वहां बड़ी शीघ्रता से पहुँचे ॥१६॥

तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ॥२०॥
त्रासयन्तं रणे शूरान्मर्दयन्तं च सायकैः ।
सैन्धवप्रमुखैर्गुप्तः प्राच्यसौवीरकेकयैः ॥२१॥
सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।

मदस्रावी गज-राज की भांति वेग से झपटते हुए, रण में अपने बाणों से शूरवीरों का मर्दन करते हुए, अर्जुन को आता हुआ देखकर प्राच्य, सौवीर (गुजरात) केकय, सिन्ध आदि देशों के प्रधान २ वीरों से सुरक्षित, शान्तनु-पुत्र भीष्म, सहसा अर्जुन के पास आ पहुंचे ॥२०-२१॥

को हि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात् ॥२२॥
द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा रथी संयातुमर्हति ।

कुलवृद्ध भीष्म पितामह, द्रोण और कर्ण को छोड़ कर किस रथी की शक्ति थी, जो अर्जुन के सन्मुख आ सके ॥२२॥

ततो भीष्मो महाराज सर्वलोकमहारथः ॥२३॥
अर्जुनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समाचिनोत् ।
द्रोणश्च पञ्चविंशत्या कृपः पञ्चाशता शरैः ॥२४॥

दुर्योधनश्चतुःषष्ट्या शल्यश्च नवभिः शरैः ।
सैन्धवो नवभिश्चैव शकुनिश्चाऽपि पञ्चभिः ।।२५।।
विकर्णो दशभिर्भल्लै राजन्विव्याध पाण्डवम् ।

हे महाराज ! संसार के सारे वीरों में एक ही अद्वितीय महारथी भीष्म ने अर्जुन पर सतहत्तर बाण छोड़े। द्रोण ने पच्चीस, कृपाचार्य ने पचास, दुर्योधन ने चौसठ, शल्य ने नौ, सिन्धुराज जयद्रथ ने भी नौ और शकुनि ने पांच, विकर्ण ने दश बाणों से पाण्डु-पुत्र अर्जुन को छेद डाला ।।२३-२५।।

स तैर्विद्धो महेष्वासः समन्तान्निशितैः शरैः ।।२६।।
न विव्यथे महाबाहुर्भिद्यमान इवाऽचलः ।

वह महाधनुर्धर, अर्जुन, उन वीरों द्वारा तीक्ष्ण बाणों से छेद भी दिया था, तो भी वह महाबाहु कुछ विचलित नहीं हुआ और फटे हुए पर्वत के समान अविचल भाव से युद्ध भूमि में डटा रहा।

स भीष्मं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः ।।२७।।
द्रोणं षष्ट्या नरव्याघ्रो विकर्णं च त्रिभिः शरैः ।
शल्यं चैव त्रिभिर्बाणै राजानं चैव पञ्चभिः ।।२८।।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा किरीटी भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! महाबली किरीटधारी अर्जुन ने भीष्म को पच्चीस, कृप को नौ, द्रोण को साठ, विकर्ण को तीन, शल्य को तीन, राजा दुर्योधन को पाँच बाणों से छेद दिया ।।२७-२८।।

तं सात्यकिर्विराटश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥२६॥

द्रौपदेयाभिमन्युश्च परिवव्रुर्धनञ्जयम् ।

सात्यकि, विराट, पर्षतवंशज, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी-पुत्र और अभिमन्यु ने रक्षार्थ अर्जुन को घेर रखा था ॥२६॥

ततो द्रोणं महेष्वासं गाङ्गेयस्य प्रिये रतम् ॥३०॥

अभ्यवर्तत पाञ्चाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः ।

इसके अनन्तर सोमक क्षत्रियों को साथ लेकर पञ्चाल राजकुमार सेनापति धृष्टद्युम्न, भीष्म के हित में तत्पर धनुषधारी द्रोणाचार्य के पास पहुंचा ॥३०॥

भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो राजन्विव्याध पाण्डवम् ॥३१॥

अशीत्या निशितैर्बाणैस्ततोऽक्रोशन्त तावकाः ।

रथियों में श्रेष्ठ भीष्म ने तीक्ष्ण अस्सी बाण छोड़ कर पाण्डु-पुत्र अर्जुन को वींध दिया, जिससे तुम्हारे पक्ष में बड़ी हर्ष ध्वनि होने लगी ॥३१॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा सहितानां प्रहृष्टवत् ॥३२॥

प्रविवेश ततो मध्यं नरसिंहः प्रतापवान् ।

इकट्ठे हुए तुम्हारे वीरों का प्रसन्नता-पूर्वक सिंहनाद सुनकर प्रतापी, नरवीर अर्जुन ने तुम्हारी सेना के मध्य में प्रवेश किया ।

तेषां महारथानां स मध्यं प्राप्य धनञ्जयः ॥३३॥

चिक्रीड धनुषा राजंल्लक्ष्यं कृत्वा महारथान् ।

हे राजन् ! उन महारथियों के मध्य में पहुंच कर धनञ्जय अर्जुन, उन महारथियों को लक्ष्य बना कर धनुष से क्रीड़ा करने लगा।

ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः ॥३४॥
पीड्यमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे ।

अब प्रजेश्वर राजा दुर्योधन अपनी सेना को अर्जुन द्वारा युद्ध में पीड़ित की हुई देखकर भीष्म से बोले ॥३४॥

एष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितो बली ॥३५॥
यततां सर्वसैन्यानां मूलं नः परिकृन्तति ।

हे तात ! कृष्ण को साथ लिए हुए, पाण्डु-पुत्र, अर्जुन, हमारी सेना के बहुत प्रयत्न करने पर भी हमारा मूलोच्छेद कर रहा है।

त्वयि जीवति गाङ्गेय द्रोणे च रथिनां वरे ॥३६॥
त्वत्कृते चैव कर्णोऽपि न्यस्तशस्त्रो विशाम्पते ।
न युध्यति रणे पार्थं हितकामः सदा मम ॥३७॥
स तथा कुरु गाङ्गेय यथा हन्येत फाल्गुनः ।

हे गाङ्गेय ! तुम गङ्गा-पुत्र और रथि-श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के जीवित रहने पर भी अर्जुन इतना कर रहा है। हे विशाम्पते ! तुम्हारे कारण से ही कर्ण ने भी शस्त्र ग्रहण करना छोड़ रखा है। वह मेरा बड़ा ही हित चाहता है, परन्तु रण में अभी अर्जुन से नहीं लड़ता है। हे गाङ्गेय ! अब आपको वही प्रयत्न करना उचित है, जिससे अर्जुन मारा जा सके ॥३६-३७॥

एवमुक्तस्ततो राजन्पिता देवव्रतस्तव ॥३८॥
धिक्क्षात्रं धर्ममित्युक्त्वा प्रायात्पार्थरथं प्रति ।

हे राजन्! जब तुम्हारे पिता देवव्रत से दुर्योधन ने इतना कहा—तो उन्होंने क्षत्रिय धर्म को धिक्कार देकर अर्जुन के रथ की ओर अपना रथ बढ़ाया ॥३८॥

उभौ श्वेतहयौ राजन्संसक्तौ प्रेक्ष्य पार्थिवाः ॥३९॥
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च मारिष ।

हे राजन्! इस समय दोनों श्वेत अश्वों वाले, भीष्म और अर्जुन के इस समागम (मुकाबिले) को देखकर पाण्डव बड़े हर्षित हुए। हे राजन्! वे सिंहनाद करने लगे और अत्यन्त बल से पृथक् २ शंखों को बजाने लगे ॥३९॥

द्रौणिर्दुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ॥४०॥
परिवार्य रणे भीष्मं स्थिता युद्धाय मारिष ।

द्रोण-पुत्र, अश्वत्थामा, दुर्योधन, तुम्हारा-पुत्र विकर्ण, भीष्म की रक्षा में तत्पर हुए, उसे घेर कर युद्ध के लिए सन्नद्ध थे ॥४०॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥४१॥
स्थिता युद्धाय महते ततो युद्धमवर्तत ।

इसी तरह सारे पाण्डव, अर्जुन की रक्षा में संलग्न होकर युद्ध के लिए सजे खड़े थे। इसके अनन्तर युद्ध होने लगा ॥४१॥

गाङ्गेयस्तु रणे पार्थमानर्च्छन्नवभिः शरैः ॥४२॥
तमर्जुनः प्रत्यविध्यद्दशभिर्मर्मभेदिभिः ।

इस युद्ध में गङ्गा-पुत्र भीष्म ने अर्जुन पर नौ बाण छोड़े, परन्तु अर्जुन ने दश मर्म भेदी बाणों से उन्हें काट गिराया ॥४२॥

ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ॥४३॥

अर्जुनः समरश्लाघी भीष्मस्याऽवारयद्दिशः ।

रण कुशल पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने भी अच्छी प्रकार छोड़े हुए, सहस्रों बाणों से भीष्म का मार्ग रोक दिया ॥४३॥

शरजालं ततस्तत्तु शरजालेन मारिष ॥४४॥

वारयामास पार्थस्य भीष्मः शान्तनवस्तदा ।

शान्तनु-पुत्र भीष्म ने भी अपने शर जाल से अर्जुन के शर जाल को वहीं काट गिराया ॥४४॥

उभौ परमसंहृष्टावुभौ युद्धाभिनन्दिनौ ॥४५॥

निर्विशेषमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

ये दोनों बड़े आनन्द में भरे हुए थे और दोनों ही युद्ध को उत्सुक हो रहे थे । एक दूसरे के प्रहार का उत्तर प्रत्युत्तर देते हुए इस ढ़ग से युद्ध कर रहे थे, कि उनमें कोई तारतम्य (फर्क) दिखाई नही देता था ॥४५॥

भीष्मचापविमुक्तानि शरजालानि सङ्घशः ॥४६॥

शीर्यमाणान्यदृश्यन्त भिन्नान्यर्जुनसायकैः ।

भीष्म के धनुष से निकले हुए बाणों के समूह, अर्जुन के बाणों से छिन्न भिन्न होकर बिखर जाते थे ॥४६॥

तथैवाऽर्जुनमुक्तानि शरजालानि सर्वशः ॥४७॥
गाङ्गेयशरनुन्नानि प्रापतन्त महीतले ।

इसी तरह अर्जुन के छोड़े हुए बाण समूह भीष्म के बाणों से कटकर पृथिवी पर गिर जाते थे ॥४७॥

अर्जुनः पञ्चविंशत्या भीष्ममार्च्छच्छितैः शरैः ॥४८॥
भीष्मोऽपि समरे पार्थं विव्याध निशितैः शरैः ।

अर्जुन ने अपने बड़े तीक्ष्ण पचीस बाणों से भीष्म को बींधा। भीष्म ने भी अपने तेज बाणों से अर्जुन को छेद डाला ॥४८॥

अन्योन्यस्य हयान्विध्वा ध्वजौ च सुमहाबलौ ॥४९॥
रथेषां रथचक्रे च चिक्रीडतुररिन्दमौ ।

इन महाबलियों ने एक दूसरे के अश्व और ध्वजाओं को छिन्न भिन्न कर दिया तथा रथ की धुरी और चक्रों (पहियों) को भी काट डाला। ये दोनों अरिमर्दन इस तरह युद्ध-क्रीड़ा कर रहे थे।

ततः क्रुद्धो महाराज भीष्मः प्रहरतां वरः ॥५०॥
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।

हे महाराज ! अब प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, भीष्म कुपित हुआ और इसने श्रीकृष्ण की छाती में तीन बाण मारे ॥५०॥

भीष्मचापच्युतैस्तैस्तु निर्विद्धो मधुसूदनः ॥५१॥
विरराज रणे राजन्सपुष्प इव किंशुकः ।

हे राजन्! भीष्म के धनुष से निकले हुए उन तीन बाणों से बिद्ध हुए मधुसूदन कृष्ण, प्रफुल्लित किंशुक (ढाक) वृक्ष के सदृश सुन्दर प्रतीत होते थे ॥५१॥

ततोऽर्जुनो भृशं क्रुद्धो निर्विद्धं प्रेक्ष्य माधवम् ॥५२॥
सारथिं कुरुवृद्धस्य निर्बिभेद शितैः शरैः ।

श्रीकृष्ण को बाणों से बिंधा हुआ देखकर अर्जुन आग बबूला हो गया और इसने भी कुरुवृद्ध भीष्म के सारथि को तीखे बाणों से बेंध डाला ॥५२॥

यतमानौ तु तौ वीरावन्योन्यस्य वधं प्रति ॥५३॥
न शक्नुतां तदाऽन्योन्यमभिसन्धातुमाहवे ।

ये दोनों वीर एक दूसरे को मार देना चाहते थे, परन्तु ये प्रयत्न करने पर भी एक दूसरे को अपना बाण का लक्ष्य न बना सके ।

तौ मण्डलानि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥५४॥
अदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्यलाघवात् ।

इन दोनों ने अपने रथों की मण्डलाकार चित्र विचित्र गतियों का प्रदर्शन किया, क्योंकि दोनों के सारथियों का लाघव (फुर्ती) सराहनीय था ॥५४॥

अन्तरं च प्रहारेषु तर्कयन्तौ परस्परम् ॥५५॥
राजन्नन्तरमार्गस्थौ स्थितावास्तां मुहुर्मुहुः ।

हे राजन्! ये दोनों परस्पर प्रहार करने का अन्तर (मौका) देख रहे थे, इसलिए बार २ युद्ध के मध्य में ठहरकर बात देखते रहते थे ॥५५॥

यह महा अद्भुत युद्ध लोगों के आश्चर्य का कारण बन गया। इसी तरह के महा युद्ध सदा नहीं हुआ करते हैं ॥६५॥

नहि शक्यो रणे जेतुं भीष्मः पार्थेन धीमता ॥६६॥
सधनुः सरथः साश्वः प्रवपन्सायकान्रणे ।

अश्व, धनुष, रथ के सहित भीष्म रण में बाण फेंकता हुआ, बुद्धिमान् अर्जुन द्वारा किसी प्रकार भी नहीं जीता जा सकेगा।

तथैव पाण्डवं युद्धे देवैरपि दुरासदम् ॥६७॥
न विजेतुं रणे भीष्म उत्सहेत धनुर्धरम् ।

इसी तरह पाण्डु-पुत्र अर्जुन भी देवों से नहीं जीता जा सकता है। इससे धनुर्धर अर्जुन को भीष्म युद्ध में कभी नहीं जीत सकेगा ॥६७॥

आलोकादपि युद्धं हि सममेतद्भविष्यति ॥६८॥
इति स्म वाचोऽश्रूयन्त प्रोच्चरन्त्यस्ततस्ततः ।

यदि इन दोनों का युद्ध प्रलय काल तक भी होता रहेगा, तो भी इनका युद्ध बराबर ही रहेगा। इस प्रकार की वाणी इस रण-भूमि में इधर उधर चारों ओर सुनाई दे रही थी ॥६८॥

गाङ्गेयार्जुनयोः संख्ये स्तवयुक्ता विशाम्पते ॥६९॥
त्वदीयास्तु तदा योधाः पाण्डवेयाश्च भारत ।

हे भरतवंशोत्पन्न ! राजन् ! गङ्गा-पुत्र भीष्म और कुन्ती-पुत्र अर्जुन के युद्ध में तुम्हारे और पाण्डवों के वीरों ने बड़े ही प्रशंसा के कार्य कर २ के दिखाए ॥६९॥

अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥७०॥
शितधारैस्तथा खड्गैर्विमलैश्च परश्वधैः ।
शरैरन्यैश्च बहुभिः शस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥७१॥

इन दोनों के युद्ध में प्रत्येक वीर पराक्रम करके तीक्ष्ण धार वाले खड्ग, चमकते हुए परशु तथा भिन्न २ प्रकार के बहुत से बाण और शस्त्रों से एक दूसरे के मारने की घात में लग रहे थे।

उभयोः सेनयोः शूरा न्यकृन्तन्त परस्परम् ।
वर्तमाने तथा घोरे तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।
द्रोणपाञ्चाल्ययो राजन्महानासीत्समागमः ॥७२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

हे राजन्! इस समय दोनों ओर के वीर आपस में मारकाट कर रहे थे। इस प्रकार महाघोर और दारुण युद्ध के प्रवृत्त होने पर द्रोण और पञ्चालराज द्रुपद की बड़ी अद्भुत झपट हुई।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म और अर्जुन के युद्ध का बावनवां अध्याय समाप्त हुआ।

तरेपनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं द्रोणो महेष्वासः पाञ्चाल्यश्चाऽपि पार्षतः ।
उभौ समीयतुर्यत्तौ तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले-हे सञ्जय ! महाधनुर्धर द्रोणाचार्य और पर्षत-वंशोद्भव, राजा द्रुपद का किस ढंग का और किस सावधानी के साथ संग्राम हुआ-यह तुम मुझे सुनाओ ॥१॥

दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषादिति मे मतिः ।
यत्र शान्तनवो भीष्मो नाऽतरद्युधि पाण्डवम् ॥२॥

अब तो मेरी यह धारणा हो चली है, कि उद्योग से दैव बलवान् है, जो शान्तनु-पुत्र भीष्म भी पाण्डु-पुत्र अर्जुन को नहीं जीत सका ॥२॥

भीष्मो हि समरे क्रुद्धो हन्याल्लोकांश्चराचरान् ।
स कथं पाण्डवं युद्धे नाऽतरत्सञ्जयौजसा ॥३॥

भीष्म यदि युद्ध के समय क्रोध में भर जावे-तो तीनों चराचर लोकों को मार सकता है। हे सञ्जय ! वही भीष्म अपने बलके द्वारा कैसे पाण्डु-पुत्र अर्जुन को नहीं जीत सका ॥३॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा युद्धमेतत्सुदारुणम् ।
न शक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! तुम स्थिर होकर सुनो-यह युद्ध बड़ा ही दारुण था। पाण्डवों को तो इन्द्र के साथ सारे देवता भी नहीं जीत सकते हैं ॥४॥

द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्नमविध्यत।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥५॥
तथाऽस्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः।
पीडयामास संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥६॥

द्रोणाचार्य ने क्रोध में भरकर धृष्टद्युम्न को भी तीखे बाणों से बेंध दिया तथा एक बाण से इसके सारथी को रथ से नीचे गिराया और बड़े ही नुकेले बाणों से इसके चारों अश्वों को छेद कर पीड़ित किया ॥५-६॥

धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणं नवत्या निशितैः शरैः।
विव्याध प्रहसन्वीरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥७॥

वीरश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न ने भी हंसते २ द्रोणाचार्य के शरीर में नव्वे तीक्ष्ण बाणों से आघात किया और कहा—जरा ठहरे रहो।

ततः पुनरमेयात्मा भारद्वाजः प्रतापवान्।
शरैः प्रच्छादयामास धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥८॥

फिर महाबल-सम्पन्न भरद्वाज कुलोत्पन्न, प्रतापवान्, द्रोणाचार्य ने असहनशील धृष्टद्युम्न को अपने बाणों से ढक दिया ॥८॥

आददे च शरं घोरं पार्षतान्तचिकीर्षया।
शक्राशनिसमस्पर्शं कालदण्डमिवाऽपरम् ॥९॥

अब द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न के नाश की इच्छा से इन्द्र वज्र के सदृश तथा दूसरे काल के दण्डके तुल्य घोर बाण को ग्रहण किया

हाहाकारो महानासीत्सर्वसैन्येषु भारत ।
तमिषुं सन्धितं दृष्ट्वा भारद्वाजेन संयुगे ॥१०॥

हे भारत ! इस बाण के द्रोण द्वारा धनुष पर चढ़ा लेने से युद्ध में उपस्थित सारी सेना में हाहाकार मच गया ॥१०॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम धृष्टद्युम्नस्य पौरुषम् ।
यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥११॥

इस समय धृष्टद्युम्न का अद्भुत पराक्रम देखा गया—जो यह वीर इस युद्ध में अकेला ही पर्वत की भांति अचल खड़ा रहा ।

तं च दीप्तं शरं घोरमायान्तं मृत्युमात्मनः ।
चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह ॥१२॥

अपनी मृत्यु के करने वाले, इस घोर बाण को आता हुआ देखकर धृष्टद्युम्न ने उसे काट डाला और द्रोणाचार्य पर अपने बाण वर्षाने लगा ॥१२॥

तत उच्चुक्रुशुः सर्वे पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
धृष्टद्युम्नेन तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥१३॥

धृष्टद्युम्न के इस अद्भुत दुष्कर कृत्य को देखकर पाण्डवों के साथ सारे पञ्चाल बड़ी हर्ष-ध्वनि प्रकट करने लगे ॥१३॥

ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैदूर्यभूषिताम् ।
द्रोणस्य निधनाकांक्षी चिक्षेप स पराक्रमी ॥१४॥

सुवर्ण और नीलमणि से सुशोभित, बड़े वेगवाली शक्तिको लेकर महापराक्रमी धृष्टद्युम्नने द्रोण के मारने के लिए उस पर फैंकी

तामापतन्तीं सहसा शक्तिं कनकभूषिताम् ।
त्रिधा चिच्छेद समरे भारद्वाजो हसन्निव ॥१५॥

सुवर्ण से भूषित, उस शक्ति को एक दम अपनी ओर आते देखकर, भारद्वाज द्रोण ने उसके युद्ध-भूमि में तीन टुकड़े करके डाल दिए ॥१५॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
ववर्ष शरवर्षाणि द्रोणं प्रति जनेश्वर ॥१६॥

हे जनेश्वर ! प्रतापी धृष्टद्युम्न ने जब अपनी शक्ति (शस्त्र) को खण्डित देखा-तो फिर द्रोण पर बाणों की झड़ी लगा दी ॥१६॥

शरवर्षं ततस्तत्तु सन्निवार्य महायशाः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकम् ॥१७॥

महायशस्वी. द्रोणाचार्य ने द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न की बाण वर्षा को रोक कर उसके धनुष को बीच में से काट दिया ॥१७॥

स च्छिन्नधन्वा समरे गदां गुर्वीं महायशाः ।
द्रोणाय प्रेषयामास गिरिसारमयीं बली ॥१८॥

अब धनुष के कट जाने पर महायशस्वी, बलवान, धृष्टद्युम्नने पर्वत के समान दृढ़ आकारवाली एक भारी गदा, युद्ध में द्रोण पर छोड़ी ॥१८॥

सा गदा वेगवन्मुक्ता प्रायाद् द्रोणजिघांसया ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ॥१९॥

लाघवाद्व्यंसयामास गदां हेमविभूषिताम् ।
व्यंसयित्वा गदां तां च प्रेषयामास पार्षतम् ॥२०॥

भल्लान्सुनिशितान्पीतान्रुक्मपुङ्खान्सुदारुणान् ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥२१॥

इस गदा को धृष्टद्युम्न ने द्रोण के वध के लिए बड़े वेग से फेंका था। इस समय द्रोणाचार्य का पौरुष बड़ा ही अद्भुत दिखाई दिया, कि उसने इस सुवर्ण भूषित गदा को अपने हस्त कौशल से झटपट काट गिराया और गदा के कटते ही पर्षतवंशोद्भव, धृष्टद्युम्न पर विष के बुझे हुए, सुवर्ण से जटित मूल वाले, दारुण तीखे बाण छोड़ना आरम्भ किया। यह बाण धृष्टद्युम्न के कवच को काट कर उसके शरीर के रक्त को चूसने लगे ॥१९-२१॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥२२॥

अब महारथी धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष उठाया और पराक्रम करके युद्ध में द्रोण को पांच बाणों से वेंधा ॥२२॥

रुधिराक्तौ ततस्तौ तु शुशुभाते नरर्षभौ ।
वसन्तसमये राजन्पुष्पिताविव किंशुकौ ॥२३॥

हे राजन ! इस समय ये दोनों वीर रक्त में लथपथ हो रहे थे और ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे-बसन्त में प्रफुल्लित किंशुक के वृक्ष दिखाई देते हैं ।।२३।।

अमर्पितस्ततो राजन्पराक्रम्य चमूमुखे ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य पुनश्चिच्छेद कार्मुकम् ।।२४।।

हे राजन् ! अब द्रोणाचार्य को बड़ा क्रोध आया, उसने पराक्रम करके द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न के धनुष को फिर काट दिया ।

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अभ्यवर्षदमेयात्मा वृष्ट्या मेघ इवाऽचलम् ।।२५।।

जब धृष्टद्युम्न का धनुष कट गया-तो फिर झुके पर्व वाले बाणों से महाबली द्रोण ने उस पर पर्वत पर मेघ की भांति बाण वर्षा करना आरम्भ की ।।२५।।

सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ।
अथाऽस्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।।२६।।
पातयामास समरे सिंहनादं ननाद च ।
ततोऽपरेण भल्लेन हस्ताच्चापमथाऽच्छिनत् ।।२७।।

द्रोण ने धृष्टद्युम्न का सारथि भी रथ से नीचे गिरा दिया तथा युद्ध में इसके चारों अश्वों को तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया और आप सिंहनाद करने लगा तथा दूसरे बाण से इसके हाथ से धनुष को भी नीचे गिरा दिया ।।२६।।

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवारोहत्ख्यापयन्पौरुषं महत् ॥२८॥

अब धृष्टद्युम्न का धनुष कट चुका, रथ नष्ट हो गया, अश्व और सारथि मारे जा चुके, तब यह अपना पौरुष दिखाने को गदा हाथ में लेकर रथ से नीचे उतरने लगा ॥२८॥

तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२९॥

हे भारत ! द्रोणाचार्य ने अपने तीक्ष्ण बाणों से धृष्टद्युम्न की गदा को काट गिराया । यह अभी रथ से नीचे उतर ही रहा था । इनका यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत था ॥२९॥

ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत् ।
खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली ॥३०॥
अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वधकांक्षया ।
आमिषार्थी यथा सिंहो वने मत्तमिव द्विपम् ॥३१॥

इसके अनन्तर महा भुजधारी बलवान् धृष्टद्युम्न, सैंकड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति वाली; दिव्य, असि (तलवार) और विपुल चर्म (ढ़ाल) लेकर द्रोण के मारने की इच्छा से उस पर झपटा, जैसे-मांसका लोलुप सिंह किसी मस्त हाथी पर झपटता हो ।

तत्राऽद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ।
लाघवं चाऽस्त्रयोगं च बलं बाह्वोश्च भारत ॥३२॥

इस समय भरद्वाज वंशोत्पन्न द्रोणाचार्य का पराक्रम बड़ा ही अद्भुत दिखाई दे रहा था। हे भारत ! इसके हाथ की लघुता, (फुर्ती) अस्त्र प्रयोग और भुजाओं का बल देखने योग्य था ॥३२॥

यदेनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतम् ।
न शशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे ॥३३॥

द्रोण ने धृष्टद्युम्न को इस तरह की बाण वर्षा के मध्य में ले लिया, कि इस युद्ध में कोई भी बलवान् यदि धृष्टद्युम्न की सहायता को जावे, तो वहां तक पहुंच भी नहीं सकता था ॥३३॥

निवारितस्तु द्रोणेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
न्यवारयच्छरौघांस्तांश्चर्मणा कृतहस्तवत् ॥३४॥

द्रोण ने महारथी धृष्टद्युम्न को पीछे हटा दिया और वे उसके बाणों के समूह को अपने हस्तकौशल से ढाल पर ही रोकते रहे।

ततो भीमो महाबाहुः सहसाऽभ्यपतद्बली ।
साहाय्यकारी समरे पार्षतस्य महात्मनः ॥३५॥

अब युद्ध में पर्षत वंशोत्पन्न महावीर धृष्टद्युम्न की सहायता को एक दम महाबाहु, महाबली भीमसेन पहुंच गए ॥३५॥

स द्रोणं निशितैर्बाणै राजन्विव्याध सप्तभिः ।
पार्षतं च रथं तूर्णं स्वकमारोहयत्तदा ॥३६॥

हे राजन ! भीमसेन ने आकर द्रोणाचार्य के बड़े तीक्ष्ण सात बाण मारे और रथ विहीन सेनापति धृष्टद्युम्न को अपने रथ पर झटपट चढ़ा लिया ॥३६॥

ततो दुर्योधनो राजन्भानुमन्तमचोदयत् ।
सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे ॥३७॥

हे राजन् ! राजा दुर्योधन ने भी कलिङ्ग देशाधिपति भानुमान् को द्रोणाचार्य की रक्षा के लिए आज्ञा दी । इस भानुमान् के पास भी बहुत बड़ी सेना थी ॥३७॥

ततः सा महती सेना कलिङ्गानां जनेश्वर ।
भीममभ्युद्ययौ तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ॥३८॥

हे जनेश्वर ! अब कलिङ्ग देश के वीरों की विशाल सेना, तुम्हारे पुत्र के आदेशानुसार बड़े वेग से भीम पर झपटी ॥३८॥

पाञ्चाल्यमथ सन्त्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयामास संयुगे ॥३९॥

रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी पञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न को छोड़ कर आगे बढ़ते हुए, वृद्ध विराट और द्रुपद को रोकने के लिए युद्ध में आगे बढ़े ॥३९॥

धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजानमभ्ययात् ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥४०॥

कलिङ्गानां च समरे भीमस्य च महात्मनः ।
जगतः प्रक्षयकरं घोररूपं भयावहम् ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृष्टद्युम्नद्रोणयुद्धे
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

सेनापति धृष्टद्युम्न धर्मराज के पास चले गए। इसके पीछे महाघोर लोमहर्षण, जगत् का नाशकारी, भयानक युद्ध महावीर भीम और कलिङ्ग देश के वीरों में होने लगा ॥४०-४१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य के युद्ध का तरेपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

——***——

चौवनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तथा प्रतिसमादिष्टः कालिङ्गो वाहिनीपतिः।
कथमद्भुतकर्माणं भीमसेनं महाबलम् ॥१॥
चरन्तं गदया वीरं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम्।
योधयामास समरे कालिंगः सह सेनया ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! इस प्रकार मेरे पुत्र के आज्ञा देने पर अपनी सेना के साथ सेनापति कलिङ्गराज ने युद्ध में अद्भुत कर्म करने वाले, महाबली, गदा लेकर युद्ध में घूमने वाले, दण्ड धारी, अन्तक के तुल्य भीमसेन से कैसे युद्ध किया ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

पुत्रेण तव राजेन्द्र स तथोक्तो महाबलः।
महत्या सेनया गुप्तः प्रायाद्भीमरथं प्रति ॥३॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजेन्द्र ! जब तुम्हारे पुत्र ने आज्ञा दी, तो वह महाबली कलिङ्गराज बड़ी भारी सेना से सुरक्षित होकर भीमसेन के रथ की ओर चल दिया ॥३॥

तामापतन्तीं महतीं कलिंगानां महाचमूम् ।
रथाश्वनागकलिलां प्रगृहीतमहायुधाम् ॥४॥
भीमसेनः कलिंगानामार्च्छद्भारत वाहिनीम् ।
केतुमन्तं च नैषादिमायान्तं सह चेदिभिः ॥५॥

हे भारत! जब भीमसेन ने देखा, कि रथ, अश्व और हाथियों से भरी हुई, बड़े २ शस्त्र धारिणी, कलिङ्गों की विशाल सेना चली आ रही है, तो इसने भी अपनी सेना को उनकी ओर चलाया। इन्हीं कलिङ्गों के साथ चेदि क्षत्रियों के सहित निषादराज केतुमान् भी आया था ॥४-५॥

ततः श्रुतायुः संक्रुद्धो राज्ञा केतुमता सह ।
आससाद रणे भीमं व्यूढानीकेषु चेदिषु ॥६॥

राजा केतुमान् के साथ श्रुतायु क्रोध में भर रहा था । जब चेदि वीरों ने अपना व्यूह बना लिया-तो इसने रण में भीम पर आक्रमण किया ॥६॥

रथैरनेकसाहस्रैः कलिंगानां नराधिप ।
अयुतेन गजानां च निषादैः सह केतुमान् ॥७॥
भीमसेनं रणे राजन्समन्तात्पर्यवारयत् ।

हे नराधिप ! कलिङ्गों के पास कई सहस्र रथ और दश हजार हाथी थे तथा निषाद वीरों की पैदल सेना भी थी। हे राजन् ! इन्होंने रण में भीमसेन को सब ओर से जा घेरा ॥७॥

चेदिमत्स्यकरूपाश्च भीमसेनपदानुगाः ॥८॥
अभ्यधावन्त समरे निषादान्सह राजभिः ।

कुछ चेदिवंशज वीर, मत्स्य, करूप, भीमसेन के साथ थे। इन वीर तथा अन्य क्षत्रिय नरेशों के साथ भीमसेन ने निषादों पर धावा कर दिया ॥८॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥९॥
न प्राजानन्त योधाः स्वान्परस्परजिघांसया ।

अब परस्पर भयजनक घोर युद्ध चल पड़ा। योद्धा एक दूसरे के मारने की आकांक्षा में अपने पराये की पहिचान भी नहीं कर पाते थे ॥९॥

घोरमासीत्ततो युद्धं भीमस्य सहसा परैः ॥१०॥
यथेन्द्रस्य महाराज महत्या दैत्यसेनया ।

हे महाराज ! भीमसेन का अब अन्य निषादवीरों के साथ घोर युद्ध होने लगा जैसे-विशाल दैत्य सेना के साथ इन्द्र का युद्ध हो रहा हो ॥१०॥

तस्य सैन्यस्य संग्रामे युध्यमानस्य भारत ॥११॥
बभूव सुमहाञ्शब्दः सागरस्येव गर्जतः ।

हे भारत ! जब ये दोनों सेनाएँ युद्ध कर रही थी, तो रणभूमि में गर्जते हुए, समुद्र के तुल्य महान् शब्द हो रहा था ॥११॥

अन्योन्यं स्म तदा योधा विकर्षन्तो विशाम्पते ॥१२॥
महीं चक्रुश्चितां सर्वां शशलोहितसन्निभाम् ।

हे विशाम्पते ! योद्धा लोगों ने एक दूसरे पर प्रहार करके पृथिवी को शशक (खरगोश) के रक्त से लाल आर्द्र (गीली) कर देने के सदृश रंग डाली ॥१२॥

योधांश्च स्वान्परान्चापि नाऽभ्यजानञ्जिघांसया ॥१३॥
स्वानप्याददते स्वाश्च शूराः परमदुर्जयाः ।

हिंसा करने की तीव्र अभिलाषा में योद्धा, अपने और पराये योद्धाओं का भी ज्ञान नहीं रख सके। अपने ही दुर्जय शूरवीर अपने ही योद्धाओं पर आक्रमण कर बैठते थे ॥१३॥

विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह ॥१४॥
कलिंगैः सह चेदीनां निषादैश्च विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! थोड़े से चेदिवंशज वीरों का बहुत से कलिङ्ग और निषाद वीरों के साथ घोर घमसान युद्ध हो रहा था ॥१४॥

कृत्वा पुरुषकारं तु यथाशक्ति महाबलाः ॥१५॥
भीमसेनं परित्यज्य संन्यवर्तन्त चेदयः ।

महाबली चेदि वीर, अपनी शक्ति के अनुसार उद्योग करके भीमसेन को छोड़ कर पीछे हट गए ॥१५॥

सर्वैः कलिंगैरासन्नः सन्निवृत्तेषु चेदिषु ॥१६॥
स्वबाहुबलमास्थाय सन्न्यवर्तत पाण्डवः ।

जब चेदि वीर लौट गए-तो कलिङ्गों ने आकर भीमसेन को घेर लिया, परन्तु पाण्डु-पुत्र भीमसेन भी अपने बाहुबल का आश्रय लेकर वहीं डटा हुआ लड़ता रहा ॥१६॥

न चचाल रथोपस्थाद्भीमसेनो महाबलः ॥१७॥
शितैरवाकिरद्बाणैः कलिंगानां वरूथिनीम् ।

महाबली भीमसेन, अपने रथ से एक इंच भी नहीं हटा और तीक्ष्ण बाणों से कलिङ्गों की सेना को आहत (घायल) करता रहा।

कालिंगस्तु महेष्वासः पुत्रश्चाऽस्य महारथः ॥१८॥
शक्रदेव इति ख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः ।

महाधनुर्धर, कलिङ्ग-राज और इसका महारथी पुत्र, शक्रदेव ये दोनों पाण्डु-पुत्र भीमसेन पर बाणों की वर्षा करने लगे ॥१८॥

ततो भीमो महाबाहुर्विधुन्वन्रुचिरं धनुः ॥१६॥
योधयामास कालिंगं स्वबाहुबलमाश्रितः ।

महा चापधारी, भीमसेन, अपने बाहुबल का आश्रय लेकर अपने सुन्दर धनुष को कंपाकर कलिङ्गों से युद्ध करता रहा ॥१६॥

शक्रदेवस्तु समरे विसृजन्सायकान्बहून ॥२०॥
अश्वाञ्जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः ।

शक्रदेव ने युद्ध में बहुत से तीखे बाण छोड़े, जिन बाणों से उसने युद्ध में भीमसेन के अश्व मार गिराए ॥२०॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भीमसेनमरिन्दमम् ॥२१॥
शक्रदेवोऽभिदुद्राव शरैरवकिरञ्शितैः ।

अरिमर्दन भीमसेन को रथ से विहीन देखकर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करता हुआ, शक्रदेव बड़े वेग से उस पर झपटा ।।२१।।

भीमस्योपरि राजेन्द्र शक्रदेवो महाबलः ।।२२।।
ववर्ष शरवर्षाणि तपान्ते जलदो यथा ।

हे राजेन्द्र ! महाबली शक्रदेव वर्षा काल में मेघ के तुल्य भीमसेन के ऊपर बाणों की झड़ी लगाने लगा ।।२२।।

हताश्वे तु रथे तिष्ठन्भीमसेनो महाबलः ।।२३।।
शक्रदेवाय चिक्षेप सर्वशैक्यायसीं गदाम् ।

अश्व विहीन, रथ में ही बैठे हुए महाबली भीमसेन ने लोह की बनी हुई, छींके पर रखी जाने वाली गदा को शक्रदेव पर चलाई ।।२३।।

स तया निहतो राजन्कालिङ्गतनयो रथात् ।।२४।।
विरथः सह सूतेन जगाम धरणीतलम् ।

हे राजन् ! इस गदा के आघात से कलिङ्गराज का पुत्र शक्रदेव का रथ चकनाचूर हो गया और वह सारथि सहित नष्ट होकर भूमि पर गिर पड़ा ।।२४।।

हतमात्मसुतं दृष्ट्वा कलिंगानां जनाधिपः ।।२५।।
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्याऽवारयद्दिशः ।

कलिङ्ग देश का अधिपति अपने पुत्र को मरा हुआ देखकर कई सहस्र रथ लेकर भीमसेन के मार्ग को रोककर खड़ा हो गया।

ततो भीमो महावेगां त्यक्त्वा गुर्वीं महागदाम् ॥२६॥
निस्त्रिंशमाददे घोरं चिकीर्षुः कर्म दारुणम् ।
चर्मचाऽप्रतिमं राजन्नार्षभं पुरुषर्षभ ॥२७॥
नक्षत्रैरर्धचन्द्रैश्च शातकुम्भमयैश्चितम् ।

भीमसेन ने बड़े वेग वाली, भारी, महागदा को छोड़कर तलवार हाथ में ली, जिससे वह युद्ध में महाघोर दारुण कर्म करना चाहता था । हे पुरुषर्षभ ! इसी तरह अद्वितीय, वृषचर्म की बनी हुई, उत्तम ढाल को उठाया, जिसमें सुवर्ण के नक्षत्र और अर्ध-चन्द्र बने हुए थे ॥२६-२७॥

कालिंगस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्ज्यामवमृज्य च ॥२८॥
प्रगृह्य च शरं घोरमेकं सर्पविषोपमम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय वधाकांक्षी जनेश्वरः ॥२९॥

अब कलिङ्गराज क्रोध में भर गया, उसने धनुष को डोरी पर चढ़ाया । इस जनेश्वर ने सर्प के तुल्य भीषण, महाघोर एक बाण तूणीर से निकाला और भीमसेन के वध की अभिलाषा से उस पर छोड़ दिया ॥२८-२९॥

तमापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरम् ।
भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना ॥३०॥

हे राजन् ! कलिङ्गराज द्वारा फैंके हुए, तीव्र बाण को वेग से आता हुआ देखकर भीमसेन ने भी बड़ी सी असि (तलवार) से उसके दो टुकड़े कर दिए ॥३०॥

उदक्रोशच्च संहृष्टस्त्रासयानो वरूथिनीम् ।
कालिङ्गोऽथ ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे ॥३१॥

भीमसेन कलिङ्गराज की सेना को पीड़ित कर रहा था। इसने बड़ी प्रसन्नता में भर कर गर्जना की। अब कलिङ्गराज क्रुद्ध होकर युद्ध में भीमसेन पर झपटा ॥३१॥

तोमरान्प्राहिणोच्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान् ।
तानप्राप्तान्महाबाहुः खगतानेव पाण्डवः ॥३२॥
चिच्छेद सहसा राजन्नसम्भ्रान्तो वरासिना ।

कोप में भरे हुए कलिङ्गराज ने भीमसेन पर शिला (सिल्ली) पर तीक्ष्ण किए हुए चौदह तोमर शीघ्र २ फैंके, परन्तु महाबाहु भीमसेन ने उनको अपने पास आने से पूर्व आकाश में ही विना किसी उद्वेग के अच्छी सी तलवार से काट गिराये ॥३२॥

निकृत्य तु रणे भीमस्तोमरान्वै चतुर्दश ॥३३॥
भानुमन्तं ततो भीमः प्राद्रवत्पुरुषर्षभः ।

पुरुष श्रेष्ठ भीमसेन, उन चौदह तोमरों को रण में काट कर राजा भानुमान् पर दौड़ा ॥३३॥

भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण छादयन् ॥३४॥
निनाद बलवन्नादं नादयानो नभस्तलम् ।

कलिङ्गराज भानुमान् ने भी भीमसेन को बाण वर्षा से आच्छादित कर दिया और ऐसी घोर गर्जना करने लगा, जिससे आकाश भी गूंज उठा ॥३४॥

न च तं ममृषे भीमः सिंहनादं महाहवे ॥३५॥
ततः शब्देन महता विननाद महास्वनः ।

इस सिंहनाद को भीमसेन नहीं सह सका और उसने भी बड़े उच्च स्वर से सिंह गर्जना की ॥३५॥

तेन नादेन वित्रस्ता कलिंगानां वरूथिनी ॥३६॥
न भीमं समरे मेने मानुषं भरतर्षभ ।

भीमसेन की इस गर्जना से कलिङ्गराज की सेना भयभीत हो गई । हे भरतर्षभ ! इन्होंने युद्ध में भीमसेन को मनुष्य नहीं किन्तु देव या दानव समझा ॥३६॥

ततो भीमो महाबाहुर्नर्दित्वा विपुलं स्वनम् ॥३७॥
सासिर्वेगवदाप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमम् ।
आरुरोह ततो मध्यं नागराजस्य मारिष ॥३८॥

महाबाहु भीमसेन ने बहुत विपुल गर्जना की । हे राजन् ! वह तलवार लेकर वेग के साथ दांतों को पकड़कर भानुमान् के हाथी के ऊपर कूदकर चढ़ गया ॥३७-३८॥

ततो मुमोच कालिंगः शक्तिं तामकरोद् द्विधा ।
खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्तमथाऽच्छिनत् ॥३९॥

अब कलिङ्गराज ने अपनी शक्ति (शस्त्र) फेंकी । भीमसेन ने उस शक्ति के दो टुकड़े कर दिए और अपने विशाल खड्ग से भानुमान् के शरीर को भी बीच में से काट डाला ॥३९॥

सोऽन्तराऽऽयुधिनं हत्वा राजपुत्रमरिन्दमः ।
गुरुं भारसहं स्कन्धे नागस्याऽसिमपातयत् ॥४०॥

अरिमर्दन भीमसेन ने कलिङ्गराज और गजारूढ़ योद्धा को मारकर भार सहने में समर्थ, विशाल हाथी के स्कन्ध पर अपनी तलवार चलाई ॥४०॥

छिन्नस्कन्धः स विनदन्पपात गजयूथपः ।
आरुग्णः सिन्धुवेगेन सानुमानिव पर्वतः ॥४१॥

इस आघात से हाथी के स्कन्ध कट गए और वह चीत्कार करके भूमि पर गिर पड़ा, जैसे समुद्र की टक्कर से सानुमान् पर्वत गिर गया हो ॥४१॥

ततस्तस्मादवप्लुत्य गजाद्भारत भारतः ।
खड्गपाणिरदीनात्मा तस्थौ भूमौ सुदंशितः ॥४२॥

हे भारत ! भरतवंशोद्भव भीमसेन, शीघ्रही इस हाथी से कूद पड़ा और खड्ग हाथ में लेकर बड़ी सावधानी से सुसज्जित होकर खड़ा हो गया ॥४२॥

स चचार बहून्मार्गानभितः पातयन्गजान् ।
अग्निचक्रमिवाऽऽविद्धं सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥४३॥

भीमसेन, अनेक मार्गों (पैंतरों) से चक्कर लगा रहा था और अपने पास आने वाले हाथियों को मार २ कर गिरा रहा था तथा घूमतेहुए अग्नि के चक्र की भाँति सब ओर घूम रहा था ।

अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाऽभिभूः ।
पदातीनां च सङ्घेषु विनिघ्नन्शोणितोक्षितः ॥४४॥
श्येनवद्व्यचरद्भीमो रणेऽरिषु बलोत्कटः ।
छिन्दंस्तेषां शरीराणि शिरांसि च महाबलः ॥४५॥

अश्वों के समूह, हाथी, रथों की सेना, पैदलों के समूह में रक्त से भीगा हुआ, सबका पराजय करने वाला, शत्रुओं में महाबली, भीमसेन, सबका नाश करता हुआ रणभूमि में बाज की भांति घूमने लगा ॥४४-४५॥

खड्गेन शितधारेण संयुगे गजयोधिनाम् ।
पदातिरेकः संक्रुद्धः शत्रूणां भयवर्धनः ॥४६॥
सम्मोहयामास स तान्कालान्तकयमोपमः ।
मूढाश्च ते तमेवाऽजौ विनदन्तः समाद्रवन् ॥४७॥

गजों पर चढ़कर युद्ध करने वालों के मध्य में तीक्ष्ण खड्ग लेकर युद्धभूमि में पैदल ही क्रोध में भरा हुआ घूमने वाला, शत्रुओं को भयङ्कर, कालाग्नि और यम के सदृश भीषण, भीमसेन, सबको मोहित करने लगा। ये सब वीर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर चिल्लाते पुकारते हुए भाग निकले ॥४६-४७॥

सासिमुत्तमवेगेन विचरन्तं महारणे ।
निकृत्य रथिनां चाऽऽजौ रथेषाश्च युगानि च ॥४८॥

जघान रथिनश्चापि वल्गन्नरिप्रमर्दनः ।
भीमसेनश्चरन्मार्गान्सुबहून्स व्यदृश्यत ॥४९॥

रिपुओं का मर्दन करनेवाला भीमसेन, रथियों के रथों की धुर और जुओं (जूड़ों) को तोड़ कर उत्तम वेग से रण में तलवार लेकर घूमने लगा। इसने अनेक रथी मार गिराए। भीम इस समय अनेक युद्ध की गतियों को दिखाता हुआ दिखाई दे रहा था ॥४८-४९॥

भ्रान्तमाविद्धमुद्भ्रान्तमाप्लुतं प्रसृतं प्लुतम् ।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पाण्डवः ॥५०॥

पाण्डुपुत्र भीमसेन ने युद्ध की भ्रान्त (चक्करदार) आविद्ध, (अतीव वेग के साथ घूमना) उद्भ्रान्त, (ऊपर उछल कर चक्कर खाजाना) आप्लुतं, (केवल उछलना) प्रसृत, (सब दिशाओं में फैल जाना) प्लुत, (एक दिशा में बढ़े चले जाना) संपात, (वेग-युक्त) समुदीर्ण, (सब की ओर झपटना) आदि गतियां दिखाईं ॥५०॥

केचिदग्रासिना छिन्नाः पाण्डवेन महात्मना ।
विनेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥५१॥

महात्मा पाण्डव भीम ने किसी को तलवार की नोक से छेद दिया। जिनके मर्म कट गए-वे चिल्लाने लगे और प्राण विहीन होकर भूमि पर गिरने लगे ॥५१॥

छिन्नदन्ताग्रहस्ताश्च भिन्नकुम्भास्तथा परे ।
वियोधाः स्वान्यनीकानि जघ्नुर्भारत वारणाः ॥५२॥
निपेतुरन्ये च तथा विनदन्तो महारवान् ।

हे भारत ! कुछ हाथियों के दांत टूट रहे थे, किसी की सूंड कट रहीं थी। किसी के माथे फट रहे थे। इनके ऊपर चढ़ने वाले योद्धा मारे जा चुके, जिससे उच्छृङ्खल हुए, ये अपनी ही सेना का नाश कर रहे थे और कोई २ चिंघाड़ मार कर पृथिवी में गिर रहे थे ॥५२॥

छिन्नांश्च तोमरान्राजन्महामात्रशिरांसि च ॥५३॥
परिस्तोमान्विचित्रांश्च कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः ।
ग्रैवेयाण्यथ शक्तीश्च पताकाः कणपांस्तथा ॥५४॥
तूणीरानथ यन्त्राणि विचित्राणि धनूंषि च ।
भिन्दिपालानि शुभ्राणि तोत्राणि चांऽकुशैः सह ॥५५॥
घण्टाश्च विविधा राजन्हेमगर्भान्त्सरूनपि ।
पततः पातितांश्चैव पश्यामः सह सादिभिः ॥५६॥

हे राजन् ! तोमरों के टुकड़े, महावतों के शिर, विचित्र २ परिस्तोम (हाथी की झूल) सुवर्ण से उज्ज्वल हाथियों की शृङ्खला, कण्ठ के आभूषण, शक्ति, पताका, मुद्गर, तूणीर, गोले आदि फैंकने के यन्त्र, विचित्र धनुष, भिन्दिपाल (गोफिये) सुन्दर तोत्र (चाबुक) अंकुश, अनेक भांति के घण्टा, सुवर्ण जटित खड्ग की मूठ, अश्वारोहियोंके साथ गिरती हुई या गिरायी जाती हुई हमने देखी हैं ॥५३-५६॥

छिन्नगात्रावरकरैर्निहतैश्चाऽपि वारणैः ।
आसीद् भूमिः समास्तीर्णा पतितैर्भूधरैरिव ॥५७॥

जिनके पैर और सूंड कट गई-ऐसे मरे हुए हाथियों से भूमि ऐसी व्याप्त दिखाई देती थी, मानों बिखरे हुए पर्वतों से व्याप्त हो गई हो ॥५७॥

विमृद्यैवं महानागान्ममर्दाऽन्यान्महाबलः ।
अश्वारोहवरांश्चैव पातयामास संयुगे ॥५८॥

हे राजन्! इस युद्ध में इस भांति महागजों को नष्ट-भ्रष्ट करके भीमसेन अन्य अश्वारोहियों पर टूट पड़ा ॥५८॥

तद्घोरमभवद्युद्धं तस्य तेषां च भारत ।
खलीनान्यथ योक्त्राणि कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः॥५९॥
परिस्तोमाश्च प्रासाश्च ऋष्टयश्च महाधनाः ।
कवचान्यथ चर्माणि चित्राण्यास्तरणानि च॥६०॥
तत्र तत्राऽपविद्धानि व्यदृश्यन्त महाहवे ।

हे भारत! अश्वारोही और भीमसेन का बड़ा घोर युद्ध होने लगा। कहीं पर इस युद्ध भूमि में खलीन (लगाम) या योक्त्र (गलबन्धन) सुवर्ण से उज्ज्वल कक्ष्या, (मध्य बन्धन) परिस्तोम, (झूल) प्रास, अत्यन्त मूल्यवान् ऋष्टि, कवच, चर्म, (ढाल) विचित्र आस्तरण (झूलें) आदि पड़े हुए दिखाई दे रहे थे॥५९-६०॥

प्रासैर्यन्त्रैर्विचित्रैश्च शस्त्रैश्च विमलैस्तथा ॥६१॥
स चक्रे वसुधां कीर्णां शबलैः कुसुमैरिव ।

प्रास, विचित्र यन्त्र, आदि चमकते हुए शस्त्रों से भूमि मानों पुष्पों से रङ्ग बिरंगी सी हो रही थी॥६१॥

आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः ॥६२॥
पातयामास खड्गेन सध्वजानपि पाण्डवः ।

महाबली पाण्डव भीम, कूद कर रथियों पर जा झपटते और उनकी ध्वजा काट कर उनको भी मार गिराते थे ॥६२॥

मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ॥६३॥
मार्गांश्च चरतश्चित्रं व्यस्मयन्त रणे जनाः ।

यशस्वी भीमसेन के दिशाओं में बार २ उछल जाने, दौड़ने और रण में अनेक मार्ग दिखाने से वीर चकित हो रहे थे।

स जघान पदा कांश्चिदाक्षिप्याऽन्यानपोथयत् ॥६४॥
खड्गेनाऽन्यांश्च चिच्छेद नादेनाऽन्यांश्च भीषयन् ।
ऊरुवेगेन चाऽप्यन्यान्पातयामास भूतले ॥६५॥
अपरे चैनमालोक्य भयात्पञ्चत्वमागताः ।

भीमसेन ने कितने ही पैर से कुचल कर मार दिए और कितनों को उछाल कर दे मारा। कितनों को तलवार से काट गिराया और बहुतों को तो अपनी गर्जना से ही भयभीत कर दिया। किसी २ को अपनी जंघा की झपट से पृथिवी पर पटक दिया। कुछ तो इसको देखकर भय से ही मर गए ॥६४-६५॥

एवं सा बहुला सेना कलिङ्गानां तरस्विनाम् ॥६६॥
परिवार्य रणे भीष्मं भीमसेनमुपाद्रवत् ।

इस प्रकार वेगशील कलिङ्ग वीरों की बहुत सी सेना भीष्म की रक्षा करती हुई भीमसेन से भिड़ रही थी ॥६६॥

ततः कालिंगसैन्यानां प्रमुखे भरतर्षभ ॥६७॥
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य भीमसेनः समभ्ययात् ।

हे भरतर्षभ ! कलिङ्गों की सेना में श्रुतायु को प्रधान देखकर अब भीमसेन ने उस पर आक्रमण किया ॥६७॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कालिंगो नवभिः शरैः ॥६८॥
भीमसेनममेयात्मा प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।

भीमसेन को अपनी ओर झपटता देखकर अत्यन्त बली, कलिङ्ग वीर श्रुतायु ने भीमसेन की छाती में नौ बाण मारे ॥६८॥

कालिंगबाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥६९॥
भीमसेनः प्रजज्वाल क्रोधेनाऽग्निरिवेंधितः ।

तोत्र (सोटे) से पीड़ित, हाथी की तरह कलिङ्गवीर के बाण से आहत हुए महाबली भीमसेन, इन्धन से प्रज्वलित अग्नि की तरह जल उठे ॥६९॥

अथाऽशोकः समादाय रथं हेमपरिष्कृतम् ॥७०॥
भीमं सम्पादयामास रथेन रथसारथिः ।

इसके अनन्तर रथ का सारथि अशोक, सुवर्ण से परिष्कृत, रथ को लेकर भीम के पास आया और इसने भीम को रथ में बैठा लया ॥७०॥

तमारुह्य रथं तूर्णं कौन्तेयः शत्रुसूदनः ॥७१॥
कालिंगमभिदुद्राव तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।

शत्रु-सूदन, कुन्ती-पुत्र भीमसेन, झटपट रथ पर चढ़ गया और कलिङ्गवीर श्रुतायु पर झपटा ॥७१॥

ततः श्रुतायुर्बलवान्भीमाय निशिताञ्शरान् ॥७२॥
प्रेषयामास संक्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम् ।

अपना हस्तकौशल दिखाते हुए बलवान्, श्रुतायु ने क्रोध में भर कर भीम पर तीक्ष्ण बाण छोड़े ॥७२॥

स कार्मुकवरोत्सृष्टैर्नवभिर्निशितैः शरै ॥७३॥
समाहतो महाराज कालिंगेन महात्मना ।

हे महाराज ! महात्मा कलिङ्ग वीर ने अपने उत्तम धनुष से नौ बाण छोड़कर भीम को आहत कर दिया ॥७३॥

सञ्चुक्रुशे भृशं भीमो दण्डाहत इवोरगः ॥७४॥
क्रुद्धश्च चापमायम्य बलवद्बलिनां वरः ।
कालिंगमवधीत्पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः ॥७५॥

दण्ड से आहत हुए सर्प तुल्य भीमसेन, क्रोध में भर गया। कुन्ती-पुत्र बलवानों में श्रेष्ठ, भीमसेन ने क्रोध-पूर्वक धनुष उठाया और इसने कलिङ्ग वीर श्रुतायु पर सात बाण छोड़े, जिनसे उसके प्राण पखेरू उड़ गए ॥७४-७५॥

क्षुराभ्यां चक्ररक्षौ च कालिंगस्य महाबलौ ।
सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद्यमसादनम् ॥७६॥

कलिङ्गवीर श्रुतायु के जो दो महाबली चक्ररक्षक थे, उनको भीम ने क्षुरोपम बाण से काट कर यमराज के गृह भेज दिया। जिनका सत्यदेव और सत्य-ये दो नाम थे ॥७६॥

ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः ।
केतुमन्तं रणे भीमोऽगमयद्यमसादनम् ॥७७॥

अब फिर अपरिमित बलशाली भीम ने तीन तीक्ष्ण बाणों से केतुमान् को भी यमालय में भेज दिया ॥७७॥

ततः कलिंगाः सन्नद्धा भीमसेनममर्षणम् ।
अनीकैर्बहुसाहस्रैः क्षत्रियाः समवारयन् ॥७८॥

इस परिस्थिति को देख कर अच्छी तरह सावधान होकर कलिंगदेशज क्षत्रिय वीरों ने असहनशील भीमसेन पर कई सहस्र सेना के साथ आक्रमण किया ॥७८॥

ततः शक्तिगदाखड्गतोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
कलिंगाश्च ततो राजन्भीमसेनमवाकिरन् ॥७९॥

हे राजन् ! कलिंग वीरों ने शक्ति, गदा, खड्ग, तोमर, ऋष्टि और परशुओं से भीमसेन को क्षत विक्षत कर दिया ॥७९॥

सन्निवार्य स तां घोरां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
गदामादाय तरसा सन्निपत्य महाबलः ॥८०॥
भीमः सप्तशतान्वीराननयद्यमसादनम् ।

महाबली भीमसेन ने घोररूप शत्रुओं द्वारा प्रवृत्त की हुई, बाण-वृष्टि को रोक कर और गदा हाथ में लेकर वेग के साथ उछल कर, इस गदा से कलिंगों के सात सौ वीर यम-सदन पहुंचा दिए ॥८०॥

पुनश्चैव द्विसाहस्रान्कलिंगानरिमर्दनः ॥८१॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

थोड़ी ही देर में अरिमर्दन भीम ने दो सहस्र कलिङ्गों को मृत्यु के घाट उतार दिया, जो बड़ी ही अचम्भे की बात कर दिखाई

एवं स तान्यनीकानि कलिंगानां पुनः पुनः ॥८२॥
बिभेद समरे तूर्णं प्रेक्ष्य भीष्मं महारथम् ।

इस प्रकार भीमसेन कलिङ्गों की सेना को बार २ बड़ी शीघ्रता से युद्ध में छिन्न भिन्न करता जाता था और बार २ महारथी भीष्म की ओर देख लेता था ॥८२॥

हतारोहाश्च मातङ्गाः पाण्डवेन कृता रणे ॥८३॥
विप्रजग्मुरनीकेषु मेघा वातहता इव ।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि विनदन्तः शरातुराः ॥८४॥

पाण्डु-पुत्र ने बहुत से गजारोही हाथियों के सवार रण में मार दिए। गजारोहियों के मारे जाने पर हाथी सेना में लौट पड़े, जैसे-वायु से उड़ाये हुए बादल चल देते हैं। ये बाण से इतने आतुर हो रहे थे, कि चिङ्घाड़ मारते जाते थे और अपनी ही सेना को कुचलते हुए भाग रहे थे ॥८३-८४॥

ततो भीमो महाबाहुः खड्गहस्तो महाभुजः ।
सम्प्रहृष्टो महाघोषं शङ्खं प्राध्मापयद्बली ॥८५॥

महा भुजधारी, महा शक्तिशाली भीमसेन ने खड्ग हाथ में ले रखा था। इस बलवान् ने प्रसन्न होकर महान् शब्द करने वाले अपने शङ्ख को बजाया ॥८५॥

सर्वकालिंगसैन्यानां मनांसि समकम्पयत् ।
मोहश्चाऽपि कलिंगानामाविवेश परन्तप ॥८६॥

हे परन्तप ! इस शङ्खध्वनि से सारी कलिङ्ग-सेना का मन कांप उठा और सारे कलिंगों को अचेतनता (बेहोशी) सी होने लगी

आकम्पन्त च सैन्यानि वाहनानि च सर्वशः ।
भीमेन समरे राजन्गजेन्द्रेणेव सर्वशः ॥८७॥

हे राजन् ! सब ओर गजराज की भांति घूमते हुए भीम ने समर में सारी सेना और सारे वाहनों को अच्छी तरह कंपा डाला

मार्गान्बहून्विचरता धावता च ततस्ततः ।
मुहुरुत्पतता चैव सम्मोहः समपद्यत ॥८८॥

भीमसेन अनेक युद्ध के मार्गों का आचरण करता था और इधर उधर दौड़ता था । इसके बार २ उछल २ कर आने से सब को मोह होने लगा ॥८८॥

भीमसेनभयत्रस्तं सैन्यं च समकम्पत ।
क्षोभ्यमाणमसम्बाधं ग्राहेणेव महत्सरः ॥८९॥

भीमसेन के भय से डरी हुई सेना इस तरह काँपने लगी जैसे ग्राह से लगातार आलोडित किया हुआ बड़ा भारी सरोवर कांपने लगता है ॥८९॥

त्रासितेषु च सर्वेषु भीमेनाऽद्भुतकर्मणा ।
पुनरावर्तमानेषु विद्रवत्सु च संघशः ॥९०॥

सर्वकालिंगयोधेषु पाण्डूनां ध्वजिनीपतिः ।
अब्रवीत्स्वान्यनीकानि युध्यध्वमिति पार्षतः ॥६१॥

अद्भुत कर्म करने वाले, भीष्म द्वारा सारी सेनाके पीड़ित कर देनेसे वह सेना भाग निकली-परन्तु फिर संघवना कर लौटी। इन सारे कलिङ्ग-योद्धाओं से युद्ध करने को पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना को आज्ञा दी, कि अब तुम इन सबसे युद्ध करो ॥६०-६१॥

सेनापतिवचः श्रुत्वा शिखण्डिप्रमुखा गणाः ।
भीममेवाऽभ्यवर्तन्त रथानीकैः प्रहारिभिः ॥६२॥

सेनापति धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर शिखण्डी आदि योद्धाओं ने प्रहार करने वाली रथों की सेना लेकर भीम की रक्षा करना आरम्भ किया ॥६२॥

धर्मराजश्च तान्सर्वानुपजग्राह पाण्डवः ।
महता मेघवर्णेन नागानीकेन पृष्ठतः ॥६३॥

पाण्डु-पुत्र. धर्मराज भी मेघों के तुल्य ढलटती हुई हाथियों की सेना लेकर पीछे से आकर उन सबकी रक्षा करने लगे ॥६३॥

एवं सञ्चोद्य सर्वाणि स्वान्यनीकानि पार्षतः ।
भीमसेनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥६४॥

पर्षत वंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न अपनी सेना को प्रेरणा करके बड़े २ वीर पुरुषों के साथ स्वयं भीमसेन के पिछले भाग की रक्षा करने लगे ॥६४॥

नहि पञ्चालराजस्य लोके कश्चन विद्यते ।
भीमसात्यकयोरन्यः प्राणेभ्यः प्रियकृत्तमः ॥६५॥

पञ्चालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न को लोक में भीम और सात्यकि को छोड़ कर अन्य कोई प्राणों से अधिक प्रिय नहीं था ॥६५॥

सोऽपश्यच्च कलिंगेषु चरन्तमरिसूदनः ।
भीमसेनं महाबाहुं पार्षतः परवीरहा ॥६६॥

उस शत्रुनाशक, अरिविजयी धृष्टद्युम्न ने देखा, कि भीमसेन, कलिङ्गों की सेना के बीच में चक्कर लगा रहा है ॥६६॥

ननर्द बहुधा राजन्हृष्टश्चाऽऽसीत्परन्तपः ।
शङ्खं दध्मौ च समरे सिंहनादं ननाद च ॥६७॥

हे राजन्! परन्तप, धृष्टद्युम्न ने हर्ष में भर कर गर्जना की। इसने महान् शब्द करने वाला शङ्ख बजाया और सिंहनाद किया।

स च पारावताश्वस्य रथे हेमपरिष्कृते ।
कोविदारध्वजं दृष्ट्वा भीमसेनः समाश्वसत् ॥६८॥

भीमसेन भी सुवर्ण से चमकीले, रथ में कबूतर के समान वर्ण के अश्व और कोविदार (कचनार) वृक्ष के आकार की ध्वजा देख कर बहुत सन्तुष्ट हुआ ॥६८॥

धृष्टद्युम्नस्तु तं दृष्ट्वा कलिंगैः समभिद्रुतम् ।
भीमसेनममेयात्मा त्राणायाऽऽजौ समभ्ययात् ॥६९॥

महाभारत चित्र संख्या ७५



महाबली भीम द्वारा सहस्त्रों हाथियों का संहार
महा० भीष्म पर्व अ० ५४। ४० पृ० ५६४

अपरिमित-बलशाली धृष्टद्युम्न ने देखा, कि भीमसेन कलिङ्गों में उलझ गया है, तो युद्ध में उसकी सहायता करने को बड़ी शीघ्रता से उसके पास पहुंचा ॥९९॥

तौ दूरात्सात्यकिं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
कलिंगान्समरे वीरौ योधयेतां मनस्विनौ ॥१००॥

अब धृष्टद्युम्न और भीमसेन ने कुछ दूरी पर सात्यकि को देखा, तो ये दोनों मनस्वी वीर हृदय खोल कर कलिङ्गों से लड़ने लगे ॥१००॥

स तत्र गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः ।
पार्थपार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः ॥१०१॥

विजयशील, शिनि-पुत्र सात्यकि भी वेग से वहां पहुंचा और इस पुरुषप्रवीर ने भीम और धृष्टद्युम्न की पीछेसे रक्षा करना आरम्भ किया ॥१०१॥

स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आस्थितो रौद्रमात्मानं कलिंगानन्ववैक्षत ॥१०२॥

इसने धनुष लेकर दारुण कर्म कर दिखाया । इसकी आंखें लाल हो गईं-यह अपने रौद्र रूप को धारण करके कलिङ्गों की ओर देखने लगा ॥१०२॥

कलिंगप्रभवां चैव मांसशोणितकर्दमाम् ।
रुधिरस्यन्दिनीं तत्र भीमः प्रावर्तयन्नदीम् ॥१०३॥

अन्तरेण कलिंगानां पाण्डवानां च वाहिनीम् ।
तां सन्ततार दुस्तारां भीमसेनो महाबलः ॥१०४॥

इस रणभूमि में कलिङ्ग वीरों के माँस-शोणित की कीचड़ से युक्त, रक्त की नदी भीम ने बहा दी। यह नदी कलिङ्ग और पाण्डव सेना के मध्य से बह कर जा रही थी। महाबली भीमसेन इस दुस्तर नदी को भी पार कर गया ॥१०३-१०४॥

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा प्राक्रोशंस्तावका नृप ।
कालोऽयं भीमरूपेण कलिंगैः सह युध्यते ॥१०५॥

हे नृप ! भीमसेन को इस तरह विध्वंस उड़ाता देख कर तुम्हारी सेना के वीर चिल्लाने लगे। यह भीमसेन कलिङ्गों के साथ युद्ध करता हुआ काल सा प्रतीत होता था ॥१०५॥

ततः शान्तनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे ।
अभ्ययात्त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः ॥१०६॥

रण में शान्तनु-पुत्र भीष्म, इस कोलाहल को सुनकर अपनी सेना का व्यूह बनाकर बड़ी शीघ्रता से भीम के पास पहुंचा ॥१०६

तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥१०७॥

सुवर्ण से अलंकृत भीष्म के रथ की ओर सात्यकि, भीमसेन और पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न दौड़े ॥१०७॥

परिवार्य तु ते सर्वे गाङ्गेयं तरसा रणे ।
त्रिभिस्त्रिभिः शरैर्घोरैर्भीष्ममानर्च्छुरोजसा ॥१०८॥

इन्होंने वेग से दौड़ कर रणभूमि में गङ्गा-पुत्र भीष्म को घेर लिया और बड़े बल से भीष्म पर तीन २ घोर बाण छोड़े ॥१०८॥

प्रत्यविध्यत तान्सर्वान्पिता देवव्रतस्तव ।
यतमानान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥१०९॥

तुम्हारे पिता देवव्रत ने भी अपने सीधे जाने वाले बाणों से इन उद्योगशील महा धनुर्धरों को अपने घोर बाणों से बेंध डाला।

ततः शरसहस्रेण सन्निवार्य महारथान् ।
हयान्काञ्चनसन्नाहान्भीमस्य न्यहनच्छरैः ॥११०॥

भीष्म ने सहस्रों बाणों से इन महारथियों को रोक कर तीखे बाणों से भीम के सुवर्ण के कवच पहिने हुए अश्वों को मार दिया ॥११०॥

हताश्वे स रथे तिष्ठन्भीमसेनः प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप तरसा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥१११॥

प्रतापी भीमसेन अश्वों के मारे जाने पर भी उसी रथ में बैठे रहे और उन्होंने गङ्गा-पुत्र भीष्म के रथ पर बड़े वेग से एक शक्ति फैंकी ॥१११॥

अप्राप्तामथ तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव ।
त्रिधा चिच्छेद समरे सा पृथिव्यामशीर्यत ॥११२॥

यह शक्ति अभी आकर भी नहीं पहुंची थी, कि तुम्हारे पिता देवव्रत ने इसके तीन टुकड़े करके रणभूमि में नीचे डाल दिया।

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य बलवान्गदाम् ।
भीमसेनस्ततस्तूर्णं पुप्लुवे मनुजर्षभ ॥११३॥

हे मनुजर्षभ ! बलवान् भीमसेन ने छींके पर रखी रहने वाली लोहे की भारी गदा उठा कर बड़ी शीघ्रता से भीष्म पर फैंकी ॥११३॥

सात्यकोऽपि ततस्तूर्णं भीमस्य प्रियकाम्यया ।
गाङ्गेयसारथिं तूर्णं पातयामास सायकैः ॥११४॥

सात्यकि ने भी भीम की सहायता में इतने शीघ्रगामी बाण छोड़े, कि जिनसे भीष्म का सारथि गिरा लिया गया ॥११४॥

भीष्मस्तु निहते तस्मिन्सारथौ रथिनां वरः ।
वातायमानैस्तैरश्वैरपनीतो रणाजिरात् ॥११५॥

रथियों में श्रेष्ठ, भीष्म को भी सारथि के मारे जाने से पवन के समान वेग वाले अश्व, रणाङ्गण से बाहर लेकर चलते बने ॥११५॥

भीमसेनस्ततो राजन्नपयाते महाव्रते ।
प्रजज्वाल यथा वह्निर्दहन्कक्षमिवैधितः ॥११६॥

हे राजन् ! इस प्रकार महाव्रती भीष्म के भी रण-भूमि से हट जाने पर तृणसमूह (बागर) को जलाते हुए अग्नि के तुल्य, भीमसेन जल उठे ।॥११६॥

स हत्वा सर्वकालिङ्गान्सेनामध्ये व्यतिष्ठत ।
नैनमभ्युत्सहन्केचित्तावका भरतर्षभ ॥११७॥

हे भरतर्षभ ! इस भीम ने सारे कलिङ्गों को मार कर ठिकाने लगा दिया और आप सेना के मध्य में खड़ा हो गया। हे राजन् ! आपकी सेना में किसी वीर का साहस नहीं हुआ, जो इससे लड़ने को आगे बढ़ता ॥११७॥

धृष्टद्युम्नस्तमारोप्य स्वरथे रथिनां वरः ।
पश्यतां सर्वसैन्यानामपोवाह यशस्विनम् ॥११८॥

रथियों में श्रेष्ठ, धृष्टद्युम्न, महायशस्वी भीम को अपने रथ पर बैठाकर सारी सेना के देखते २ लेकर चल दिए ॥११८॥

सम्पूज्यमानः पाञ्चाल्यैर्मत्स्यैश्च भरतर्षभ ।
धृष्टद्युम्नं परिष्वज्य समेयादथ सात्यकिम् ॥११९॥

हे भरतर्षभ ! पाञ्चाल और मत्स्य वीरों से पूजित हुए भीमसेन, धृष्टद्युम्न से आलिङ्गन करके सात्यकि से मिलने को आगे बढ़े ॥११९॥

अथाऽब्रवीद्भीमसेनं सात्यकिः सत्वविक्रमः ।
प्रहर्षयन्यदुव्याघ्रो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥१२०॥

अब भीमसेन से महापराक्रमी यदुवंशश्रेष्ठ, सात्यकि ने हर्ष में भरकर धृष्टद्युम्न के देखते २ कहा—॥१२०॥

दिष्ट्या कलिङ्गराजश्च राजपुत्रश्च केतुमान् ।
शक्रदेवश्च कालिङ्गः कलिङ्गाश्च मृधे हताः ॥१२१॥

हे भीमसेन ! कलिङ्गराज, उसके पुत्र केतुमान और शक्रदेव तथा अन्य कलिङ्ग वीर आपने युद्ध में मार लिए-इसका हमें बड़ा हर्ष और आपको धन्यवाद है ॥१२१॥

स्वबाहुबलवीर्येण नागाश्वरथसंकुलः ।

महापुरुषभूयिष्ठो धीरयोधनिषेवितः ॥१२२॥

महाव्यूहः कलिङ्गानामेकेन मृदितस्त्वयाः ।

हाथी, अश्व और रथों से भरी हुई, महावीर पुरुषों से समन्वित, धीर योद्धाओं से युक्त, कलिङ्गों की महासेना को आपने अपने बाहुबल के आश्रय से अकेले ही ने मार लिया-यह कितने आनन्द की बात है ॥१२२॥

एवमुक्त्वा शिनेर्नप्ता दीर्घबाहुररिन्दम ॥१२३॥

रथाद्रथमभिद्रुत्य पर्यष्वजत पाण्डवम् ।

हे अरिन्दम ! शिनि के नप्ता, सात्यकि, इतना कहकर और अपने रथ से उतर कर तथा भीमसेन के रथ पर चढ़कर दीर्घबाहु भीमसेन से गाढ़ आलिङ्गन करने लगे ॥१२३॥

ततः स्वरथमास्थाय पुनरेव महारथः ॥

तावकानवधीत्क्रुद्धो भीमस्य बलमादधत् ॥१२४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसे कलिङ्गराजवधे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

इसके अनन्तर फिर अपने रथ पर चढ़कर महारथी सात्यकि, भीम के बल को बढ़ाने के निमित्त क्रुद्ध होकर तुम्हारे वीरों का नाश करने लगे ॥१२४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में युद्ध के द्वितीय दिवस में कलिङ्गराज के वध का चौवनवां अध्याय समाप्त हुआ।



पचपनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत।
रथनागाश्वपत्तीनां सादिनां च महाक्षये ॥१॥
द्रोणपुत्रेण शल्येन कृपेण च महात्मना।
समसज्जत पाञ्चाल्यस्त्रिभिरेतैर्महारथैः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे भारत! इस दिवस के प्राय समाप्ति हो जाने पर और रथी, हाथी, अश्व तथा पैदल सैनिकों और अश्वारोहियों के नष्ट हो जाने पर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, शल्य और महावीर कृपाचार्य इन तीनों महारथियों से पञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न युद्ध करने लगे ॥१-२॥

स लोकविदितानश्वान्निजघान महाबलः।
द्रौणेः पाञ्चालदायादः शितैर्दशभिराशुगैः ॥३॥

इस महाबली पाञ्चाल-पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के लोक प्रसिद्ध अश्वों को अपने तीक्ष्ण दश बाणों से मार गिराया।

ततः शल्यरथं तूर्णमास्थाय हतवाहनः।
द्रौणिः पाञ्चालदायादमभ्यवर्षदथेषुभिः ॥४॥

जब अश्वत्थामा के अश्व मारे गए-तो वे झटपट शल्य के रथ पर चढ़ गए और पाञ्चाल-पुत्र धृष्टद्युम्न पर बाणों की वर्षा करने लगे ॥४॥

धृष्टद्युम्नं तु संयुक्तं द्रौणिना वीक्ष्य भारत।
सौभद्रोऽभ्यपतत्तूर्णं विकिरन्निशिताञ्शरान् ॥५॥

हे भारत! जब अभिमन्यु ने धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा के साथ युद्ध करते देखा–तो वह बड़े तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करता हुआ, बड़े वेग से वहां आया ॥५॥

स शल्यं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः।
अश्वत्थामानमष्टाभिर्विव्याध पुरुषर्षभः ॥६॥

इस महावीर अभिमन्यु ने पच्चीस बाण से शल्य, नौ बाणों से कृप और आठ बाण से अश्वत्थामा को बींध दिया ॥६॥

आर्जुनिं तु ततस्तूर्णं द्रौणिर्विव्याध पत्रिणा।
शल्योऽथ दशभिश्चैव कृपश्च निशितैस्त्रिभिः ॥७॥

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु को द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने भी अपने बाणों से आहत किया। शल्य ने दश और कृप ने तीन तीखे बाण अभिमन्यु पर छोड़े ॥७॥

लक्ष्मणस्तव पौत्रस्तु सौभद्रं समवस्थितम् ।
अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्धमवर्तत ॥८॥

तुम्हारा पौत्र लक्ष्मण भी बड़े हर्ष से सुभद्रा-पुत्र, युद्ध में डटे हुए, अभिमन्यु के सामने जा जुटा। इसके बाद इनका युद्ध होने लगा।

दौर्योधनिः सुसंक्रुद्धः सौभद्रं परवीरहा ।
विव्याध समरे राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥६॥

हे राजन्! क्रोध में भरे हुए, शत्रुनाशक, दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण ने भी रणभूमि में सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को बाणों से बींध दिया, जो बड़ी ही अद्भुत घटना थी ॥६॥

अभिमन्युः सुसंक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ ।
शरैः पञ्चाशतै राजन्क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत ॥१०॥

हे भरतर्षभ! अभिमन्यु को भी क्रोध चढ़ आया और उसने अपने भाई लक्ष्मण को अपने हाथ के कौशल (फुर्तीलेपन) से पचास बाणों से बींध दिया ॥१०॥

लक्ष्मणोऽपि पुनस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा ।
मुष्टिदेशे महाराज ततस्ते चुक्रुशुर्जनाः ॥११॥

हे महाराज! लक्ष्मण ने भी अपने बाण से अभिमन्यु का धनुष मुट्ठी के पास से काट डाला। इससे वीर सैनिकों में कोलाहल मच गया ॥११॥

तद्विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
अन्यदादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरम् ॥१२॥

शत्रुवीर नाशक सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने उस कटे हुए धनुष को फैंककर वेग से वाण फैंकने वाले, अद्भुत अन्य धनुष को उठाया ॥१२॥

तौ तत्र समरे युक्तौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
अन्योन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥१३॥

इन दोनों-पुरुष प्रवीर, अभिमन्यु और लक्ष्मण, एक दूसरे के प्रहार का बदला चुकाने का बड़ा ही प्रयत्न कर रहे थे। इन्होंने अपने २ तीक्ष्ण वाणों से एक दूसरे पर प्रहार किया ॥१३॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथम् ।
पीडितं तव पौत्रेण प्रायात्तत्र प्रजेश्वरः ॥१४॥

जब राजा दुर्योधन ने देखा, कि तुम्हारे पौत्र अभिमन्यु ने महारथी-पुत्र लक्ष्मण को पीड़ित कर दिया है, तो राजा दुर्योधन उसकी सहायता को पहुंचे ॥१४॥

सन्निवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः ।
आर्जुनिं रथवंशेन समन्तात्पर्यवारयन् ॥१५॥

ज्यों ही तुम्हारा पुत्र दुर्योधन वहां पहुंचा, त्यों ही सारे महारथी भी वहीं जा पहुंचे और सबने मिलकर अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु को घेर लिया ॥१५॥

स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः ।
न स्म प्रव्यथते राजन्कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥१६॥

हे राजन्! युद्ध में अत्यन्त दुर्जय योद्धाओं से घिर कर भी अभिमन्यु कुछ चिन्तातुर नहीं हुआ, क्योंकि वह स्वयं अर्जुन के समान पराक्रमी था ॥१६॥

सौभद्रमथ संसक्तं दृष्ट्वा तत्र धनञ्जयः।
अभिदुद्राव वेगेन त्रातुकामः स्वमात्मजम् ॥१७॥

जब अर्जुन ने देखा, कि अभिमन्यु रणभूमि में महारथियों से घिर गया है-तो वह अपने पुत्र की रक्षा के लिए बड़े वेग से वहां पहुंचा ॥१७॥

ततः सरथनागाश्वा भीष्मद्रोणपुरोगमाः।
अभ्यवर्तन्त राजानः सहिता सव्यसाचिनम् ॥१८॥

अब रथ, हाथी और अश्वों की सेना तथा भीष्म और द्रोण आदि अन्य महारथी राजा भी इकट्ठे ही सव्यसाची अर्जुन की ओर दौड़े ॥१८॥

उद्धूतं सहसा भौमं नागाश्वरथपत्तिभिः।
दिवाकररथं प्राप्य रजस्तीव्रमदृश्यत ॥१९॥

हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से उठायी हुई, पृथ्वी की तीव्र धूलि आकाश में इतनी छा गई, कि उसने सूर्य मण्डल को ढ़क दिया, जिससे सूर्य दिखाई नहीं पड़ता था ॥१९॥

तानि नागसहस्राणि भूमिपालशतानि च।
तस्य बाणपथं प्राप्य नाऽभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥२०॥

ये सहस्रों हाथी और सैंकड़ों वीर राजा, अर्जुन के बाणों के मार्ग में आकर अर्जुन के सामने आने में समर्थ नहीं होते थे।

प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः।
कुरूणां चाऽनयस्तीव्रः समदृश्यत दारुणः ॥२१॥

इस समय सारे सैनिक शब्द कर रहे थे और प्रत्येक दिशा में अन्धेरा छा गया था। कुरुओं की घोर अनीति का परिमाण यह युद्ध, बड़ा विकराल दृष्टि आ रहा था ॥२१॥

नाऽप्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न च भास्करः।
प्रजज्ञे भरतश्रेष्ठ शरसङ्घैः किरीटिनः ॥२२॥

हे भरतश्रेष्ठ ! किरीटधारी अर्जुन के बाणों के छा जाने से आकाश, दिशा, भूमि और सूर्य कोई भी दिखाई नहीं देता था।

सादिता रथनागाश्च हताश्वा रथिनो रणे।
विप्रद्रुतरथाः केचिद् दृश्यन्ते रथयूथपाः ॥२३॥

इस रण में रथी और हाथी मारे गए, अनेक रथियों के अश्व नष्ट हो गए और कुछ रथियों के यूथपति भी अपने २ रथों को लेकर रणभूमि से इधर उधर खसक गए ॥२३॥

विरथा रथिनश्चाऽन्ये धावमानाः समन्ततः।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते सायुधाः साङ्गदैर्भुजैः ॥२४॥

अनेक रथी, रथ विहीन होकर इधर उधर दौड़ने लगे। इस रणभूमि में जिधर देखो-उधर ही अङ्गदों (बाजूबन्दों) से विभूपित कटी हुई भुजाएँ ही दिखाई पड़ती थी ॥२४॥

हयारोहा हयांस्त्यक्त्वा गजरोहाश्च दन्तिनः।
अर्जुनस्य भयाद्राजन्समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ॥२५॥

हे राजन्! अश्वों के सवार, अश्व और हाथियों के सवार हाथियों को छोड़ कर अर्जुन के भय से जहां तहां भाग गए ॥२५॥

रथेभ्यश्च गजेभ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनसायकैः ॥२६॥

हे नराधिप! इस समय अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से रथ, गज और अश्वों के ऊपर से उनके सवार राजा लोग गिरते या गिराये जाते ही दृष्टि आते थे ॥२६॥

सगदानुद्यतान्बाहून्सखड्गांश्च विशाम्पते।
सप्रासांश्च सतूणीरान्सशरान्सशरासनान् ॥२७॥
सांकुशान्सपताकांश्च तत्र तत्राऽर्जुनो नृणाम्।
निचकर्त शरैरुग्रै रौद्रं वपुरधारयत् ॥२८॥

हे विशाम्पते! महारथी अर्जुन ने गदा, खड्ग, प्रास, तूणीर, शर, शरासन, अंकुश, पताका आदि धारण करके ऊपर उठी हुई वीरों की भुजाओं को अपने उग्र बाणों से काट गिराया। इस समय अर्जुन का रूप बड़ा ही रौद्र हो रहा था ॥२७-२८॥

परिघाणां प्रदीप्तानां मुद्गराणां च मारिष।
प्रासानां भिन्दपालानां निस्त्रिंशानां च संयुगे ॥२९॥
परश्वधानां तीक्ष्णानां तोमराणां च भारत।
वर्मणां चाऽपविद्धानां काञ्चनानां च भूमिप ॥३०॥

ध्वजानां चर्मणां चैव व्यजनानां च सर्वशः ।
छत्राणां हेमदण्डानां तोमराणां च भारत ॥३१॥
प्रतोदानां च योक्त्राणां कशानां चैव मारिष ।
राशयः स्मात्र दृश्यन्ते विनिकीर्णा रणक्षितौ ॥३२॥

हे राजन् ! इस समय रणभूमि में जहां देखो, वहीं पर बिखरे हुए, प्रदीप्त परिघ, मुद्गर, प्रास, भिन्दिपाल, खड्ग, तीक्ष्ण परशु, तोमर, छिन्न भिन्न सुवर्ण के कवच, प्रतोद, (सांटे) योक्त्र, (मध्य वन्धन रस्सी, कशा (चाबुक) आदिका समूह पड़ा दिखाई देता था।

नाऽऽसीत्तत्र पुमान्कश्चित्तव सैन्यस्य भारत ।
योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात्कथश्चन ॥३३॥

हे भारत ! इस समय तुम्हारी सेना में कोई ऐसा शूरवीर दिखाई नहीं दिया-जो इस युद्ध में शूरवीर अर्जुन के सन्मुख पहुंच पाता ॥३३॥

यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशाम्पते ।
स संख्ये विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते ॥३४॥

हे विशाम्पते ! इस समय तो जो भी महारथी साहस कर के अर्जुन के सन्मुख पहुंच जाता था, वही युद्ध में तीक्ष्ण बाणों से परलोक भेज दिया जाता था ॥३४॥

तेषु विद्रवमाणेषु तव योधेषु सर्वशः ।
अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ॥३५॥

जब सब ओर तुम्हारे योद्धाओं में भगदड़ पड़ गई, तो अर्जुन और श्रीकृष्ण ने अपने २ शङ्ख बजाए ॥३५॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पिता देवव्रतस्तव ।
अब्रवीत्समरे शूरं भारद्वाजं स्मयन्निव ॥३६॥

जब इस प्रकार युद्ध में तुम्हारी सेना को भागती हुई तुम्हारे पिता देवव्रत ने देखा, तो मुस्कुराकर भरद्वाजवंशज, शूरवीर द्रोण से कहा ॥३६॥

एष पाण्डुसुतो वीर कृष्णेन सहितो बली ।
तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद्धनञ्जयः ॥३७॥

हे वीर ! यह पाण्डु-पुत्र बलवान् अर्जुन, श्रीकृष्ण को सारथि बनाकर सेना का विध्वंस कर रहा है । यह धनञ्जय अर्जुन जितना करे उतना ही इसके लिए थोड़ा है ॥३७॥

न ह्येष समरे शक्यो विजेतुं हि कथञ्चन ।
यथाऽस्य दृश्यते रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥३८॥

इसको युद्ध में कोई भी जीतने में समर्थ नहीं है । इसका तो इस समय रूप ही कालान्तक और यम के समान भयानक दिखाई दे रहा है ॥३८॥

न निवर्तयितुं चापि शक्येयं महती चमूः ।
अन्योन्यप्रेक्षया पश्य द्रवतीयं वरूथिनी ॥३९॥

यह बड़ी भारी सेना विचलित होकर भाग खड़ी हुई है, अब इसका रोकना भी कठिन है । यह सेना एक को देखकर दूसरी भी भाग खड़ी होती है ॥३९॥

एष चाऽस्तं गिरिश्रेष्ठं भानुमान्प्रतिपद्यते ।
चक्षूंषि सर्वलोकस्य संहरन्निव सर्वथा ॥४०॥

अब अस्ताचल पर सूर्य भी पहुंच गया है, जो सारे संसार के नेत्रों को इस दृश्य के देखने से मानो हटा रहा है ॥४०॥

तत्राऽवहारं सम्प्राप्तं मन्येऽहं पुरुषर्षभ ।
श्रान्ता भीताश्च नो योधा न योत्स्यन्ति कथञ्चन ॥४१

हे पुरुषर्षभ ! अब तो मुझे भी अपनी सेना को पीछे हटाकर सारा युद्ध बन्द कर देना चाहिए । हमारे वीर थक रहे हैं और भयभीत भी हो रहे हैं । इस समय कभी नहीं लड़ेंगे ॥४१॥

एवमुक्त्वा ततो भीष्मो द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
अवहारमथो चक्रे तावकानां महारथः ॥४२॥

महारथी भीष्म ने आचार्य-प्रवीर द्रोण से इतना कहकर तुम्हारी सेना को युद्ध से पृथक् हो जाने की आज्ञा की ॥४२॥

ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत ।
अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत्सन्ध्याकाले च वर्तति ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसावहारे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

हे भारत ! अब तुम्हारी और पाण्डव दोनों की सेनाएँ युद्ध से पीछे हट गई । सूर्य अस्त हो चुका था और सन्ध्या का काल आ गया था ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में द्वितीय दिवस के युद्ध की समाप्ति का पचपनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

छप्पनवां अध्याय

प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाऽथ भारत ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे भारत! जब रात समाप्त हो गई और प्रातःकाल हुआ, तो शान्तनु-पुत्र भीष्म ने सेना के सञ्चालन की आज्ञा दी ॥१॥

गारुडं च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा।
पुत्राणां ते जयाकांक्षी भीष्मः कुरुपितामहः ॥२॥

अब शान्तनु-पुत्र भीष्म ने गारुड़ नामक महाव्यूह बनाया। कुरुवंश पितामह भीष्म, तुम्हारे पुत्रों की विजय के लिए बड़ा ही प्रयत्न कर रहे थे ॥२॥

गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तत्र।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः ॥३॥

गरुण के मुख भाग पर स्वयं देवव्रत भीष्म तुम्हारे पिता रहे। उसकी दोनों आंख द्रोणाचार्य और यदुवंशश्रेष्ठ कृतवर्मा थे।

अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ।
त्रैगर्त्तैरथ कैकेयैर्वाटधानैश्चसंयुगे ॥४॥

भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष।
मद्रकः सिन्धुसौवीरास्तथा पाञ्चनदाश्च ये ॥५॥

जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां सन्निवेशिताः ।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ॥६॥

हे राजन् ! इसके शीर्ष स्थान पर अश्वत्थामा और कृप नियुक्त किये गए । त्रिगर्त, केकय और वाटधान वीरों के साथ भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त, मद्रक सिन्धु सौवीर, पञ्चनद (पञ्जाब) के वीरों के सहित जयद्रथ इस गरुड़ पक्षी की ग्रीवा में लगाये गए । इसकी पीठ पर अपने भाइयों और अनुचरों के साथ राजा दुर्योधन नियुक्त हुए ॥४-६॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च शकैः सह ।
पुच्छमासन्महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥७॥

हे महाराज ! अवन्ति देश के वीर, विन्द और अनुविन्द तथा शकों के साथ कम्बोजाधिपति सुदक्षिण एवं सारे शूरसेन वीर इसकी पूंछ पर स्थित हुए ॥७॥

मागधाश्च कलिङ्गाश्च दासेरकगणैः सह ।
दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥८॥
कारूषाश्च विकुञ्जाश्च मुण्डाः कुण्डीवृषास्तथा ।
बृहद्बलेन सहिता वामं पार्श्वमवस्थिताः ॥९॥

मगध, कलिङ्ग देश के वीर और दासेरक इस महाव्यूह के दाँये पक्ष पर थे । करूष, विकुञ्ज, मुण्ड, कुण्डीवृष वीर, बृहद्बल के साथ वामपार्श्व में खड़े हुए ॥८-९॥

व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं सव्यसाची परन्तपः।

धृष्टद्युम्नेन सहितः प्रत्यव्यूहत संयुगे ॥१०॥

सव्यसाची, परन्तप अर्जुन नें जब कौरवों की सेना को व्यूह बनाकर खड़ी हुई देखी-तो धृष्टद्युम्न को साथ लेकर अपनी सेना का भी रणभूमि में व्यूह बनाया ॥१०॥

अर्धचन्द्रेण व्यूहेन व्यूहन्तमतिदारुणम्।

दक्षिणं शृङ्गमास्थाय भीमसेनो व्यरोचत ॥११॥

नानाशस्त्रौघसम्पन्नैर्नानादेश्यैर्नृपैर्वृतः।

तदन्वेव विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥१२॥

अर्जुन ने गरुड़ महाव्यूह के प्रति पत्त (मुकाबिले) में अर्धचन्द्र नामक व्यूह बनाया, जो व्यूह बड़ा दारुण है। इसके दाँयें कोर पर स्थित हुआ, भीमसेन सुशोभित होने लगा। इस समय भीमसेन के साथ अनेक शस्त्रसमूह धारण करने वाले, अनेक देशों के राजा थे। इनके पीछे महारथी द्रुपद और विराट थे।

तदनन्तरमेवाऽऽसीन्नीलो नीलायुधैः सह।

नीलादनन्तरश्चैव धृष्टकेतुर्महाबलः ॥१३॥

इनके पीछे बड़े कठोर नीले शस्त्र धारण करके नील राजा थे। नील के बाद महाबली राजा धृष्टकेतु थे ॥१३॥

चेदिकाशिकरूषैश्च पौरवैरपि संवृतः।

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ॥१४॥

मध्ये सैन्यस्य महतः स्थिता युद्धाय भारत ।
तत्रैव धर्मराजोऽपि गजानीकेन संवृतः ॥१५॥

चेदि काशि और करूष देश के वीर तथा कौरवों के साथ धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पाञ्चाल वीर और प्रभद्रक थे। हे भारत! ये सब इस विशाल सेना के मध्य में स्थित हो गए। यहीं पर धर्मराज भी हाथियों की सेना के साथ स्थित थे ॥१४-१५॥

ततस्तु सात्यकी राजन्द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
अभिमन्युस्ततः शूर इरावांश्च ततः परम् ॥१६॥
भैमसेनिस्ततो राजन्केकयाश्च महारथाः ।

हे राजन्! इसके अनन्तर सात्यकि, द्रौपदी के पांच पुत्र, शूरवीर अभिमन्यु और इसके पास ही दूसरा अर्जुन-पुत्र इरावान् था। हे राजन्! इसके पीछे भीमसेन-पुत्र घटोत्कच और केकय देश के महारथी थें ॥१६॥

ततोऽभूद् द्विपदां श्रेष्ठो वामं पार्श्वमुपाश्रितः ॥१७॥
सर्वस्य जगतो गोप्ता गोप्ता यस्य जनार्दनः ।

इसके पीछे वाम पार्श्व पर मनुष्यों से सर्व श्रेष्ठ वीर सारे जगत् के रक्षक अर्जुन थे, जिनकी सहायता में जनार्दन श्रीकृष्ण थे

एवमेतं महाव्यूहं प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ॥१८॥
वधार्थं तव पुत्राणां तत्पक्षं ये च सङ्गताः ।

इस प्रकार पाण्डवों ने भी अर्धचन्द्र नामक महाव्यूह तुम्हारे पुत्रों और उनके सहायक राजाओं के वध के लिए बनाया ॥१८॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥१९॥
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ।

अब युद्ध चल पड़ा, जिसमें रथी और गजपतियों की टक्कर होने लगी। तुम्हारी सेना और पाण्डवों की सेना के वीर एक दूसरे को मारने लगे ॥१९॥

हयौघाश्च रथौघाश्च तत्र तत्र विशाम्पते ॥२९॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त निघ्नन्तस्ते परस्परम् ।

हे विशाम्पते ! इस समय अश्व और रथों के समूह ही दौड़ते दिखाई देते थे और ये अश्वारोही तथा रथी एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे ॥२०॥

धावतां च रथौघानां निघ्नतां च पृथक्पृथक् ॥२१॥
बभूव तुमुलः शब्दो विमिश्रो दुन्दुभिस्वनैः ।

रथ समूहों के दौड़ते और पृथक् २ प्रहार करते हुए, इन वीरों की गर्जना दुन्दुभियों के शब्दों के साथ बहुत विशाल हो रही थी।

दिवस्पृङ् नरवीराणां निघ्नतामितरेतरम् ॥
सम्प्रहारे सुतुमुले तव तेषां च भारत ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे परस्परव्यूहरचनायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

हे भारत ! तेरे और पाण्डवों के इस घोर युद्ध में एक दूसरे को मारने वाले नरवीरों का यह महाघोर शब्द आकाशमें छा गया ।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में युद्ध के तृतीय दिवस में परस्पर व्यूह रचना का छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ

सत्तावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो व्यूढेष्वनीकेषु तावकेषु परेषु च ।
धनञ्जयो रथानीकमवधीत्तव भारत ॥१॥

शरैरतिरथो युद्धे दारयन्रथयूथपान् ।
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! जब तुम्हारी और पाण्डवों की सेना का इस तरह व्यूह बना लिया गया-तो अतिरथी अर्जुन, अपने बाणों से रथियों के यूथपति को पीड़ित करता हुआ रथियों की सेना को काट २ कर गिराने लगा । ये इस समय इस तरह काट २ कर फैंके जा रहे थे, जैसे प्रलय काल में काल संसार का नाश कर रहा हो ॥१-२॥

धार्तराष्ट्रा रणे यत्नात्पाण्डवान्प्रत्ययोधयन् ।
प्रार्थयाना यशो दीप्तं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥३॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि भी बड़े प्रयत्न से पाण्डवों से युद्ध कर रहे थे। ये भी उज्ज्वल यश के आकांक्षी थे। इन्होंने भी यही सोच लिया था, कि अब युद्ध के विना मृत्यु से नहीं हटेंगे

एकाग्रमनसो भूत्वा पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
बभञ्जुर्बहुशो राजंस्ते चाऽसज्जन्त संयुगे ॥४॥

हे राजन् ! कौरवगण भी एकाग्र मन होकर पाण्डवों की सेना का विध्वंस करने लगे। वे भी बड़े ध्यान से युद्ध में जुट गए ॥४॥

द्रवद्भिरथ भग्नैश्च परिवर्तद्भिरेव च ।
पाण्डवैः कौरवेयैश्च न प्राज्ञायत किश्चन ॥५॥

बिखर कर भागती हुई और फिर लौटती हुई, सेना में कौरव वीर और पाण्डवों के वीरों की शीघ्रता से पहिचान नहीं हो पाती थी ॥५॥

उदतिष्ठद्रजो भौमं छादयानं दिवाकरम् ।
न दिशः प्रदिशो वापि तत्र हन्युः कथं नराः ॥६॥

इस समय पृथिवी से इतनी धूलि उठी कि जिससे सूर्य छुप गया, न कोई दिशा प्रदिशाओं का ज्ञान कर पाता था, फिर कौन वीर किसको मार सकता था ॥६॥

अनुमानेन संज्ञाभिर्नामगोत्रैश्च संयुगे ।
वर्तते च तथा युद्धं तत्र तत्र विशाम्पते ॥७॥

हे विशाम्पते ! ध्वजा आदि चिह्नों के अनुमान, संकेत और नाम गोत्रों का उच्चारण कर २ के वीर, इस युद्ध में जहां तहां लड़ रहे थे ॥७॥

न व्यूहो भिद्यते तत्र कौरवाणां कथञ्चन ।
रक्षितः सत्यसन्धेन भारद्वाजेन संयुगे ॥८॥

कौरवों के व्यूह की भरद्वाज-वंशोत्पन्न, सत्य प्रतिज्ञ, द्रोणाचार्य रक्षा कर रहे थे, इससे वह किसी भी तरह टूट नहीं पाता था ।

तथैव पाण्डवानां च रक्षितः सव्यसाचिना ।
नाऽभिद्यत महाव्यूहो भीमेन च सुरक्षितः ॥९॥

इसी तरह पाण्डवों के व्यूह की रक्षा सव्यसाची, अर्जुन और भीमसेन कर रहे थे, इससे वह भी नहीं टूट पाता था ॥९॥

सेनाग्रादपि निष्पत्य प्रायुध्यंस्तत्र मानवाः ।
उभयोः सेनयो राजन्व्यतिपत्तरथद्विपाः ॥१०॥

हे राजन् ! सेना के अग्रभाग से निकल २ कर दोनों सेनाओं के रथी और गजपति वीर परस्पर युद्ध कर रहे थे ॥१०॥

हयारोहैर्हयारोहाः पात्यन्ते स्म महाहवे ।
ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च प्रासैरपि च संयुगे ॥११॥

इस युद्ध में अश्वारोही, चमकदार ऋष्टि और प्रास आदि से अन्य विरोधी अश्वारोहियों को गिरा रहे थे ॥११॥

रथी रथिनमासाद्य शरैः कनकभूषणैः ।
पातयामास समरे तस्मिन्नतिभयङ्करे ॥१२॥

रथी योद्धा, विरोधी रथी के सन्मुख पहुंच कर सुवर्ण जटित बाणों से इस अति भयङ्कर युद्ध में उनको धराशायी बना रहे थे।

गजारोहा गजारोहान्नाराचशरतोमरैः।
संसक्तान्पातयामासुस्तत्र तेषां च सर्वशः ॥१३॥

हे भरतर्षभ ! गजपति युद्ध के लिए उपस्थित, विरोधी गजपतियों को नाराच, शर और तोमर आदि भिन्न २ प्रकार के बाणों से एक दूसरे को गिरा रहे थे। इस प्रकार दोनों सेना के महारथी कर रहे थे ॥१३॥

कश्चिदुत्पत्य समरे वरवारणमास्थितः।
केशपक्षे परामृश्य जहार समरे शिरः ॥१४॥

उत्तम हाथी के ऊपर बैठा हुआ कोई वीर, युद्ध में अचानक कूद कर और विरोधी वीर के बाल पकड़ कर उसका शिर काट लेते थे ॥१४॥

अन्ये द्विरददन्ताग्रनिर्भिन्नहृदया रणे।
वेमुश्च रुधिरं वीरा निःश्वसन्तः समन्ततः ॥१५॥

कुछ वीरों का हृदय हाथी के दांतों के अग्रभाग से फट गया, इससे वे रक्त वमन करते और तीव्र श्वास लेकर इधर उधर दौड़ते थे ॥१५॥

कश्चित्करिविषाणस्थो वीरो रणविशारदः।
प्रावेपच्छक्तिनिर्भिन्नो गजशिक्षास्त्रवेदिना ॥१६॥

कोई रण विशारद वीर हाथी के दांत पर बैठा था, वह गज शिक्षा के जानने वाले अन्य वीर द्वारा शक्ति से भेद कर नीचे गिरा दिया जाता था ॥१६॥

पत्तिसङ्घा रणे पत्तीन्भिन्दिपालपरश्वधैः ।
न्यपातयन्त संहृष्टाः परस्परकृतागसः ॥१७॥

पैदल सैनिकों के संघ रण में भिन्दिपाल, परशु आदि से बड़ी प्रसन्नता के साथ अन्य वीरों को गिरा रहे थे। ये परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने के अपराध करने में नहीं चूकते थे ॥१७॥

रथी च समरे राजन्नासाद्य गजयूथपम् ।
सगजं पातयामास गजी च रथिनां वरम् ॥१८॥

हे राजन्! इस युद्ध में रथ पर बैठ कर युद्ध करने वाला वीर, गज यूथपति के पास पहुंच कर, गज सहित गजपति को मार गिराता था और कहीं पर गजपति, रथी को मार लेता था ॥१८॥

रथिनं च हयारोहः प्रासेन भरतर्षभ ।
पातयामास समरे रथी च हयसादिनम् ॥१९॥

हे भरतर्षभ! कहीं अश्वारोही अपने भाले से रथी को और कहीं पर रथी अश्वारोही को भूमि में गिरा रहा था ॥१९॥

पदाती रथिनं संख्ये रथी चापि पदातिनम् ।
न्यपातयच्छितैः शस्त्रैः सेनयोरुभयोरपि ॥२०॥

इस युद्ध में पैदल सैनिक, रथी को और रथी, अश्वरोही को अपने तीक्ष्ण शस्त्रों से धराशायी कर रहे थे। यह दोनों सेनाओं की दशा थी ॥२०॥

गजारोहा हयारोहान्पातयाश्चक्रिरे तदा ।
हयारोहा गजस्थांश्च तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२१॥

गजारोही, अश्वारोहियों को और अश्वारोही गजपतियों को रणभूमि में गिरा रहे थे, यह बड़ा ही अद्भुत दृश्य था ॥२१॥

गजारोहवरैश्चापि तत्र तत्र पदातयः ।
पातिताः समदृश्यन्त तैश्चापि गजयोधिनः ॥२२॥

कहीं २ गज पर चढ़ने वाले वीरों ने पैदलों को गिराया और पैदलों ने कहीं पर गज योद्धाओं को मार डाला ॥२२॥

पत्तिसङ्घा हयारोहैः सादिसङ्घाश्च पत्तिभिः ।
पात्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥२३॥

पैदल सैनिकों के समूह को अश्वरोहियों ने और अश्वरोहियों के संघ को पैदल सैनिकों ने सैंकड़ों सहस्रों की संख्या में मार डाला

ध्वजैस्तत्राऽपविद्धैश्च कार्मुकैस्तोमरैस्तथा ।
प्रासैस्तथा गदाभिश्च परिघैः कम्पनैस्तथा ॥२४॥
शक्तिभिः कवचैश्चित्रैः कणपैरंकुशैरपि ।
निस्त्रिंशैर्विमलैश्चाऽपि स्वर्णपुङ्खैः शरैस्तथा ॥२५॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च कम्बलैश्च महाधनैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ स्रग्दामैरिव चित्रिता ॥२६॥

हे भरतश्रेष्ठ ! कटी हुई ध्वजा, धनुष, तोमर, प्रास, गदा, परिघ कम्पन, शक्ति, विचित्र २ कवच: मुद्गर, अंकुश, निर्मल खड्ग, स्वर्णजटित बाण, परिस्तोम, (हाथियों की झूल) कुथा, (साधारण

झूल) महामूल्य के कम्बलों से भरी हुई भूमि, मालाओं से सुशोभित हुई सी प्रतीत होती थी ॥२४-२६॥

नराश्वकायैः पतितैर्दन्तिभिश्च महाहवे ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥२७॥

इस महायुद्ध में नर और अश्वों के शरीर तथा जहां तहां पड़े हुए हाथियों के मांस और रक्त से गीली हुई रण भूमि बड़ी दुर्गम हो रही थी ॥२७॥

प्रशशाम रजो भौमं व्युक्षितं रणशोणितैः ।
दिशश्च विमलाः सर्वाः सम्बभूवुर्जनेश्वर ॥२८॥

रण के रक्त से भीग जाने से पृथिवी की धूलि उठना बन्द हो गई। हे जनेश्वर ! इस समय सारी दिशाएँ निर्मल हो रही थी।

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
चिह्नभूतानि जगतो विनाशार्थाय भारत ॥२९॥

हे भारत ! इस समय रण में चारों ओर अगणित कबन्ध उठ रहे थे, जो जगत् के विनाश के चिन्ह थे ॥२९॥

तस्मिन्युद्धे महारौद्रे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रत्यदृश्यन्त रथिनो धावमानाः समन्ततः ॥३०॥

इस महाभयङ्कर दारुण युद्ध के प्रवृत्त होने पर रथी गण इधर उधर दौड़ते दिखाई दे रहे थे ॥३०॥

ततो भीष्मश्च द्रोणश्च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः शल्यश्चापि ससौबलः ॥३१॥
एते समरदुर्धर्षाः सिंहतुल्यपराक्रमाः ।
पाण्डवानामनीकानि बभंजुः स्म पुनः पुनः ॥३२॥

अत्र भीष्म, द्रोण, सिन्धुराज जयद्रथ, पुरामित्र, जय, भोज, शल्य, सुबल-पुत्र शकुनि आदि कौरव महारथी पाण्डवों की सेना का बार २ विनाश कर रहे थे। ये महारथी, समर में दुर्धर्ष और सिंह के तुल्य पराक्रमी थे ॥३१-३२॥

तथैव भीमसेनोऽपि राक्षसश्च घटोत्कचः।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्रौपदेयाश्च भारत ॥३३॥
तावकांस्तव पुत्रांश्च सहितान्सर्वराजभिः।
द्रावयामासुराजौ ते त्रिदशा दानवानिव ॥३४॥

हे भारत! इसी तरह भीमसेन द्वारा राक्षस जाति की माता से उत्पन्न, घटोत्कच, सात्यकि, चेकितान और द्रौपदी के पुत्र आदि पाण्डवों के महारथी, तुम्हारी सेना, तुम्हारे पुत्र और सारे राजाओं को दानवों को देवों की भांति युद्ध में पीडित कर रहे थे ॥३३-३४

तथा ते समरेऽन्योन्यं निघ्नन्तः क्षत्रियर्षभाः।
रक्तोक्षिता घोररूपा विरेजुर्दानवा इव ॥६५॥

ये सारे क्षत्रिय वीर युद्ध में एक दूसरे को मारते हुए रक्त में भीग रहे थे, जिससे इनका बड़ा घोर राक्षसों का सा रूप दिखाई पड़ता था ॥३५॥

विनिर्जित्य रिपून्वीराः सेनयोरुभयोरपि।
व्यदृश्यन्त महामात्रा ग्रहा इव नभस्तले ॥३६॥

दोनों सेना के प्रधान वीर, अपने २ शत्रुओं को जीतते हुए, आकाश में बड़े ग्रहों की भांति इस रण में चमकते हुए दिखाई दे रहे थे ॥३६॥

ततो रथसहस्रेण पुत्रो दुर्योधनस्तव।

अभ्ययात्पाण्डवं युद्धे राक्षसं च घटोत्कचम् ॥३७॥

हे राजन्! अब तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, सहस्रों रथों को लेकर पाण्डवों की ओर के राक्षस घटोत्कच के पास पहुंचे ॥३७॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे महत्या सेनया सह।

द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ प्रत्युद्ययुररिन्दमौ ॥३८॥

इसी तरह सारे पाण्डव भी बड़ी भारी सेना लेकर रण में बड़ी सावधानी से युद्ध करने वाले अरिमर्दन द्रोण और भीष्म के समीप पहुंचे ॥३८॥

किरीटी च ययौ क्रुद्धः समन्तात्पार्थिवोत्तमान्।

आर्जुनिः सात्यकिश्चैव ययतुः सौबलं बलम् ॥३९॥

किरीटी अर्जुन भी क्रोध में भरकर महारथी राजाओं पर टूट पड़ा। अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु और सात्यकि ने शकुनि की सेना पर आक्रमण किया ॥३९॥

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो लोमहर्षणः।

तावकानां परेषां च समरे विजयैषिणाम् ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे संकुलयुद्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अब फिर लोमहर्षण युद्ध उपस्थित हुआ। तुम्हारी सेना और पाण्डवों की सेना के वीर समर में एक दूसरे के वध की अभिलाषा से बुरी तरह प्रहार कर रहे थे ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में तृतीय दिवस के घमसान युद्ध का सत्तावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

अट्ठावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धाः फाल्गुनं वीक्ष्य संयुगे ।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्पर्यवारयन् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अब वे महावीर राजा भी युद्ध भूमि में अर्जुन को देख कर बड़े क्रोध में भर गए और कई हजार रथ लेकर उन्होंने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया ॥१॥

अथैनं रथवृन्देन कोष्ठकीकृत्य भारत ।
शरैः सुबहुसाहस्रैः समन्तादभ्यवारयन् ॥२॥

हे भारत ! इसके अनन्तर रथों के समूह का मण्डल बनाकर कौरव वीरों ने कई सहस्र बाणों से चारों ओर से अर्जुन को पाट दिया ॥२॥

शक्तीश्च विमलास्तीक्ष्णा गदाश्च परिघैः सह ।
प्रासान्परश्वधांश्चैव मुद्गरान्मुसलानपि ॥३॥

इन वीरों ने क्रुद्ध होकर चमकती हुई शक्ति, तीक्ष्ण गदा परिघ, प्रास, परशु, मुद्गर और मुसल आदि शस्त्रों को युद्ध में फाल्गुन के रथ पर बड़े वेग से फैंका ॥३॥

चिक्षिपुः समरे क्रुद्धाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ॥
शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवाऽऽयतिम् ॥४॥

शलभ पक्षियों की भांति पड़ती हुई शस्त्रों की वर्षा को सुवर्ण जटित बाणों से अर्जुन ने रोक दिया ॥४॥

रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः ।
तत्र तल्लाघवं दृष्ट्वा बीभत्सोरतिमानुषम् ॥५॥
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
साधु साध्विति राजेन्द्र फाल्गुनं प्रत्यपूजयन् ॥६॥

हे राजेन्द्र ! अर्जुन का सारे मनुष्यों से अधिक, लाघव (फुर्तीलेपन) को देख कर देव, दानव, गन्धर्व, पिचाश; उरग और राक्षस, साधुवाद की ध्वनि करके अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे ॥५-६

सात्यकिश्चाऽभिमन्युश्च महत्या सेनया वृतौ ।
गान्धारान्समरे शूराञ्जग्मतुः सहसौबलान् ॥७॥

सात्यकि और अभिमन्यु भी बड़ी भारी सेना के साथ सुबल-पुत्र शकुनि के साथ रहने वाले गान्धार वीरों पर झपटे ॥७॥

तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम् ।
तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ॥८॥

अब गान्धार वीर कुपित हो उठे और उन्होंने क्रोध में भर कर वृष्णिवंशोत्पन्न सात्यकि के रथ के युद्ध में अनेक भांति के शस्त्रों से तिल २ के बराबर टुकड़े कर दिये ॥८॥

सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने भयावहे ।
अभिमन्यो रथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ॥६॥

जब शत्रुविजयी सात्यकि ने इस भयानक संग्राम में अपने रथ के टुकड़े देखे, तो वह उस रथ को छोड़ कर बड़ी शीघ्रता से अभिमन्यु के रथ पर चढ़ गया ॥६॥

तावेकरथसंयुक्तौ सौबलेयस्य वाहिनीम् ।
व्यधमेतां शितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१०॥

अब इन दोनों ने एक ही रथ पर चढ़ कर सुबल-पुत्र शकुनि की सेना को झुकी पर्व वाले तीखे बाणों से भेदना आरम्भ किया ।

द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ धर्मराजस्य वाहिनीम् ।
नाशयेतां शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥११॥

इधर द्रोण और भीष्म भी रण में बड़ी चतुराई से युद्ध कर रहे थे । इन्होंने कङ्क पक्षी के पंखों से युक्त तीक्ष्ण बाणों से धर्मराज की सेना का विध्वंस उड़ा दिया ॥११॥

ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
मिषतां सर्वसैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥१२॥

इसके अनन्तर धर्मराज और माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव, सारी सेना के देखते २ द्रोण की सेना पर टूट पड़े ॥१२॥

तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीत्सुदारुणम् ॥१३॥

यहां इनका लोमहर्षण, भयानक युद्ध होने लगा जैसे-पूर्वकाल में बड़ा दारुण देवासुर संग्राम हुआ था ॥१३॥

कुर्वाणौ सुमहत्कर्म भीमसेनघटोत्कचौ ।
दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभावप्यवारयत् ॥१४॥

भीमसेन और घटोत्कच भी एक ओर महाघोर युद्ध कर रहे थे । राजा दुर्योधन ने वहां पहुंच कर उन दोनों को रोका ॥१४॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम हैडिम्बस्य पराक्रमम् ।
अतीत्य पितरं युद्धे यदयुध्यत भारत ॥१५॥

हे भारत ! इस युद्ध में एक बड़ी अद्भुत बात यह थी, कि अपने पिता भीमसेन का भी अतिक्रमण करके घटोत्कच युद्ध कर रहा था ॥१५॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधनममर्षणम् ।
हृद्यविध्यत्पृषत्केन प्रहसन्निव पाण्डवः ॥१६॥

अब पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने कुछ मुस्कराकर असहिष्णु राजा दुर्योधन के वक्षस्थल को एक तीक्ष्ण बाण से बेंध डाला ॥१६॥

ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवरपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥१७॥

राजा दुर्योधन इस भारी प्रहार से बड़ा पीड़ित हुआ। वह रथ के कोने में चुपचाप बैठ गया और इसको अचेतनता (बेहोशी) सी आ गई ॥१७॥

तं विसंज्ञं विदित्वा तु त्वरमाणोऽस्य सारथिः।
अपोवाह रणाद्राजंस्ततः सैन्यमभज्यत ॥१८॥

हे राजन्! जब सारथि ने राजा दुर्योधन को मूर्च्छित देखा, तो वह उसको शीघ्रता से युद्ध से बाहर ले गया, इससे इसकी सेना भी वहां से पीछे हट गई ॥१८॥

ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समन्ततः।
निघ्नन्भीमः शरैस्तीक्ष्णैरनुवव्राज पृष्ठतः ॥१९॥

जब यह कुरुराज की सेना सब ओर भाग रही थी, तो भीमसेन, तीक्ष्ण बाणों से इनको आहत करता हुआ इनके पीछे दौड़ा ॥१९॥

पार्षतश्च रथश्रेष्ठो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः।
द्रोणस्य पश्यतः सैन्यं गाङ्गेयस्य च पश्यतः ॥२०॥
जघ्नतुर्विशिखैस्तीक्ष्णैः परानीकविनाशनैः।

महारथियों में श्रेष्ठ, पर्षतवंशोद्भव, धृष्टद्युम्न, पाण्डु-पुत्र धर्मराज, द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह के देखते २ शत्रुनाशक तीक्ष्ण बाणों से कौरवों की सेना का विनाश करने लगे ॥२०॥

द्रवमाणं तु तत्सैन्यं तव पुत्रस्य संयुगे ॥२१॥
नाऽशक्नुतां वारयितुं भीष्मद्रोणौ महारथौ।

हे राजन्! युद्ध में तुम्हारे पुत्र की सेना जब इस तरह भाग रही थी, तो महारथी भीष्म और द्रोण भी उस भागती हुई सेना के रोकने में समर्थ नहीं हो सके ॥२१॥

वार्यमाणं च भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥२२॥
विद्रवत्येव तत्सैन्यं पश्यतोर्द्रोणभीष्मयोः ।

यद्यपि महावीर भीष्म और द्रोणाचार्य उस सेना को रोक रहे थे, परन्तु द्रोणाचार्य और भीष्म के देखते २ सेना भागी चली जाती थी ॥२२॥

ततो रथसहस्रेषु विद्रवत्सु ततस्ततः ॥२३॥
तावास्थितावेकरथं सौभद्रशिनिपुङ्गवौ ।
सौबलीं समरे सेनां शातयेतां समन्ततः ॥२४॥

जब इस तरह इधर उधर सहस्रों की संख्या में रथ भाग रहे थे, तो उस समय अभिमन्यु और सात्यकि दोनों एक रथ में बैठे गान्धारवीरों की सेना का सब ओर से विनाश कर रहे थे ॥२४॥

शुशुभाते तदा तौ तु शैनेयकुरुपुङ्गवौ ।
अमावास्यां गतौ यद्वत्सोमसूर्यौ नभस्तले ॥२५॥

इस समय युद्ध करते हुए, शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि और कुरुवंशश्रेष्ठ अभिमन्यु इस तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे-अमावस्या के दिन सूर्य और चन्द्रमा साथ आकाश में सुशोभित होते हैं।

अर्जुनस्तु ततः क्रुद्धस्तवसैन्यं विशाम्पते ।
ववर्ष शरवर्षेण धाराभिरिव तोयदः ॥२६॥

हे विशाम्पते ! इस समय अर्जुन बड़ा कुपित हो रहा था। जिस तरह मेघ धाराओं से वर्षा करता है, उसी तरह इसने भी अपने बाणों की झड़ी लगा दी ॥२६॥

वध्यमानं ततस्तत्र शरैः पार्थस्य संयुगे।
दुद्राव कौरवं सैन्यं विषादभयकम्पितम् ॥२७॥

अर्जुन के बाणों से आहत हुई कुरुसेना, विषाद और भय से कांपती हुई, युद्धभूमि में भाग खड़ी हुई ॥२७॥

द्रवतस्तान्समालक्ष्य भीष्मद्रोणौ महारथौ।
न्यवारयेतां संरब्धौ दुर्योधनहितैषिणौ ॥२८॥

इस प्रकार सेना को भागती हुई देखकर महारथी भीष्म और द्रोण ने क्रोध में भर कर सेना को रोका, क्योंकि ये दोनों इस समय दुर्योधन के हित में संलग्न थे ॥२८॥

ततो दुर्योधनो राजा समाश्वस्य विशाम्पते।
न्यवर्तयत तत्सैन्यं द्रवमाणं समन्ततः ॥२९॥

हे विशाम्पते ! इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने इधर उधर भागती हुई अपनी सेना को सान्त्वना देकर फिर युद्ध के लिए लौटा दी ॥२९॥

यत्र यत्र सुतस्तुभ्यं यं यं पश्यति भारत।
तत्र तत्र न्यवर्तन्त क्षत्रियाणां महारथाः ॥३०॥

हे भारत ! जहां २ तुम्हारे पुत्र ने जिस २ महारथी की ओर देखा, वही महारथी क्षत्रिय वहीं से वापिस युद्ध में लौट पड़ा ॥३०

तान्निवृत्तान्समीक्ष्यैव ततोऽन्येऽपीतरे जनाः ।
अन्योन्यस्पर्धया रा : या चाऽवतस्थिरे ॥३१॥

हे राजन्! इन महारथियों को लौटता देखकर अन्य साधारण वीर भी एक दूसरे की स्पर्धा (होड) से या लज्जा से वहीं युद्ध में ठहरे रहे ॥३१॥

पुनरावर्ततां तेषां वेग आसीद्विशाम्पते ।
पूर्यतः सागरस्येव चन्द्रस्योदयनं प्रति ॥३२॥

हे विशाम्पते ! ज्योंही यह कुरु-सेना फिर लौटी, त्योंही इस का वेग फिर चन्द्रोदय के समय उछलते हुए समुद्र के तुल्य प्रतीत होने लगा ॥३२॥

सन्निवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः ।
अब्रवीत्त्वरितो गत्वा भीष्मं शान्तनवं वचः ॥३३॥

राजा सुयोधन, अपने सैनिकों को लौटता हुआ देख कर वह बड़ी शीघ्रता से शान्तनु-पुत्र भीष्म के पास पहुंचा और यह वचन कहने लगा ॥३४॥

पितामह निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि भारत ।
नाऽनुरूपमहं मन्ये त्वयि जीवति कौरव ॥३४॥

द्रोणे चाऽस्त्रविदां श्रेष्ठे सपुत्रे ससुहृज्जने ।
कृपे चैव महेष्वासे द्रवते यद्वरूथिनी ॥३५॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! पितामह ! मैं तुमसे एक बात कहता हूं तुम उसको ध्यान से सुनो। हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! विद्या के जानने वालों

में प्रसिद्ध आप, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, महाधनुर्धर कृपाचार्य तथा अन्य मित्र राजाओं के रहते हुए-यह मेरी सेना भाग खड़ी हुई है, यह आप लोगों के स्वरूप के अनुरूप नहीं है ॥३४-३५॥

न पाण्डवान्प्रतिबलांस्तव मन्ये कथञ्चन ।
तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥३६॥
अनुग्राह्याः पाण्डुसुतास्तव नूनं पितामह ।
यथेमां क्षमसे वीर वध्यमानां वरूथिनीम् ॥३७॥

मैं पाण्डवों को तुम लोगों से बलवान् कभी नहीं मान सकता हूँ और न वे संग्राम में द्रोण तथा द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और कृप से ही बली हैं। हे पितामह! मुझे तो यही प्रतीत होता है, कि तुम पाण्डवों पर अनुग्रह करके उनको नहीं मारते हो। यही कारण है, कि जो इस प्रकार मारी जाती हुई सेना को तुम लोग सह रहे हो ॥३६-३७॥

सोऽस्मि वाच्यस्त्वया राजन्पूर्वमेव समागमे ।
न योत्स्ये पाण्डवान्संख्ये नाऽपि पार्षतसात्यकी ॥३८

हे राजन्! यदि यही बात थी-तो तुमको युद्ध से पूर्व ही कह देना चाहिए था, कि मैं पाण्डव तथा पर्षतवंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न या सात्यकि से युद्ध नहीं करूंगा ॥३८॥

श्रुत्वा तु वचनं तुभ्यमाचार्यस्य कृपस्य च ।
कर्णेन सहितः कृत्यं चिन्तयानस्तदैव हि ॥३९॥

मैंने तुम्हारे, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य तथा कर्ण के वचनों का भरोसा करके ही इस युद्ध को कर्तव्य समझा है ॥३६॥

यदि नाऽहं परित्याज्यो युवाभ्यामिह संयुगे ।
विक्रमेणाऽनुरूपेण युध्येतां पुरुषर्षभौ ॥४०॥

यदि इस संग्राम में आप मेरा परित्याग करना नहीं चाहते हैं, तो तुम दोनों पुरुष-प्रवीर अपने विक्रम के अनुसार युद्ध करो ।'४०॥

एतच्छ्रुत्वा वचो भीष्मः प्रहसन्वै मुहुर्मुहुः ।
अब्रवीत्तनयं तुभ्यं क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥४१॥

हे राजन्! राजा दुर्योधन के ये वचन सुनकर बार २ कृत्रिम रूप मुस्कुराते हुए भीष्म, क्रोध से अपनी आंखें निकाल तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन से कहने लगे ॥४१॥

बहुशोऽसि मया राजंस्तथ्यमुक्तो हितं वचः ।
अजेयाः पाण्डवा युद्धे देवैरपि सवासवैः ॥४२॥

हे राजन्! मैंने तुमसे कई बार सत्य और हितकारी वचन कहा है, कि युद्ध में पाण्डव, देवों के सहित इन्द्र से भी नहीं जीते जा सकतें हैं ॥४२॥

यत्तु शक्यं मया कर्तुं वृद्धेनाऽद्य नृपोत्तम ।
करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं सबान्धवः ॥४३॥

हे नृपोत्तम! तो भी मुझ वृद्ध से जितना हो सकता है, मैं उतना कर रहा हूँ ।'अब तुम आगे भी अपने भाइयों के साथ मेरे पराक्रम को देखतें रहना ॥४३॥

अद्य पाण्डुसुतानेकः ससैन्यान्सह बन्धुभिः ।
सोऽहं निवारयिष्यामि सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४४॥

आज मैं अकेला ही पाण्डु-पुत्रों को उनकी सेना और बान्धवों के साथ रण में पीछे हटा दूंगा और इस बात को सारा संसार देख लेगा ॥४४॥

एवमुक्ते तु भीष्मेण पुत्रास्तव जनेश्वर ।
दध्मुः शङ्खान्मुदा युक्ता भेरीः सञ्जघ्निरे भृशम् ॥४५॥

हे जनेश्वर ! जब भीष्म ने तुम्हारे पुत्रों से इतना कहा, तो उन्होंने अपने २ शंख और भेरी (नगाड़े) बड़े आनन्द में भरकर जोर से बजाए ॥४५॥

पाण्डवा हि ततो राजञ्श्रुत्वा तं निनदं महत् ।
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च मुरजांश्चाऽप्यनादयन् ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे
भीष्मदुर्योधनसंवादेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

हे राजन् ! जब पाण्डवों ने यह शब्दाडम्बर सुना, तो उन्होंने भी अपने २ बड़े २ शंख, भेरी और मुरज आदि वाद्य बजाना आरम्भ किया ॥४६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में तीसरे दिन भीष्म और दुर्योधन के सम्वाद का अट्ठावनवां अध्याय समाप्त हुआ

उनसठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

प्रतिज्ञाते ततस्तस्मिन्युद्धे भीष्मेण दारुणे ।
क्रोधितो मम पुत्रेण दुःखितेन विशेषतः ॥१॥

भीष्मः किमकरोत्तत्र पाण्डवेयेषु भारत ।
पितामहे वा पञ्चालास्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे भरतवंशोत्पन्न, सञ्जय ! इस प्रकार जब मेरे विशेष दुःखी पुत्र द्वारा भीष्म कुपित कर दिया और कोप में भरकर उसने दारुण युद्ध करने की प्रतिज्ञा की, तो फिर उसने पाण्डवों के मध्य में क्या कर दिखाया और पाण्डवों ने भी उसका भीष्म को क्या उत्तर दिया—यह सब कुछ तुम मुझको सुनाओ ।

सञ्जय उवाच—

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
पश्चिमां दिशमास्थाय स्थिते चाऽपि दिवाकरे ॥३॥
जयं प्राप्तेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ॥४॥

अभ्ययाज्जवनैरश्वैः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
महत्या सेनया गुप्तस्तव पुत्रश्च सर्वशः ॥५॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! जब इस दिन का पूर्व भाग समाप्त सा हो चुका था और सूर्य पश्चिम दिशा को चल दिए थे और विजय

पाकर पाण्डव वीर प्रसन्न हो रहे थे, इसी समय तुम्हारे पिता देवव्रत, अपने वेगशाली अश्वों से पाण्डवों की सेना में पहुँचे। इस समय इनकी रक्षा तुम्हारे पुत्रों के साथ एक बड़ी भारी सेना कर रही थी ॥३-५॥

प्रावर्तत ततो युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अस्माकं पाण्डवैः सार्धमनयात्तव भारत ॥६॥

हे भारत! तुम्हारी दुर्नीति से खड़ा किया हुआ, बड़ा तुमुल लोमहर्पण यह युद्ध, हमारी और पाण्डवों की सेना में होने लगा।

धनुषां कूजतां तत्र तलानां चाऽभिहन्यताम् ।
महान्समभवच्छब्दो गिरीणामिव दीर्यताम् ॥७॥

इस समय धनुष के कूजन और तालों की फटकारों का इतना घोर शब्द हो रहा था, जैसे—कहीं पर्वत फट रहे हों ॥७॥

तिष्ठ स्थितोऽस्मि विद्ध्येनं निवर्तस्व स्थिरो भव ।
स्थिरोऽस्मि प्रहरस्वेति शब्दोऽश्रूयत सर्वशः ॥८॥

ठहरो-यह ठहर रहा हूं। इस प्रहार को सम्भालो—भाग जा, ठहर जा-ठहर तो रहा हूं, शक्ति है, तो प्रहार कर-इस प्रकार के शब्द ही रणभूमि में सुनाई दे रहे थे ॥८॥

काञ्चनेषु तनुत्रेषु किरीटेषु ध्वजेषु च ।
शिलानामिव शैलेषु पतितानामभूद् ध्वनिः ॥९॥

सुवर्ण के कवच, मुकुट और ध्वजाओं के कट २ कर गिरने की ऐसी ध्वनि हो रही थी, जैसे—पर्वतों पर शिलाएँ फैकी जा रही हो ॥९॥

पतितान्युत्तमाङ्गानि बाहवश्च विभूषिताः ।
व्यचेष्टन्त महीं प्राप्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०॥

सैंकड़ों हजारों की संख्या में शिर और विभूषित भुजाएँ पृथिवी में पड़ी हुई तड़फड़ा रहीं थीं ॥१०॥

हृतोत्तमाङ्गाः केचित्तु तथैवोद्यतकार्मुकाः ।
प्रगृहीतायुधाश्चाऽपि तस्थुः पुरुषसत्तमाः ॥११॥

अनेक वीरों के शिर कट चुके थे, तो भी उन्होंने चढ़ा हुआ धनुष बाण ले रखा था और जो शस्त्र शिर कटने से पूर्व हाथ में थे, उन्हें ही चला रहे थे ॥११॥

प्रावर्तत महावेगा नदी रुधिरवाहिनी ।
मातङ्गाङ्गशिला रौद्रा मांसशोणितकर्दमा ॥१२॥

इस रणभूमि में बड़े वेग से रक्त की नदी बह निकली, जिसमें हाथियों के शुण्ड आदि अङ्गों की शिलाएँ थीं और मांस तथा रक्त की कीचड़ हो रही थी ॥१२॥

वराश्वनरनागानां शरीरप्रभवा तदा ।
परलोकार्णवमुखी गृध्रगोमायुमोदिनी ॥१३॥

यह नदी उत्तम २ अश्व, वीर और हाथियों के शरीर के रक्त से उत्पन्न हुई थी। जो परलोक रूपी समुद्र को जा रही थी। इसने गीध, गीदड़ों को आनन्दित कर दिया ॥१३॥

न दृष्टं न श्रुतं वापि युद्धमेतादृशं नृप ।
यथा तव सुतानां च पाण्डवानां च भारत ॥१४॥

हे नृप ! ऐसा युद्ध हमने न तो कहीं पर देखा और न अभी तक सुना ही था। हे भारत ! जैसा-यह तुम्हारे पुत्र और पाण्डु-पुत्रों में हो रहा था ॥१४॥

नाऽऽसीद्रथपथस्तत्र योधैर्युधि निपातितैः ।
गजैश्च पतितैर्नीलैर्गिरिशृङ्गैरिवाऽऽवृतः ॥१५॥

युद्ध में योद्धाओं के गिर जाने से रथों के चलने का मार्ग ही नहीं रह गया था तथा बड़े २ कृष्ण रंग के पड़े हुए हाथियोंसे पर्वत की चोटियों से घिरा हुआ सा हो रहा था ॥१५॥

विकीर्णैः कवचैश्चित्रैः शिरस्त्राणैश्च मारिष ।
शुशुभे तद्रणस्थानं शरदीव नभस्तलम् ॥१६॥

हे आर्य ! विचित्र कवच और शिरस्त्राणों से वह रणभूमि ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे-शरद् ऋतु में नक्षत्रों से प्रदीप्त आकाश दिखाई देता हो ॥१६॥

विनिर्भिन्नाः शरैः केचिदन्त्रापीडप्रकर्षिणः ।
अभीताः समरे शत्रूनभ्यधावन्त दर्पिताः ॥१७॥

कुछ वीरों की बाणों से कटकर आंते बाहर निकल आई थी, जो माला के आकार की दिखाई देती थी। ये वीर भी निर्भयता से बड़े हर्ष के साथ शत्रुओं पर धावा कर रहे थे ॥१७॥

तात भ्रातः सखे बन्धो वयस्य मम मातुल ।
मा मां परित्यजेत्यन्ये चुक्रुशुः पतिता रणे ॥१८॥

कुछ वीर युद्ध भूमि में पड़े हुए, हे तात! हे भ्राता! सखे! बन्धो! वयस्य! मातुल! आदि शब्द कह २ कर बड़े उच्च स्वर से पुकार रहे थे, कि तुम हमें छोड़कर चले न जाना ॥१८॥

अथाऽभ्येहि त्वमागच्छ किं भीतोऽसि क यास्यसि ।
स्थितोऽहं समरे मा भैरिति चाऽन्ये विचुक्रुशुः ॥१९॥

अन्य वीर कहते थे, चले आओ-चले आओ-क्या डर गए हो? कहां जाना चाहते हो। मैं जब तक युद्ध में स्थित हूं-तुम डरो मत।

तत्र भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान्दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥२०॥

इस युद्ध में शान्तनु-पुत्र भीष्म अपने धनुष का मण्डल बना कर प्रदीप्त बाणों को छोड़ रहा था, जो विष भरे सर्प के तुल्य प्रतीत होते थे ॥२०॥

शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्य भरतर्षभ ॥२१॥

हे भरतर्षभ! इस व्रतशील भीष्म ने अपने बाणों से सारी दिशाओं को एकाकार कर दिया और पाण्डव वीरों को सावधान कर २ के मारना आरम्भ किया ॥२१॥

सनृत्यन्वै रथोपस्थे दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
अलातचक्रवद्राजंस्तत्र तत्र स्म दृश्यते ॥२२॥

हे राजन्! भीष्म, रथ में स्थित हुआ ही नाच सा रहा था और अपना हस्त-कौशल दिखा रहा था। यह इस समय अलात चक्र (अग्नि के पलीते) की तरह प्रदीप्त हो रहा था ॥२२॥

तमेकं समरे शूरं पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
अनेकशतसाहस्रं समपश्यन्त लाघवात् ॥२३॥

हे राजन्! सृञ्जय वीरों के साथ पाण्डव, अकेले शूरवीर भीष्म को उसकी लाघव (फुर्ती) के कारण सैंकड़ों, हजारों की संख्या में रूप धारण किए हुए दिखाई दे रहे थे ॥२३॥

मायाकृतात्मानमिव भीष्मं तत्रः स्म मेनिरे ।
पूर्वस्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्रतीच्यां ददृशुर्जनाः ॥२४॥
उदीच्यां चैवमालोक्य दक्षिणस्यां पुनः प्रभो ।
एवं स समरे शूरो गाङ्गेयः प्रत्यदृश्यत ॥२५॥

इस समय तो भीष्म ऐसे दिखाई देते थे, जैसे उन्होंने अपने शरीर को माया से युक्त बना लिया हो। अभी तो वे पूर्व दिशा में युद्ध करते थे, कि क्षण भर में ही लोग, उन्हें पश्चिम में देखने लगे। अभी उत्तर में दिखाई दिये और अभी दक्षिण में जा चमके। इस तरह युद्ध में भीष्म चक्कर लगाते हुए दिखाई दे रहे थे ॥२४-२५॥

न चैवं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति वीक्षितुम् ।
विशिखानेव पश्यन्ति भीष्मचापच्युतान्बहून् ॥२६॥

इस समय पाण्डवों की सेना में ऐसा कोई वीर दिखाई नहीं दिया, जो भीष्म के सन्मुख आ सका हो। अब चारों ओर भीष्म के धनुष से निकले हुए बाण ही बाण दिखाई देते थे ॥२६॥

कुर्वाणं समरे कर्म सूदयानं च वाहिनीम् ।
व्याक्रोशन्त रणे तत्र नरा बहुविधा बहु ॥२७॥

इस प्रकार सेना का नाश करते हुए प्रचण्ड कर्म करने वाले भीष्म ही भीष्म दृष्टि आते थे। अब रण में जिधर देखो-उधर ही अनेक भांति के वीर पुरुष रोते चिल्लाते दिखाई देते थे ॥२७॥

अमानुषेण रूपेण चरन्तं पितरं तव ।
शलभा इव राजानः पतन्ति विधिचोदिताः ॥२८॥
भीष्माग्निमभिसंक्रुद्धं विनाशाय सहस्रशः ।
नहि मोघः शरः कश्चिदासीद्भीष्मस्य संयुगे ॥२९॥

तुम्हारे पिता भीष्म, मनुष्यातिशायी देव-दानव रूप धारी से प्रतीत होते थे। विधि की प्रेरणा से शलभों (पतङ्गों) की भांति सहस्रों राजा भीष्म रूपी प्रचण्ड अग्नि में स्वाहा हो रहे थे। इस युद्ध में भीष्म का कोई बाण निष्फल नहीं जा रहा था ॥२८-२९॥

नरनागाश्वमायेषु बहुत्वाल्लघुयोधिनः ।
भिनत्त्येकेन बाणेन सुमुखेन पतत्रिणा ॥३०॥

शीघ्रता से युद्ध करने वाले इस भीष्म का अच्छी नोक वाला, आकाश चारी एक ही बाण अनेक नर, अश्व और हाथियों के शरीर से पार निकल जाता था ॥३०॥

गजकण्टकसन्नद्धं वज्रेणेव शिलोच्चयम्।
द्वौ त्रीनपि गजारोहान्पिण्डितान्वर्मितानपि ॥३१॥
नाराचेन सुमुक्तेन निजघान पिता तव।

कण्टक (कवच) से सन्नद्ध, हाथी को इस भाँति भीष्म गिरा रहा था, जैसे वज्र से पर्वत नष्ट किया जा रहा हो। तुम्हारे पिता भीष्म दो तीन कवच धारी इकट्ठे ही गजारोहियों को अच्छी रीति से छोड़े हुए एक ही बाण से नीचे गिरा देते थे ॥३१॥

यो यो भीष्मं नरव्याघ्रमभ्येति युधि कश्चन ॥३२॥
मुहूर्तदृष्टः स मया पतितो भुवि दृश्यते।

जो कोई भी नर वीर युद्ध में भीष्म के सन्मुख आता था, हे राजन्! मुहूर्तमात्र में ही मुझे तो वह भूमि पर गिरता ही दिखाई देता था ॥३२॥

एवं सा धर्मराजस्य वध्यमाना महाचमूः ॥३३॥
भीष्मेणाऽतुलवीर्येण व्यशीर्यत सहस्रधा।

इस प्रकार अतुल पराक्रमी भीष्म राजा युधिष्ठिर की बड़ी भारी सेना का विध्वंस उड़ा रहे थे। इस समय पाण्डवों की सेना के सहस्रों टुकड़े हो गए ॥३३॥

प्राकम्पत महासेना शरवर्षेण तापिता ॥३४॥
पश्यतो वासुदेवस्य पार्थस्याऽथ शिखण्डिनः ।

पाण्डवों की विशाल सेना, भीष्म की बाण वर्षा से जल उठी। वसुदेव-पुत्र, श्रीकृष्ण, अर्जुन और शिखण्डी खड़े २ देखते रहे।

यतमानाऽपि ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ॥३५॥
नाऽशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ।

इन अर्जुन आदि महावीरों ने बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु भीष्म के बाण से पीड़ित, उन महारथियों को भागने से रोक नहीं सके।

महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥३६॥
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ।

हे महाराज! महेन्द्र के समान पराक्रमी, भीष्म से पीड़ित सेना बड़ी तीव्रता से भागी। इनमें दो वीर भी एक साथ नहीं रहे, सारे भय से बिना किसी की अपेक्षा किए भाग निकले ॥३६॥

आविद्धनरनागाश्वं पतितध्वजकूबरम् ॥३७॥
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ।

वीर, हाथी और अश्व बाणों से बिध गए, ध्वजा और कूबर कट २ कर गिर गए, इस प्रकार पाण्डवों की सेना में हाहाकार मच गया और सेना अचेतन सी हो गई ॥३७॥

जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥३८॥
प्रियं सखायं चाऽऽक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः ।

हे राजन् ! इस युद्ध में पिता पुत्र को और पुत्र पिता को तथा प्रिय सखा अपने प्रिय सखा को दैव की प्रेरणा से मारने लगे।

विमुच्य कवचान्यन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ॥३६॥
विमुक्तकेशा धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त भारत ।

हे भारत ! पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के सैनिक, कवचों को फेंक कर खुले बालों से पागलों की भाँति भागते हुए रणभूमि में देखे गए ॥३६॥

तद्गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथयूथपम् ॥४०॥
ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ।

भयभीत हुए रथी और गज यूथपति सिंह से भयभीत गायों के समूह की भाँति भागने लगे। इस समय पाण्डवों की सेना में बड़ा ही आर्तस्वर सुनाई देता था ॥४०॥

प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥४१॥
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ।

इस भांति भागती हुई सेना को देख कर यदुकुल-भूषण, श्रीकृष्ण, अपने उत्तम रथ को रोक कर शत्रुओं को भयकारी कुन्ती-पुत्र अर्जुन से बोले—॥४१॥

अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यस्तेऽभिकांक्षितः ॥४२॥
प्रहरस्व नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ।

हे पार्थ ! अब वह समय आ गया है, जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रहे थे। हे नरव्याघ्र ! अब प्रहार करने का समय है। यदि तुमने कुछ भी प्रमाद किया तो फिर पछताओगे ॥४२॥

यत्त्वया कथितं वीर पुरा राज्ञां समागमे ॥४३॥
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ।
सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संयुगे ॥४४॥

हे वीर ! राजाओं की सभा में तुमने कहा था, कि जो युद्ध में मेरे सन्मुख आवेगा, वह भीष्म, द्रोण या धृतराष्ट्र-पुत्रों का कोई भी महारथी क्यों न हो-मैं उसे सेना सहित मारे बिना नहीं छोड़ूंगा।

इति तत्कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिन्दम ।
बीभत्सो पश्य सैन्यं स्वं भज्यमानं ततस्ततः ॥४५॥
द्रवतश्च महीपालान्पश्य यौधिष्ठिरे बले ।

हे कौन्तेय ! अरिमर्दन तुम अपने उस वाक्य को इस समय सत्य सिद्ध करो। हे शत्रुओं को भयभीत करने वाले ! वीर केशरी ! क्या तुम इधर उधर भागती हुई अपनी सेना को नहीं देख रहे हो। तुम राजा युधिष्ठिर की सेना में भागते हुए राजाओं पर दृष्टि तो डालो ॥४५॥

दृष्ट्वा हि भीष्मं समरे व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥४६॥
भयार्ताः प्रपलायन्ते सिंहात्क्षुद्रमृगा इव ।

युद्ध में मुख फाड़े हुए, काल के समान भीष्म को देख कर सिंह के भय से क्षुद्रवन के जन्तु की भांति तुम्हारे सैनिक, भयभीत होकर भाग रहे हैं ॥४६॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच वासुदेवं धनञ्जयः ॥४७॥
नोदयाऽश्वान्यतो भीष्मो विगाह्यैतद्बलार्णवम् ।
पातयिष्यामि दुर्धर्षं वृद्धं कुरुपितामहम् ॥४८॥

श्रीकृष्ण ने इतना कहा था, कि अर्जुन बोले—हे कृष्ण! तुम अश्वों को उधर ही चलाओ, जिधर भीष्म लड़ रहे हैं। इस सेना समुद्र को शीघ्रता से पार कर जाओ। अब मैं इस कुरु पितामह वृद्ध, दुर्धर्ष, भीष्म को भूमि में गिरा कर ही छोड़ूंगा ॥४७-४८॥

सञ्जय उवाच—

ततोऽश्वान्रजतप्रख्यान्नोदयामास माधवः ।
यतो भीष्मरथो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ॥४९॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! अब श्रीकृष्ण ने चांदी के सदृश श्वेत अश्वों को उधर ही चलाया, जिधर सूर्य के तुल्य दुर्दर्शनीय भीष्म का रथ था ॥४९॥

ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ॥५०॥

हे राजन्! जब राजा युधिष्ठिर की सेना ने युद्ध में भीष्म से लड़ने को महाबाहु अर्जुन को देखा—तो वह विशाल सेना फिर युद्ध के लिये लौट पड़ी ॥५०॥

ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठ सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ॥५१॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! अब भीष्म ने भी सिंह के सदृश बार २ गर्जना करके, अर्जुन के रथ पर बड़ी शीघ्रता से बाण वर्षा करना आरम्भ किया ॥५१॥

क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ।
शरवर्षेण महता सञ्छन्नो न प्रकाशते ॥५२॥

थोड़ी ही देर में अर्जुन का रथ, उसके अश्व और सारथि, इस भीष्म की बाण वर्षा से आच्छन्न हो गए और दिखाई नहीं देते थे ॥५२॥

वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्त्ववान् ।
चोदयामास तानश्वान्विचितान्भीष्मसायकैः ॥५३॥

श्रीकृष्ण बड़े मनस्वी थे, वे धैर्य धारण करके भीष्म के बाणों से छिदे हुए अश्वों को भी युद्ध में हाँकते रहे। इन्हें इस समय भी कुछ व्याकुलता नहीं हुई ॥५३॥

ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ।
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा त्रिभिः शरैः ॥५४॥

अब अर्जुन ने मेघ के समान ध्वनि करने वाले दिव्य धनुष को उठाया और इससे तीन बाण छोड़ कर भीष्म का धनुष काट कर फैंक दिया ॥५४॥

स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ।
निमिषान्तरमात्रेण सज्जं चक्रे पिता तव ॥५५॥
विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ।

जब भीष्मका धनुष कट गया, तो तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्मने मुहूर्त भर में दूसरा धनुष ले लिया और उस पर डोरी चढा ली। मेघ-गर्जना के समान ध्वनिवाले इस धनुष को अपनी भुजाओं की शक्ति से भीष्म ने खेंचा ॥५५॥

अथाऽस्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ॥५६॥
तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः।

अर्जुन ने बड़ी ही शीघ्रता से क्रोध-पूर्वक इस धनुष को भी काट गिराया। शान्तनु-पुत्र भीष्म ने अर्जुन के इस लाघव (फुर्ती) की मन ही मन बड़ी प्रशंसा की ॥५६॥

साधु पार्थ महाबाहो साधु भो पाण्डुनन्दन ॥५७॥
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं महत्कर्म धनञ्जय।

हे महाबाहो ! अर्जुन ! तुम्हें धन्य है। हे पाण्डु-नन्दन ! तुमने बड़ा उत्तम कर्म कर दिखाया। हे धनञ्जय ! इस तरह महान् कर्म करना तुम जैसे वीर के अनुरूप ही है ॥५७॥

प्रीतोऽस्मि सुभृशं पुत्र कुरु युद्धं मया सह ॥५८॥
इति पार्थं प्रशस्याऽथ प्रगृह्याऽन्यन्महद्धनुः।

हे पुत्र ! मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हूँ, तुम हृदय खोल कर मुझसे युद्ध करो। इस प्रकार अर्जुन की प्रशंसा करके भीष्म ने फिर तीसरा धनुष उठाया ॥५८॥

मुमोच समरे वीरः शरान्पार्थरथं प्रति ॥५९॥
अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम्।
मोघान्कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलान्याचरँल्लघु ॥६०॥

महावीर भीष्म भी युद्ध में अर्जुन के रथ पर बाणों को छोड़ने लगा, परन्तु श्रीकृष्ण भी अपने अश्व चलाने के कौशल को दिखाते ही रहे। श्रीकृष्ण, भीष्म के बाणों को बड़ी शीघ्रता से अपने रथ का मण्डल बना कर निष्फल कर देते थे। ॥५९-६०॥

तथा भीष्मस्तु सुदृढं वासुदेवधनञ्जयौ।
विव्याध निशितैर्बाणैः सर्वगात्रेषु भारत ॥६१॥

हे भारत! भीष्म ने भी श्रीकृष्ण और धनञ्जय के सारे शरीर को बड़ी दृढ़ता से तीक्ष्ण बाणों से बेंध दिया ॥६१॥

शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणैर्लिखिताङ्कितौ ॥६२॥

ये दोनों नर-केसरी भी भीष्म के बाणों से क्षत-विक्षत होकर वेग में भरे हुए तथा एक दूसरे के सींगों से घायल हुए, वृषभों की भांति दिखाई दे रहे थे ॥६२॥

पुनश्चाऽपि सुसंरब्धः शरैः शतसहस्रशः।
कृष्णयोर्युधि संरब्धो भीष्मोऽथाऽवारयद्दिशः ॥६३॥

भीष्म ने फिर आवेश में आकर सैंकड़ों हजारों की सङ्ख्या में श्रीकृष्ण और अर्जुन पर बाण छोड़े, कि जिससे सारी दिशाएँ भर गई। इस युद्ध में भीष्म को बड़ा क्रोध चढ़ रहा था ॥६३॥

वार्ष्णेयं च शरैस्तीक्ष्णैः कम्पयामास रोषितः।
मुहुरभ्यर्दयन्भीष्मः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥६४॥

आवेश में भरे हुए, भीष्म ने इतने तीक्ष्ण बाण मारे, कि जिनसे वृष्णिवंशश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण कम्पायमान हो गए। भीष्म ने बार २ उच्च स्वर से हँसकर इन पर बाण छोड़ना आरम्भ किया।

ततस्तु कृष्णः समरे दृष्ट्वा भीष्मपराक्रमम्।
सम्प्रेक्ष्य च महाबाहुः पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ॥६५॥
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि।
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ॥६६॥
वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्।
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ॥६७॥
अमृष्यमाणो भगवान्केशवः परवीरहा।
अचिन्तयदमेयात्मा नाऽस्ति यौधिष्ठिरं बलम् ॥६८॥
एकाह्ना हि रणे भीष्मो नाशयेद्देवदानवान्।
किन्नु पाण्डुसुतान्युद्धे सबलान्सपदानुगान् ॥६९॥
द्रवते च महासैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः।

महाबाहु श्रीकृष्ण ने युद्ध में भीष्म का पराक्रम और अर्जुन का मृदुता के साथ युद्ध करना तथा युद्ध में लगातार बाण वर्षा करते हुए, दोनों सेनाओं के मध्य में प्रचण्ड सूर्य की तरह जाज्वल्यमान भीष्म को स्थित देखकर विचार किया, कि भीष्म पाण्डवों के अच्छे २ वीरों को चुन २ कर मार रहा है। इसने तो राजा युधिष्ठिर की सेना में प्रलय काल उपस्थित कर दिया है। अपरिमित शक्तिशाली, शत्रुनाशक, भगवान् श्रीकृष्ण, इस

आक्रमण की उपेक्षा नहीं कर सके। उन्होंने सोचा, कि इस तरह तो राजा युधिष्ठिर की सेना ही नहीं बचेगी। भीष्म तो एक दिन में ही देव और दानवों का नाश कर सकता है, फिर सेना और सारे राजाओं के साथ होने पर भी पाण्डवों की क्या गिनती है। इस समय तो पाण्डवों की यह विशाल सेना भाग खड़ी हुई है ॥६५-६६॥

एते च कौरवास्तूर्णं प्रभग्नान्वीक्ष्य सोमकान् ॥७०॥
प्राद्रवन्ति रणे दृष्ट्वा हर्षयन्तः पितामहम्।

ये सारे कौरव, सोमक वीरों को शीघ्रता से भागते देखकर भीष्म पितामह को उत्साहित करते हुए रण में आगे बढ़े चले आते थे ॥७०॥

सोऽहं भीष्मं निहन्म्यद्य पाण्डवार्थाय दंशितः ॥७१॥
भारमेतं विनेष्यामि पाण्डवानां महात्मनाम्।

इस दशा में तो पाण्डवों के हित के लिए मुझे ही सन्नद्ध होकर भीष्म को मार गिराना चाहिए। मैं पाण्डवों के भीष्म के मारने के बोझे को ही हल्का किए देता हूँ ॥७१॥

अर्जुनो हि शरैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानोऽपि संयुगे ॥७२॥
कर्तव्यं नाऽभिजानाति रणे भीष्मस्य गौरवात्।

यद्यपि इस युद्ध में अर्जुन भी तीक्ष्ण बाणों से आहत हो रहे हैं, तो भी वे भीष्म के गौरव से इस समय के कर्तव्य को नहीं समझ रहे हैं ॥७२॥

तथा चिन्तयतस्तस्य भूय एव पितामहः ॥
प्रेषयामास संक्रुद्धः शरान्पार्थरथं प्रति ॥७३॥

श्रीकृष्ण तो इस तरह सोच ही रहे थे, कि इतने में ही फिर भीष्म पितामह क्रोध में भर कर अर्जुन के रथ पर बाण वर्षा करने लगे ॥७३॥

तेषां बहुत्वात्तु भृशं शराणां दिशश्च सर्वाः पिहिता बभूवुः ।
न चाऽन्तरिक्षं न दिशोनभूमिर्न भास्करोऽदृश्यत रश्मिमाली

लगातार छोड़े हुए बाणों की बहुत संख्या होने से उन्होंने सारी दिशाएँ आच्छादित कर दी। इन बाणोंके छा जानेसे आकाश के साथ भूमि और किरणों की माला का धारण करने वाला सूर्य भी दिखाई नहीं देता था ॥७४॥

ववुश्च वातास्तुमुलाः सधूमा दिशश्च सर्वाः क्षुभिता बभूवुः
द्रोणो विकर्णोऽथ जयद्रथश्च भूरिश्रवाः कृतवर्मा कृपश्च ॥
श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा विन्दानुविन्दौ च सुदक्षिणश्च ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे वसातयः क्षुद्रकमालवाश्च ॥
किरीटिनं त्वरमाणाऽभिसस्रुर्निदेशगाः शान्तनवस्य राज्ञः ।

इस समय बड़ा प्रचण्ड पवन चलने लगा, धूम उठ खड़ी हुई और सारी दिशाएँ तिलमिला गई। भीष्म की आज्ञा पाकर द्रोण, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, श्रुतायु, राजा अम्बष्ठपति, विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण, पूर्व देश के वीर, सौवीर

(गुजराती) वीरों के गण, वसाति, क्षुद्रक, मालव आदि सारे क्षत्रिय वीर, बड़ी शीघ्रता से अर्जुन पर टूट पड़े ॥७५-७६॥

तं वाजिपादातरथौघजालैरनेकसाहस्रशतैर्ददर्श ॥७७॥
किरीटिनं सम्परिवार्यमाणं शिनेर्नप्ता वारणयूथपैश्च ।

राजा शिनि के नप्ता सात्यकि ने सैकड़ों सहस्रों की संख्या में अश्व, पैदल सैनिक, रथसमूह तथा हाथियों के यूथपतियों से घिरे हुए अकेले अर्जुन को देखा ॥७७॥

ततस्तु दृष्ट्वाऽर्जुनवासुदेवौ पदातिनागाश्वरथैः समन्तात्
अभिद्रुतौ शस्त्रभृतां वरिष्ठौ शिनिप्रवीरोऽभिससार तूर्णम् ।

पैदल सैनिक, हाथी, अश्व, रथियों के समूह से चारों ओर से घिरे हुए शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण को देखकर शिनिवंशप्रवीर, सात्यकि, बड़ी शीघ्रता से उनके पास पहुंचा ।

स तान्यनीकानि महाधनुष्माञ्शिनिप्रवीरः सहसाऽभिपत्य
चकार साहाय्यमथाऽर्जुनस्य विष्णुर्यथा वृत्रनिषूदनस्य ।

महा धनुषधारी शिनिवंशप्रवीर सात्यकि, कौरवों की सेना में झपटकर अर्जुन की सहायता को इस तरह पहुंचा, जैसे—वृत्रासुर के घातक इन्द्र की सहायता को भगवान विष्णु पहुंच जाते हैं ॥७८॥

विशीर्णनागाश्वरथध्वजौघं भीष्मेण वित्रासितसर्वयोधम् ।
युधिष्ठिरानीकमभिद्रवन्तं प्रोवाच सन्दृश्य शिनिप्रवीरः ।

शिनिप्रवीर सात्यकि ने राजा युधिष्ठिर की सेना के सारे हाथी, अश्व, रथी और ध्वजाधारियों के समूह तथा अन्य सारे योद्धाओं को भयभीत देखकर कहा ॥८०॥

क्व क्षत्रिया यास्यथ नैष धर्मः सतां पुरस्तात्कथितः पुराणैः
मा स्वां प्रतिज्ञां त्यजत प्रवीराः स्वं वीरधर्मं परिपालयध्वम्

हे क्षत्रियों ! तुम कहां भागे जा रहे हो ! वेदादि प्राचीन शास्त्रों में इस तरह भागना, सत्पुरुषों का धर्म नहीं कहा है। हे वीरो ! तुम अपनी प्रतिज्ञा का परित्याग न करके अपने वीर धर्म का पालन करो ॥८१॥

तान्वासवानन्तरजो निशाम्य नरेन्द्रमुख्यान्द्रवतः समन्तात्
पार्थस्य दृष्ट्वा मृदुयुद्धतां च भीष्मं च संख्ये समुदीर्यमाणम्
अमृष्यमाणः स ततो महात्मा यशस्विनं सर्वदशार्हभर्ता ॥
उवाच शैनेयमभिप्रशंसन्दृष्ट्वा कुरूनापततः समग्रान् ।
ये यान्तितेयान्तुशिनिप्रवीरयेऽपिस्थिताःसात्वत तेऽपि यान्तु
भीष्मं रथात्पश्य निपात्यमानं द्रोणं च संख्ये सगणंमयाऽद्य

इन्द्र के अनुज, श्रीकृष्ण, सब ओर से मुख्य २ राजाओं को भागते और अर्जुन को कोमलता के साथ युद्ध करते और युद्ध में यशस्वी भीष्म को प्रचण्ड देखकर सह नहीं सके। सारे दशार्ह वीरों के पति, महात्मा कृष्ण, कौरवों को तीव्रता के साथ आगे बढ़ते हुए देखकर सात्यकि की प्रशंसा करते हुए, बोले-हे शिनिप्रवीर ! सात्यकि ! जो वीर भागते हैं, उन्हें भागने दो और जो स्थित

हैं, यदि वे भी जाना चाहते हैं, तो उन्हें भी जाने दो। आज मैं सारी सेना के साथ भीष्म और द्रोण को रथ से अभी गिरा देता हूं ॥८२-८४॥

न मे रथी सात्वत कौरवाणां क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित्
तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य।

हे यदुवंशश्रेष्ठ ! मेरे क्रुद्ध होने पर रण में कौरवों का कोई भी महारथी जीता नहीं बचेगा। अब मैं अपने उग्र रथाङ्ग (सुदर्शनचक्र) को लेकर इस महाव्रती भीष्म के प्राणों का अपहरण करता हूं ॥८५॥

निहत्य भीष्मं सगणं तथाऽऽजौ द्रोणं च शैनेयरथप्रवीर ॥
प्रीतिं करिष्यामि धनञ्जयस्य राज्ञश्च भीमस्य तथाऽश्विनोश्च

हे शिनिवंश के वीरों में श्रेष्ठ ! सात्यकि ! आज मैं सेना सहित भीष्म और द्रोण को मारकर अर्जुन, राजा युधिष्ठिर, भीमसेन और नकुल सहदेव के आनन्द की वृद्धि करूंगा ॥८६॥

निहत्य सर्वान्धृतराष्ट्रपुत्रांस्तत्पक्षिणो ये च नरेन्द्रमुख्याः
राज्येन राजानमजातशत्रुं सम्पादयिष्याम्यहमद्य हृष्टः।

इसी तरह धृतराष्ट्र के पुत्र और उनके पक्ष के मुख्य २ राजाओं को मारकर मैं आज ही बड़े आनन्द के साथ अजातशत्रु धर्मराज को राज्यसिंहासन पर बैठा दूंगा ॥८७॥

ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः सूर्यप्रभं वज्रसमप्रभावम् ॥८८॥
क्षुरान्तमुद्यम्य भुजेन चक्रं रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान्।
सङ्कम्पयन्गां चरणैर्महात्मा वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम्

हे राजन्! इसके अनन्तर वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण सुन्दर नाभि वाले, सूर्य के सदृश प्रकाशमान, वज्र के समान दृढ़, छूरे के तुल्य तीक्ष्ण, सुदर्शनचक्र को लेकर और अश्वों की रस्सी (लगाम) को छोड़कर रथ से नीचे कूद पड़े। इस समय महाशक्तिशाली श्रीकृष्ण ने भीष्म की ओर इतने वेग से गमन किया, कि जिससे उनके चरण के आघात से पृथिवी कांपने लगी ॥८८-८६॥

मदान्धमाजौ समुदीर्णदर्पं सिंहो जिघांसन्निव वारणेन्द्रम् ।
सोऽभिद्रवन्भीष्ममनीकमध्ये क्रुद्धो महेन्द्रावरजः प्रमाथी ॥

महेन्द्र के अनुज, सेना के प्रमथन करने वाले, श्रीकृष्ण ने युद्ध में मदान्ध, दर्पपूर्ण, भीष्म पर इस प्रकार आक्रमण किया, जिस भाँति मदोन्मत्त गजराज को मारने की इच्छा से सिंह झपटता है ॥६०॥

व्यालम्बिपीतान्तपटश्चकाशे घनो यथा खे तडिताऽवनद्धः ।
सुदर्शनं चाऽस्य रराज शौरेस्तच्चक्रपद्मं सुभुजोरुनालम् ॥
यथाऽऽदिपद्मं तरुणार्कवर्णं रराज नारायणनाभिजातम् ।
तत्कृष्णकोपोदयसूर्यबुद्धं क्षुरान्ततीक्ष्णाग्रसुजातपत्रम् ॥
तस्यैव देहोरुसरः प्ररूढं रराज नारायणबाहुनालम् ।

इस समय श्रीकृष्ण के पीताम्बर इस भांति सुशोभित हो रहे थे, जैसे मेघ में बिजली फड़फड़ा रही हो। श्रीकृष्ण का सुदर्शन, कमल के तुल्य और उनकी सुन्दर भुजा कमल नालवत् सी सुशोभित हो रही थी। प्रचण्ड सूर्य के समान देदीप्यमान, भगवान् नारायण

की नाभि से उत्पन्न आदि कमल के तुल्य श्रीकृष्ण का सुदर्शनचक्र दिखाई दिया। यह श्रीकृष्ण के कोप रूपी सूर्य से खिल रहा था और क्षुरोपम तीक्ष्ण धार के उत्तम २ पत्रों से युक्त सा प्रतीत होता था। श्रीकृष्ण का शरीर विशाल समुद्र समझना चाहिए। भगवान् नारायण के बाहुनाल से इस कमल का उदय है ॥६१-६२॥

तमात्तचक्रं प्रणदन्तमुच्चैः क्रुद्धं महेन्द्रावरजं समीक्ष्य ॥
सर्वाणि भूतानि भृशं विनेदुः क्षयं कुरूणामिव चिन्तयित्वा।

महेन्द्र के अनुज, भगवान् श्रीकृष्ण को चक्र हाथ में लिए हुए और उच्च स्वर से गर्जना करते हुए देख कर सारे प्राणी अत्यन्त व्याकुल हो उठे और सबने समझ लिया, कि अब सारे कौरवों का क्षय होकर रहेगा ॥६३॥

स वासुदेवः प्रगृहीतचक्रः संवर्तयिष्यन्निव सर्वलोकम् ॥
अभ्युत्पतन्लोकगुरुर्बभासे भूतानि धक्ष्यन्निव धूमकेतुः।

सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले, वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, मानो सारे लोकों के संहार को उद्यत हो गए हैं। संसार में पूज्य श्रीकृष्ण, इस समय ऐसे प्रतीत होते थे-जैसे-प्राणियों के संहार को धूमकेतु नक्षत्र का उदय हो गया हो ॥६४॥

तमाद्रवन्तं प्रगृहीतचक्रं दृष्ट्वा देवं शान्तनवस्तदानीम् ॥
असम्भ्रमं तद्विचकर्ष दोर्भ्यां महाधनुर्गाण्डिवतुल्यघोषम्।

शान्तनु-पुत्र भीष्म सुदर्शनचक्र को ग्रहण करके अपनी ओर झपटते हुए, श्रीकृष्ण को देखकर गाण्डीव धनुष के समान शब्द

करने वाले अपने विशाल धनुष को अपनी भुजाओं के बल से विना किसी घबराहट के खैंचने लगे ॥६५॥

उवाच भीष्मस्तमनन्तपौरुषं गोविन्दमाजावविमूढचेताः ॥
एह्येहि देवेश जगन्निवास नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणेः।

ज्ञानवानों में श्रेष्ठ भीष्म ने युद्ध में आते हुए अनन्त पौरुष-धारी श्रीकृष्ण को देखकर कहा—हे देवेश ! जगन्निवास ! आओ आओ, हे चक्रपाणे ! माधव ! आपको नमस्कार है ॥६६॥

प्रसह्य मां पातय लोकनाथ रथोत्तमात्सर्वशरण्य संख्ये ॥
त्वया हतस्याऽपि ममाऽद्य कृष्ण श्रेयःपरस्मिन्निह चैव लोके
सम्भावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथलोकैस्त्रिभिर्वीरतवाऽभियानात्

हे लोकनाथ ! सबके रक्षक ! कृष्ण ! आप बलपूर्वक मुझे रथ से रणभूमि में गिराइये। आपके मार देने पर तो मेरा इसलोक और परलोक दोनों में कल्याण है। हे अन्धक और वृष्णिवंशज वीरों के स्वामी ! आपने मुझ पर आक्रमण कर के मुझे तीनों लोकों में सम्मानित कर दिया है ॥६७-६८॥

रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान्पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम् ।
जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं बाह्वोर्हरिं व्यायतपीनबाहुः ॥
निगृह्यमाणश्च तदाऽऽदिदेवो भृशं सरोषः किल चाऽऽत्मयोग
आदाय वेगेन जगाम विष्णुर्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम् ॥

पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम्
बलान्निजग्राह हरिं किरीटी पदेऽथ राजन्दशमे कथश्चित् ॥
अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली
उवाच कोपं प्रतिसंहरेति गतिर्भवान्केशव पाण्डवानाम् ॥

इसी समय बड़ी शीघ्रतासे अर्जुन भी रथसे कूद पड़े और यदुकुल भूषण श्रीकृष्ण के पीछे भागे। बड़ी लम्बी और पुष्ट बाहुधारी अर्जुन ने अपनी भुजाओं में पुष्ट और लम्बी भुजा वाले श्रीकृष्ण को पकड़ लिया। अर्जुन द्वारा पकड़े हुए आदिदेव, आत्म-ज्ञानी, कर्मयोगी, श्रीकृष्ण, अत्यन्त आवेश में भरे हुए थे। ये महावात (आँधी) में उड़ाए हुए वृक्ष की तरह अर्जुन को लेकर वेग से आगे बढ़े चले गए। हे राजन्! भीष्म के निकट वेग से दौड़ते हुए, श्रीकृष्ण को मुकुटधारी कुन्ती-पुत्र अर्जुनने अपने पैरों को अड़ाकर बड़ी कठिनाई से दशवें पद (कदम) पर जाकर रोका। सुवर्ण की विचित्र माला धारी अर्जुन ने स्थित हुए श्रीकृष्ण को बड़ी प्रीति से प्रणाम करके कहा—हे केशव! अपने कोप को रोको-हम पाण्डवों के तो एक आप ही आश्रय हो ॥९९-१०२॥

न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च ।
अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां त्वयाऽहमिन्द्रानुज सम्प्रयुक्तः

हे केशव! मैं अपने पुत्र और भाइयों की शपथ खाता हूँ, कि मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसका परित्याग नहीं करूंगा। जिस तरह कौरवों का अन्त किया जा सकेगा-मैं वही करूंगा, क्योंकि आपने इसी कर्म में मुझे दीक्षित किया है ॥१०३॥

ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य जनार्दनः प्रीतमना निशम्य ।
स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य रथं सचक्रः पुनरारुरोह ॥१०४॥

जनार्दन श्रीकृष्ण, अर्जुन की प्रतिज्ञा और शपथ को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और कुरुवंशश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर के हित में तत्पर होकर चक्र सहित फिर रथ पर चढ़ गए ॥१०४॥

स तानभीषून्पुनराददानः प्रगृह्य शङ्खं द्विषतां निहन्ता ।
विनादयामास ततो दिशश्च स पाञ्चजन्यस्य रवेण शौरिः ॥

शत्रुनाशक श्रीकृष्ण नें फिर अश्वों की रस्सी पकड़ी और शंख हाथ में लिया । श्रीकृष्ण ने इस समय पाञ्चजन्य शंख के शब्द से दशों दिशाओं को गुंजा दिया ॥१०५॥

व्याविद्धनिष्काङ्गदकुण्डलं तं रजोविकीर्णाञ्चितपद्मनेत्रम् ।
विशुद्धदंष्ट्रं प्रगृहीतशङ्खं विचुक्रुशुः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीराः ॥

सुवर्ण का हार, बाजूबन्द और कुण्डल जिनके आन्दोलित हो रहे हैं, जिनकी कमल के सदृश आंखें धूलि धूसरित हो रही थीं। उन चमकते हुए दांत और शंखधारी श्रीकृष्ण को सन्नद्ध देखकर कुरुवंश के वीर फिर आनन्द की ध्वनि करने लगे ॥१०६॥

मृदङ्गभेरीपणवप्रणादा नेमिस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च ।
ससिंहनादाश्च बभूवुरुग्राः सर्वेष्वनीकेषु ततः कुरूणाम् ॥

मृदङ्ग, भेरी, पणव आदि बाजों के नाद, रथनेमिकी ध्वनि और दुन्दुभियों के शब्द, वीरों के सिंहनाद, कौरवों की सारी सेनाओं में बड़े भयानक रूप से सुनाई देने लगें ॥१०७॥

गाण्डीवघोषः स्तनयित्नुकल्पो जगाम पार्थस्य नभो दिशश्च
जग्मुश्च बाणा विमलाःप्रसन्नाः सर्वा दिशः पाण्डवचापमुक्ताः

मेघ के समान ध्वनि करने वाले अर्जुन के गाण्डीव धनुष का घोष आकाश और पृथिवी पर भर गया एवं अर्जुन के धनुष से छोड़े हुए चमकीले तीक्ष्ण बाण दिशाओं में छा गए ॥१०८॥

तं कौरवाणामधिपो जवेन भीष्मेण भूरिश्रवसा च सार्धम् ।
अभ्युद्ययावुद्यतबाणपाणिः कक्षं दिधक्षन्निव धूमकेतुः ॥

अब कौरवों के अधिपति राजा दुर्योधन, भीष्म और भूरिश्रवा के साथ बड़े वेग से अर्जुन के सन्मुख आये। इन्होंने अपने हाथों में तीक्ष्ण धनुष बाण धारण कर रखा था। ये तृण की बागर को अग्निके तुल्य पाण्डव-पुत्र अर्जुन को दग्ध करनेकी आकांक्षा में थे।

अथाऽर्जुनाय प्रजिघाय भल्लान्भूरिश्रवाः सप्त सुवर्णपुङ्खान् ।
दुर्योधनस्तोमरमुग्रवेगं शल्यो गदां शान्तनवश्च शक्तिम् ॥

भूरिश्रवा ने सुवर्ण-जटित मूलवाले सात बाण छोड़े, राजा दुर्योधन ने उग्र वेगधारी तोमर, शल्य ने गदा और शान्तनु-पुत्र भीष्म ने अर्जुन पर शक्ति चलाई ॥११०॥

स सप्तभिः सप्त शरप्रवेकान्संवार्य भूरिश्रवसा विसृष्टान् ।
शितेन दुर्योधनबाहुमुक्तं क्षुरेण तत्तोमरमुन्ममाथ ॥

अर्जुन ने भी अपने सात बाणों से भूरिश्रवा के छोड़े हुए सात तीखे बाणों को काट दिया और इसी तरह क्षुरोपम तीक्ष्ण बाण से राजा दुर्योधनके छोड़े हुए तोमर को छिन्न भिन्न कर दिया।

ततः शुभामापततीं स शक्तिं विद्युत्प्रभां शान्तनवेन मुक्ताम् ।
गदां च मद्राधिपबाहुमुक्तां द्वाभ्यां शराभ्यां निचकर्त वीरः ॥

शान्तनु-पुत्र भीष्म द्वारा छोड़ी हुई, बिजली के तुल्य चमकीली, तीक्ष्ण शक्ति और मद्राधिप शल्य द्वारा फैंकी हुई गदा को अर्जुन ने अपने दो तीक्ष्ण बाणों से वहीं काट गिराया ॥११२॥

ततो भुजाभ्यां बलवद्विकृष्य चित्रं धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
माहेन्द्रमस्त्रं विधिवत्सुघोरं प्रादुश्चकाराऽद्भुतमन्तरिक्षे ॥११३

इसके अनन्तर अर्जुन ने अपनी भुजाओं से बलपूर्वक खींचकर अद्भुत महाशक्तिशाली, विचार में भी नहीं आने वाले, महेन्द्र के प्रदान किये हुए, घोर गाण्डीव धनुष को आकाश में प्रकट किया।

तेनोत्तमास्त्रेण ततो महात्मा सर्वाण्यनीकानि महाधनुष्मान्
शरौघजालैर्विमलाग्निवर्णैर्निवारयामास किरीटमाली ॥

मुकुट माला के धारण करने वाले महाधनुषधारी, अर्जुन ने इस उत्तमास्त्र गाण्डीव द्वारा प्रदीप्त अग्नि तुल्य बाणों का समूह छोड़ कर कौरवों की सारी सेनाएँ निवृत्त कर दी ॥११४॥

शिलीमुखाः पार्थधनुःप्रमुक्ता रथान्ध्वजाग्राणि धनूंषि बाहून्
निकृत्य देहान्विविशुः परेषां नरेन्द्रनागेन्द्रतुरङ्गमाणाम् ॥

अर्जुन के धनुष से छोड़े हुए बाण, रथ, ध्वजाओं के अग्र-भाग, धनुष और भुजाओं को छेद कर शत्रुओं के वीर राजा हाथी और अश्वों के शरीरों में पार होने लगे ॥११५॥

ततो दिशः सोऽनुदिशश्च पार्थः शरैः सुधारैः समरे वितत्य।
गाण्डीवशब्देन मनांसि तेषां किरीटमाली व्यथयाञ्चकार ॥

अब कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से समर भूमि में सारी दिशा और विदिशाओं को भर दिया। किरीट माली अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से शत्रुओं के मन व्यथित कर दिए ॥११६॥

तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते शङ्खस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च।
अन्तर्हिता गाण्डिवनिःस्वनेन बभूवुरुग्राश्वरथप्रणादाः ॥

इस महा घोर युद्ध के प्रवृत्त होने पर शंख और दुन्दुभियों की ध्वनि तथा अश्व और रथों के उग्रनाद गाण्डीव के घोष से फीके पड़ गए ॥११७॥

गाण्डीवशब्दं तमथो विदित्वा विराटराजप्रमुखाः प्रवीराः।
पाञ्चालराजो द्रुपदश्च वीरस्तं देशमाजग्मुरदीनसत्त्वाः ॥

गाण्डीव धनुष की टङ्कार सुनकर उदार बलशाली, विराटराज आदि महावीर तथा पाञ्चालराज, वीरश्रेष्ठ द्रुपद आदि महारथी, उसी स्थान पर दौड़ कर पहुंचे ॥११८॥

सर्वाणि सैन्यानि तु तावकानि यतो यतो गाण्डिवजः प्रणादः
ततस्ततः सन्नतिमेव जग्मुर्न तं प्रतीपोऽभिससार कश्चित् ॥

हे राजन्! जिधर २ गाण्डीव धनुष की ध्वनि जाती थी, उधर २ ही तुम्हारी सारी सेना झुक जाती थी। कोई भी ऐसा विरोधी वीर दिखाई नहीं दिया, जो अर्जुन के सन्मुख जा सके।

तस्मिन्सुघोरे नृपसम्प्रहारे हताः प्रवीराः सरथाश्वसूताः ।
गजाश्च नाराचनिपाततप्ता महापताकाः शुभरुक्मकक्ष्याः ॥
परीतसत्वाः सहसा निपेतुः किरीटिना भिन्नतनुत्रकायाः ।
दृढं हताः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन भल्लैर्विमलैः शिताग्रैः ॥

इस घोर घमसान युद्ध में रथ, सारथि और अश्वों के साथ अनेक रथी वीर मारे गए। बाणों के आघात से तप्त हुए, बड़ी २ ध्वजा और सुन्दर सुवर्ण के बन्धन की शृङ्खला वाले हाथी, प्राणों से विहीन होकर रणभूमि में धमाधम गिरने लगे। अर्जुन ने इनके कवच वाले शरीरों को भी बींध डाला था। कुन्ती-पुत्र अर्जुन द्वारा बड़े उग्र वेगवाले तीखे, चमकते हुए बाणों से इन गजराजों के बड़ी दृढ़ चोट बैठ चुकी थी ॥१२०-१२१॥

निकृत्तयन्त्रा निहतेन्द्रकीला ध्वजा महान्तो ध्वजिनीमुखेषु ।
पदातिसङ्घाश्च रथाश्च संख्ये हयाश्च नागाश्च धनञ्जयेन ॥

कुरुसेना की बड़ी २ ध्वजाओं के यन्त्र और इन्द्रकील अर्जुन ने काट डाले। इस तरह अर्जुन ने इस युद्ध में पैदल सैनिकों के संघ, रथ, अश्व और हाथी नष्ट-भ्रष्ट कर दिए ॥१२२॥

बाणाहतास्तूर्णमपेतसत्वा विष्टभ्य गात्राणि निपेतुरुर्व्याम् ।
ऐन्द्रेण तेनाऽस्त्रवरेण राजन्महाहवे भिन्नतनुत्रदेहाः ॥

हे राजन्! अर्जुन के इस इन्द्र के प्रदान किये हुए गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए बाणोंसे छिन्न भिन्न शरीर वाले योद्धा, अपने २

बाणों से विहीन होकर शरीरों को स्तम्भित (जकड़ा) कर रण-भूमि में गिरने लगे ॥१२३॥

ततः शरौघैर्निशितैः किरीटिना नृदेहशस्त्रक्षतलोहितोदा ।
नदी सुघोरा नरमेदफेना प्रवर्तिता तत्र रणाजिरे वै ॥

इसके अनन्तर मुकुटधारी अर्जुन द्वारा तीक्ष्ण बाणों से काटे हुए नरवीरों की देह के शस्त्र के घावों से बहने वाले रक्त के जल से पूर्ण, मनुष्य के मेद के फेनों (झागों) वाली, घोर नदी इस रणाङ्गण में वह निकली ॥१२४॥

वेगेन साऽतीव पृथुप्रवाहा परेतनागाश्वशरीररोधा ।
नरेन्द्रमज्जोच्छ्रितमांसपङ्का प्रभूतरक्षोगणभूतसेविता ॥

इस नदी का बड़ा प्रवाह बड़े वेग से बह रहा था । मरे हुए हाथी और अश्वों के शरीर इस नदी के तट थे । यह नदी राजाओं की मज्जा से सम्पन्न मांस की कीचड़ से समन्वित थी और इस पर बहुत से राक्षस भूतादि के गण घूमते थे ॥१२५॥

शिरःकपालाकुलकेशशाद्वला शरीरसङ्घातसहस्रवाहिनी ।
विशीर्णनानाकवचोर्मिसंकुला नराश्वनागास्थिनिकृत्तशर्करा

शिर के कपाल में बिखरे हुए बाल उस नदी के तट के ऊपर ऊगने वाली घास थी । इसमें सैंकड़ों शरीर नौका की भांति बहे जा रहे थे । बिखरे हुए अनेक कवच इसकी लहरें सी प्रतीत होती थी । मनुष्य, अश्व और हाथियों की अस्थियों का चूरा इस नदी की बालुका थी ॥१२६॥

श्वकङ्कशालावृकगृध्रकाकैः क्रव्यादसङ्घैश्च तरक्षुभिश्च ।
उपेतकूलां ददृशुर्मनुष्याः क्रूरां महावैतरणीप्रकाशाम् ॥

कुत्ते, कङ्क, भेड़िये, गीध, काक, चीते आदि मांसाहारी जन्तुओं से इस नदी के तट भरे हुए थे, जिससे मनुष्य को यह वैतरणी नदी के तुल्य भयानक प्रतीत होती थी ॥१२७॥

प्रवर्तितामर्जुनबाणसङ्घैर्मेदोवसासृक्प्रवहां सुभीमाम् ।
हतप्रवीरांश्च तथैव दृष्ट्वा सेनां कुरूणामथ फाल्गुनेन ॥
ते चेदिपाञ्चालकरूषमत्स्याः पार्थाश्च सर्वे सहिताः प्रणेदुः ।
जयप्रगल्भा पुरुषप्रवीराः सन्त्रासयन्तः कुरुवीरयोधान् ॥

अर्जुन के बाण समूह से प्रवृत्त की हुई, मेद, वसा, रक्त के बहाने वाली, भयानक, अर्जुन द्वारा बहुत से नष्ट वीरोंवाली कौरवों की सेना को देखकर चेदि, पाञ्चाल, करूष, मत्स्य और पाण्डव, एक दम गर्जना करने लगे। ये पुरुषप्रवीर, अनेक तरह जय-ध्वनि करके कुरुवीरों को सन्त्रासित कर रहे थे ॥१२८-१२९॥

हतप्रवीराणि बलानि दृष्ट्वा किरीटिना शत्रुभयावहेन ।
वित्रास्य सेनां ध्वजिनीपतीनां सिंहो मृगाणामिव यूथसङ्घाम्
विनेदतुस्तावतिहर्षयुक्तो गाण्डीवधन्वा च जनार्दनश्च ।

शत्रु को भय उत्पन्न करने वाले अर्जुन द्वारा कौरवों की सेना के वीरों को सिंह द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये गए, मृगों के झुण्डों की भांति कौरव सेनापतियों की सेना को वित्रासित देखकर हर्ष में भरे हुए गाण्डीव धनुष धारी अर्जुन और जनार्दन कृष्ण गर्जना करने लगे ॥१३०॥

ततो रविं संवृतरश्मिजालं दृष्ट्वा भृशं शस्त्रपरिक्षताङ्गाः ॥
तदैन्द्रमस्त्रं विततं च घोरमसह्यमुद्वीक्ष्य युगान्तकल्पम् ।
अथाऽपयानं कुरवः सभीष्माः सद्रोणदुर्योधनवाल्हिकाश्च ॥
चक्रुर्निशां सन्धिगतां समीक्ष्य विभावसोर्लोहितरागयुक्ताम्

सारे कौरव वीरों के शरीर, अर्जुन के बाणों से क्षत-विक्षत हो रहे थे। अब ये अपने किरण-समूह को समेटते हुए सूर्य तथा प्रलयकाल के तुल्य, इन्द्र के अस्त्र, फैले हुए घोर गाण्डीव धनुष को देखकर भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, वाल्हिक आदि वीरों ने अपनी २ सेना पीछे हटाई। इस समय सूर्य छुपने से संध्याकाल लाल कान्ति से युक्त होकर दिखाई देने लगा था ॥१३१-१३२॥

अवाप्य कीर्तिं च यशश्च लोके विजित्य शत्रूंश्च धनञ्जयोऽपि
ययौ नरेन्द्रैः सह सोदरैश्च समाप्तकर्मा शिबिरं निशायाम् ।

अब धनञ्जय अर्जुन भी शत्रुओं को जीत कर तथा संसार में कीर्ति और यश को पाकर अपने कर्तव्य को पूराकर अपने साथी राजा तथा भाइयों के साथ अपने शिबिर में गए ॥१३३॥

ततः प्रजज्ञे तुमुलः कुरूणां निशामुखे घोरतमः प्रणादः ॥
रणे रथानामयुतं निहत्य हता गजाः सप्तशताऽर्जुनेन ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे निपातिताः क्षुद्रकमालवाश्च
महत्कृतं कर्म धनञ्जयेन कर्तुं यथा नाऽर्हति कश्चिदन्यः ।

अब रात के होने पर कौरवों की सेना में यह चर्चा प्रबल वेग के साथ फैली, कि अर्जुन ने दश हजार रथी और सात सौ गज-

पति मार गिराए। प्राच्य, सौवीर, क्षुद्रक और मालवों के अनेक गण मार दिए। आज के युद्ध में अर्जुन ने इतना महान् कर्म किया है, जिसको अन्य कोई नहीं कर सकता है ॥१३५॥

श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ॥१३६॥
द्रोणःकृपःसैन्धवबाह्लिकौ च भूरिश्रवाःशल्यशलौ च राजन्।
अन्ये च योधाः शतशः समेताः क्रुद्धेन पार्थेनरणस्यमध्ये
स्वबाहुवीर्येण जिताः सभीष्माः किरीटिना लोकमहारथेन।
इति ब्रुवन्तः शिबिराणि जग्मुःसर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः

हे राजन्! श्रुतायु, अम्बष्ठपति, दुर्मर्षण, चित्रसेन, द्रोण, कृप, सिन्धुराज जयद्रथ, बाह्लिक, भूरिश्रवा, शल्य, शल तथा अन्य सैंकड़ों योद्धा, भीष्म के साथ संसार में प्रसिद्ध महारथी, किरीट धारी, क्रुद्ध हुए अर्जुन ने रण में अपनी बाहुओं के बल से जीत लिए। हे भारत! इस प्रकार कहते हुए तुम्हारी सेना के अनेक गण अपने २ शिबिरों को गए ॥१३६-१३८॥

उल्कासहस्रैश्च सुसम्प्रदीप्तैर्विभ्राजमानैश्च तथा प्रदीपैः।
किरीटिवित्रासितसर्वयोधा चक्रे निवेशं ध्वजिनी कुरूणाम्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५६॥

अनेक प्रदीप्त उल्का (वस्त्रों के पलीते) तथा चमकीले प्रदीपों से युक्त, अर्जुन से वित्रासित, तुम्हारे सारे योद्धा अपनी सेना के पड़ाव में प्रविष्ट हुए ॥१३६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में तृतीयदिवस के सेना के हटाने का उनसठवां अध्याय समाप्त हुआ ।



साठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

व्युष्टां निशां भारत भारतानामनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा
ययौ सपत्नान्प्रति जातकोपो वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः ।

सञ्जय बोले—हे भारत ! रात्रि के व्यतीत होने पर अपनी सारी सेना से युक्त होकर कोप में भरे हुए महात्मा भीष्म, पाण्डवों की सेना की ओर शत्रुओं पर चढ़ दौड़े ॥१॥

तं द्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ।
जयद्रथश्चाऽतिबलो बलौघैर्नृपास्तथाऽन्ये प्रययुः समन्तात्

द्रोण, राजा दुर्योधन, बाल्हिक, दुर्मर्षण, चित्रसेन, अति बलवान् जयद्रथ तथा अन्य महारथी राजा अपनी २ विशाल सेना लेकर भीष्म के साथ २ चल दिए ॥२॥

स तैर्महद्भिश्च महारथैश्च तेजस्विभिर्वीर्यवद्भिश्च राजन् ।
रराज राजा स तु राजमुख्यैर्वृतः स देवैरिव वज्रपाणिः ॥

हे राजन् ! इन महापराक्रमी, शक्तिशाली, महातेजस्वी, मुख्य २ महारथी राजाओं से भीष्म, देवों से इन्द्र के सदृश सुशोभित होने लगे ॥३॥

तस्मिन्ननीकप्रमुखे विषक्ता दोधूयमानाश्च महापताकाः ।
सुरक्तपीतासितपाण्डुराभा महागजस्कन्धगता विरेजुः ॥

इस उत्कृष्ट सेना में हाथियों के स्कन्धों पर लगी हुई, फड़-फड़ाती हुई, लाल, पीली, काली, भूरे रंग की बड़ी २ पताकाएँ एक दूसरी से सटी हुई, बड़ी सुन्दर प्रतीत हो रही थी ॥४॥

सा वाहिनी शान्तनवेन गुप्ता महारथैर्वारणवाजिभिश्च ।
बभौ सविद्युत्स्तनयित्नुकल्पा जलागमे द्यौरिव जातमेघा

महारथी, हाथी और अश्वों से शान्तनु-पुत्र भीष्म से सुरक्षित यह सेना, वर्षा ऋतु में बिजली और मेघों से सर्वथा, व्याप्त द्यौ (आकाश) की भांति सुशोभित हो रही थी ॥५॥

ततो रणायाऽभिमुखी प्रयाता प्रत्यर्जुनं शान्तनवाभिगुप्ता ।
सेना महोग्रा सहसा कुरूणां वेगो यथा भीम इवाऽऽपगायाः

शान्तनु-पुत्र भीष्म से सुरक्षित कौरवों की महान्, उग्र सेना, अर्जुन की ओर युद्ध के लिए एक दम चल दी । इसका महानदी के समान वेग दिखाई दे रहा था ॥६॥

तं व्यालनानाविधगूढसारं गजाश्वपादातरथौघपत्नम् ।
व्यूहं महामेघसमं महात्मा ददर्श दूरात्कपिराजकेतुः ॥

हाथी, घोड़े, पैदल, रथों के समूह से युक्त, व्याल-नामक व्यूह से नाना भांति से सुरक्षित, महामेघ के समान उमड़ती हुई कौरव सेना को कपिध्वज महात्मा अर्जुन ने दूर से ही देखा ॥७॥

विनिर्ययौ केतुमता रथेन नरर्षभः श्वेतहयेन वीरः ।
वरूथिना सैन्यमुखे महात्मा वधे धृतः सर्वसपत्नयूनाम् ॥

नरश्रेष्ठ, वीर अर्जुन भी उत्तम ध्वजा और श्वेत हयों से युक्त रथ से अपनी सेना के साथ सारे शत्रु-वीरों के वध की आकांक्षा से कौरवों की सेना की ओर आगे बढ़ा ॥८॥

सूपस्करं सोत्तरबन्धुरेषं यत्तं यदूनामृषभेण संख्ये ।
कपिध्वजं प्रेक्ष्य विषेदुराजौ सहैव पुत्रैस्तव कौरवेयाः ॥

उत्तम चक्रादि साधन और आच्छादन से युक्त ईषाधरी, सुदृढ़ रथ से सम्पन्न, यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण सहित कपिध्वज अर्जुन को देखकर रण में तुम्हारे पुत्रों के सहित सारे कुरुवीर, डगमगाने लगे ॥९॥

प्रकर्षता गुप्तमुदायुधेन किरीटिना लोकमहारथेन ।
तं व्यूहराजं ददृशुस्त्वदीयाश्चतुश्चतुर्व्यालसहस्रकीर्णम् ॥

संसार में प्रसिद्ध महारथी, शस्त्रधारी सेना के नेता, अर्जुन द्वारा सुरक्षित, पाण्डवों के व्यूह को तुम्हारे पुत्रादि वीरों ने देखा,

जिसके कोनों में चार २ आवृत्ति से सहस्रों की संख्या में हाथी खड़े किये गए थे ॥१०॥

यथा हि पूर्वेऽहनि धर्मराज्ञा व्यूहः कृतः कौरवसत्तमेन ।
तथा न भूतो भुवि मानुषेषु न दृष्टपूर्वो न च संश्रुतश्च ॥

पूर्व गत दिन में कुरुवंश श्रेष्ठ धर्मराज ने जैसा व्यूह बनाया था, ऐसा पृथिवी पर मनुष्यों में बना हुआ न तो कभी देखा गया और न सुना गया। उसी ढ़ंग का आज भी व्यूह रचा गया ॥११॥

ततो यथादेशमुपेत्य तस्थुः पाञ्चालमुख्याः सह चेदिमुख्यैः
ततः समादेशसमाहतानि भेरीसहस्राणि विनेदुराजौ ॥१२॥

अब सेनापति की आज्ञा के अनुसार चेदिवीरों के साथ पाञ्चाल वीर खड़े हो गए और इनके आदेशानुसार रण में सहस्रों की संख्या में दुन्दुभियां बजने लगी ॥१२॥

शङ्खस्वनास्तूर्यरथस्वनाश्च सर्वेष्वनीकेषु ससिंहनादाः ।
ततः सबाणानि महास्वनानि विस्फार्यमाणानि धनूंषि वीरैः
क्षणेन भेरीपणवप्रणादानन्तर्दधुः शङ्खमहास्वनाश्च ।

सारी सेनाओं में शंख, तूर्य और रथों के शब्द भर गए एवं वीरों के सिंहनाद होने लगे। अब वीरों ने धनुष पर बाण चढ़ाए, जिन धनुषों के शब्द रणभूमि में गूंज उठे। शंखों की ध्वनियों ने क्षण भर में ही भेरी, पणव आदि वाद्यों (बाजों) के शब्द अपने में लीन कर लिए ॥१३॥

तच्छङ्खशब्दावृतमन्तरिक्षमुद्धूतभौमद्रुतरेणुजालम् ॥१४॥
महावितानावततप्रकाशमालोक्य वीराः सहसाऽभिपेतुः ।

इस प्रकार शंखों के शब्दों से आवृत तथा वीरों के पादाघात से उठी हुई पृथिवी की रेणु के जाल से व्याप्त, मानो बड़े भारी तने हुए वितान (शामियाना) के समान आकार वाले आकाश को देख कर उत्साह से वीर आगे बढ़ने लगे ॥१४॥

रथी रथेनाऽभिहतः सस्तः पपात साश्वः सरथः सकेतुः ॥
गजो गजेनाऽभिहतः पपात पदातिना चाऽभिहतः पदातिः

विरोधी रथी द्वारा मारा हुआ रथी, सारथि, अश्व, रथ और ध्वजाओं के सहित रणभूमि में गिर रहे थे। गजारोही, गजारोही द्वारा और पैदल सैनिक पैदलों द्वारा मार २ कर गिराए जा रहे थे।

आवर्तमानान्यभिवर्तमानैर्घोरीकृतान्यद्भुतदर्शनानि ॥
प्रासैश्च खड्गैश्च समाहतानि सदश्ववृन्दानि सदश्ववृन्दैः ।

अपनी अनेक विचित्र गतियों से चक्कर लगाते और अपने रूप को भयानक युद्ध में अद्भुत ढंग से देखने योग्य बनाते हुए, सुन्दर अश्वारोही, प्रतिपक्षी अश्वारोही द्वारा प्रास और खड्गादि से मारे हुए रणभूमि में लेटते जाते थे ॥१६॥

सुवर्णतारागणभूपितानि सूर्यप्रभाभानि शरावराणि ॥
विदार्यमाणानि परश्वधैश्च प्रासैश्च खड्गैश्च निपेतुरुर्व्याम् ।

सुवर्ण के तारा गणों से झिलमिलाते हुए सूर्य की प्रभा के समान चमकीले, कवच, परशु, प्रास और खड्ग से कट २ कर भूमि में पड़े थे ॥१७॥

गजैर्विषाणैर्वरहस्तरुग्णाः केचित्ससूता रथिनः प्रपेतुः ॥
गजर्षभाश्चाऽपि रथर्षभेण निपातिता बाणहताः पृथिव्याम् ।
गजौघवेगोद्धतसादितानां श्रुत्वा विषेदुः सहसा मनुष्याः ॥
आर्तस्वनं सादिपदातियूनां विषाणगात्रावरताडितानाम् ।

हाथियों के दाँत और सूंड़ों से आहत हुए रथी, सारथियों के साथ रणभूमि में गिर रहे थे और इसी तरह उत्तम गजारोही भी रथी वीरों द्वारा बाणों से क्षत विक्षत होकर भूमि में गिर रहे थे। गजों के समूह के उद्धत वेग से कुचले हुए बहुत से मनुष्य, हाथियों के दाँतों से नीचे के छिन्न-भिन्न अङ्ग वाले, अश्वारोही और पैदल युवक, सैनिकों का आर्तनाद सुनकर बहुत से वीर मनुष्य चिन्तित हो रहे थे ॥१८-१६॥

सम्भ्रान्तनागाश्वरथे मुहूर्ते महाक्षये सादिपदातियूनाम् ॥
महारथैः सम्परिवार्यमाणो ददर्श भीष्मः कपिराजकेतुम् ।

हाथी, अश्व और धैर्य-च्युत रथों के सवारों तथा अनेक अश्वारोही और पैदल युवकों के महान् क्षय से युक्त समय पर महारथियों से घिरे हुए भीष्म ने कपि के चिह्न की ध्वजा के धारण करने वाले अर्जुन को देखा ॥२०॥

तं पञ्चतालोच्छ्रिततालकेतुः सदश्ववेगाद्भुतवीर्ययानः ॥
महास्त्रबाणाशनिदीप्तिमन्तं किरीटिनं शान्तनवोऽभ्यधावत् ।

पांच ताल के वृक्षों की ऊंचाई के तुल्य ताल-ध्वजा के धारण करने वाले तथा उत्तम अश्वों के वेग से अद्भुत शक्तिशाली यान से युक्त, शान्तनु-पुत्र भीष्म ने महान् अस्त्र और बाणों से प्रदीप्त किरीट धारी अर्जुन पर आक्रमण किया ॥२१॥

तथैव शक्रप्रतिमप्रभावमिन्द्रात्मजं द्रोणमुखा विसस्रुः ॥
कृपश्च शल्यश्च विविंशतिश्च दुर्योधनः सौमदत्तिश्च राजन् ।

हे राजन् ! इन्द्र के समान प्रभावशाली इन्द्र-पुत्र अर्जुन पर द्रोणाचार्य, कृप, शल्य, विविंशति, राजा दुर्योधन और सौमदत्ति आदि महारथी झपटे ॥२२॥

ततो रथानां प्रमुखादुपेत्य सर्वास्त्रवित्काञ्चनचित्रवर्मा ॥
जवेन शूरोऽभिससार सर्वांस्तानर्जुनस्याऽऽत्मसुतोऽभिमन्युः

सुवर्ण से विचित्र कवच का धारण करने वाला, सब अस्त्र शस्त्रों में कुशल, शूरवीर, अर्जुन के तुल्य पराक्रमी, अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु, बड़े वेग से उन रथियों के आगे पहुंचा ॥२३॥

तेषां महास्त्राणि महारथानामसह्यकर्मा विनिहत्य कार्ष्णिः ॥
बभौ महामन्त्रहुतार्चिमाली सदोगतः सन्भगवानिवाऽग्निः ।

कृष्ण (अर्जुन) पुत्र असह्य कर्मों के कर्त्ता, अभिमन्यु ने इन महारथियों के बड़े २ अस्त्र काट गिराए। इस समय अभिमन्यु, महामन्त्रों से हवन द्वारा तृप्त, ज्वालाधारी, यज्ञशाला में प्रदीप्त, जाज्वल्यमान अग्नि के तुल्य प्रतीत होते थे ॥२४॥

ततः स तूर्णं रुधिरोदफेनां कृत्वा नदीमाशु रणे रिपूणाम् ॥
जगाम सौभद्रमतीत्य भीष्मो महारथं पार्थमदीनसत्वः ।

उदार पराक्रमी भीष्म, बड़ी शीघ्रता से रण में शत्रुओं के रक्त रूपी जल के फेनों से युक्त नदी को बहाकर और सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को वहीं छोड़ कर महारथी अर्जुन के पास पहुंचे ॥२५॥

ततः प्रहस्याऽद्भुतविक्रमेण गाण्डीवमुक्तेन शिलाशितेन ॥
विपाठजालेन महास्त्रजालं विनाशयामास किरीटमाली ।

मुकुटधारी अर्जुन ने शिला (शाण) पर तीक्ष्ण किये हुए और गाण्डीव द्वारा फैंके गए, अद्भुत पराक्रम से युक्त, बाण समूह से उन महारथियों के महान् अस्त्र जाल को हंसते २ काट फैंका ॥२६

तमुत्तमं सर्वधनुर्धराणामसक्तकर्मा कपिराजकेतुः ॥२७॥
भीष्मं महात्माऽभिववर्ष तूर्णं शरौघजालैर्विमलैश्च भल्लैः ।

सारे धनुषधारियों में उत्तम, भीष्म पर अद्भुत कर्म करने वाले, कपिध्वज महात्मा अर्जुन ने बाणों के समूह और चमकते हुए भालों की झड़ी सी लगा दी ॥२७॥

तथैव भीष्माहतमन्तरिक्षे महास्त्रजालं कपिराजकेतोः ॥२८॥
विशीर्यमाणं ददृशुस्त्वदीया दिवाकरेणेव तमोभिभूतम् ।

इसी तरह आकाश में कपिध्वज अर्जुन के अस्त्र जाल को भीष्म काट रहे थे, जिसको तुम्हारे पक्ष के वीर, सूर्य से नष्ट होते हुए अन्धकार की भांति देख रहे थे ।।२८।।

एवंविधं कार्मुकभीमनादमदीनवत्सत्पुरुषोत्तमाभ्याम् ।।
ददर्श लोकः कुरुसृञ्जयाश्च तद् द्वैरथं भीष्मधनञ्जयाभ्याम् ।।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनद्वैरथे षष्टितमोऽध्यायः ।।६०।।

धनुषों के भीषण नाद से युक्त, महावीरों को सत्पुरुष, भीष्म और अर्जुन से प्रवृत्त किये हुए युद्ध को सारा संसार और कौरव तथा सृञ्जय भी देख रहे थे ।।२९।।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म और अर्जुन के युद्ध का साठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



इकसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

द्रोणिर्भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनश्च मारिषः ।
पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं पर्यवारयन् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! आर्य गुणों से युक्त, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन, सांयमन (शल) के पुत्र आदि महारथियों ने सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को घेर लिया ॥१॥

संसक्तमतितेजोभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः ।
पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा ॥२॥

अत्यन्त तेजस्वी पांच वीरों से घिरे हुए इस अकेले वीर अभिमन्यु को गजों से घिरे हुए सिंह के बच्चे के सदृश लोग देखने लगे ॥२॥

नाऽतिलक्ष्यतया कश्चिन्न शौर्ये न पराक्रमे ।
बभूव सदृशः कार्ष्णेर्नाऽस्त्रे नाऽपि च लाघवे ॥३॥

अपने लक्ष्य को सही बेंधने में विक्रम, पराक्रम, अस्त्र संचालन और लाघव (फुर्ती) में कोई भी कृष्ण (अर्जुन) पुत्र अभिमन्यु के समान नहीं था ॥३॥

तथा तमात्मजं युद्धे विक्रमन्तमरिन्दमम् ।
दृष्ट्वा पार्थः सुसंयत्तं सिंहनादमथाऽनदत् ॥४॥

युद्ध में पराक्रम दिखाते हुए अपने पुत्र, अरिमर्दन अभिमन्यु को बड़ा सावधान देखकर महात्मा अर्जुन हर्ष में भरकर सिंहनाद करने लगे ॥४॥

पीडयानं तु तत्सैन्यं पौत्रं तव विशाम्पते ।
दृष्ट्वा त्वदीया राजेन्द्र समन्तात्पर्यवारयन् ॥५॥

हे विशाम्पते ! तुम्हारी सेना को पीड़ित करते हुए तुम्हारे पौत्र अभिमन्यु को देखकर तुम्हारे वीरों ने उसे सब ओर से घेर लिया ॥५॥

ध्वजिनीं धार्तराष्ट्राणां दीनशत्रुरदीनवत् ।
प्रत्युद्ययौ स सौभद्रस्तेजसा च बलेन च ॥६॥

शत्रुओं को दीन कर देने वाले सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने तेज और बल के साथ धृतराष्ट्र-सुतों की सेना पर मदोद्धत होकर आक्रमण किया ॥६॥

तस्य लाघवमार्गस्थमादित्यसदृशप्रभम् ।
व्यदृश्यत महच्चापं समरे युध्यतः परैः ॥७॥

लाघव (फुर्ती) के मार्ग में स्थित, शत्रुओं के साथ युद्ध करने वाले अभिमन्यु का विशाल धनुष सूर्य के सदृश चमकीला दिखाई दे रहा था ॥७॥

स द्रौणिमिषुणैकेन विध्वा शल्यं च पञ्चभिः ।
ध्वजं सांयमनेश्चैव सोऽष्टाभिश्चिच्छिदे ततः ॥८॥

अभिमन्यु ने अश्वत्थामा को एक और शल्य को पांच बाणों से बेंध कर सांयमन (शल) की ध्वजा को आठ बाणों से काट गिराया ॥८॥

रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सौमदत्तिना ।
शितेनोरगसङ्काशां पत्रिणाऽपजहार ताम् ॥९॥

सौमदत्ति ने सर्प के सदृश भयङ्कर, सुवर्ण के दण्ड वाली, महाशक्ति अभिमन्यु पर फैंकी, जिसको अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाण से काट गिराई ॥९॥

शल्यस्य च महावेगानस्यतः समरे शरान् ।
निवार्याऽर्जुनदायादो जघान चतुरो हयान् ॥१०॥

बड़े वेग से आने वाले समर में शल्य द्वारा फैंके हुए, बाणों को काटकर अर्जुन-पुत्र ने उसके चारों अश्वों को मार डाला ॥१०

भूरिश्रवाश्च शल्यश्च द्रौणिः सांयमनिः शलः ।
नाऽभ्यवर्तन्त संरब्धाः कार्ष्णेर्बाहुबलोदयम् ॥११॥

भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, संयमन का पुत्र शल, ये आवेश में भरे हुए भी अभिमन्यु के बाहुबल के पार को नहीं पा सके ॥११॥

ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ॥१२॥

हे राजेन्द्र ! त्रिगर्त, मद्र, केकय आदि पचीस सहस्र वीरों की सेना को तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने अभिमन्यु की ओर चलते किए ॥१२॥

धनुर्वेदविदो मुख्या अजेयाः शत्रुभिर्युधि ।
सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनम् ॥१३॥

धनुर्वेद के जानने वाले, युद्ध में शत्रुओं द्वारा दुर्जय, प्रसिद्ध २ वीरों ने कौरव सेना के विनाश की चेष्टा करने वाले, अर्जुन को उसके पुत्र अभिमन्यु के साथ घेर लिया ॥१३॥

तौ तु पितापुत्रौ परिक्षिप्तौ महारथौ ।
ददर्श राजन्पाञ्चाल्यः सेनापतिररिन्दम ॥१४॥

हे अरिमर्दन ! इन दोनों महारथी पिता-पुत्र, अर्जुन और अभिमन्यु को पाञ्चाल राजकुमार सेनापति धृष्टद्युम्न ने देखा ।

स वारणरथौघानां सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ।
वाजिभिः पत्तिभिश्चैव वृतः शतसहस्रशः ॥१५॥
धनुर्विस्फार्य संक्रुद्धो नोदयित्वा च वाहिनीम् ।
ययौ तं मद्रकानीकं केकयांश्च परन्तप ॥१६॥

हे परन्तप ! हाथी और रथों के सहस्रों समूहों से युक्त और लाखों की संख्या में अश्वारोही और पैदल सैनिकों सहित धृष्टद्युम्न, क्रोध में भरा हुआ अपनी सेना का सञ्चालन कर तथा धनुष को चढ़ाकर उस केकय और मद्रकों की सेना पर चढ़ दौड़ा ।

तेन कीर्तिमता गुप्तमनीकं दृढधन्वना ।
संरब्धरथनागाश्वं योत्स्यमानमशोभत ॥१७॥

उस दृढ़ धनुपधारी, कीर्तिशाली, धृष्टद्युम्न द्वारा सुरक्षित, आवेश में भरे हुए रथी, हाथी और अश्वों से परिपूर्ण, थोड़ी ही देर में युद्ध करने वाली सेना बड़ी ही सुशोभित हो रही थी ॥१७॥

सोऽर्जुनप्रमुखे यान्तं पाञ्चालकुलवर्धनः ।
त्रिभिः शारद्वतं बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥१८॥

पाञ्चाल कुल की कीर्ति के बढ़ानेवाले, धृष्टद्युम्न ने अर्जुन पर झपटते शरद्वान-पुत्र, कृपाचार्य के जत्रु प्रदेश पर तीन बाण छोड़े ॥१८॥

ततः स मद्रकान्हत्वा दशैव दशभिः शरैः ।
पृष्ठरक्षं जघानाऽऽशु भल्लेन कृतवर्मणः ॥१९॥

धृष्टद्युम्न ने दश बाणों से दश मद्रक वीर और एक बाण से कृतवर्मा के पृष्ठ-रक्षक को मार गिराया ॥१९॥

दमनं चाऽपि दायादं पौरवस्य महात्मनः ।
जघान विमलाग्रेण नाराचेन परन्तपः ॥२०॥

इस शत्रु-विजयी धृष्टद्युम्न ने महावीर पौरव के पुत्र, दमन का अपने तीक्ष्ण बाणों से दमन कर दिया ॥२०॥

ततः सांयमनेः पुत्रः पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ।
अविध्यत्त्रिंशता बाणैर्दशभिश्चाऽस्य सारथिम् ॥२१॥

अब शल के पुत्र ने युद्धदुर्मद, पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न को तीन और उसके सारथि को दश बाणों से बींध दिया ॥२१॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन निचकर्ताऽस्य कार्मुकम् ॥२२॥

इस प्रकार बाणों से अत्यन्त बिंधे हुए, महाधनुर्धर, अपने होठों को चाबते हुए, धृष्टद्युम्न ने अत्यन्त तीखे बाणों से शल के पुत्र के धनुष को काट गिराया ॥२२॥

अथैनं पञ्चविंशत्या क्षिप्रमेव समार्पयत् ।
अश्वांश्चाऽस्याऽवधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥२३॥

हे राजन्! पर्षतवंशश्रेष्ठ, धृष्टद्युम्न ने इसके ऊपर पचीस बाण बड़ी शीघ्रतासे छोड़े तथा इसके अश्व और दो पार्ष्णि-रक्षकों को मार गिराया ॥२३॥

स हताऽश्वे रथे तिष्ठन्ददर्श भरतर्षभ ।
पुत्रः सांयमनेः पुत्रं पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ॥२४॥

हे भरतर्षभ! अब अश्व-विहीन रथ में बैठे हुए, शल के पुत्र ने महात्मा द्रुपदराज के पुत्र, धृष्टद्युम्न की ओर देखा ॥२४॥

स प्रगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम् ।
पदातिस्तूर्णमान्च्छद्रथस्थं पुरुषर्षभः ॥२५॥

इस पुरुषप्रवीर ने बड़ी तीक्ष्ण उत्तम लोहे से बनी हुई महाघोर तलवार उठाई और पैदल ही दौड़कर रथ पर बैठे हुए धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया ॥२५॥

तं महौघमिवायान्तं खात्पतन्तमिवोरगम् ।
भ्रान्तावरणनिस्त्रिंशं कालोत्सृष्टमिवान्तकम् ॥२६॥
दीप्यमानमिवाऽऽदित्यं मत्तवारणविक्रमम् ।
अपश्यन्पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥२७॥

महान प्रवाह की तरह उभलते हुए, आकाश से गिरते हुए सर्प के सदृश, आवरण (म्यान) से रहित, काल प्रेरित यमराज के तुल्य, देदीप्यमान सूर्यवत, मदोन्मत्त हाथी के सदृश बलशाली, उस खड्ग को पर्षतराजकुमार धृष्टद्युम्न और पाण्डवों ने देखा ।

तस्य पाञ्चालदायादः प्रतीपमभिधावतः ।
शितनिस्त्रिंशहस्तस्य शरावरणधारिणः ॥२८॥
बाणवेगमतीतस्य तथाऽभ्याशमुपेयुषः ।
त्वरन्सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः ॥२६॥

विरोध भाव से दौड़े चले आते हुए, नंगी तलवार हाथ में लिए, कवच पहिने हुए, बाण के वेग के बहिर्भूत, समीप ही पहुंचे हुए, शल-पुत्र के शिर को पाञ्चाल राजकुमार सेनापति धृष्टद्युम्न ने बड़ी शीघ्रता से गदा से चूर्ण कर दिया ॥२८-२६॥

तस्य राजन्सनिस्त्रिंशं सुप्रभं च शरावरम् ।
हतस्य पततो हस्ताद्वेगेन न्यपतद् भुवि ॥३०॥

हे राजन् ! चमकीला खड्ग और कवच, मारे हुए और गिरते हुए शल के पुत्र के हाथ से बड़े वेगके साथ भूमि पर गिरे ।

तं निहत्य गदाग्रेण स लेभे परमां मुदम् ।

पुत्रः पाञ्चालराजस्य महात्मा भीमविक्रमः ॥३१॥

पाञ्चालराज का पुत्र, महावीर, भीषण पराक्रम करनेवाले धृष्टद्युम्नने गदा से शल-पुत्र को मार कर बड़ा आनन्द प्राप्त किया।

तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे ।

हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥३२॥

हे आर्य ! इस महा धनुर्धर महारथी राजपुत्र के मारे जाने पर तुम्हारी सेना में बड़ा हाहाकार मच गया ॥३२॥

ततः सांयमनिः क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजम् ।

अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ॥३३॥

अपने पुत्र को मरा हुआ सुनकर संयमन-पुत्र शल, बड़ा क्रुद्ध हुआ और वह बड़े वेग से युद्धदुर्मद पाञ्चाल-राज के पुत्र, धृष्टद्युम्न पर झपटा ॥३३॥

तौ तत्र समरे शूरौ समेतौ युद्धदुर्मदौ ।

ददृशुः सर्वराजानः कुरवः पाण्डवास्तथा ॥३४॥

अब ये दोनों ही युद्धदुर्मद वीर एकदम परस्पर जुट गए। इनको सारे राजा, कौरव और पाण्डव देखने लगे ॥३४॥

ततः सांयमनिः क्रुद्धः पार्षतं परवीरहा ।

आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥३५॥

शत्रुवीरनाशक, संयमन-पुत्र, शल बड़ा क्रुद्ध हुआ। इसने पर्वतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न पर इस तरह तीन तीखे बाण छोड़े, जैसे-महा गजराज पर तोत्र (सोटे) का प्रहार किया गया हो ॥३६॥

तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः।
आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थ युद्धदिवसे सांयमनिपुत्रवधे एकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

इसी तरह युद्ध में शोभा पाने वाले, शल्य ने पर्वतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न के वक्षस्थल में क्रोध में भर कर बाण मारे, जिससे इनका युद्ध चल पड़ा ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में चतुर्थ दिवस के युद्ध में शल के पुत्र के वधका इकसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



बासठवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

दैवमेव परं मन्ये पौरुषादपि सञ्जय ।
यत्सैन्यं मम पुत्रस्य पाण्डुसैन्येन बाध्यते ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! मैं पुरुषार्थ की अपेक्षा दैव को ही उत्कृष्ट मानता हूं, जो मेरी सर्वोत्तम सेना को भी पाण्डवों की सेना हानि पहुंचा रही है ॥१॥

नित्यं हि मामकांस्तात हतानेव हि शंससि ।
अव्यग्रांश्च प्रहृष्टांश्च नित्यं शंससि पाण्डवान् ॥२॥

हे तात ! तुम जो सुनाते हो, वह वही सुनाते हो, जिसमें मेरी सेना के ही कोई न कोई वीर की मृत्यु होती है और पाण्डवों को सदा प्रसन्न और सारे क्लेशों से रहित ही बताते आ रहे हो ॥२॥

हीनान्पुरुषकारेण मामकानद्य सञ्जय ।
पातितान्पात्यमानांश्च हतानेव च शंससि ॥३॥

हे सञ्जय ! आज भी पराक्रम से हीन, मरते और मारे जाते हुए मेरे वीरों की ही सूचना (खबर) दे रहे हो ॥३॥

युध्यमानान्यथाशक्ति घटमानाञ्जयं प्रति ।
पाण्डवा हि जयन्त्येव जीयन्ते चैव मामकाः ॥४॥

यद्यपि मेरे पुत्र भी यथाशक्ति युद्ध और विजय के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, तथापि पाण्डव ही जीते हुए सुने जाते हैं और मेरे पुत्रों की तो पराजय ही हो रही ज्ञात होती है ॥४॥

सोऽहं तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतानि च ।
श्रोष्यामि सततं तात दुःसहानि बहूनि च ॥५॥

हे तात ! दुर्योधन के खड़े किये हुए, इन दुःसह, तीव्र दुःखों के समाचारों को मैं नित्य सुनता रहूंगा ॥५॥

तमुपायं न पश्यामि जीयेरन्येन पाण्डवाः ।
मामका विजयं युद्धे प्राप्नुयुर्येन सञ्जय ॥६॥

हे सञ्जय ! अब तो मुझे कोई ऐसा उपाय नहीं दिखाई पड़ता है, जिससे पाण्डव जीते जा सके और मेरे पुत्र युद्ध में विजय प्राप्त कर लें ॥६॥

सञ्जय उवाच—

क्षयं मनुष्यदेहानां गजवाजिरथक्षयम् ।
शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा तवैवाऽपनयो महान् ॥७॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अब तुम अपने वीर सैनिक, हाथी, अश्व और रथारोहियों के विनाश के समाचार स्थिर होकर सुनो । यह सारी तुम्हारी दुर्नीति का ही फल है ॥७॥

धृष्टद्युम्नस्तु शल्येन पीडितो नवभिः शरैः ।
पीडयामास संक्रुद्धो मद्राधिपतिमायसैः ॥८॥

जब शल्य ने धृष्टद्युम्न को नौ बाण मारकर बेध दिया, तो धृष्टद्युम्न ने भी क्रोध पूर्ण होकर अपने दृढ़ लोहमय बाणों से मद्राधिपति शल्य को क्षत विक्षत कर दिया ॥८॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम पार्षतस्य पराक्रमम् ।
न्यवारयत यस्तूर्णं शल्यं समितिशोभनम् ॥९॥

इस युद्ध में पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न का पराक्रम, अद्भुत देखा गया, जिसने युद्ध में अच्छा पराक्रम दिखाने वाले शल्य को शीघ्र ही सामने से पीछे हटा दिया ॥९॥

नाऽन्तरं दृश्यते तत्र तयोश्च रथिनोस्तदा ।
मुहूर्तमिव तद्युद्धं तयोः सममिवाऽभवत् ॥१०॥

थोड़ी देर तक तो इन दोनों महारथी, शल्य और धृष्टद्युम्न का युद्ध हुआ, उसमें इन दोनों में कुछ भेद दिखाई नहीं दिया। इनके तीव्र युद्ध की अन्य कोई युद्ध समानता नहीं कर पाता था।

ततः शल्यो महाराज धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥

हे महाराज ! धृष्टद्युम्न के साथ होने वाले इस युद्ध में राजा शल्य ने धृष्टद्युम्न के धनुष को विष में बुझे अपने तीक्ष्ण बाणों से काट गिराया ॥११॥

अथैनं शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे ।
गिरिं जलागमे यद्वज्जलदा जलवृष्टिभिः ॥ १२ ॥

महाभारत चित्र संख्या ७६



अर्जुन का घोर संग्राम
महा० भीष्म पर्व अ० ५५। २६ पृ० ५८६

अब शल्य ने इस होने वाले युद्ध में वर्षा ऋतु में जल की धाराओं से मेघ जैसे—पर्वतों को आप्लावित कर देते हैं, वैसे—ही धृष्टद्युम्न को बाण वर्षा से आच्छादित कर दिया ॥१२॥

अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो धृष्टद्युम्ने च पीडिते ।
अभिदुद्राव वेगेनमद्रराजरथं प्रति ॥ १३ ॥

जब धृष्टद्युम्न पीड़ित हो गया, तो अभिमन्यु को बड़ा क्रोध आया, वह बड़े वेग से मद्रराज शल्य के रथ की ओर झपटा।

तत मद्राधिपरथं कार्ष्णिः प्राप्याऽतिकोपनः ।
आर्तायनिममेयात्मा विव्याध निशितैः शरैः ॥१४॥

अब अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु, अत्यन्त कोप में भरे हुए मद्राधिपति के रथ के पास पहुंचे और इस अपरिमित-बलशाली, आर्तायन के पुत्र शल्य को तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया ॥१४॥

ततस्तु तावका राजन्परीप्सन्तोऽऽर्जुनिं रणे ।
मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्याऽवतस्थिरे ॥१५॥

हे राजन् ! इस तुम्हारी ओर के वीर, अर्जुन-पुत्र, अभिमन्यु पर आक्रमण करना चाहते थे, इससे वे मद्रराज की रक्षा के निमित्त उसके रथ को घेर कर खड़े हो गए ॥१५॥

दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासनविविंशती ।
दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनोऽथ दुर्मुखः ॥१६॥

सत्यव्रतश्च भद्रं ते पुरुमित्रश्च भारत ।
एते मद्राधिपरथं पालयन्तः स्थिता रणे ॥१७॥

हे भारत! इस युद्ध में राजा दुर्योधन, विकर्ण, दुःशासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत और पुरुमित्र, मद्राधिप शल्य की रक्षा में तत्पर हुए ॥१६-१७॥

तान्भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥१८॥
धार्तराष्ट्रान्दश रथान्दशैव प्रत्यवारयन् ।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो विशाम्पते ॥१९॥

इन दश तुम्हारे महारथियों का क्रोधपूर्ण, भीमसेन, पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पांच महारथी पुत्र, अभिमन्यु और दोनों माद्री-पुत्र, पाण्डव, नकुल और सहदेव—इन दश महारथियों ने सामना (मुक़ाबिला) किया। हे विशाम्पते! ये सब अनेक भांति के शस्त्र चला रहे थे ॥१८-१९॥

अभ्यवर्तन्त संहृष्टाः परस्परवधैषिणः ।
ते वै समेयुः संग्रामे राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥२०॥

ये बड़ी प्रसन्नता से परस्पर वध की अभिलाषा से प्रहार करने लगे। हे राजन्! यह सब कुछ तुम्हारी दुर्मन्त्रणा से उत्पन्न हुए युद्ध का वृत्तान्त है ॥२०॥

तस्मिन्दशरथे क्रुद्धे वर्तमाने महाभये ।
तावकानां परेषां वा प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ॥२१॥

हे राजन्! दोनों ओर के दश २ महारथियों के क्रोध में भर जाने से बड़ा भय उपस्थित हो गया। इस समय तुम्हारे और पाण्डवों के इन महारथियों के युद्ध के दृश्य (तमाशे) को अनेक रथी, वीर देखने लगे ॥२१॥

शस्त्राण्यनेकरूपाणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिनर्दन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥२२॥

ये महारथी, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चला रहे थे और एक दूसरे के वध की आकांक्षा से चोट पहुंचाते हुए प्रहार में तत्पर थे ॥२२॥

ते तदा जातसंरम्भाः सर्वेऽन्योऽन्यं जिघांसवः ।
अन्योन्यमभिमर्दन्तः स्पर्धमानाः परस्परम् ॥२३॥

इनको बड़ा ही क्रोध आ रहा था, इससे ये एक दूसरे के मारने की इच्छा (घात) में थे। ये एक दूसरे को बड़ी स्पर्धा के साथ मसल डालना चाहते थे ॥२३॥

अन्योन्यस्पर्धया राजञ्ज्ञातयः सङ्गता मिथः ।
महास्त्राणि विमुञ्चन्तः समापेतुरमर्षिणः ॥२४॥

हे भारत! एक दूसरे को जीतने की स्पर्धा से ही इन बन्धु बान्धवों में चोटें चल रही थीं। ये अमर्ष (आवेश) में भरे हुए कभी २ महा अस्त्रों का भी प्रयोग कर देते थे ॥२४॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं महारणे ।
विव्याध निशितैर्बाणैश्चतुर्भिः समरे द्रुतम् ॥२५॥

दुर्मर्षणश्च विंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ।

दुर्मुखो नवभिर्बाणैर्दुःसहश्चाऽपि सप्तभिः ॥२६॥

विविंशतिः पञ्चभिश्च त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ।

अब राजा दुर्योधन ने क्रोध में भर कर इस भीषण रण में बड़ी शीघ्रता से धृष्टद्युम्न के शरीर में चार, दुर्मर्षण ने बीस, चित्रसेन ने पांच, दुर्मुख ने नौ, दुःसह ने सात, विविंशति ने पांच और दुःशासन ने तीन बाण मारे ॥२५-२६॥

तान्प्रत्यविध्यद्राजेन्द्र पार्षतः शत्रुतापनः ॥२७॥

एकैकं पञ्चविंशत्या दर्शयन्पाणिलाघवम् ।

हे राजेन्द्र ! पर्षतवंशश्रेष्ठ, शत्रु-विजयी धृष्टद्युम्न ने भी अपने हाथों के कौशलसे प्रत्येक महारथीको पचीस २ बाणोंसे बींध डाला ।

सत्यव्रतं च समरे पुरुमित्रं च भारत ॥२८॥

अभिमन्युरविध्यत्तु दशभिर्दशभिः शरैः ।

हे भारत ! इस युद्ध में राजा सत्यव्रत और पुरुमित्र को अभिमन्यु ने दश २ बाणों से छेद दिया ॥२८॥

माद्रीपुत्रौ तु समरे मातुलं मातृनन्दनौ ॥२९॥

अविध्येतां शरैस्तीक्ष्णैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

माता के आनन्द देनेवाले माद्री-पुत्र नकुल सहदेव ने भी इस युद्ध में अपने मातुल शल्य को तीक्ष्ण बाणों से बेंध डाला, जो बड़ा ही अद्भुत दृश्य था ॥२९॥

ततः शल्यो महाराज स्वस्रीयौ रथिनां वरौ ॥३०॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छत्कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
छाद्यमानौ ततस्तौ तु माद्रीपुत्रौ न चेलतुः ॥३१॥

हे महाराज ! अब शल्य ने भी अपनी भगिनी के पुत्र, रथियों में श्रेष्ठ, नकुल और सहदेव को अनेक बाणों से ढक दिया। ये दोनों पक्ष के वीर, एक दूसरे के प्रहार के उत्तर प्रत्युत्तर में तत्पर थे। शल्य के बाणों से माद्री-पुत्र नकुल सहदेव इतने आच्छादित हो गए, कि चल भी न सके ॥३०-३१॥

अथ दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
विधित्सुः कलहस्याऽन्तं गदां जग्राह पाण्डवः ॥३२॥

महाबली पाण्डु-पुत्र भीमसेन, राजा दुर्योधन को देखकर इस सारे कलह का अन्त ही कर देने के लिए अपनी भारी गदा को लेकर दौड़ा ॥३२॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
भीमसेनं महाबाहुं पुत्रास्ते प्राद्रवन्भयात् ॥३३॥

ऊंचे शिखर धारी कैलास के सदृश, ऊपर गदा उठाए हुए, महाबाहु भीमसेन को देखकर तुम्हारे पुत्र भय से भाग खड़े हुए।

दुर्योधनस्तु क्रुद्धो मागधं समचोदयत् ।
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥३४॥

राजा दुर्योधन ने क्रोध में आकर मगध देश के किसी प्रदेश के किसी राजा और दश सहस्र, वेगशील हाथियों की सेना को भीमसेन पर आक्रमण करने की आज्ञा दी ॥३४॥

गजानीकेन सहितस्तेन राजा सुयोधनः ।
मागधं पुरतः कृत्वा भीमसेनं समभ्ययात् ॥३५॥

इस विशाल गजसेना के साथ और मगधराज को आगे करके राजा दुर्योधन ने भीमसेन पर स्वयं आक्रमण किया ॥३५॥

आपन्ततं च तं दृष्ट्वा गजानीकं वृकोदरः ।
गदापाणिरवारोहद्रथात्सिंह इवोन्नदन् ॥३६॥

इस विशाल गज सेना को आती हुई देखकर सिंह की भांति गर्जना करता हुआ भीमसेन गदा हाथ में लेकर रथसे उतर पड़ा।

अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अभ्यधावद्गजानीकं व्यादितास्य इवाऽन्तकः ॥३७॥

भीमसेन, मुख फाड़े हुए यमराज के तुल्य, लोहसार से बनी हुई विशाल गदा को लेकर इस गज-सेना पर झपटा ॥३७॥

स गजान्गदया निघ्नन्व्यचरत्समरे बली ।
भीमसेनो महाबाहुः सवज्र इव वासवः ॥३८॥

अब महाबाहु भीमसेन, वज्रधारी इन्द्र की भांति अपनी गदा से गजराजों को चकनाचूर करता हुआ, रणभूमि में घूमने लगा।

तस्य नादेन महता मनोहृदयकम्पिना ।
व्यत्यचेष्टन्त संहत्य गजा भीमस्य गर्जतः ॥३९॥

मन और हृदय को कंपा देने वाले, गर्जना करते हुए भीमसेन के महानाद से सारे हाथी भय से इकट्ठे होकर चेष्टा करने लगे।

ततस्तु द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥४०॥
पृष्ठं भीमस्य रक्षन्तः शरवर्षेण वारणान्।
अभ्यवर्षन्त धावन्तो मेघा इव गिरीन्यथा ॥४१॥

अब सारे द्रौपदी-पुत्र, महारथी सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, नकुल, सहदेव पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न, दौड़कर पर्वत पर मेघों की भाँति भीम की रक्षा करते हुए हाथियों पर बाण-वर्षा करने लगे।

क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पीतैश्चाऽञ्जलिकैः शितैः।
व्यहरन्नुत्तमाङ्गानि पाण्डवा गजयोधिनाम् ॥४२॥

क्षुरे के सदृश पैनी धारवाले बाण और भाले तथा विष में बुझे हुए तीक्ष्ण अञ्जलिकास्त्रों से पाण्डव गजारोहियों के शिरों को काट २ कर गिरा रहे थे ॥४२॥

शिरोभिः प्रपतद्भिश्च बाहुभिश्च विभूषितैः।
अश्मवृष्टिरिवाऽऽभाति पाणिभिश्च सहांकुशैः ॥४३॥

आभूषणों से विभूषित, भुजा और शिर तथा अंकुश सहित महावतों के हाथों के गिरने से रणभूमि में पत्थरों की सी वर्षा हो रही थी ॥४३॥

हृतोत्तमाङ्गाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः।
अदृश्यन्ताऽचलाग्रेषु द्रुमा भग्नशिखा इव ॥४४॥

हाथियों के स्कन्ध पर बैठे हुए, गजपतियों के कटे हुए मस्तक से रहित शरीर (रुण्ड) पर्वत की चोटी पर शाखाओं के कट जाने से रुण्ड वृक्ष की भांति प्रतीत होते थे ॥४४॥

धृष्टद्युम्नहतानन्यानपश्याम महागजान् ।
पततः पात्यमानांश्च पार्षतेन महात्मना ॥४५॥

हमने धृष्टद्युम्न के मारे हुए भी बहुत से हाथी देखे थे तथा महावीर धृष्टद्युम्न से गिराये हुए रणभूमि में पड़ते हुए अनेक हाथी देखे ॥४५॥

मागधोऽथ महीपालो गजमैरावणोपमम् ।
प्रेषयामास समरे सौभद्रस्य रथं प्रति ॥४६॥

मगध प्रदेश के राजा ने इस युद्ध में सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के रथ की ओर ऐरावत हाथी के सदृश एक महाबली हाथी को चलाया।

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मागधस्य महागजम् ।
जघानैकेषुणा वीरः सौभद्रः परवीरहा ॥४७॥

इस मगधराज के प्रेरित किये हुए महागज को आता हुआ देखकर शत्रुवीर नाशक, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने एक बाण से उसको मार गिराया ॥४७॥

तस्याऽऽवर्जितनागस्य कार्ष्णिः परपुरञ्जयः ।
राज्ञो रजतपुङ्खेन भल्लेनाऽपाहरच्छिरः ॥४८॥

शत्रु-पुर-नाशक अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने हाथी से विहीन मगधराज का एक ही बाण से शिर दूर कर दिया ॥४८॥

विगाह्य तद्गजानीकं भीमसेनोऽपि पाण्डवः ।
व्यचरत्समरे मृद्नन्गजानिन्द्रो गिरीनिव ॥४६॥

पाण्डु-पुत्र भीमसेन भी उस गजानीक में प्रविष्ट होकर पर्वतों को इन्द्र की भांति उन गजराजों को कुचल कर समर भूमि में विचरण करने लगा ॥४६॥

एकप्रहारनिहता भीमसेनेन दन्तिनः ।
अपश्याम रणे तस्मिन्गिरीन्वज्रहतानिव ॥५०॥

इस रणभूमि में वज्र से आहत हुए पर्वतों की भांति भीमसेन ने एक ही प्रहार में अनेक हाथी मार डाले-यह हमने प्रत्यक्ष देखा है ॥५०॥

भग्नदन्तान्भग्नकटान्भग्नसक्थांश्च वारणान् ।
भग्नपृष्ठत्रिकानन्यान्निहतान्पर्वतोपमान् ॥५१॥
नदतः सीदतश्चाऽन्यान्विमुखान्समरे गतान् ।
विद्रुतान्भयसंविग्नांस्तथा विशकृतोऽपरान् ॥५२॥
भीमसेनस्य मार्गेषु पतितान्पर्वतोपमान् ।
अपश्यं निहतान्नागान्राजन्निष्ठीवतोऽपरान् ॥५३॥

हे राजन् ! किसी हाथी के दांत टूट गए, किसी के कपोल फट गए, किसी की टांग कट गई, किसी की पीठ की त्रिक की हड्डी टूट गई थी । कोई चिल्लाते पुकारते हुए युद्ध से विमुख होकर भाग रहे थे । कुछ भयभीत होकर भागते हुए लीद करते

जाते थे, कुछ रक्त की वमन कर रहे थे। बात यह है, कि भीमसेन के मार्ग-मार्ग में हमने तो पर्वत के आकार के भरे पड़े हुए बहुत से हाथी देखे ॥५१-५३॥

वमन्तो रुधिरं चाऽन्ये भिन्नकुम्भा महागजाः ।
विह्वलन्तो गता भूमिं शैला इव धरातले ॥५४॥

बहुत से महागजों के मस्तक फट गए, जिससे वे रुधिर उगलते हुए दिखाई दिए। ये बड़े व्याकुल होकर पृथिवी पर पर्वतों की तरह गिर गए ॥५४॥

मेदोरुधिरदिग्धाङ्गो वसामज्जासमुक्षितः ।
व्यचरत्समरे भीमो दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥५५॥

इनके शरीर, मेद और रुधिर में भीग रहे थे तथा वसा, मज्जा में लिपटे हुए थे। इस समय दण्डपाणि यमराज की तरह भीमसेन रणभूमि में विचरण कर रहे थे ॥५५॥

गजानां रुधिरक्लिन्नां गदां बिभ्रद्वृकोदरः ।
घोरः प्रतिभयश्चाऽऽसीत्पिनाकीव पिनाकधृक् ॥५६॥

हाथियों के रक्त में सनी हुई गदा को वृकोदर भीम ने धारण कर रखा था। यह पिनाकधारी शंकर की भांति महाघोर, भयानक प्रतीत होता था ॥५६॥

सम्मथ्यमानाः क्रुद्धेन भीमसेनेन दन्तिनः ।
सहसा प्राद्रवन्क्लिष्टा मृद्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥५७॥

अत्यन्त कुपित हुए भीमसेन द्वारा मथे हुए, क्लेशित हाथी, एकदम तुम्हारी सेना का चूरा करते हुए भाग निकले ॥५७॥

तं हि वीरं महेष्वासं सौभद्रप्रमुखा रथाः ।
पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुधमिवाऽमराः ॥५८॥

महाधनुर्धर, वीरवर, युद्ध करते हुए भीमसेन की अभिमन्यु आदि प्रमुख महारथी इस तरह रक्षा कर रहें थे, जैसे-देवता इन्द्र की रक्षा करते हैं ॥५८॥

शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितां गजशोणितैः ।
कृतान्त इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत ॥५९॥

हाथियों के रुधिर में भीगी हुई, रक्त वर्णवाली गदा को धारण किये हुए भीमसेन, भयानक मूर्ति, काल की भांति भयानक दिखाई देते थे ॥५९॥

व्यायच्छमानं गदया दिक्षु सर्वासु भारत ।
अपश्याम रणे भीमं नृत्यन्तमिव शङ्करम् ॥६०॥

हे भारत ! गदा को धारण किये हुए भीम को हम रणभूमि की समस्त दिशाओं में भगवान् शङ्कर की भांति नाचते हुए देख रहे थे ॥६०॥

यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
अपश्याम महाराज रौद्रां विशसनीं गदाम् ॥६१॥

यमदण्ड के तुल्य भयङ्कर, इन्द्र के वज्र के तुल्य शब्द करने वाली, भयानक, सबके मार काट देने वाली भीमसेन की विशाल गदा का वैभव हमने देखा है ॥६१॥

विमिश्रां केशमज्जाभिः प्रदिग्धां रुधिरेण च ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याऽभिघ्नतः पशून् ॥६२॥

यह गदा, केश और मज्जा से युक्त, रक्त में भीगी हुई, क्रुद्ध होकर हिंसक पशुओं को मारते हुए या प्रलय काल में प्राणी-मात्र का संहार करते हुए, महादेव के धनुष की बराबरी करने वाली थी ॥६२॥

यथा पशूनां सङ्घातं यष्ट्या पालः प्रकालयेत् ।
तथा भीमो गजानीकं गदया समकालयत् ॥६३॥

जैसे ग्वाला एक ही लाठी से पशु संघात को हाँकता रहता है, वैसे ही भीमसेन ने भी इस गजसेना को अपनी गदा से सञ्चलित किया ॥६३॥

गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समन्ततः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन्कुञ्जरास्तव ॥६४॥

भीमसेन की गदा और इधर उधर से आने वाले बाणों से पीड़ित हुए, तुम्हारे हाथी, अपनी ही सेना को कुचलते हुए भाग निकले ॥६४॥

महावात इवाऽभ्राणि विधमित्वा स वारणान् ।
अतिष्ठत्तुमुले भीमः श्मशान इव शूलभृत् ॥६५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसे भीमयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

महावात (आँधी) जैसे-मेघों को इधर उधर फैंक देता है, उसी तरह भीमसेन, हाथियों को फैंक करके उस घमसान युद्ध में श्मशान में शूलधारी शंकर की तरह स्थित हुए ॥६४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में चौथे दिन भीम के युद्ध का वर्णन करने वाला बासठवां अध्याय समाप्त हुआ

तरेसठवाँ अध्याय

सञ्जय उवाच—

हते तस्मिन्गजानीके पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
भीमसेनं घ्नतेत्येवं सर्वसैन्यान्यचोदयत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! भीमसेन ने जब तुम्हारी बहुत सी हाथियों की सेना मार गिराई-तो तुम्हारे पुत्र, राजा दुर्योधन ने सारी सेना को आज्ञा दी, कि तुम शीघ्रतासे भीमसेन का वध करो ।

ततः सर्वाण्यनीकानि तव पुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्भीमसेनं नदन्तं भैरवान्रवान् ॥२॥

तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की आज्ञा पाते ही सारी सेनाएँ भयानक शब्द करती हुई भीमसेन पर टूट पड़ी ॥२॥

तं बलौघमपर्यन्तं देवैरपि सुदुःसहम् ।
आपतन्तं सुदुष्पारं समुद्रमिव पर्वणि ॥३॥
रथनागाश्वकलिलं शङ्खदुन्दुभिनादितम् ।
अनन्तरथपादातं नरेन्द्रस्तिमितह्रदम् ॥४॥
तं भीमसेनः समरे महोदधिमिवाऽपरम् ।
सेनासागरमक्षोभ्यं वेलेव समवारयत् ॥५॥

देवों से भी दुःसह, पर्व पर दुष्पार समुद्र की भांति उमड़ते हुए, रथ, हाथी, अश्वों से व्याप्त, शंख दुन्दुभि आदि बाजों से निनादित, अनन्त रथी और पैदल सैनिकों से समन्वित, यह अपार सेना समूह था। इसमें अनेक राजा निश्चल सरोवर की भांति शोभा पा रहे थे। दूसरे महोदधि के तुल्य इस अक्षोभ्य सेना समूह को समुद्र की वेला के समान बने हुए भीमसेन ने रोक दिया ॥३-५॥

तदाश्चर्यमपश्याम पाण्डवस्य महात्मनः ।
भीमसेनस्य समरे राजन्कर्मातिमानुषम् ॥६॥

हे राजन्! महात्मा पाण्डु-पुत्र भीमसेन का इस युद्ध में इतना मनुष्यातिशायी कर्म देखा गया, कि जिसका स्मरण करके हमको आश्चर्य होता है ॥६॥

उदीर्णान्पार्थिवान्सर्वान्साश्वान्सरथकुञ्जरान् ।
असम्भ्रमं भीमसेनो गदया समवारयत् ॥७॥

अश्व, रथ और हाथियों को साथ लिए हुए, सारे उमड़ते हुए पार्थिवों को विना किसी घबराहट के भीमसेन ने गदा से रोक दिया

स संवार्य बलौघांस्तान्गदया रथिनां वरः ।
अतिष्ठत्तुमुले भीमो गिरिर्मेरुरिवाऽचलः ॥८॥

रथियों में श्रेष्ठ, भीमसेन अपनी गदा से इस सेना-संघ को रोक कर, मेरुपर्वत की भांति इस घोर रण में अचल खड़े रहे ।

तस्मिन्सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे ।
भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥९॥
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च शिखण्डी चाऽपराजितः ।
न प्राजहन्भीमसेनं भये जाते महाबलम् ॥१०॥

हे राजन्! इस भीषण रण में और दारुण काल में भी सारे पाण्डव भ्राता, द्रौपदी-पुत्र, पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु-अपराजित होने वाले शिखण्डी आदि महारथी, इस भय के उत्पन्न होने पर भी महाबली भीमसेन को छोड़कर नहीं गए ॥९-१०॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अधावत्तावकान्योधान्दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥११॥
पोथयन्रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि चाऽभिभूः ।
कर्षयन्रथवृन्दानि बाहुवेगेन पाण्डवः ॥१२॥

इसके अनन्तर पूज्य भाव से छींके पर रखी रहने वाली, बोझल, विशाल गदा को लेकर दण्ड-पाणि अन्तक की तरह, सबके पराजित करने वाले भीमसेन ने तुम्हारे रथी और अश्वा-रोहियों के वृन्दों को कुचल डाला और वह अपनी भुजाओं के वेग से उनके रथों के समूह को खैंच ले गया ॥११-१२॥

विनिघ्नन्व्यचरत्संख्ये युगान्ते कालवद्विभुः।
ऊरुवेगेन सङ्कर्षन्रथजालानि पाण्डवः॥१३॥

प्रलयकाल में काल की तरह चक्कर लगाने वाले, भीमसेन, रणभूमि में शत्रुओं का नाश करते हुए चक्कर लगा रहे थे और अपने उरुओं के बल से रथों के समूह को इधर उधर खैंच ले जाते थे ॥१३॥

बलानि सम्ममर्दाशु नडवलानीव कुञ्जरः।
मृद्नन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः॥१४॥

जैसे-हाथी, कमल-नाल को तोड़ मरोड़ डालता है, उसी तरह भीम, कौरव सेना को मथ रहा था और रथों से रथी तथा गजों से गजपतियों को गिरा कर उनका चूरा कर रहा था ॥१४॥

सादिनश्चाऽश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चाऽपि पदातिनः।
गदया व्यधमत्सर्वान्वातो वृक्षानिवौजसा॥१५॥
भीमसेनो महावाहुस्तत्र पुत्रस्य वै बले।

वायु अपने वेग से जिस तरह वृक्षों को उखाड़ फैंकता है, उसी तरह अश्वों की पीठ पर से अश्वारोही और भूमि में पैदल

सैनिकों को अपनी गदा से महाबाहु भीमसेन तुम्हारी सेना में क्षत-विक्षत कर रहे थे ॥१५॥

साऽपि मज्जावसामांसैः प्रदिग्धा रुधिरेण च ॥१६॥
अदृश्यत महारौद्रा गदा नागाश्वपातनी ।

मज्जा, वसा, मांस और रुधिर में सनी हुई, हाथी और अश्वों को गिराने वाली, भीमसेन की गदा इस समय बड़ी ही भयानक दिखाई देती थी ॥१६॥

तत्र तत्र हतैश्चाऽपि मनुष्यगजवाजिभिः ॥१७॥
रणाङ्गणं समभवन्मृत्योरावाससन्निभम् ।

इधर उधर मरे हुए मनुष्य, हाथी और अश्वों से व्याप्त रणाङ्गण, मृत्यु का निवास स्थान सा प्रतीत होता था ॥१७॥

पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याऽभिघ्नतः पशून् ॥१८॥
यमदण्डोपमामुग्रामिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
ददृशुर्भीमसेनस्य रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥१९॥

क्रोध में भरे हुए, पशु को मारते हुए रुद्र के पिनाक धनुष के तुल्य भीषण, यमदण्ड के समान भयङ्कर, इन्द्र के वज्र के तुल्य शब्द करने वाली, हिंसा में तत्पर भीमसेन की गदा, रण में वीरों को बड़ी डरावनी दिखाई देती थी ॥१८-१९॥

आविद्ध्यतो गदां तस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
बभौ रूपं महाघोरं कालस्येव युगक्षये ॥२०॥

इस महात्मा कुन्ती-पुत्र भीमसेन का रूप इधर उधर गदा फैंकने के समय में महाघोर, प्रलय काल में उग्र रूपधारी काल के तुल्य प्रतीत होता था ॥२०॥

तं तथा महतीं सेनां द्रावयन्तं पुनः पुनः ।
दृष्ट्वा मृत्युमिवाऽऽयान्तं सर्वे विमनसोऽभवन् ॥२१॥

इस प्रकार विशाल सेना को बार २ तितर बितर करते और मृत्यु के तुल्य आते हुए भीमसेन को देखकर सारे वीर उदास हो गए ॥२१॥

यतो यतः प्रेक्षते स्म गदामुद्यम्य पाण्डवः ।
तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्वसैन्यानि भारत ॥२२॥

पाण्डु-पुत्र भीम गदा उठा कर जिधर दृष्टि उठा कर देखते थे, हे भारत ! उसी ओर सारी सेना में काई सी फट जाती थी।

प्रदारयन्तं सैन्यानि बलेनाऽमितविक्रमम् ।
ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥२३॥

अपने बल से सेना को चीरते फाड़ते, अत्यन्त पराक्रमी शत्रु सेनाओं को स्वाहा करते हुए तथा मुख फाड़े हुए काल की भाँति भीमसेन सबको दिखाई पड़ते थे ॥२३॥

तं तथा भीमकर्माणं प्रगृहीतमहागदम् ।
दृष्ट्वा वृकोदरं भीष्मः सहसैव समभ्ययात् ॥२४॥

महा गदाधारी, भयानक कर्म करने वाले, भीम को देखकर भीष्म बड़े वेग से उसकी ओर झपटे ॥२४॥

महता रथघोषेण रथेनाऽऽदित्यवर्चसा।
छादयन्शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥२५॥

बड़े भारी रथ की ध्वनि युक्त, सूर्य के तुल्य तेजस्वी रथ से शर-वर्षा करते हुए भीम, वर्षा करने वाले मेघ से प्रतीत होते थे।

तमायान्तं तथा दृष्ट्वा व्यात्ताननमिवाऽन्तकम्।
भीष्मं भीमो महाबाहुः प्रत्युदीयादमर्षितः ॥२६॥

मुख खोले हुए, काल की तरह आते हुए भीष्म को देखकर महाबाहु भीम भी क्रोध में भरकर उनकी ओर दौड़े ॥२६॥

तस्मिन्क्षणे सात्यकिः सत्यसन्धः।
शिनिप्रवीरोऽभ्यपतत्पितामहम्
निघ्नन्नमित्रान्धनुषा दृढेन
सङ्कम्पयंस्तव पुत्रस्य सैन्यम् ॥२७॥

हे राजन्! इसी समय सत्य-प्रतिज्ञ, शिनिवंश के योद्धा, सात्यकि भीष्मपितामह की ओर बढ़े, जिन्होंने अपने धनुष से शत्रुओं को मारकर इतना बिछा दिया था, कि जिसका नाम सुनकर तुम्हारी सेना कांपने लगती थी ॥२७॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैः शरान्वपन्तं निशितान्सुपुङ्खान्।
नाऽशक्नुवन्धारयितुं तदानीं सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः

हे भारत! रजत (चांदी) के तुल्य श्वेत वर्ण वाले, अश्वों से आते हुए तथा सुन्दर बाण मूलों से युक्त, तीक्ष्ण बाणों को फैंकते

हुए, सात्यकि के रोकने को तुम्हारी सेना में कोई भी वीर समर्थ नहीं हुआ ॥२८॥

अविध्यदेनं दशभिः पृषत्कैरलम्बुषो राक्षसोऽसौ तदानीम् ।
शरैश्चतुर्भिः प्रतिविद्ध्य तं च नप्ता शिनेरभ्यपतद्रथेन ॥२६॥

अब अलम्बुप राक्षस ने सात्यकि को दश बाणों से वेंध दिया और शिनिनप्ता सात्यकि भी राक्षसराज अलम्बुप को चार बाणों से वेंधकर रथ से आगे बढ़ गए ॥२६॥

अन्वागतं वृष्णिवरं निशम्य तं शत्रुमध्ये परिवर्तमानम् ।
प्रद्रावयन्तं कुरुपुङ्गवांश्च पुनः पुनश्च प्रणदन्तमाजौ ॥३०॥
योधास्त्वदीयाः शरवर्षैरवर्षन्मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः ।
तथाऽपि तं धारयितुं न शेकुर्मध्यन्दिने सूर्यमिवाऽऽतपन्तम्

हे राजन्! अब तुम्हारे वीरों ने सुना, कि वृष्णिवंशश्रेष्ठ, सात्यकि अपने शत्रु कौरवों के मध्य में आकर कौरव सेना को भगा रहा है और बार २ युद्ध में गर्जता है, तो वे जल से भरे हुए पर्वत पर बरसने वाले जल पूर्ण मेघों की भांति इस पर बाण वर्षा करने लगे, परन्तु मध्याह्न काल में चमकते हुए प्रचण्ड सूर्य के तुल्य कोई इस सात्यकिके प्रताप को न्यून नहीं कर सका।

न तत्र कश्चिन्नविषण्ण आसीदृते राजन्सोमदत्तस्य पुत्रात् ।
स वै समादाय धनुर्महात्मा भूरिश्रवा भारत सौमदत्तिः॥३२॥
दृष्ट्वारथान्स्वान्व्यपनीयमानान्प्रत्युद्ययौसात्यकिंयोद्धुमिच्छन्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सात्यकिभूरिश्रवस्समागमे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

हे राजन्! इस समय कौरव सेना में सोमदत्त के पुत्र को छोड़ कर कोई वीर ऐसा नहीं था, जो सात्यकि को देखकर व्याकुल न हो गया हो। हे भारत! महावीर सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा ने जब अपने रथियों को युद्ध से हटता देखा—तो यह महात्मा, धनुष लेकर सात्यकि से लड़ने के लिए बड़े वेग से चल पड़ा।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में सात्यकि और भूरिश्रवा के समागम का तरेसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

चौसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो भूरिश्रवा राजन्सात्यकिं नवभिः शरैः।
अविध्यद्भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! राजा भूरिश्रवा ने अत्यन्त कुपित होकर सात्यकि पर नौ बाण छोड़े, तोत्र (सोटे) से पीड़ित महागज की भांति जिनसे सात्यकि पीड़ित हो उठे ॥१॥

कौरवं सात्यकिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः।
अवारयदमेयात्मा सर्वलोकस्य पश्यतः॥२॥

महाव्रती सात्यकि ने भी अपने झुकी पर्व वाले बाणों से कुरुवंशोत्पन्न भूरिश्रवा को सब लोगों के देखते २ वहीं रोक दिया।

ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः।
सौमदत्तिं रणे यत्तः समन्तात्पर्यवारयत् ॥३॥

अब राजा दुर्योधन अपने भाइयों के साथ आकर सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा को सब ओर से घेर उसकी बड़ी सावधानी से रक्षा करने लगे ॥३॥

तं चैव पाण्डवाः सर्वे सात्यकिं रभसं रणे।
परिवार्य स्थिताः संख्ये समन्तात्सुमहौजसः ॥४॥

इसी तरह बड़े वेग के साथ सारे तेजस्वी पाण्डव, रण में सात्यकि को घेर कर उसकी रक्षा में तत्पर हुए ॥४॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामुद्यम्य भारत।
दुर्योधनमुखान्सर्वान्पुत्रांस्ते पर्यवारयत् ॥५॥

हे भारत! भीमसेन क्रोध में भर गया और उसने गदा उठा कर तुम्हारे दुर्योधन आदि सारे पुत्रों को युद्ध के लिए घेर लिया ॥५॥

रथैरनेकसाहस्रैः क्रोधामर्षसमन्वितः।
नन्दकस्तव पुत्रस्तु भीमसेनं महाबलम् ॥६॥
विव्याध विशिखैः षड्भिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।

कई सहस्र रथियों के साथ क्रोध और आवेश में भर कर तुम्हारे नन्दक नामक पुत्र ने महाबली भीमसेन को कङ्कपक्षी के पक्षों से युक्त, शाण पर तीक्ष्ण किये हुए छः बाणों से बींध दिया।

दुर्योधनश्च समरे भीमसेनं महारथम् ॥७॥
आजघानोरसि क्रुद्धो मार्गणैर्नवभि शितैः।

राजा दुर्योधन ने भी इस रण में महारथी भीमसेन के हृदयमें क्रुद्ध होकर नौ तीखे बाण मारे ॥७॥

ततो भीमो महाबाहुः स्वरथं सुमहाबलः ॥८॥
आरुरोह रथश्रेष्ठं विशोकं चेदमब्रवीत्।

अब महाबली, महाबाहु, भीम भी सर्व श्रेष्ठ अपने रथ पर चढ़ गया और यह वचन बोला ॥८॥

एते महारथाः शूरा धार्तराष्ट्राः समागताः ॥९॥
मामेव भृशसंक्रुद्धा हन्तुमभ्युद्यता युधि।

ये सारे शूरवीर, महारथी, धृतराष्ट्र-पुत्र, मुझ पर अत्यन्त कोप करके चढ़ आए हैं और युद्ध में मुझे मारने की अभिलाषा कर रहे हैं ॥९॥

मनोरथद्रुमोऽस्माकं चिन्तितो बहुवार्षिकः ॥१०॥
सफलः सूत चाऽद्येह योऽहं पश्यामि सोदरान्।

हे सारथि! हमने जो बहुत वर्षों से मनोरथ वृक्ष का बीज बो रखा था, उसके आज फल लगने वाले हैं, जो इन धृतराष्ट्र-पुत्र अपने सहोदरों को युद्ध में सन्मुख देख रहा हूं ॥१०॥

यत्राऽऽशोक समुत्क्षिप्ता रेणवो रथनेमिभिः ॥११॥

प्रयास्यन्त्यन्तरिक्षं हि शरवृन्दैर्दिगन्तरे ।

तत्र तिष्ठति सन्नद्धः स्वयं राजा सुयोधनः ॥१२॥

भ्रातरश्चाऽस्य सन्नद्धाः कुलपुत्रा मदोत्कटाः ।

हे अशोक ! जिस स्थान पर रथ की नेमियों से उठाई हुई रेणु आकाश में फैल रही है और शर वृन्दों के साथ दिशाओं में फैलती है, वहीं पर युद्ध को सन्नद्ध हुआ, राजा सुयोधन स्वयं खड़ा है। इसके साथ मदोत्कट, महाकुल प्रसूत, इसके भाई बड़ी सजधज से खड़े हैं ॥११-१२॥

एतानद्य हनिष्यामि पश्यतस्ते न संशयः ॥१३॥

तस्मान्ममाश्वान्संग्रामे यत्तः संयच्छ सारथे ।

हे सूत ! अब मैं तुम्हारे देखते २ इनको मार देता हूं, तुम इसमें संशय न समझो। अब तुम बड़ी सावधानी से मेरे अश्वों को संग्राम में आगे बढ़ाओ ॥१३॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थस्तव पुत्रं विशाम्पते ॥१४॥

विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः ।

नन्दकं च त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥१५॥

हे विशाम्पते ! इतना कहकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को कुन्ती-पुत्र भीमसेन ने सुवर्ण भूषित, अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया और तुम्हारे पुत्र नन्दक की भी छाती में तीन बाण मारे।

तं तु दुर्योधनः षष्ट्या विद्ध्वा भीमं महाबलम् ।
त्रिभिरन्यैः सुनिशितैर्विशोकं प्रत्यविध्यत ॥१६॥

राजा दुर्योधन ने भी महाबली भीम को साठ बाणों से आहत करके उसके सारथी विशोक को तीन तीखे बाणों से बींध दिया।

भीमस्य च रणे राजन्धनुश्चिच्छेद भासुरम् ।
मुष्टिदेशे भृशं तीक्ष्णैस्त्रिभिर्भल्लैर्हसन्निव ॥१७॥

हे राजन्! अब मुस्कुराते हुए राजा दुर्योधन ने भीमसेन की मुट्ठी के स्थान पर अत्यन्त तीखे तीन बाण मार कर उसके चमकीले धनुष को काट दिया ॥१७॥

समरे प्रेक्ष्य यन्तारं विशोकं तु वृकोदरः ।
पीडितं विशिखैस्तीक्ष्णैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥१८॥
अमृष्यमाणः संरब्धो धनुर्दिव्यं परामृशत् ।
पुत्रस्य ते महाराज वधार्थं भरतर्षभ ॥१९॥

हे भरतर्षभ! महाराज! जब भीम ने अपने सारथि विशोक को धनुषधारी तुम्हारे पुत्र दुर्योधन द्वारा फैंके हुए बाणों से पीड़ित देखा, तो वह क्रोध में भर गया और उससे यह दुर्योधन की चेष्टा सहन न हुई। अब उसने बड़ा दिव्य धनुष तुम्हारे पुत्र के वध के लिए उठाया ॥१८-१९॥

समादधत्सुसंक्रुद्धः क्षुरप्रं लोमवाहिनम् ।
तेन चिच्छेद नृपतेर्भीमः कार्मुकमुत्तमम् ॥२०॥

भीमसेन ने लोमधारी, क्षुरे की धार के समान तीक्ष्ण बाण, क्रोध-पूर्वक अपने धनुष पर चढ़ाया और उस बाण से उसने राजा दुर्योधन का उत्तम धनुष काट डाला ॥२०॥

सोऽपविद्ध्य धनुश्छिन्नं पुत्रस्ते क्रोधमूर्च्छितः ।
अन्यत्कार्मुकमादत्त सत्वरं वेगवत्तरम् ॥२१॥
सन्दधे विशिखं घोरं कालमृत्युसमप्रभम् ।
तेनाऽजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥२२॥

धनुष के काट देने पर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन क्रोध से व्याकुल हो उठा और उसने कटे हुए धनुष को फैंककर बड़ी शीघ्रता से वेगधारी दूसरा धनुष उठाया। उस धनुष पर उसने काल मृत्यु के समान भीषण बाण चढ़ाया और उससे भीमसेन के वक्षःस्थल में क्रोध-पूर्वक प्रहार किया ॥२१-२२॥

स गाढविद्धो व्यथितः स्यन्दनोपस्थ आविशत् ।
स निषण्णो रथोपस्थे मूर्छामभिजगाम ह ॥२३॥

भीमसेन के इस बाण की बुरी चोट बैठी और वह रथ के कोने में बैठ गया। वहां बैठते ही उसको मूर्च्छा आ गई ॥२३॥

तं दृष्ट्वा व्यथितं भीममभिमन्युपुरोगमाः ।
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥२४॥

भीमसेन को इस तरह मूर्च्छित देख कर पाण्डवों के महारथी महाधनुर्धर अभिमन्यु आदि वीर सहन नहीं कर सके ॥२४॥

ततस्तु तुमुलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसाम्।
पातयामासुरव्यग्राः पुत्रस्य तव मूर्धनि ॥२५॥

इन सबने मिलकर बड़े तीक्ष्ण बाणों की घोर लगातार वर्षा, तुम्हारे पुत्र के मस्तक पर करना आरम्भ की ॥२५॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥२६॥
शल्यं च पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध पाण्डवः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः स विद्धो व्यपयाद्रणात् ॥२७॥

जब महाबली भीमसेन को चेत हुआ-तो उसने दुर्योधन को एक बार तीन और फिर पांच बाणों से बींध दिया एवं राजा शल्य को पच्चीस सुवर्ण मूलधारी बाण मार कर आहत किया। वह इन बाणों से क्षत-विक्षत होकर रण से हट गया ॥२६-२७॥

प्रत्युद्ययुस्ततो भीमं तव पुत्राश्चतुर्दश।
सेनापतिः सुषेणश्च जलसन्धः सुलोचनः ॥२८॥
उग्रो भीमरथो भीमो वीरबाहुरलोलुपः।
दुर्मुखो दुष्प्रधर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः ॥२९॥
विसृजन्तो बहून्बाणान्क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
भीमसेनमभिद्रुत्य विव्यधुः सहिता भृशम् ॥३०॥

हे राजन् ! अब भीमसेन पर तुम्हारे सेनापति, सुषेण, जलसन्ध, सुलोचन, उग्र, भीमरथ, भीम, वीरबाहु, अलोलुप,

दुर्मुख, दुष्प्रधर्ष, विवित्सु, विकट और सम-ये चौदह पुत्र वेग से झपटे। ये बाणों की वर्षा कर रहे थे और इनकी आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं। इन्होंने इकट्ठे ही भीमसेन के पास पहुंच कर उसको अत्यन्त घायल कर दिया ॥२८-३०॥

पुत्रांस्तु तव सम्प्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः।
सृक्किणी विलिहन्वीरः पशुमध्ये यथा वृकः ॥३१॥

महाबली भीमसेन भी तुम्हारे पुत्रों को देखकर पशुओं में भेड़िये की भांति ओष्ठ चबाने लगा ॥३१॥

अभिपत्य महाबाहुर्गरुत्मानिव वेगितः।
सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश्चिच्छेद पाण्डवः ॥३२॥

इस महाबाहु भीमसेनने गरुड़ की तरह झपट कर तुम्हारे पुत्र सेनापति का क्षुर की धार के समान तीक्ष्ण शस्त्र से शिर काट लिया ॥३२॥

सम्प्रहस्य च हृष्टात्मा त्रिभिर्बाणैर्महाभुजः।
जलसन्धं विनिर्भिद्य सोऽनयद्यमसादनम् ॥३३॥

अब प्रसन्न होकर हंसते २ महाभुजधारी भीमसेन ने तीन बाणों से तुम्हारे पुत्र जलसन्ध को बींध कर उसे यमराज के घर भेज दिया ॥३३॥

सुषेणं च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे।
उग्रस्य स शिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं भुवि ॥३४॥
पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितम्।

सुषेण का वध करके भीमसेन ने उसे मृत्यु को सौंप दिया। उग्र का कुण्डलों से विभूषित, चन्द्रोपम, शिर और उसका शिरस्त्राण एक ही बाण से भूमि पर गिरा दिए ॥३४॥

वीरबाहुं च सप्तत्या साश्वकेतुं ससारथिम् ॥३५॥
निनाय समरे वीरः परलोकाय पाण्डवः ।

महावीर भीमसेन ने वीरबाहु को अश्व, ध्वजा और सारथि के साथ रण में सत्तर बाण मारकर परलोक भेज दिया ॥३५॥

भीमभीमरथौ चोभौ भीमसेनो हसन्निव ॥३६॥
पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद्यमसादनम् ।

हे राजन्! तुम्हारे दो पुत्र, भीम और भीमरथ बड़े ही दुर्मद थे, परन्तु उनको भी भीमसेन ने हँसते २ यमलोक भेज दिया।

ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे ॥३७॥
मिषतां सर्वसैन्यानामनयद्यमसादनम् ।

इसके अनन्तर महायुद्ध में क्षुर की धार के तुल्य तीक्ष्ण बाण से सारे सैनिकों के देखते २ भीमसेन ने तुम्हारे पुत्र सुलोचन को यमराज के घर का अतिथि बनाया ॥३७॥

पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेनपराक्रमम् ॥३८॥
शेषा येऽन्ये भवंस्तत्र ते भीमस्य भयार्दिताः ।
विप्रद्रुता दिशो राजन्वध्यमाना महात्मना ॥३९॥

हे राजन्! तुम्हारे पुत्र, इस प्रकार भीमसेन का पराक्रम देखकर भयभीत हो गए और जो पुत्र वहां शेष थे, वे अनेक

दिशाओंको भाग गए, क्योंकि वे महात्मा भीम के प्रहारों को सहन करने में समर्थ नहीं थे ॥३८ ३९॥

ततोऽब्रवीच्छान्तनवः सर्वानेव महारथान् ।
एष भीमो रणे क्रुद्धो धार्तराष्ट्रान्महारथान् ॥४०॥
यथाग्र्यान्यथाज्येष्ठान्यथाशूरांश्च सङ्गतान् ।
निपातयत्युग्रधन्वा तं प्रगृह्णीत मा चिरम् ॥४१॥

अब शान्तनु-पुत्र भीष्म ने सारे महारथियों से कहा—यह उग्र धनुर्धर भीमसेन, क्रोध में भरकर रण में महारथी धृतराष्ट्र-पुत्र तथा सर्वश्रेष्ठ, प्रतिष्ठित, सामने आने वाले शूरवीरों को मार २ कर गिरा रहा है। तुम इसको पकड़ो-देर न करो ॥४०-४१॥

एवमुक्तास्ततः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनं महाबलम् ॥४२॥

भीष्म के इतना कहने पर सारे धृतराष्ट्र के सैनिक, क्रोध पूर्ण होकर महाबली भीमसेन पर झपटे ॥४२॥

भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशाम्पते ।
अभ्ययात्सहसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥४३॥

हे विशाम्पते ! मदस्रावी हाथी पर बैठे हुए, राजा भगदत्त वहां पर एकदम आए, जहां भीमसेन स्थित थे ॥४३॥

आपतन्नेव च रणे भीमसेनं शिलीमुखैः ।
अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करम् ॥४४॥

रणाङ्गण में आते ही उसने भीमसेन को बाणों से इस तरह अदृश्य कर दिया-जैसे-मेघ सूर्य को ढ़क देता है ॥४४॥

अभिमन्युमुखास्तत्तु नाऽमृष्यन्त महारथाः।
भीमस्याऽऽच्छादनं संख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः॥४५॥
त एनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन्।
गजं च शरवृष्ट्या तु विभिदुस्ते समन्ततः ॥४६॥

अभिमन्यु आदि महारथियों से राजा भगदत्त की इस चेष्टा का सहन नहीं हो सका, जो उसने भीमसेन को बाणों से ढ़क कर की थी। ये अपने बाहुबल का आश्रय लेकर उसके सन्मुख पहुंचे। इन्होंने बाण वर्षा से चारों ओर से उसे घेर लिया और उसके हाथी को भी बाण वर्षा से अच्छी तरह छेद डाला ॥४५-४६॥

स शस्त्रवृष्ट्याऽभिहतः समस्तैस्तैर्महारथैः।
प्राग्ज्योतिषगजो राजन्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ॥४७॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडः प्रेक्षणीयोऽभवद्रणे।
गभस्तिभिरिवाऽर्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥४८॥

हे राजन्! इन समस्त महारथियों की बाणवर्षा से आहत हुआ, प्राग्ज्योतिष नामक भगदत्त का हाथी अनेक प्रकार के बाणों से ऐसा देखने योग्य हो गया, जैसे उसने मानो रक्त धाराकी माला पहिन रखी हो या सूर्य किरणों से व्याप्त रंग बिरंगा बादल हो।

सञ्चोदितो मदस्रावी भगदत्तेन वारणः।
अभ्यधावत तान्सर्वान्कालोत्सृष्ट इवाऽन्तकः ॥४९॥
द्विगुणं जवमास्थाय कम्पयंश्चरणैर्महीम्।

मदस्रावी इस गजराज को भगदत्त ने आगे बढ़ाया। यह भी काल पर आये हुए यमराज के समान उन सब महारथियों पर झपटा। इस समय इसका स्वाभविक वेग से द्विगुण वेग था।

तस्य तत्सुमहद्रूपं दृष्ट्वा सर्वे महारथाः ॥५०॥
असह्यं मन्यमानाश्च नाऽतिप्रमनसोऽभवन्।

इसके इस भयानक रूप को देखकर सबने असह्य समझ लिया और वे बड़े ही उदास हो गए ॥५०॥

ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे॥५१॥
आजघान महाराज शरेणाऽऽनतपर्वणा।

हे महाराज! अब क्रोध में भर कर राजा भगदत्त ने झुकी पर्व-वाले बाण से भीमसेन की छाती में प्रहार (वार) किया ॥५१॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तेन राज्ञा महारथः ॥५२॥
मूर्च्छयाऽभिपरीतात्मा ध्वजयष्टिं समाश्रयत्।

राजा भगदत्त द्वारा विद्ध हुआ महारथी धनुर्धर भीम, मूर्च्छित हो गया और वह ध्वजा के दण्ड का आश्रय लेकर जैसे तैसे खड़ा रहा ॥५२॥

तांस्तु भीतान्समालक्ष्य भीमसेनं च मूर्च्छितम् ॥५३॥
ननाद बलवन्नादं भगदत्तः प्रतापवान्।

इन सारे महारथियों को भयभीत और भीमसेन को मूर्च्छित देखकर प्रतापी भगदत्त बड़े बल के साथ गर्जना करने लगा ॥५३

ततो घटोत्कचो राजन्प्रेक्ष्य भीमं तथा गतम् ॥५४॥
संक्रुद्धो राक्षसो घोरस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ।

हे राजन्! राक्षसराज घटोत्कच, इस प्रकार भीमसेन को फँसा हुआ देखकर बड़ा क्रुद्ध हुआ और वहीं अलक्षित हो गया।

स कृत्वा दारुणां मायां भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥५५॥
अदृश्यत निमेषार्धाद् घोररूपं समास्थितः ।

इसने बड़ी दारुण माया का आश्रय लिया, जिससे डरपोक मनुष्य भयातुर हो जाते हैं। थोड़ी ही देर में भीषण रूप धारण करके प्रकट हुआ ॥५५॥

ऐरावतं समारूढः स वै मायाकृतं स्वयम् ॥५६॥
तस्य चाऽन्येऽपि दिङ्नागा बभूवुरनुयायिनः ।
अञ्जनो वामनश्चैव महापद्मश्च सुप्रभः ॥५७॥
त्रय एते महानागा राक्षसैः समधिष्ठिताः ।

यह मायारचित ऐरावत पर बैठा था और इसके पीछे २ अन्य भी दिग्गज आ रहे थे। अञ्जन, वामन और कान्तिमन् महापद्म इन तीन दिग्गजों पर अन्य राक्षस बैठे थे ॥५६-५७॥

महाकायास्त्रिधा राजन्प्रस्रवन्तो मदं बहु ॥५८॥
तेजोवीर्यबलोपेता महाबलपराक्रमाः ।

हे राजन्! ये तीन गजराज, बड़ी विशाल काया वाले थे, जिन के बहुत सा मद टपक रहा था। ये तेज, वीर्य और बल से सम्पन्न: महापराक्रमी थे ॥५८॥

घटोत्कचस्तु स्वं नागं चोदयामास तं तदा ॥५९॥
सगजं भगदत्तं तु हन्तुकामः परन्तपः।

घटोत्कच ने अपने हाथी को उसकी ओर बढ़ाया। इस शत्रु-तापी घटोत्कच की इच्छा गज सहित राजा भगदत्त के मार गिराने की थी ॥५९॥

ते चान्ये चोदिता नागा राक्षसैस्तैर्महाबलैः॥६०॥
परिपेतुः सुसंरब्धाश्चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्दिशम्।

उन २ महाबली राक्षसों ने भी अपने २ उन हाथियों को प्रेरित किया। आवेश में भरे हुए चार दाँतों वाले ये हाथी चारों दिशा में घूम रहे थे ॥६०॥

भगदत्तस्य तं नागं विषाणैरभ्यपीडयन् ॥६१॥
स पीड्यमानस्तैर्नागैर्वेदनार्तः शराहतः।
अनदत्सुमहानादमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥६२॥

ये अपने दांतों से भगदत्त के हाथी को पीड़ित करने लगे। भगदत्त का हाथी इन हाथियों के दांतों के आघात और अभिमन्यु आदि किसी महारथी के बाणों से पीड़ित हो गया। इसने क्लेशित होकर इन्द्र के वज्र के तुल्य महान् चीत्कार किया।

तस्य तं नदतो नादं सुघोरं भीमनिःस्वनम् ।
श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद् द्रोणं राजानं च सुयोधनम्॥६३

चिल्लाते हुए हाथी की भयानक, घोर, चिंघाड़ को सुनकर भीष्म ने द्रोणाचार्य और राजा दुर्योधन से कहा ॥६३॥

एष युध्यति संग्रामे हैडिम्बेन दुरात्मना ।
भगदत्तो महेष्वासः कृच्छ्रे च परिवर्तते ॥६३॥
राक्षसश्च महाकायः स च राजाऽतिकोपनः ।
एतौ समेतौ समरे कालमृत्युसमावुभौ ॥६५॥

यहां रण में हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच युद्ध कर रहा है और इनके बीच में महाधनुर्धर राजा भगदत्त फंस गया मालूम होता है, वह बड़ी विपत्ति में उलझा है। यह राक्षस भी विशाल काय है और राजा भगदत्त भो अत्यन्त क्रोधी है। ये युद्ध में सामने होने पर दोनों काल और मृत्यु के समान भयानक हैं ॥६४-६५॥

श्रूयते चैव हृष्टानां पाण्डवानां महास्वनः ।
हस्तिनश्चैव सुमहान्भीतस्य रुदितध्वनिः ॥६६॥

आनन्द में निमग्न, पाण्डवों की हर्षध्वनि सुनी जा रही है और वित्रासित भगदत्त के हाथी के रोने चिल्लाने की ध्वनि आ रही है ॥६६॥

तत्र गच्छाम भद्रं वो राजानं परिरक्षितुम् ।
अरक्ष्यमाणः समरे क्षिप्रं प्राणान्विमोक्ष्यति ॥६७॥

अब हम लोगों को वहां राजा भगदत्त की रक्षा करने को शीघ्र चलना चाहिए, इसी में हमारा कल्याण है। यदि युद्ध में राजा भगदत्त के प्राणों की रक्षा न की-तो वह शीघ्र ही प्राणों को छोड़ देगा।

ते त्वरध्वं महावीर्याः किं चिरेण प्रयामहे ।
महान्हि वर्तते रौद्रः संग्रामो लोमहर्षणः ॥६८॥

हे महाशक्तिशालियो ! तुम शीघ्रता करो-विलम्ब का समय नहीं है, हम सभी वहां चलते हैं। इस समय वहां महा भयङ्कर, लोमहर्षण संग्राम हो रहा है-क्या तुम देख नहीं रहे हो ॥६८॥

भक्तश्च कुलपुत्रश्च शूरश्च पृतनापतिः ।
युक्तं तस्य परित्राणं कर्तुमस्माभिरच्युत ॥६६॥

हे अच्युत ! राजा भगदत्त, हमारा भक्त, कुलीन, शूरवीर और सेनापति है। हम लोगों को उसका इस विपत्ति से अवश्य उद्धार करना चाहिए ॥६६॥

भीष्मस्य तद्वचः श्रुत्वा सर्वे एव महारथाः ।
द्रोणभीष्मौ पुरस्कृत्य भगदत्तपरीप्सया ॥७०॥
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र सोऽभवत् ।

भीष्म के ये वचन सुनकर सारे कौरव महारथी, भीष्म और द्रोण को आगे करके, राजा भगदत्त की रक्षा के निमित्त बड़े वेग का अवलम्बन करके जहां वह था, वहां पहुंचे ॥७०॥

तान्प्रयातान्समालोक्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥७१॥
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं पृष्ठतोऽनुययुः परान् ।

युधिष्ठिर आदि पञ्चालवीरों ने जब कौरव महारथियों को इस तरह जाते देखा, तो वे भी पञ्चालों को साथ लेकर इन प्रतिपक्षियों के पीछे २ चल दिए ॥७१॥

तान्यनीकान्यथालोक्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥७२॥
ननाद सुमहानादं विस्फोटमशनेरिव ।

प्रतापी राक्षसेन्द्र घटोत्कच ने जब इस सेना को आते देखा, तो वज्र के स्फोट की ध्वनि के तुल्य महानाद करते हुए गर्जना की।

तस्य तं निनदं श्रुत्वा दृष्ट्वा नागांश्च युध्यतः ॥७३॥
भीष्मः शान्तनवो भूयो भारद्वाजमभाषत ।

घटोत्कच की इस गर्जना को सुनकर और हाथियों के युद्ध को देखकर शान्तनु-पुत्र भीष्म, फिर भरद्वाजवंशज द्रोणाचार्य से कहने लगे ॥७३॥

न रोचते मे संग्रामो हैडिम्बेन दुरात्मना ॥७४॥
बलवीर्यसमाविष्टः ससहायश्च साम्प्रतम् ।

हे महावीरो ! दुरात्मा हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच के साथ युद्ध करना मुझे अच्छा प्रतीत नहीं होता है। यह इस समय बल और विक्रम से युक्त तथा सहायता से समन्वित है ॥७४॥

नैष शक्यो युधा जेतुमपि वज्रभृता स्वयम् ॥७५॥
लब्धलक्षः प्रहारी च वयं च श्रान्तवाहनाः ।
पञ्चालैः पाण्डवेयैश्च दिवसं क्षतविक्षताः ॥७६॥
तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।

इस समय इसको स्वयं वज्रधारी इन्द्र भी नहीं जीत सकता है। यह ठीक लक्ष्य पर बाण का प्रहार करने वाला है और हमारे वाहन थक चुके हैं। पञ्चाल और पाण्डवों ने दिन भर प्रहार करके हमको क्षत विक्षत कर रखा है। इस समय विजय की अभिलाषा में तल्लीन पाण्डवों से हमें युद्ध रोक ही देना उचित है ॥७६॥

घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ॥७७॥
पितामहवचः श्रुत्वा तथा चक्रुः स्म कौरवाः।
उपायेनाऽपयानं ते घटोत्कचभयार्दिताः ॥७८॥

अब तो युद्ध रोकने की घोषणा कर दो। इन विरोधियों के साथ कल युद्ध करेंगे। भीष्म पितामह के ये वचन सुनकर घटोत्कच के भय से पीड़ित कौरवों ने यह उपाय करके अपना पीछा छुड़ाया।

कौरवेषु निवृत्तेषु पाण्डवा जितकाशिनः।
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च भारत ॥७९॥

हे भारत! जब कौरव निवृत्त हो गए तो विजयोन्मत्त पाण्डवों ने बड़े उच्च स्वर से सिंहनाद किया और बहुत से शङ्ख बजाए।

एवं तदभवद्युद्धं दिवसं भरतर्षभ।
पाण्डवानां कुरूणां च पुरस्कृत्य घटोत्कचम् ॥८०॥

हे भरतर्षभ! आज के दिन का इस तरह घटोत्कच को आगे करके पाण्डवों ने कौरवों के साथ युद्ध किया ॥८०॥

कौरवास्तु ततो राजन्प्रययुः शिबिरं स्वकम्।
व्रीडमाना निशाकाले पाण्डवेयैः पराजिताः ॥८१॥

हे राजन ! कौरव वीर भी अब अपने २ शिबिरों (डेरों) में पहुंचे। ये पाण्डवों से पराजित होने के कारण रात भर लज्जा से करवटें बदलते रहे ॥८१॥

शरविक्षतगात्रास्तु पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
युद्धे सुमनसो भूत्वा जग्मुः स्वशिबिरं प्रति ॥८२॥

महारथी, पाण्डु-पुत्र भी बाणों से घायल हो रहे थे। ये भी विजयोल्लास में भरे हुए, अपने शिबरों की ओर चले गए ॥८२॥

पुरस्कृत्य महाराज भीमसेनघटोत्कचौ ।
पूजयन्तस्तदाऽन्योन्यं मुदा परमया युताः ॥८३॥

हे महाराज ! इस समय इन्होंने भीमसेन और घटोत्कच को आगे कर रखा था। सारे पाण्डव वीर अत्यन्त आनन्द में भरे हुए, एक दूसरे का बड़ा आदर सत्कार करते थे ॥८३॥

नदन्तो विविधान्नादांस्तूर्यस्वनविमिश्रितान् ।
सिंहनादांश्च कुर्वन्तो विमिश्रान्शङ्खनिःस्वनैः ॥८४॥
विनदन्तो महात्मानः कम्पयन्तश्च मेदिनीम् ।
घट्टयन्तश्च मर्माणि तव पुत्रस्य मारिष ॥८५॥

ये तुरी के शब्द में अपना शब्द मिलाकर अनेक भांति से कोलाहल (शोर) कर रहे थे और शंख-ध्वनि के साथ अपना स्वर मिला कर सिंह गर्जना कर रहे थे। हे मारिष ! जिनसे तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के मर्मों को बड़ी पीड़ा पहुंचती थी ॥८४-८५॥

प्रयाताः शिबिरायैव निशाकाले परन्तप ।
दुर्योधनस्तु नृपतिर्दीनो भ्रातृवधेन च ॥८६॥
मुहूर्तं चिन्तयामास बाष्पशोकसमाकुलः ।

हे परन्तप ! रात्रि के समय में समस्त वीर अपने २ शिविर में गए और राजा दुर्योधन अपने भाइयों का वध हो जाने से बड़े खिन्न थे । वे भाइयों के शोक में आंसू बहाकर बड़े व्याकुल हुए ॥८६

ततः कृत्वा विधिं सर्वं शिबिरस्य यथाविधि ॥
प्रदध्यौ शोकसंतप्तो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥८७॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसावहारे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

इसके अनन्तर नीति के अनुसार शिबिरों की व्यवस्था करके भाइयों के शोक में निमग्न, चिन्तातुर राजा दुर्योधन, फिर विचार करने लगा ॥८७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में चतुर्थदिवस के युद्ध की समाप्ति का चौसठवां अध्याय समाप्त हुआ ।



पैंसठवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

भयं मे सुमहज्जातं विस्मयश्चैव सञ्जय ।
श्रुत्वा पाण्डुकुमाराणां कर्म देवैः सुदुष्करम् ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! पाण्डु-पुत्रों के देवों से भी नहीं सिद्ध होने वाले कर्मों को सुनकर मुझे बड़ा भय और शोक हो रहा है ॥१॥

पुत्राणां च पराभावं श्रुत्वा सञ्जय सर्वशः ।
चिन्ता मे महती सूत भविष्यति कथं त्विति ॥२॥

हे सञ्जय ! अपने पुत्र दुर्योधनादि का सब तरह पराजय सुनकर मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है, कि आगे चल कर क्या होगा ।

ध्रुवं विदुरवाक्यानि धक्ष्यन्ति हृदयं मम ।
यथा हि दृश्यते सर्वं दैवयोगेन सञ्जय ॥३॥

इस समय विदुर के वाक्य मेरे हृदय को जला रहे हैं । मुझे तो दैवयोग ऐसा ही दिखाई देता है, कि विदुर के वाक्य का एक२ अक्षर सत्य होकर रहेगा ॥३॥

यत्र भीष्ममुखान्सर्वान्शस्त्रज्ञान्योधसत्तमान् ।
पाण्डवानामनीकेषु योधयन्ति प्रहारिणः ॥४॥

यही तो बात है, जो भीष्म जैसे शस्त्र ज्ञाता, सर्वोत्तम योद्धाओं से भी पाण्डवों की सेना में प्रहार करने वाले वीर युद्ध कर रहे हैं ।

केनाऽवध्या महात्मानः पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।
केन दत्तवरास्तात किं वा ज्ञानं विदन्ति ते ॥५॥
येन क्षयं न गच्छन्ति दिवि तारागणा इव ।

हे तात ! महाबली, अत्यन्त ओजस्वी, पाण्डव किस कारण से अवध्य हो रहे हैं। इनको अवध्य होने का किस देवता ने वर दे दिया है या इनको कौनसी विद्या ज्ञात है, जिससे अन्तरिक्ष में स्थित नक्षत्रों की भांति क्षय को प्राप्त नहीं होते हैं ॥५॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं सैन्यं तु पाण्डवैः ॥६॥
मय्येव दण्डः पतति दैवात्परमदारुणः ।

पाण्डवों द्वारा किया हुआ हमारी सेना का विनाश, मैं सुन नहीं सकता हूँ। दैव की क्या इच्छा है, जो यह परम दारुण दण्ड मुझ पर बार २ पड़ता है ॥६॥

यथाऽवध्याः पाण्डुसुता यथा वध्याश्च मे सुताः ॥७॥
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व याथातथ्येन सञ्जय ।

पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर आदि किस कारण से अवध्य और मेरे पुत्र दुर्योधनादि क्यों वध्य दिखाई दे रहे हैं। हे सञ्जय ! तुम इसको मुझे ठीक २ बताओ ॥७॥

न हि पारं प्रपश्यामि दुःखस्याऽस्य कथञ्चन ॥८॥
समुद्रस्येव महतो भुजाभ्यां प्रतरन्नरः ।

महाविशाल समुद्र को भुजाओं से तरने वाले, मनुष्य की भांति मैं भी इस शोक समुद्र का पार नहीं देख रहा हूँ ॥८॥

पुत्राणां व्यसनं मन्ये ध्रुवं प्राप्तं सुदारुणम् ॥९॥
घातयिष्यति मे सर्वान्पुत्रान्भीमो न संशयः ।

अब तो मैं अपने पुत्रों पर आई हुई कठिन विपत्ति को सामने खड़ी हुई देख रहा हूँ, इसमें कुछ भी संशय नहीं है, कि भीमसेन मेरे सारे पुत्रों को मार कर रहेगा ॥९॥

नहि पश्यामि तं वीरं यो मे रक्षेत्सुतान्रणे ॥१०॥
ध्रुवं विनाशः सम्प्राप्तः पुत्राणां मम सञ्जय ।

हे सञ्जय ! अब तो मुझे कोई ऐसा वीर दिखाई ही नहीं देता, जो रणाङ्गण में मेरे पुत्रों की रक्षा करने में समर्थ हो सके। मेरे पुत्रों का तो अब निश्चय ही विनाश उपस्थित हो गया-ऐसा प्रतीत होता है ॥१०॥

तस्मान्मे कारणं सूत शक्तिं चैव विशेषतः ॥११॥
पृच्छतो वै यथातत्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि ।

हे सूत ! अब मैं तुमसे बड़े आग्रह से पूछ रहा हूं, तुम मुझे इसके युक्तियुक्त कारण तथा पाण्डवों की शक्ति का ठीक २ वर्णन करो ॥११॥

दुर्योधनश्च यच्चक्रे दृष्ट्वा स्वान्विमुखान्रणे ॥१२॥
भीष्मद्रोणौ कृपश्चैव सौबलश्च जयद्रथः ।
द्रौणिर्वाऽपि महेष्वासो विकर्णो वा महाबलः ॥१३॥
निश्चयो वाऽपि कस्तेषां तदा ह्यासीन्महात्मनाम् ।
विमुखेषु महाप्राज्ञ मम पुत्रेषु सञ्जय ॥१४॥

हे सञ्जय ! मेरे कुछ पुत्रों के रण से विमुख होकर आ जाने पर इनको देखकर राजा दुर्योधन ने क्या किया तथा इन रणविमुख पुत्रों को देखकर भीष्म, द्रोण, सुबल-पुत्र शकुनि, जयद्रथ, द्रोण-पुत्र महा धनुर्धर अश्वत्थामा और महावली विकर्ण ने क्या किया। इस समय इन महारथियोंने क्या निश्चय सम्मति की। हे महाप्राज्ञ ! वह सब मुझे सुनाओ ॥१२-१४॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्नवहितः श्रुत्वा चैवाऽवधारय।
नैव मन्त्रकृतं किञ्चिन्नैव मायां तथाविधाम् ॥१५॥
न वै विभीषिकां काञ्चिद्राजन्कुर्वन्ति पाण्डवाः।
युध्यन्ति ते यथान्यायं शक्तिमन्तश्च संयुगे ॥१६॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! तुम सावधान होकर सुनो और सुनकर धारण करो। पाण्डवों की जो विजय हो रही है, इसमें न तो पाण्डवों के पास कोई अस्त्र विद्या है और न इस तरह की कोई ऐन्द्रजालिक माया है। हे राजन् ! पाण्डव कोई इस ढंग से भयोत्पादक बात नहीं करते हैं। ये तो युद्ध में शक्तिशाली होने के कारण युद्ध के नियमों के अनुसार युद्ध करके विजयी हो रहे हैं।

धर्मेण सर्वकार्याणि जीवितादीनि भारत।
आरभन्ते सदा पार्थाः प्रार्थयाना महद्यशः ॥१७॥

हे भारत ! पाण्डव अपने जीविका आदि सारे कर्मों का धर्मानुसार आरम्भ करते हैं और इनमें वे विषयों की आकांक्षा न करके महायश की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं ॥१७॥

न ते युद्धान्निवर्तन्ते धर्मोपेता महाबलाः ।
श्रिया परमया युक्ता यतो धर्मस्ततो जयः ॥१८॥

ये पाण्डव युद्ध में पराजित नहीं हो सकते हैं, क्योंकि वे धर्म से युक्त और महा बलवान् हैं। ये बड़े तेज से सम्पन्न हैं । बात तो यही है, कि जिधर धर्म होता है, उधर ही विजय होती है।१८।

तेनाऽवध्या रणे पार्था जययुक्ताश्च पार्थिव ।
तव पुत्रा दुरात्मानः पापेष्वभिरताः सदा ॥१९॥
निष्ठुरा हीनकर्माणस्तेन हीयन्ति संयुगे ।

हे राजन् ! पाण्डव इसी हेतु से रण में अवध्य और विजयी होते हैं और तुम्हारे दुरात्मा पुत्र सदा पाप में संलग्न रहते हैं। ये बड़े कठोर और सदा क्षुद्र कर्मों का आचरण करते हैं, इसी से रण में पराजित होते हैं ॥१९॥

सुबहूनि नृशंसानि पुत्रैस्तव जनेश्वर ॥२०॥
निकृतानीह पाण्डूनां नीचैरिव यथा नरैः।
सर्वं च तदनादृत्य पुत्राणां तव किल्बिषम् ॥२१॥
सापन्हवाः सदैवासन्पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
न चैतान्बहुमन्यन्ते पुत्रास्तव विशाम्पते ॥२२॥

हे जनेश्वर ! तुम्हारे पुत्रों ने पाण्डवों के साथ छल पूर्ण नीच कर्म किये हैं, जैसे कि नीच पुरुष किया करते हैं । हे पाण्डु के ज्येष्ठ भ्राता ! पाण्डवों ने उन सब तुम्हारे पुत्रों की अधार्मिक

पाप-पूर्ण चेष्टाओं पर ध्यान न देकर सदा उनको छुपाते ही रहे हैं। हे विशाम्पते! इतना करने पर भी तुम्हारे पुत्रों ने कभी उनको अच्छा नहीं कहा ॥२०-२२॥

तस्य पापस्य सततं क्रियमाणस्य कर्मणः।
साम्प्रतं सुमहद्घोरं फलं प्राप्तं जनेश्वर ॥२३॥

हे जनेश्वर! इस प्रकार लगातार सदा पाप पूर्ण-कर्मों के करने से अब उनके परिणाम का समय आया है। उसी का यह फल स्वरूप युद्ध आज हो रहा है ॥२३॥

स त्वं भुंक्ष्व महाराज सपुत्रः ससुहृज्जनः।
नाऽवबुध्यसि यद्राजन्वार्यमाणः सुहृज्जनैः ॥२४॥

हे राजन्! अब तुम ही अपने पुत्र और सुहृदों के साथ इसका फल भोगो। हे महाराज! आपको भी तो मित्र जनों ने बार २ सुझाया था, परन्तु उस समय आपने भी कुछ नहीं सुना।

विदुरेणाऽथ भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना।
तथा मया चाऽप्यसकृद्वार्यमाणो न बुध्यसे ॥२५॥
वाक्यं हितं च पथ्यं च मर्त्याः पथ्यमिवौषधम्।
पुत्राणां मतमाज्ञाय जितान्मन्यसि पाण्डवान् ॥२६॥

महात्मा विदुर, भीष्म, द्रोण और मैंने तुमको बार २ ज्ञान कराया और ऐसा करने से रोका-परन्तु तब तो तुम्हें इसका ज्ञान ही नहीं हुआ। उस समय तो मरने वाला रोगी मनुष्य जैसे

हितकारी औषध को नहीं लेता है, वैसे ही तुमने भी हमारे पथ्य (दुःखनाशक) और हितकारी वचनों को नहीं सुना। तुम तो अपने पुत्रों की बात मानकर पाण्डवोंको जीता हुआ ही समझने लगे थे।

शृणु भूयो यथातत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
कारणं भरतश्रेष्ठ पाण्डवानां जयं प्रति ॥२७॥
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाश्रुतमरिन्दम।

अब तुम जो पूछ रहे हो-उसका ठीक २ रहस्य सुनो। हे भरतश्रेष्ठ! मैं तुमको पाण्डवों के विजयी होने का कारण सुनाता हूं। हे अरिन्दम! इस विषय में जो मैंने सुना है, वह कहता हूं—अपनी बात कुछ नहीं कह रहा हूं ॥२७॥

दुर्योधनेन सम्पृष्ट एतमर्थं पितामहः ॥२८॥
दृष्ट्वा भ्रातॄन्रणे सर्वान्निर्जितांस्तु महारथान्।
शोकसम्मूढहृदयो निशाकाले स्म कौरवः ॥२९॥
पितामहं महाप्राज्ञं विनयेनोपगम्य ह।
यदब्रवीत्सुतस्तेऽसौ तन्मे शृणु जनेश्वर ॥३०॥

राजा दुर्योधन ने अपने सारे महारथी भाइयों को एक दम ही रण में पराजित देखकर यही बात भीष्मपितामह से पूछी थी। कुरुराज राजा दुर्योधन, शोक से व्याप्त हृदय होकर बड़ी विनय के साथ रात्रि में महा बुद्धिमान् भीष्मपितामह के पास पहुंचा। हे जनेश्वर! वहां जो तुम्हारे पुत्र ने कहा-तुम उसको ही ध्यान से सुनो ॥२८-३०॥

दुर्योधन उवाच—

द्रोणश्च त्वं च शल्यश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥२१॥
भूरिश्रवा विकर्णश्च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥२२॥
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः ।
पाण्डवानां समस्ताश्च नाऽतिष्ठन्त पराक्रमे॥२३॥
तत्र मे संशयो जातस्तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ।
यं समाश्रित्य कौन्तेया जयन्त्यस्मान्क्षणे क्षणे ॥२४॥

हे पितामह ! आप, द्रोणचार्य, शल्य, कृप, अश्वत्थामा, हार्दिक का पुत्र कृतवर्मा, कम्बोजाधिपति सुदक्षिण, भूरिश्रवा, विकर्ण, वीर्यवान् राजा भगदत्त-ये सारे ही महारथी और क्षत्रियों के विख्यात कुल में उत्पन्न हुए हैं। ये सब रण में प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने वाले हैं। ये सब मिलकर त्रिलोकी के जीतने में भी समर्थ हैं, परन्तु फिर भी ये सारे महारथी पाण्डवों के सन्मुख पराक्रम दिखाने में असमर्थ हैं। हे महाभाग ! इस विषय में मुझे सन्देह हो रहा है, जिससे मैं आपसे पूछता हूं, जिस बात का आश्रय करके पाण्डव क्षण २ में हमको जीत रहे हैं-तुम इसको ठीक २ सुनाओ ॥२१-२४॥

भीष्म उवाच—

शृणु राजन्वचो मह्यं यथा वक्ष्यामि कौरव ।
बहुशश्च मयोक्तोऽसि न च मे तत्त्वया कृतम् ॥२५॥

भीष्म बोले—हे कुरुराज ! अब तुम मेरा वचन सुनो-मैं अब भी उसी तरह कहूंगा-जैसे बहुत बार पूर्वकाल में कह चुका हूं, परन्तु तुमने उस पर कभी ध्यान ही नहीं दिया ॥३५॥

क्रियतां पाण्डवैः सार्धं शमो भरतसत्तम ।

एतत्क्षेममहं मन्ये पृथिव्यास्तव वा विभो ॥३६॥

हे भरतसत्तम ! तुमको पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये । हे राजन् ! मैं तो इसी में पृथिवी भर और तुम्हारा कल्याण समझता हूं ॥३६॥

भुंक्ष्वेमां पृथिवीं राजन्भ्रातृभिः सहितः सुखी ।

दुर्हृदस्तापयन्सर्वान्नन्दयंश्चाऽपि बान्धवान् ॥३७॥

हे राजन् ! फिर तुम अपने भाई पाण्डवों के साथ मिलकर इस पृथिवी का सुख से उपभोग करना । जो दुष्ट शत्रु हों, उनको दण्ड देना और जो प्रिय मित्र हों-उनको आनन्दित करना ॥३७॥

न च मे क्रोशतस्तात श्रुतवानसि वै पुरा ।

तदिदं समनुप्राप्तं यत्पाण्डूनवमन्यसे ॥३८॥

हे तात ! मै पूर्वकाल में चिल्ला २ मर गया, परन्तु तुमने कुछ नहीं सुना । जो तुमने पाण्डवों का अपमान किया, आज उसका ही परिणाम यह युद्ध उपस्थित है ॥३८॥

यश्च हेतुरवध्यत्वे तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।

तं शृणुष्व महाबाहो मम कीर्तयतः प्रभो ॥३९॥

हे महाबाहो! राजन्! उन उत्कृष्ट पराक्रमधारी पाण्डवों के अवध्य होने का जो कारण है, उसको भी सुन लो-मैं तुमको सुनाता हूं ॥३९॥

नाऽस्ति लोकेषु तद्भूतं भविता नो भविष्यति ।
यो जयेत्पाण्डवान्सर्वान्पालिताञ्छार्ङ्गधन्वना ॥४०॥

संसार में न तो कोई हुआ, न है और न आगे चलकर होगा, जो शार्ङ्ग धनुपधारी श्रीकृष्ण से सुरक्षित, पाण्डवों को युद्ध में जीत सके ॥४०॥

यत्तु मे कथितं तात मुनिभिर्भावितात्मभिः ।
पुराणगीतं धर्मज्ञ तच्छृणुष्व यथातथम् ॥४१॥

हे धर्म के जानने वाले! पुत्र! महात्मा मुनियों ने इस विषय में जो मुझे पौराणिक उपाख्यान सुनाया है, तुम उसको सुनो और उसके रहस्य को ठीक २ समझ लो ॥४१॥

पुरा किल सुराः सर्वे ऋषयश्च समागताः ।
पितामहमुपासेदुः पर्वते गन्धमादने ॥४२॥

पूर्वकाल में सारे देवता और ऋषि इकट्ठे होकर गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्माजी के पास पहुंचे ॥४२॥

तेषां मध्ये समासीनः प्रजापतिरपश्यत ।
विमानं प्रज्वलद्भासा स्थितं प्रवरमम्बरे ॥४३॥

इन देव और ऋषियों के मध्य में बैठे हुए, प्रजापति ब्रह्मा ने आकाश में कान्ति से देदीप्यमान एक विमान देखा ॥४३॥

ध्यानेनाऽऽवेद्य तद्ब्रह्मा कृत्वा च नियतोऽञ्जलिम् ।
नमश्चकार हृष्टात्मा पुरुषं परमेश्वरम् ॥४४॥

ब्रह्माजी ने ध्यान लगा कर देखा-तो उसमें पुराण पुरुष भगवान् विष्णु को पाया। इन्होंने प्रसन्न होकर और हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया ॥४४॥

ऋषयस्त्वथ देवाश्च दृष्ट्वा ब्रह्माणमुत्थितम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पश्यन्तो महदद्भुतम्॥४५॥

जब ऋषि और देवों ने ब्रह्माजी को खड़े हुए देखा-तो वे भी सारे हाथ जोड़कर खड़े हो गए और अद्भुत कौतूहल देखने लगे।

यथावच्च तमभ्यर्च्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
जगाद जगतः स्रष्टा परं परमधर्मवित् ॥४६॥

वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, परमधर्म के ज्ञाता, जगत् के रचयिता ब्रह्माजी ने उनकी यथाविधि पूजा करके यह उत्कृष्ट वचन कहा ॥४६॥

विश्वावसुर्विश्वमूर्तिर्विश्वेशो विष्वक्सेनो विश्वकर्मा वशी च ।
विश्वेश्वरो वासुदेवोऽसि तस्माद्योगात्मानं दैवतं त्वामुपैमि ॥

हे भगवन् ! आप विश्वावसु(सबके भीतर निवास करने वाले) विश्वरूप, विश्व के स्वामी, विष्वक्सेन, विश्व के रचयिता, सबको वश में करने वाले, विश्वपति, सर्वान्तर्यामी हो-मैं तुम योगात्मा देव को प्रणाम करता हूँ ॥४७॥

जय विश्वमहादेव जय लोकहिते रत ।
जय योगीश्वर विभो जय योगपरावर ॥४८॥
पद्मगर्भविशालाक्ष जय लोकेश्वरेश्वर ।
भूतभव्य भवन्नाथ जय सौम्यात्मजात्मज ॥४९॥
असंख्येयगुणाधार जय सर्वपरायण ।
नारायण सुदुष्पार जय शार्ङ्गधनुर्धर ॥५०॥
जय सर्वगुणोपेत विश्वमूर्ते निरामय ।
विश्वेश्वर महाबाहो जय लोकार्थतत्पर ॥५१॥
महोरग वराहाद्य हरिकेश विभो जय ।
हरिवास दिशामीश विश्ववासामिताव्यय ॥५२॥
व्यक्ताव्यक्तामितस्थान नियतेन्द्रिय सत्क्रिय ।
असंख्येयात्मभावज्ञ जय गम्भीरकामद ॥५३॥

हे विश्व के महादेव, लोकहित में रत, आपकी जय हो। हे योगीश्वर! योगके पारदर्शी आपकी जय हो। हे कमलके अन्तर्पत्र के समान विशाल नेत्रधारी, लोकेश्वरों के स्वामी, आपकी जय हो। हे भूत, भविष्य और वर्तमान के स्वामी उत्तम गुण धारी, स्वयम्भू, आपकी जय हो। आप असंख्य गुणों के आधार हो तथा सब के रक्षक हो-आपकी जय हो। नर मात्र के अन्तर्यामी, शार्ङ्ग धनुष धारी, आपका कोई पार नहीं पा सकता है। हे विश्वमूर्ति, समस्त गुणों से युक्त परमात्मन्! आप सारे क्लेशोंसे रहित हो। हे विश्वे-

श्वर! आप संसार का कल्याण करने वाले हो, क्योंकि आपकी बड़ी लम्बी २ भुजा हैं। हे महोरग! पृथ्वीके उद्धार कर्ता,हरिकेश! विभो! आप की जय हो। आप समस्त दिशाओं में व्यापक, दिशाओं के स्वामी, विश्वव्यापी, अविनाशी, व्यक्ताव्यक्त रूप से स्थित, इन्द्रियों के विषयों से पार गए हुए हो। आप सत्कार के योग्य, पूर्ण रूप से आत्मस्वरूप के ज्ञाता, गम्भीर कामनाओं के दाता आपकी जय हो ॥४८-५३॥

अनन्तविदित ब्रह्मन्नित्यभूतविभावन ।
कृतकार्य कृतप्रज्ञ धर्मज्ञ विजयावह ॥५४॥
गुह्यात्मन्सर्वयोगात्मन्स्फुटसम्भूत सम्भव ।
भूताद्य लोकतत्त्वेश जय भूतविभावन ॥५५॥
आत्मयोगे महाभाग कल्पसङ्क्षेपतत्पर ।
उद्भावन मनोभाव जय ब्रह्म जयप्रिय ॥५६॥
निसर्गसर्गनिरत कामेश परमेश्वर ।
अमृतोद्भव सद्भाव मुक्तात्मन्विजयप्रद ॥५७॥
प्रजापतिपते देव पद्मनाभ महाबल ।
आत्मभूत महाभूत सत्वात्मन् जय सर्वदा ॥५८॥

हे ब्रह्मन्! आपके अनन्त स्वरूप को आप ही जानते हो, प्राणी मात्र के उपकारक, समस्त कामनाओं से रहित, यथार्थ ज्ञानवान्, धर्मज्ञ और विजयकर्ता हो। आप अपने को गुप्त रखने वाले, सब योगों के स्वरूप, अपने आप प्रकट होने वाले हो। हे प्राणियों

के कल्याणकर्ता ! आप सब भूतों से प्रथम और लोक के तत्व के ज्ञाता हो-आप की जय हो। हे आत्मयोने ! महाभाग ! आप कल्पों के संहार और रचना करने वाले, सबकी उन्नति में तत्पर, मनो रूप आपकी जय हो, आप ब्रह्म और जय प्रिय हो। सृष्टि और संहार में निरत, कामनाओं से रहित, परमेश्वर, अमृत के स्थान, सद्भाव धारी, मुक्तात्मा आप विजय देने वाले हो। हे प्रजापतियों के स्वामी, पद्मनाभ ! महा बलवान्, आत्मभूत, महाभूत, सर्वात्मन्, आपकी सदा जय हो ॥५४-५८॥

पादौ तव धरा देवी दिशो बाहू दिवं शिरः ।
मूर्तिस्तेऽहं सुराः कायश्चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ॥५९॥
बलं तपश्च सत्यं च कर्मधर्मात्मकं तव ।
तेजोऽग्निः पवनः श्वास आपस्ते स्वेदसम्भवाः ॥६०॥
अश्विनौ श्रवणौ नित्यं देवी जिह्वा सरस्वती ।
वेदाः संस्कारनिष्ठा हि त्वयीदं जगदाश्रितम् ॥६१॥
न संख्यानं परीमाणं न तेजो न पराक्रमम् ।
न बलं योगयोगीश जानीमस्ते न सम्भवम् ॥६२॥

हे भगवन् ! पृथिवी आपके चरण, बाहु दिशाएँ, शिर आकाश, मैं ब्रह्म तुम्हारी मूर्ति, देवता शरीर, चन्द्र सूर्य नेत्र और बल, तप और सत्य कर्म-धर्म है। अग्नि, तेज, पवन, श्वास, स्वेद जल, अश्विनीकुमार श्रवण और जिह्वा सरस्वती देवी है।

वेद तुम्हारा स्वाभाविक संस्कार है। तुम्हारे आधार पर भी इस जगत् की स्थिति है। हे भगवन्! आपके गुणों की गणना या परिमाण नहीं है। न तेज और पराक्रम की सीमा है। हे योगेश्वर! हम आपके बल और उत्पत्ति स्थान को नहीं जानते हैं

त्वद्भक्तिनिरता देव नियमैस्त्वां समाश्रिताः।
अर्चयामः सदा विष्णो परमेशं महेश्वरम् ॥६३॥

हे देव! हम तुम्हारी भक्ति में निरत है और तुम्हारे नियमों के आधार पर चलते हैं। हे विष्णो! आप परमेश्वर और महेश्वर हो ॥६३॥

ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
पिशाचा मानुषाश्चैव मृगपक्षिसरीसृपाः ॥६४॥
एवमादि मया सृष्टं पृथिव्यां त्वत्प्रसादजम्।
पद्मनाभ विशालाक्ष कृष्ण दुःखप्रणाशन ॥६५॥
त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वं नेता त्वं जगद्गुरुः।
त्वत्प्रसादेन देवेश सुखिनो विबुधाः सदा ॥६६॥

ऋषि, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग, पिशाच, मनुष्य, मृग, पक्षी, सरीसृप, कीट पतङ्ग आदि सब मैंने तुम्हारी कृपा से रचे हैं। हे पद्मनाभ! विशालाक्ष! कृष्ण, दुःखनाशन, तुम सबकी गति, नेता और जगत् गुरु हो। हे देवेश! तुम्हारे अनुग्रह से ही सारे देवता सुखी रहते हैं ॥६४-६६॥

पृथिवी निर्भया देव त्वत्प्रसादात्सदाऽभवत् ।
तस्माद्भव विशालाक्ष यदुवंशविवर्धनः ॥६७॥
धर्मसंस्थापनार्थाय दैत्यानां च वधाय च ।
जगतो धारणार्थाय विज्ञाप्यं कुरु मे विभो ॥६८॥

हे देव! तुम्हारी अनुकम्पा से यह सारी पृथिवी निर्भय रहती है। हे विशालाक्ष! आप यदुवंश के बढ़ाने वाले कृष्ण बनकर धर्म की स्थापना और दैत्यों के वध के लिए अवतार धारण करो। हे विभो! जगत् की रक्षा के लिए इसको वचन दीजिए।

यत्तत्परमकं गुह्यं त्वत्प्रसादादिदं विभो ।
वासुदेव तदेतत्ते मयोद्गीतं यथातथम् ॥६९॥
सृष्ट्वा सङ्कर्षणं देवं स्वयमात्मानमात्मना ।
कृष्ण त्वमात्मनाऽस्राक्षीः प्रद्युम्नं चाऽऽत्मसम्भवम् ॥
प्रद्युम्नादनिरुद्धं त्वं यं विदुर्विष्णुमव्ययम् ।
अनिरुद्धोऽसृजन्मां वै ब्रह्माणं लोकधारिणम् ॥७१॥

हे प्रभो! आपकी दया से ही मैंने यह परम गुह्य बात का वर्णन किया है। हे वासुदेव! इसका वर्णन मैंने ठीक किया है। तुम अपने आप प्रथम संकर्षण रूप धारण करके फिर कृष्ण रूप से अपने को प्रकट करना। तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न होगा। प्रद्युम्न के अनिरुद्ध होंगे-जो सब विष्णु के ही रूप हैं। अनिरुद्ध ने ही लोकधारी मुझ ब्रह्मा की रचना की है ॥६९-७१॥

वासुदेवमयः सोऽहं त्वयैवाऽस्मि विनिर्मितः।
विभज्य भागशोऽऽत्मानं व्रज मानुषतां विभो ॥७२॥

मैं भी वासुदेव रूप हूँ और तुम्हारे गुणों से जीता हुआ हूं। तुम अपने आपको इस चतुर्व्यूह में रच कर मानुष रूप धारण करो।

तत्राऽसुरवधं कृत्वा सर्वलोकसुखाय वै।
धर्मं प्राप्य यशः प्राप्य योगं प्राप्स्यसि तत्त्वतः ॥७३॥

इस अवतार में सब लोक के सुख के लिए असुरों का वध तथा धर्म और यश पाकर आप योग-सिद्धि प्राप्त करोगे ॥७३॥

त्वां हि ब्रह्मर्षयो लोके देवाश्चाऽमितविक्रम।
तैस्तैर्हि नामभिर्युक्ता गायन्ति परमात्मकम् ॥७४॥

हे अत्यन्त पराक्रमी! जगत् में ब्रह्मर्षि और देवता आपकी भिन्न २ नामों से स्तुति करते हैं। वे सब तुम परमात्मा को ही प्राप्त होती हैं ॥७४॥

स्थिताश्च सर्वे त्वयि भूतसङ्घाः कृत्वाऽऽश्रयं त्वां वरदं सुबाहो
अनादिमध्यान्तमपारयोगं लोकस्य सेतुं प्रवदन्ति विप्राः ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

हे सुबाहो! सारे प्राणी मात्र तुम्हारे आधार से ही रहते हैं। तुम ही सबके वरदाता और आधार हो। ज्ञानी लोग आदि, मध्य

और अन्त से हीन, अपार योगधारी, संसार का सेतु तुमको ही बताते हैं ॥७५॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में विश्वोपाख्यान का पैंसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

——***——

छियासठवां अध्याय

भीष्म उवाच—

ततः स भगवान्देवो लोकानामीश्वरेश्वरः।
ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥१॥

भीष्म बोले—हे राजन! समस्त लोकों के स्वामियों के भी स्वामी, भगवान् विष्णु ने स्थिर और गम्भीर वाणीसे ब्रह्माजीसे कहा

विदितं तात योगान्मे सर्वमेतत्तवेप्सितम्।
तथा तद्भवितेत्युक्त्वा तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥२॥

हे ब्रह्मन्! मुझे तुम्हारा सारा मनोरथ योग द्वारा विदित हो चुका है। तुम्हारी जो अभिलाषा है, वह पूर्ण हो जावेगी-इतना कहकर भगवान् अलक्षित हो गए ॥२॥

ततो देवर्षिगन्धर्वा विस्मयं परमं गताः।
कौतूहलपराः सर्वे पितामहमथाऽब्रुवन् ॥३॥

अब देवर्षि और गन्धर्व आदि देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन सबको इस घटना के जानने की बड़ी उत्कण्ठा हो गई-वे लोक पितामह ब्रह्माजी से बोले ॥३॥

को न्वयं यो भगवता प्रणम्य विनयाद्विभो ।
वाग्भिः स्तुतो वरिष्ठाभिः श्रोतुमिच्छाम तं वयम् ॥४॥

हे विभो ! आपने जिनको बड़े विनय से प्रणाम किया और उत्तम २ वाणियों से जिनकी स्तुति की-ये कौन थे । हम इस बात के सुनने की इच्छा करते हैं ॥४॥

एवमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाच पितामहः ।
देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान्सर्वान्मधुरया गिरा ॥५॥

देवों के इतना कहने पर लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा उन देव, ब्रह्मर्षि, गन्धर्व आदि देवों से मधुर वाणी से बोले ॥५॥

यत्तत्परं भविष्यं च भवितव्यं च यत्परम् ।
भूतात्मा च प्रभुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम् ॥६॥
तेनाऽस्मि कृतसंवादः प्रसन्नेन सुरर्षभाः ।
जगतोऽनुग्रहार्थाय याचितो मे जगत्पतिः ॥७॥

हे देवों में श्रेष्ठो ! जिसके अधीन सारा वर्तमान और भविष्य है, जो प्राणी मात्र का आत्मा और स्वामी है, जो ब्रह्म, सर्व श्रेष्ठ स्थान है, उसी प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु से मैंने वार्तालाप की और संसार पर अनुग्रह करने के लिए मैंने उन जगदीश्वर की यह प्रार्थना की है ॥६-७॥

मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः ।
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्व महीतले ॥८॥

मैंने भगवान् वासुदेव से मनुष्य लोक में अवतार लेने की प्रार्थना की थी और कहा था, कि असुरों के वध के लिए आप पृथिवी पर अवतार धारण करो ॥८॥

संग्रामे निहता ये ते दैत्यदानवराक्षसाः ।
त इमे नृषु सम्भूता घोररूपा महाबलाः ॥९॥
तेषां वधार्थं भगवान्नरेण सहितो वशी ।
मानुषीं योनिमास्थाय चरिष्यति महीतले ॥१०॥

जिन दैत्य दानवों और राक्षसों को आपने देवासुर संग्राम में मारा हैं, वे महाबली घोर रूप धारी दानव, मनुष्यों में उत्पन्न हो गए हैं; उन्हीं के वध के लिए भगवान् नारायण अपने दूसरे रूप नर के साथ मनुष्य रूप धारण करके पृथिवी पर घूमेंगे ॥१०॥

नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती ॥११॥

ये दोनों नर नारायण नामक प्राचीन श्रेष्ठ ऋषि हैं । ये अत्यन्त क़ान्तिधारी महानुभाव, साथ २ मर्त्यलोक में उत्पन्न होंगे ।

अजेयौ समरे यत्तौ सहितैरमरैरपि ।
मूढास्त्वेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ॥१२॥

तस्याऽहमग्रजः पुत्रः सर्वस्य जगतः प्रभुः ।
वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥१३॥

ये युद्ध में बड़े सावधान और सारे इकट्ठे हुए देवों से भी दुर्लभ हैं। जो मूर्ख हैं, वे इन नर नारायण नामक ऋषि वरों को नहीं जान पाते हैं। मैं उसी समस्त जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु का सबसे पहिला पुत्र हूँ। ये सब लोक के महेश्वर, सर्व-व्यापक भगवान् वासुदेव तुम्हारे पूजनीय हैं ॥१२-१३॥

तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित्सुरसत्तमाः ।
नाऽवज्ञेयो महावीर्यः शङ्खचक्रगदाधरः ॥१४॥

हे सुरसत्तमो ! तुम लोग महा शक्तिशाली, शंख, चक्र गदाधर भगवान् विष्णु को मनुष्य रूप में देख कर कभी इनकी उपेक्षा न कर बैठना ॥१४॥

एतत्परमकं गुह्यमेतत्परमकं पदम् ।
एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः ॥१५॥
एतदक्षरमव्यक्तमेतद्वै शाश्वतं महः ।
यत्तत्पुरुषसंज्ञं वै गीयते ज्ञायते न च ॥१६॥

ये ही भगवान् विष्णु परमगुरु और परम पद हैं। ये ही परब्रह्म और परम यश हैं। ये ही अव्यक्त और अविनाशी, चिर-स्थायी सनातन तेज हैं। ये ही तत्पद वाच्य पुरुष बताये जाते हैं। इनको कोई जान नहीं सकता है ॥१५॥

एतत्परमकं तेज एतत्परमकं सुखम् ।
एतत्परमकं सत्यं कीर्तितं विश्वकर्मणा ॥१७॥

ये परम तेज और सुख स्वरूप हैं । विश्वकर्मा ने इनका ही परम सत्य के नाम से कथन किया है ॥१७॥

तस्मात्सेन्द्रैः सुरैः सर्वैर्लोकैश्चाऽमितविक्रमः ।
नाऽवज्ञेयो वासुदेवो मानुषोऽयमिति प्रभुः ॥१८॥

अब तुम सारे इन्द्रादि देव और मनुष्यों को अत्यन्त पराक्रमी, सब के स्वामी, भगवान् वासुदेव को मनुष्य जान कर उनका किसी प्रकार का अपचार नहीं करना चाहिए ॥१८॥

यश्च मानुषमात्रोऽयमिति ब्रूयात्स मन्दधीः ।
हृषीकेशमवज्ञानात्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥१९॥

जो भगवान् हृषीकेश (श्रीकृष्ण) को अपने अज्ञान से केवल मनुष्य बताता है । वह मन्द बुद्धि है और उसे अधम पुरुष समझना चाहिए ॥१९॥

योगिनं तं महात्मानं प्रविष्टं मानुषीं तनुम् ।
अवमन्येद्वासुदेवं तमाहुस्तामसं जनाः ॥२०॥

जो महात्मा योगिराज, मनुष्य मूर्ति धारण करने वाले श्रीकृष्ण को अवहेलना की दृष्टि से देखता है, उसको महात्मा लोग तामसी मनुष्य कहते हैं ॥२०॥

देवं चराचरात्मानं श्रीवत्साङ्कं सुवर्चसम् ।
पद्मनाभं न जानाति तमाहुस्तामसं बुधाः ॥२१॥

जो चराचर जगत् की आत्मा, श्रीवत्स चिन्ह से विभूषित, अत्यन्त तेजस्वी, कमलनाभि भगवान् विष्णु को नहीं पहिचानता है, उसे बुद्धिमान, नीच पुरुष कहते हैं ॥२१॥

किरीटकौस्तुभधरं मित्राणामभयङ्करम् ।
अवजानन्महात्मानं घोरे तमसि मज्जति ॥२२॥

मुकुट और कौस्तुभ मणिधारी, मित्रों के अभय करने वाले, महात्मा श्रीकृष्ण की जो निन्दा करता है, वह घोर अन्धकार में डूबता है ॥२२॥

एवं विदित्वा तत्त्वार्थं लोकानामीश्वरेश्वरः ।
वासुदेवो नमस्कार्यः सर्वलोकैः सुरोत्तमाः ॥२३॥

हे सुरश्रेष्ठो ! इस बात को तत्व रूप से ग्रहण करके लोकों के ईश्वर, भगवान् वासुदेव को तुम सब लोगों को पूज्य समझना चाहिए २३॥

भीष्म उवाच—

एवमुक्त्वा स भगवान्देवान्सर्षिगणान्पुरा ।
विसृज्य सर्वभूतात्मा जगाम भवनं स्वकम् ॥२४॥

भीष्म बोले—भगवान् ब्रह्मा, ऋषियों के सहित देवों से इतना कहकर और उनको वहीं छोड़कर आप अपने लोक को पधार गए।

ततो देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽप्सरसोऽपि च ।
कथां तां ब्रह्मणा गीतां श्रुत्वा प्रीता दिवं ययुः ॥२५॥

अब देव, गन्धर्व, मुनि, अप्सरा सब ब्रह्मा द्वारा कही हुई वार्ता-का विचार करके बड़े प्रसन्न हुए और फिर अपने धाम स्वर्गलोक को चले गए ॥२५॥

एतच्छ्रुतं मया तात ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
वासुदेवं कथयतां समवाये पुरातनम् ॥२६॥

हे तात ! मैंने यह बात परम पूज्य, महात्मा ऋषियों के मुख से जनसमूह में वासुदेव को परम पुरुष बताते हुए सुनी है ॥२६॥

रामस्य जामदग्न्यस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
व्यासनारदयोश्चाऽपि सकाशाद्भरतर्षभ ॥२७॥

हे भरतर्षभ ! यही बात जमदग्नि-पुत्र परशुराम, बुद्धिमान् मार्कण्डेय, व्यास, नारद के मुख से भी समय २ पर सुनी है ॥२७॥

एतमर्थं च विज्ञाय श्रुत्वा च प्रभुमव्ययम् ।
वासुदेवं महात्मानं लोकानामीश्वरेश्वरम् ॥२८॥

महात्मा भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण को समस्त संसार के ईश्वरों का ईश्वर, प्रभु, अविनाशी, सुनकर अब तुम इस पर विचार करो ॥२८॥

यस्य चैवाऽऽत्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पिता ।
कथं न वासुदेवोऽयमर्च्यश्चेज्यश्च मानवैः ॥२९॥

सारे जगत् का रचने वाला ब्रह्मा भी जिसका पुत्र है । वह वासुदेव, तुम समस्त मनुष्यों का पूज्य और वन्दनीय कैसे नहीं माना जा सकता है ॥२९॥

वारितोऽसि मया तात मुनिभिर्वेदपारगैः ।

मा गच्छ संयुगं तेन वासुदेवेन धन्विना ॥३०॥

मा पाण्डवैः सार्द्धमिति तत्त्वं मोहान्न बुध्यसे ।

मन्ये त्वां राक्षसं क्रूरं तथा चाऽसि तमोवृतः ॥३१॥

हे तात ! वेद पारगामी मुनि और मैंने तुमको बार २ रोका, कि तुम भगवान् वासुदेव और धनुर्धर अर्जुन तथा अन्य पाण्डवों के सन्मुख युद्ध को न जाओ, परन्तु तुमने अपने अज्ञान से इस पर ध्यान ही नहीं दिया, इससे मैं तो तुमको क्रूर राक्षस और अन्धकारावृत अज्ञानी मनुष्य समझता हूं ॥३०-३१॥

यस्माद् द्विषसि गोविन्दं पाण्डवं तं धनञ्जयम् ।

नरनारायणौ देवौ कोऽन्यो द्विष्याद्धि मानवः ॥३२॥

तुम इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र धनञ्जय अर्जुन से द्वेष करते हो । ये तो दोनों नर नारायण नामक दिव्य गुण धारी ऋषि हैं । तुम्हारे अतिरिक्त कौन मनुष्य होगा, जो इनसे द्वेष करता हो ॥३२॥

तस्माद्ब्रवीमि ते राजन्नेष वै शाश्वतोऽव्ययः ।

सर्वलोकमयो नित्यः शास्ता धात्रीधरो ध्रुवः ॥३३॥

हे राजन् ! मैं तुमसे फिर कहता हूं, कि ये सब काल में स्थित रहने वाले, अविनाशी, सब लोक व्यापी, नित्य, शासक, निश्चल तथा पृथिवी के धारण करने वाले हैं ॥३३॥

योधारयति लोकांस्त्रींश्चराचरगुरुः प्रभुः ।
योद्धा जयश्च जेता च सर्वप्रकृतिरीश्वरः ॥३४॥

यही तीनों लोकों का धारक चराचर जगत का पूज्य स्वामी है। यह महान् योद्धा, प्रत्यक्ष विजय मूर्ति, विजेता और सबका उत्पादक ईश्वर है ॥३४॥

राजन्सर्वमयो ह्येष तमोरागविवर्जितः ।
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥३५॥

हे राजन्! ये सर्वव्यापक और राग द्वेष से रहित हैं। तुम यह निश्चय समझो-कि जिधर श्रीकृष्ण हैं, उधर धर्म है और जहां धर्म है, उसी पक्ष की विजय है ॥३५॥

तस्य माहात्म्ययोगेन योगेनाऽऽत्ममयेन च ।
धृताः पाण्डुसुता राजञ्जयश्चैषां भविष्यति ॥३६॥

हे राजन्! उसी महात्मा के गौरव और योग-शक्ति से पाण्डवों की रक्षा हो रही है। हे तात! मेरी सम्मति में तो विजय भी पाण्डवों की ही होगी ॥३६॥

श्रेयोयुक्तां सदा बुद्धिं पाण्डवानां दधाति यः ।
बलं चैव रणे नित्यं भयेभ्यश्चैव रक्षति ॥३७॥
स एष शाश्वतो देवः सर्वगुह्यमयः शिवः ।
वासुदेव इति ज्ञेयो यन्मां पृच्छसि भारत ॥३८॥

जो पाण्डवों को सदा कल्याणकारी बुद्धि प्रदान करता है तथा रणाङ्गण में उत्साह उत्पन्न करता है और जितने भय के

स्थान उपस्थित होते हैं, उनसे रक्षा करता है, वही अविनाशी देव, सत्र रहस्यमय कल्याणकारी है। हे भारत ! यदि तुम मुझसे पूछते हो-तो श्रीकृष्ण वही परब्रह्म वासुदेव हैं ॥३७-३८॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
सेव्यतेऽभ्यर्च्यते चैव नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ॥३९॥

इनकी ही धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, अपने २ धर्मानुसार कर्मों से सेवा पूजा करते हैं ॥३९॥

द्वापरस्य युगस्याऽन्ते आदौ कलियुगस्य च ।
सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन वै ॥४०॥

द्वापर युग के अन्त और कलियुगके आदि में सात्वत सम्प्रदायानुसार सङ्कर्षण (बलराम) ने इनके स्वरूप का वर्णन किया है ॥४०

स एष सर्वं सुरमर्त्यलोकं समुद्रकक्ष्यान्तरितां पुरीं च ।
युगे युगे मानुषं चैव वासं पुनः पुनः सृजते वासुदेवः ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

ये ही समस्त जगत् के आत्माभूत भगवान् श्रीकृष्ण, सारे सुरलोक और मनुष्य-लोक तथा समुद्र की गोद में द्वारकापुरी एवं युग २ में मनुष्य रूप में अवतार धारण करते हैं ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में विश्वोपाख्यान
का छियासठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

सड़सठवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

वासुदेवो महद्भूतं सर्वलोकेषु कथ्यते ।
तस्याऽऽगमं प्रतिष्ठां च ज्ञातुमिच्छे पितामह ॥१॥

दुर्योधन कहने लगे—हे पितामह ! सब लोग वसुदेव-पुत्र को महा पुरुष कह २ कर प्रसिद्ध कर रहे हैं । मैं उसकी उत्पत्ति और स्थिति को जानना चाहता हूं ॥१॥

भीष्म उवाच—

वासुदेवो महद्भूतं सर्वदैवतदैवतम् ।
न परं पुण्डरीकाक्षाद् दृश्यते भरतर्षभ ॥२॥

भीष्म बोले—हे भरतर्षभ ! सचमुच वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, महा पुरुष और सारे देवों के देव हैं । उन कमललोचन श्रीकृष्ण से कोई पुरुष, उत्कृष्ट दृष्टि नहीं आता है ॥२॥

मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयत्यद्भुतं महत् ।
सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ॥३॥

इन्हीं गोविन्द श्रीकृष्ण के विषय में मार्कण्डेय मुनि ने बड़ी आश्चर्यजनक वात कही है, कि ये सब भूतों के भूत महात्मा पुरुषोत्तम हैं ॥३॥

आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् ।
स सृष्ट्वा पृथिवीं देवीं सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥४॥

अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः।
सर्वतेजोमयो देवो योगात्सुष्वाप तत्र ह ॥५॥

इन्होंने प्रथम जल, वायु और तेज की रचना की; फिर पृथिवी को रच कर ये ही महात्मा पुरुषोत्तम सब लोकों के पति प्रभु जल में शयन करते हैं। ये देव सब तेजों से युक्त हैं और अपनी योगमाया के साथ जल में शयन करते हैं ॥४-५॥

मुखतः सोऽग्निमसृजत्प्राणाद्वायुमथाऽपि च।
सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽच्युतः ॥६॥
एष लोकान्ससर्जाऽऽदौ देवांश्च ऋषिभिः सह।
निधनं चैव मृत्युं च प्रजानां प्रभवाप्ययौ ॥७॥

इन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण ने मुख से अग्नि, प्राण से वायु और मन से सरस्वती तथा वेद को रचा है। ये ही आदि काल में लोक, देव और ऋषियों की रचना करते हैं। इसी तरह हानि, लाभ, मृत्यु, प्रजा की उन्नति, अवनति के कर्ता हैं ॥६-७॥

एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः।
एष कर्ता च कार्यं च पूर्वदेवः स्वयं प्रभुः ॥८॥

ये धर्म और धर्म के स्वरूप के ज्ञाता, सब कामनाओं के देने वाले वरदायी हैं। ये कर्ता और ये ही कार्य सब के आदिदेव स्वयं प्रभु हैं ॥८॥

भूतं भव्य भविष्यच्च पूर्वमेतदकल्पयत्।
उभे सन्ध्ये दिशः खं च नियमांश्च जनार्दनः ॥९॥

ऋषींश्चैव हि गोविन्दस्तपश्चैवाऽभ्यकल्पयत् ।
स्रष्टारं जगतश्चाऽपि महात्मा प्रभुरव्ययः ॥१०॥

इन्हीं इन्द्रियों के पति भगवान् जनार्दन ने दोनों सन्ध्या, दिशा, आकाश, सृष्टि के नियम, ऋषि और तप की रचना की है। ये ही अविनाशी महात्मा प्रभु सारे जगत् के रचयिता हैं ॥९-१०॥

अग्रजं सर्वभूतानां सङ्कर्षणमकल्पयत् ।
तस्मान्नारायणो जज्ञे देवदेवः सनातनः ॥११॥
नाभौ पद्मं बभूवाऽस्य सर्वलोकस्य सम्भवात् ।
तस्मात्पितामहो जातस्तस्माज्जातास्त्विमाः प्रजाः ॥१२

समस्त भूतों के आदि में ये ही संकर्षण का प्रादुर्भाव और उसके पीछे स्वयं भगवान् नारायण का रूप ग्रहण करते हैं। ये विष्णु सनातन देवादि देव हैं। इन सब लोक के कारण भगवान् विष्णु के नाभि से ही कमल की उत्पत्ति होती है। इससे पितामह ब्रह्मा और ब्रह्मा से सारी सृष्टि का प्रादुर्भाव हैं ॥११-१२

शेषं चाऽकल्पयद्देवमनन्तं विश्वरूपिणम् ।
यो धारयति भूतानि धरां चेमां सपर्वताम् ॥१३॥
ध्यानयोगेन विप्राश्च तं विदन्ति महौजसम् ।

फिर दिव्य गुणधारी विश्वरूप अनन्त संज्ञक शेष की रचना होती है। वही इन सारे भूत और पर्वत सहित पृथिवी को धारण

करता है। विद्वान् ब्राह्मण ही ध्यान योग (विचार) से इन महा ओजस्वी शेष और भगवान् विष्णु के तत्व को जान पाते हैं ॥१३

कर्णस्रोतोभवं चाऽपि मधुं नाम महासुरम् ॥१४॥
तमुग्रमुग्रकर्माणमुग्रां बुद्धिं समास्थितम् ।
ब्रह्मणोऽपचितिं यातुं जघान पुरुषोत्तमः ॥१५॥

इनके कर्ण के मल से मधु नामक दैत्य उत्पन्न होता है। उस उग्र रूप धारी उग्र कर्मों के करने वाले, उग्र बुद्धि के धर्ता, ब्रह्माके वध में प्रवृत्त, मधु दैत्य का इन्हीं पुरुषोत्तम ने नाश किया है।

तस्य तात वधादेव देवदानवमानवाः ।
मधुसूदनमित्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम् ॥१६॥

हे तात ! इसी मधु दैत्य के वध करने से देव, दानव, ऋषि और मानव, श्रीकृष्ण को मधुसूदन और जनार्दन कहते हैं ॥१६॥

वराहश्चैव सिंहश्च त्रिविक्रमगतिः प्रभुः ।
एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ॥१७॥

ये ही भगवान् वराह, नृसिंह और त्रिविक्रमावतार (वामन) धारी हैं। ये ही हरि, सब के माता-पिता हैं ॥१७॥

परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति ।
मुखतः सोऽसृजद्विप्रान्बाहुभ्यां क्षत्रियांस्तथा ॥१८॥
वैश्यांश्चाऽप्युरुतो राजन्शूद्रान्वै पादतस्तथा ।
तपसा नियतो देवो निधानं सर्वदेहिनाम् ॥१९॥

इन कमल लोचन प्रभु से कोई उत्कृष्ट न हुआ और न आगे होगा। इन्होंने ही मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, जंघाओं से

वैश्य और पैर से शूद्रों की रचना की है। ये देव अपने तप (माया) का आश्रय लेकर ही स्थित हैं तथा सब प्राणियों के आधार भूत हैं ॥१८-१९॥

ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च।
योगभूतं परिचरन्केशवं महदाप्नुयात् ॥२०॥

इन्हीं ब्रह्मभूत अवस्था को प्राप्त, योगेश्वर श्रीकृष्ण का अमावास्या और पूर्णिमा के दिन ध्यान-कीर्तन करने से महा-पद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ॥२०॥

केशवः परमं तेजः सर्वलोकपितामहः।
एवमाहुर्हृषीकेशं मुनयो वै नराधिप ॥२१॥

हे नराधिप ! इन भगवान् हृषीकेश को मुनि लोग परम तेज और सब लोकों के पितामह जानते हैं। ये ही ब्रह्मादि देवों के स्वामी हैं ॥२१॥

एवमेनं विजानीहि आचार्यं पितरं गुरुम्।
कृष्णो यस्य प्रसीदेत लोकास्तेनाऽक्षया जिताः ॥२२॥

इस प्रकार इनको ही आचार्य, पिता और गुरु सब कुछ समझना चाहिए। जिससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं, उसी ने अक्षय लोकों की विजय प्राप्त कर ली समझो ॥२२॥

यश्चैवैनं भयस्थाने केशवं शरणं व्रजेत्।
सदा नरः पठंश्चेदं स्वस्तिमान्स सुखी भवेत् ॥२३॥

जो किसी भय के स्थान या आपत्ति में भगवान् केशव की शरण में जाता है और उनके गुणानुवाद गाता है, वही सुखी और कल्याण युक्त होता है ॥२३॥

ये च कृष्णं प्रपद्यन्ते न मुह्यन्ति मानवाः ।
भये महति मग्नांश्च पाति नित्यं जनार्दनः ॥२४॥

जो मनुष्य, श्रीकृष्ण की शरण को प्राप्त हो जाते हैं । उनको कभी अज्ञान या मोह नहीं दबा पाता है । जनार्दन श्रीकृष्ण, भय में फँसे हुए मानवों का सदा उद्धार करते हैं ॥२४॥

स तं युधिष्ठिरो ज्ञात्वा याथातथ्येन भारत ।
सर्वात्मना महात्मानं केशवं जगदीश्वरम् ।
प्रपन्नः शरणं राजन्योगानां प्रभुमीश्वरम् ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

हे भारत ! राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को ठीक २ समझ लिया है । हे राजन् ! इसी कारण वह सब प्रकार से महात्मा, केशव, जगदीश्वर, योगेश्वर, ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्ण की शरण में स्थित है ॥२५॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में विश्वोपाख्यान का सड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ ।

——**——

अड़सठवां अध्याय

भीष्म उवाच—

शृणु चेदं महाराज ब्रह्मभूतं स्तवं मम ।
ब्रह्मर्षिभिश्च देवैश्च यः पुरा कथितोभुवि ॥१॥

भीष्म बोले—हे महाराज ! अब आप ब्रह्मभूत श्रीकृष्ण की स्तुति मुझ से सुनो-जिसका पूर्वकाल में ब्रह्मर्षि और देवों ने कथन किया है ॥१॥

साध्यानामपि देवानां देवदेवेश्वरः प्रभुः ।
लोकभावन भावज्ञ इति त्वा नारदोऽब्रवीत् ॥२॥

हे लोकभावन ! श्रीकृष्ण ! आपको नारद मुनि साध्य देवों के भी देवाधिदेव, प्रभु और सबके तत्व के जानने वाला बताते हैं ।

भूतं भव्य भविष्यं च मार्कण्डेयोऽभ्युवाच ह ।
यज्ञं त्वां चैव यज्ञानां तपश्च तपसामपि ॥३॥

हे भगवन् ! मार्कण्डेय मुनि ने आपको भूत, भव्य, भविष्य, यज्ञों के यज्ञ और तपों का तप माना है ॥३॥

देवानामपि देवं च त्वामाह भगवान्भृगुः ।
पुराणं चैव परमं विष्णो रूपं तवेति च ॥४॥

भगवान् भृगु मुनि ने आपको देवों का देव, सनातन, परम पुरुष माना है और भगवान् विष्णु को भी तुम्हारा ही रूप बताया है ॥४॥

वासुदेवो वसूनां त्वं शक्रं स्थापयिता तथा।
देवदेवोऽसि देवनामिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥५॥

भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास ने वसुओं में वासुदेव, इन्द्रादि देवों के कर्ता, देवों के भी देव माना है ॥५॥

पूर्वे प्रजानिसर्गे च दक्षमाहुः प्रजापतिम्।
स्रष्टारं सर्वलोकानामङ्गिरास्त्वां तथाऽब्रवीत् ॥६॥

अङ्गिरा मुनि ने प्रजा की उत्पत्ति के समय तुम्हें प्रजापति दक्ष तथा सब लोकों के रचयिता बताया है ॥६॥

अव्यक्तं ते शरीरोत्थं व्यक्तं ते मनसि स्थितम्।
देवास्त्वत्सम्भवाश्चैव देवलस्त्वसितोऽब्रवीत ॥७॥

यह सारा अव्यक्त जगत तुम्हारे शरीर में लीन रहता है और जब रचनेका संकल्प उठता है, तो सृष्टि हो जाती है, इससे जगत तुम्हारे मन में स्थित है। देवता भी तुमसे ही उत्पन्न होते हैं- यह असित देवल का मत है ॥७॥

शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी तथा।
जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥८॥

तुम्हारे शिर से द्युलोक और बाहुओं से पृथिवी व्याप्त है, तुम्हारे उदर में तीनों लोक व्याप्त हैं। तुम ही सनातन पुरुष हो— इसमें संशय नहीं है ॥८॥

एवं त्वामभिजानन्ति तपसा भाविता नराः।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणां चाऽसि सत्तमः ॥९॥

इस प्रकार तप से पवित्रात्मा पुरुष तुमको जान पाते हैं। अपने आत्म-दर्शन से तृप्त, ऋषियों में तुम सर्व श्रेष्ठ आत्मज्ञानी हो।

राजर्षीणामुदाराणामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ।
सर्वधर्मप्रधानानां त्वं गतिर्मधुसूदन ॥१०॥

हे मधुसूदन ! युद्ध में पीठ नहीं दिखाने वाले, महावीर राजाओं तथा धर्म के जानने वालों की केवल तुम ही गति हो ॥१०॥

इति नित्यं योगविद्भिर्भगवान्पुरुषोत्तमः ।
सनत्कुमारप्रमुखैः स्तूयतेऽभ्यर्च्यते हरिः ॥११॥

इस प्रकार योग के जानने वाले, सनत्कुमार आदि मुनियों द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम हरि की स्तुति और पूजा की जाती है।

एष ते विस्तरस्तात संक्षेपश्च प्रकीर्तितः ।
केशवस्य यथातत्त्वं सुप्रीतो भज केशवम् ॥१२॥

हे तात ! तुमसे श्रीकृष्ण के विषय में विस्तार और संक्षेप दोनों प्रकार से वर्णन कर दिया है। अब तुमको भक्ति के साथ श्रीकृष्ण का सेवन करना चाहिए ॥१२॥

सञ्जय उवाच—

पुण्यं श्रुत्वैतदाख्यानं महाराज सुतस्तव ।
केशवं बहु मेने स पाण्डवांश्च महारथान् ॥१३॥

सञ्जय ने कहा-हे महाराज ! तुम्हारे पुत्रने इस पवित्र आख्यान को सुनकर भगवान् केशव के विषय में बड़ा आश्चर्य प्रकट किया। इसने महारथी पाण्डव और श्रीकृष्ण के महत्व को अब समझा।

तमब्रवीन्महाराज भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
माहात्म्यं ते श्रुतं राजन्केशवस्य महात्मनः ॥१४॥
नरस्य च यथातत्त्वं यन्मां त्वं पृच्छसे नृप ।

हे महाराज ! अब फिर राजा दुर्योधन से शान्तनु-पुत्र भीष्म ने कहा—हे राजन् ! आपने महात्मा श्रीकृष्ण का महत्व सुन लिया है तथा नर नामक महर्षि के भी रहस्य को जान लिया है। जिसके विषय में तुम्हारा प्रश्न था ॥१४॥

यदर्थं नृषु सम्भूतौ नरनारायणावृषी ॥१५॥
अवध्यौ च यथा वीरौ संयुगेस्वपराजितौ ।

जिस प्रयोजन को लेकर नर नारायण दोनों ऋषि, मनुष्य लोक में उत्पन्न हुए हैं तथा जिस कारण से युद्ध में दोनों वीर अपराजित हैं—यह भी तुमने सुन लिया ॥१५॥

यथा च पाण्डवा राजन्नवध्या युधि कस्यचित् ॥१७॥
प्रीतिमान्हि दृढं कृष्णः पाण्डवेषु यशस्विषु ।

हे राजन् ! यशस्वी पाण्डव, इसीलिए युद्ध में अवध्य हैं, कि उन पर श्रीकृष्ण बहुत अधिक प्रीतिमान् हैं ॥१६॥

तस्माद्ब्रवीमि राजेन्द्र शमो भवतु पाण्डवैः ॥१७॥
पृथिवीं भुंच्व सहितो भ्रातृभिर्बलिभिर्वशी ।
नरनारायणौ देवाववज्ञाय न शिष्यसि ॥१८॥

हे राजेन्द्र ! मैं इसीलिए तुमसे वार २ कहता हूं, कि तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो और फिर इन अपने वलवान् भ्राता पाण्डवों के साथ रहकर पृथिवी का भोग करो। इन नर नारायण नामके दिव्य गुणधारी ऋषियों के अवतार अर्जुन और श्रीकृष्णसे तुम विरोध करके जीवित नहीं वच सकोगे ॥१७-१८॥

एवमुक्त्वा तत्र पिता तूष्णीमासीद्विशाम्पते।
व्यसर्जयच्च राजानं शयनं च विवेश ह ॥१६॥

हे विशाम्पते ! इतना कहकर तुम्हारे पिता भीष्म चुप हो गए और राजा दुर्योधन को अपने शिविर में जाने की आज्ञा देकर, आप शयन के लिए शय्या पर जा लेटे ॥१६॥

राजा च शिविरं प्रायात्प्रणिपत्य महात्मने।
शिश्ये च शयने शुभ्रे रात्रिं तां भरतर्षभ ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥ विश्वोपाख्यानं समाप्तम् ।

हे भरतर्षभ ! महात्मा भीष्म को प्रणाम करके राज दुर्योधन चलते वने और भीष्मने भी उस रात शुभ्र शय्या पर शयन किया।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में विश्वोपाख्यान का अड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर विश्वोपाख्यान भी समाप्त हो गया।



उनहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

व्युषितायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे ।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः ॥१॥

सञ्जय बोले—जब रात्रि समाप्त हो गई और सूर्य निकल आया, तो हे महाराज ! अब दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए चल पड़ी ।

अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः परस्परजिगीषवः ।
ते सर्वे सहिता युद्धे समालोक्य परस्परम् ॥२॥
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ।
व्यूहौ च व्यूह्य संरब्धाः सम्प्रहृष्टाः प्रहारिणः ॥३॥

ये सारे आवेश में आकर परस्पर जीतने की इच्छा से दौड़ पड़े । तुम्हारी दुर्नीति के परिणाम से उत्पन्न इस युद्ध में पाण्डव और धार्तराष्ट्र इकट्ठे हुए, परस्पर एक दूसरे को देखने लगे । इन प्रहार करने में समर्थ, आवेश में भरे हुए, कौरव पाण्डवों ने प्रसन्नता-पूर्वक अपने २ व्यूह बनाए ॥२-३॥

अरक्षन्मकरव्यूहं भीष्मो राजन्समन्ततः ।
तथैव पाण्डवा राजन्नरक्षन्व्यूहमात्मनः ॥४॥

हे राजन् ! भीष्म मकर नामक व्यूह की रचना करके उसकी सब ओर से रक्षा करके लगे । इसी प्रकार पाण्डवों ने भी अपने बनाये हुए व्यूह की रक्षा की ॥४॥

स निर्ययौ महाराज पिता देवव्रतस्तव ।

महता रथवंशेन संवृतो रथिनां वरः ॥५॥

हे महाराज ! आपके पिता महारथी देवव्रत बड़े भारी रथियों के समूह को साथ लेकर चल दिए ॥५॥

इतरेतरमन्वीयुर्यथाभागमवस्थिताः ।

रथिनः पत्तयश्चैव दन्तिनः सादिनस्तथा ॥६॥

अपने २ अधिकार के अनुसार रथी, पैदल सैनिक, गजारोही और अश्वरोही भी एक दूसरे के पीछे २ चल दिए ॥६॥

तान्दृष्ट्वाऽभ्युद्यतान्संख्ये पाण्डवा हि यशस्विनः ।

श्येनेन व्यूहराजेन तेनाऽजय्येन संयुगे ॥७॥

इन कौरवों को युद्ध के लिए सन्नद्ध देखकर यशस्वी पाण्डवों ने भी अजेय सर्वश्रेष्ठ श्येननामक व्यूह बनाया ॥७॥

अशोभत मुखे तस्य भीमसेनो महाबलः ।

नेत्रे शिखण्डी दुर्धर्षो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥८॥

शीर्षे तस्याऽभवद्वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

विधुन्वन्गाण्डिवं पार्थो ग्रीवायामभवत्तदा ॥९॥

इस व्यूह के मुख पर महाबली भीमसेन, नेत्रों के स्थान पर दुर्धर्ष शिखण्डी और धृष्टद्युम्न और शिर के स्थान पर सच्चा पराक्रमी वीर सात्यकि था एवं अपने गाण्डीव धनुष को कँपाते हुए अर्जुन इसकी ग्रीवा पर स्थित थे ॥८-९॥

अक्षौहिण्या समं तत्र वामपक्षोऽभवत्तदा ।
महात्मा द्रुपदः श्रीमान्सह पुत्रेण संयुगे ॥१०॥

इस श्येन व्यूह के वाम पक्ष पर अक्षौहिणी सेना के साथ अपने अन्य पुत्रों के सहित श्रीमान्, महात्मा राजा द्रुपद थे ॥१०॥

दक्षिणश्चाऽभवत्पक्षः कैकेयोऽक्षौहिणीपतिः ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चाऽपि वीर्यवान् ॥११॥
पृष्ठे समभवच्छ्रीमान्स्वयं राजा युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभ्यां सहितो वीरो यमाभ्यां चारुविक्रमः ॥१२॥

एक अक्षौहिणी के स्वामी केकयराज इसके दायें पक्ष पर स्थित थे, इसके पृष्ठ प्रदेश की ओर (पूंछ पर) वीर्यवान् अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्र थे तथा पृष्ठ पर स्वयं महापराक्रमी राजा युधिष्ठिर स्थित हुए। इनके साथ दोनों वीर भ्राता, नकुल और सहदेव भी थे ॥११-१२॥

प्रविश्य तु रणे भीमो मकरं मुखतस्तदा ।
भीष्ममासाद्य संग्रामे छादयामास सायकैः ॥१३॥

भीमसेन कौरवों के मकर नामक व्यूह में उसके मुख की ओर से घुस गया और भीष्म के पास पहुंच कर उसको बाणों से आच्छादित करने लगा ॥१३॥

ततो भीष्मो महास्त्राणि पातयामास भारत ।
मोहयन्पाण्डुपुत्राणां व्यूढं सैन्यं महाहवे ॥१४॥

हे भारत ! इस महा युद्ध में पाण्डवों की बद्ध-व्यूह सेना को मुग्ध करते हुए, भीष्म पितामह महास्त्रों का प्रयोग करने लगे ।

सम्मुह्यति तदा सैन्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
भीष्मं शरसहस्रेण विव्याध रणमूर्धनि ॥१५॥

अपनी सेना को इस प्रकार सम्मोहित होती देखकर धनञ्जय अर्जुन ने रणाङ्गण में भीष्म को अपने बाण वर्षा से व्याकुल कर दिया ॥१५॥

प्रतिसंवार्य चाऽस्त्राणि भीष्ममुक्तानि संयुगे ।
स्वेनाऽनीकेन हृष्टेन युद्धाय समुपस्थितः ॥१६॥

रण में भीष्म द्वारा छोड़े हुए अस्त्रों का प्रतिरोध करके अर्जुन अपनी प्रसन्न सेना के साथ युद्ध के लिए उपस्थित हो गये ॥१६॥

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजमभाषत ।
पूर्वं दृष्ट्वा वधं घोरं बलस्य बलिनां वरः ॥१७॥
भ्रातॄणां च वधं युद्धे स्मरमाणो महारथः ।

अब बलवानों में श्रेष्ठ, राजा दुर्योधन ने अपनी सेना का घोर विनाश देखकर भरद्वाजवंशोत्पन्न द्रोणाचार्य से कहा । महारथी दुर्योधन को युद्ध में अपने भाइयों के वध का बड़ा स्मरण (दुःख) था ॥१७॥

आचार्य सततं हि त्व हितकामो ममाऽनघ ॥१८॥
वयं हि त्वां समाश्रित्य भीष्मं चैव पितामहम् ।
देवानपि रणे जेतुं प्रार्थयामो न संशयः ॥१९॥
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
स तथा कुरु भद्रं ते यथा वध्यन्ति पाण्डवाः ॥२०॥

हे अनघ ! आचार्य ! आप हमारी सदा से कल्याण कामना करने वाले हैं। हम आप और भीष्म पितामह के आश्रय से ही निःसन्देह देवों को रण में जीतने का साहस रखते हैं, फिर पराक्रम हीन पाण्डवों के जीतने की अभिलाषा रखना क्या बड़ी बात है। हे महाभाग ! अब तो आपको यही करना चाहिए, जिससे पाण्डव मारे जा सकें ॥१८-२०॥

एवमुक्तस्ततो द्रोणस्तव पुत्रेण मारिष ।
अभिनत्पाण्डवानीकं प्रेक्षमाणस्य सात्यकेः ॥२१॥

हे आर्य गुणसम्पन्न ! जब तुम्हारे पुत्रने द्रोण से इतना कहा-तो द्रोणाचार्य ने पाण्डवों की सेना को सात्यकि के देखते २ छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२१॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं वारयामास भारत ।
तयोः प्रवृत्ते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥२२॥

हे भारत ! सात्यकि ने भी द्रोण को आगे बढ़ने से रोक दिया। इसके अनन्तर इन दोनों में घोर भयानक युद्ध प्रवृत्त हुआ।

शैनेयं तु रणे क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्जत्रुदेशे हसन्निव ॥२३॥

क्रोधातुर, प्रतापी द्रोणाचार्य ने हँसते २ सात्यकि के जत्रुप्रदेश में तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया ॥२३॥

भीमसेनस्ततः क्रुद्धो भारद्वाजमविध्यत ।
संरक्षन्सात्यकिं राजन्द्रोणाच्छस्त्रभृतां वरात् ॥२४॥

हे राजन्! शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से सात्यकि की रक्षा करते हुये, भीमसेन ने क्रोध पूर्ण होकर द्रोणाचार्य को बींध दिया ॥२४॥

ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तथा शल्यश्च मारिष ।
भीमसेनं रणे क्रुद्धाश्छादयाञ्चक्रिरे शरैः ॥२५॥

हे मारिष ! अब क्रोध में भरकर द्रोण, भीष्म और शल्य ने रण में बाणों से भीमसेन को आच्छादित कर दिया ॥२५॥

तत्राऽभिमन्युः संक्रुद्धो द्रौपदेयाश्च मारिष ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः सर्वांस्तानुद्यतायुधान् ॥२६॥

हे राजन् ! इधर अभिमन्यु और अन्य द्रौपदी के पुत्र क्रोध में भर गए। इन्होंने उन शस्त्रधारियों को अपने तीक्ष्ण बाणों से बेंध डाला ॥२६॥

द्रोणभीष्मौ तु संक्रुद्धावापतन्तौ महाबलौ ।
प्रत्युद्ययौ शिखण्डी तु महेष्वासो महाहवे ॥२७॥

महाबली द्रोण और भीष्म, क्रोध में भरे हुए आगे बढ़े चले आ रहे थे। इनके सन्मुख इस महा-संग्राम में महाधनुर्धर शिखण्डी आया ॥२७॥

प्रगृह्य बलवद्वीरो धनुर्जलदनिःस्वनम् ।
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं छादयानो दिवाकरम् ॥२८॥

इस वीर शिखण्डी ने मेघ गर्जना के तुल्य, वेगधारी धनुष उठाया। इसने इतनी बाणों की वर्षा की, कि जिससे आकाश में सूर्य भी ढक गया ॥२२॥

शिखण्डिनं समासाद्य भरतानां पितामहः ।
अवर्जयत संग्रामं स्त्रीत्वं तस्याऽनुसंस्मरन् ॥२६॥

शिखण्डी को सामने देखकर भरतवंशी क्षत्रियों के पितामह भीष्म ने शिखण्डी का पूर्वकाल में स्त्री होना स्मरण करके संग्राम रोक दिया ॥२८॥

ततो द्रोणो महाराज अभ्यद्रवत तं रणे ।
रक्षमाणस्तदा भीष्मं तव पुत्रेण चोदितः ॥३०॥

हे महाराज! अब द्रोणाचर्य उसके सन्मुख रण में आए। इस समय ये तुम्हारे पुत्र की आज्ञा से भीष्म की रक्षामें तत्पर थे।

शिखण्डी तु समासाद्य द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ।
अवर्जयत सन्त्रस्तो युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥३१॥

शिखण्डी ने भी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य को देख कर बड़ी आतुरता से उन्हें रोका। यह इस समय प्रलयकाल की अग्नि के तुल्य तीव्र हो रहे थे ॥३१॥

ततो बलेन महता पुत्रस्तव विशाम्पते ।
जुगोप भीष्ममासाद्य प्रार्थयानो महद्यशः ॥३२॥

हे विशाम्पते ! अपने महान् यश की अभिलाषा से राजा दुर्योधन. बड़ी भारी सेना लेकर भीष्म की रक्षा कर रहे थे ॥३२॥

तथैव पाण्डवा राजन्पुरस्कृत्य धनञ्जयम् ।
भीष्ममेवाऽभ्यवर्तन्त जये कृत्वा दृढां मतिम् ॥३३॥

हे राजन् ! इसी प्रकार पाण्डव भी धनञ्जय अर्जुन को आगे करके भीष्म को ओर बढ़े । इन्होंने आज विजय प्राप्त करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी ॥३३॥

तद्युद्धमभवद्घोरं देवानां दानवैरिव ।
जयमाकांक्षतां संख्ये यशश्च सुमहाद्भुतम् ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धारम्भे ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

देवों के साथ जो दानवों का युद्ध हुआ था, आज वैसा ही फिर युद्ध होने लगा । दोनों पक्ष महान् यश और विजय की आकांक्षा कर रहे थे ॥३४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में पांचवें दिन के युद्ध के आरम्भ का उनहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

सत्तरहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अकरोत्तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
भीमसेनभयादिच्छन्पुत्रांस्तारयितुं तव ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! भीमसेन के भय से तुम्हारे पुत्रों की रक्षा करने को शान्तनु-पुत्र भीष्म ने बड़ा घमसान युद्ध किया।

पूर्वाह्णे तन्महारौद्रं राज्ञां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च मुख्यशूरविनाशनम् ॥२॥

दिन के पूर्वार्द्ध में राजाओं में बड़ा तीखा युद्ध हुआ । इस युद्ध में कौरव पाण्डवों के मुख्य २ शूरवीरों का विनाश हो गया ।

तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ।
अभवत्तुमुलः शब्दः संस्पृशन्गगनं महत् ॥३॥

जिस समय घोर युद्ध हो रहा था और महा भय उपस्थित था, तो योद्धाओं का इतना कोलाहल हुआ, कि वह शब्द आकाश में छा गया ॥३॥

नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलं समपद्यत ॥४॥

बड़े २ हाथी गर्ज रहे थे, अश्व हिनहिना रहे थे तथा भेरी, शङ्खों की ध्वनि तीव्र होती जा रही थी ॥४॥

युयुत्सवस्ते विक्रान्ता विजयाय महाबलाः।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महर्षभाः ॥५॥

गोष्ठ (ग्वाड़े) में बड़े वृषभ (सांडों) की तरह महाबली वीर योद्धा, युद्ध की इच्छा से विजय के लिए गर्जना कर रहे थे और एक दूसरे को लड़ने के लिए ललकार रहे थे ॥५॥

शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः।
अश्मवृष्टिरिवाऽऽकाशे बभूव भरतर्षभ ॥६॥

हे भरतर्षभ ! तीक्ष्ण बाणों से युद्ध भूमि में गिराए जाते हुए शिरों से आकाश में पत्थरों की सी वृष्टि हो रही थी ॥६॥

कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपोज्ज्वलानि च।
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि भरतर्षभ ॥७॥

हे भारत ! कुण्डल और पगड़ी धारण किये हुए, सुवर्ण के तुल्य उज्ज्वल, शिर, जिधर देखो-उधर ही रणभूमि में बिखरे हुए दिखाई देते हैं ॥७॥

विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः।
सहस्ताभरणैश्चाऽन्यैरभवच्छादिता मही ॥८॥

बाणों से काटे हुए वीरों के अङ्ग प्रत्यङ्ग, धनुष सहित भुजाएँ, कटक आदि हाथ के आभूषणों से युक्त हाथ के अग्रभागों से रणभूमि भरी पड़ी थी ॥८॥

कवचोपहितैर्गात्रैर्हस्तैश्च समलंकृतैः।
मुखैश्च चन्द्रसङ्काशै रक्तान्तनयनैः शुभैः ॥९॥

गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैश्च भूपते ।
आसीत्सर्वा समास्तीर्णा मुहूर्तेन वसुन्धरा ॥१०॥

हे भूपते ! थोड़े ही समय में सारी रणभूमि, कवच धारण किये हुए शरीर, अलङ्कारों से युक्त हाथ, लाल २ नेत्रों से युक्त सुन्दर चन्द्रमा के तुल्य मुख तथा हाथी, अश्व और योद्धाओं के अन्य अनेक अङ्गों मे पूर्ण (लबालब) भर गई ॥९-१०॥

रजोमेघैश्च तुमुलैः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिभिः ।
आयुधानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत् ॥११॥

धूलि के उठे हुए बहुत से मेघ और बिजली के तुल्य शस्त्रों के प्रकाश तथा शस्त्रों के निर्घोष से युद्ध स्थान मेघमय सा दिखाई देने लगा ॥११॥

स संप्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः ।
प्रावर्तत कुरूणां च पाण्डवानां च भारत ॥१२॥

हे भारत ! अब कौरव और पाण्डवों में बड़ा तीखा घमसान युद्ध होने लगा, जिसमें रक्त पानी की नदी की भांति बह निकला ।

तस्मिन्महाभये घोरे तुमुले लोमहर्षणे ।
ववृषुः शरवर्षाणि क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥१३॥

इस महाभयकारी, घोर, घमसान, लोमहर्षण रण में युद्ध-दुर्मद क्षत्रिय वीर बड़ी घोर बाण-वर्षा करने लगे ॥१३॥

आक्रोशन्कुञ्जरास्तत्र शरवर्षप्रतापिताः ।
तावकानां परेषां च संयुगे भरतर्षभ ॥१४॥

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे पुत्र और पाण्डु-पुत्रों के इस युद्ध में बाण वर्षा से प्रतापित हाथी बुरी तरह चिल्ला रहे थे ॥१४॥

संरब्धानां च वीराणां धीराणाममितौजसाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन ॥१५॥

अत्यन्त ओजस्वी, क्रोध में भरे हुए, धीर वीरों के धनुष की डोरी से उठे हुए शब्द के सामने अन्य कुछ भी सुनाई नहीं देता था ॥१५॥

उत्थितेषु कबन्धेषु सर्वतः शोणितोदके ।
समरे पर्यधावन्त नृपारिपु वधोद्यताः ॥१६॥

सब ओर रक्त मय रणभूमि में मुण्ड हीन कबन्ध (रुण्ड) अपने शत्रु राजाओं के वध को उद्यत हुए इधर उधर दौड़ रहे थे ।

शरशक्तिगदाभिस्तेः खड्गैश्चाऽमिततेजसः ।
निजघ्नुः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः ॥१७॥

परिघ के समान भुजाधारी, अत्यन्त तेजस्वी वीर, शर, शक्ति, गदा और खड्गों से रण में एक दूसरे पर बड़े वेग से प्रहार कर रहे थे ॥१७॥

बभ्रमुः कुञ्जराश्चाऽत्र शरैर्विद्धा निरंकुशाः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥१८॥

महावतों के मारे जाने पर अंकुश हीन हाथी और अपने सवार के मारे जाने पर अश्व, बाणों से विद्ध होकर युद्ध-भूमि में दशों दिशाओं में भागे २ फिरते थे ॥१८॥

उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरघातप्रपीडिताः ।
तावकानां परेषां च योधा भरतसत्तम ॥१९॥

हे भरतसत्तम ! तुम्हारे और पाण्डवों के योद्धा, बाणों के आघात से पीड़ित होकर उछल २ कर भूमि में पड़ते थे ॥१९॥

वाहानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत ।
गदानां परिघाणां च हस्तानां चोरुभिः सह ॥२०॥
पादानां भूषणानां च केयूराणां च सङ्घशः ।
राशयस्तत्र दृश्यन्ते भीष्मभीमसमागमे ॥२१॥

हे भारत ! इस भीष्म और भीम के युद्ध में अश्वादि वाहनों के मस्तक, धनुष, गदा, परिघ हाथ, जंघा, पाद, आभूषण, मुकुटों की ढ़ेरी की ढ़ेरी जिधर तिधर दिखाई दे रही थी ॥२०-२१॥

अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां चाऽनिवर्तिनाम् ।
सङ्घाताः स्म प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र विशाम्पते ॥२२॥

हे विशाम्पते ! अश्व, हाथी और पीछे नहीं हटने वाले रथियों के समूह रणभूमि में जहां तहां दिखाई दे रहे थे ॥२२॥

गदाभिरसिभिः प्रासैर्बाणैश्च नतपर्वभिः ।
जघ्नुः परस्परं तत्र क्षत्रियाः काल आगते ॥२३॥

इस युद्ध काल के उपस्थित होने पर क्षत्रिय वीर, गदा, खड्ग, प्रास और नत पर्व वाले बाणों से परस्पर प्रहार कर रहे थे ॥२३॥

अपरे बाहुभिर्वीरा नियुद्धकुशला युधि ।
बहुधा समसज्जन्त आयसैः परिघैरिव ॥२४॥

लोहे के परिघ शस्त्र के समान भुजाओं से मल्लयुद्ध में कुशल मल्ल वीर, इस युद्ध में एक दूसरे से भिड़ (कुश्ती लड़) रहे थे ।

मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव तलैश्चैव विशाम्पते ।
अन्योन्यं जघ्निरे वीरास्तावकाः पाण्डवैः सह ॥२५॥

हे विशाम्पते ! मुष्टि, जानु, हाथ की चपेट से तुम्हारे वीर और पाण्डव वीरों के परस्पर आघात हो रहे थे ॥२५॥

पतितैः पात्यमानैश्च विचेष्टद्भिश्च भूतले ।
घोरमायोधनं यज्ञे तत्र तत्र जनेश्वर ॥२६॥

हे जनेश्वर ! कुछ गिरे हुए, कुछ गिराये जाते हुए, भूमि में पड़े हुए तलफलाते हुए वीरों से युद्ध, बड़ा भयानक दिखाई दे रहा था ॥२६॥

विरथा रथिनश्चाऽत्र निस्त्रिंशवरधारिणः ।
अन्योन्यमभिधावन्तः परस्परवधैषिणः ॥२७॥

उत्तम २ खड्गधारी, रथहीन महारथी, एक दूसरे के वध के अभिलाषी परस्पर आक्रमण कर रहे थे ॥२७॥

ततो दुर्योधनो राजा कलिङ्गैर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं पाण्डवानभ्यवर्तत ॥२८॥

अब राजा दुर्योधन बहुत से कलिङ्ग वीरों से युक्त होकर रण में भीष्म को आगे करके पाण्डवों पर झपटे ॥२८॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य वृकोदरम् ।
भीष्ममभ्यद्रवन्क्रुद्धास्ततो युद्धमवर्तत ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे
सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

इसी तरह सारे पाण्डव भी भीमसेन की रक्षा करते हुए, क्रोध में भरे हुए भीष्म पर दौड़े। इसके पीछे घमासान युद्ध होने लगा ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में
घमसान युद्ध का सत्तरहवां अध्याय समाप्त हुआ।



इकहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वा भीष्मेण संसक्तान्भ्रातॄनन्यांश्च पार्थिवान् ।
समभ्यधावद्गाङ्गेयमुद्यतास्त्रो धनञ्जयः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! जब अर्जुन ने अपने अन्य भाइयों को भीष्म से युद्ध करते देखा, तो वे भी शस्त्र उठाकर गङ्गा-पुत्र भीष्म की ओर झपटे ॥१॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं धनुषो गाण्डिवस्य च ।
ध्वजं च दृष्ट्वा पार्थस्य सर्वान्नो भयमाविशत् ॥२॥

श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शंख और गाण्डीव धनुष की टङ्कार सुनकर तथा अर्जुन की कपि-चिन्हाङ्कित ध्वजा को देखकर हम सब को भय छा गया ॥२॥

सिंहलांगूलमाकाशे ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
असज्जमानं वृक्षेषु धूमकेतुमिवोत्थितम् ॥३॥

सिंह की लांगूल के समान आकाश में चमकते हुए धूमकेतु तारे की भांति उठी हुई, अर्जुन की ध्वजा, पर्वत और वृक्ष किसी में टक्कर खाकर नहीं रुकती थी ॥३॥

बहुवर्णं विचित्रं च दिव्यं वानरलक्षणम् ।
अपश्याम महाराज ध्वजं गाण्डीवधन्वनः ॥४॥

हे महाराज ! गाण्डीव धनुषधारी धनञ्जय अर्जुन की वानरके चिन्ह से सुशोभित, अनेक वर्ण से चित्रित, दिव्य ध्वजा को हमने आश्चर्य के साथ देखा ॥४॥

विद्युतं मेघमध्यस्थां भ्राजमानामिवाऽम्बरे ।
ददृशुर्गाण्डिवं योधा रुक्मपृष्ठं महामृधे ॥५॥

यह ध्वजा, आकाश में मेघों के मध्य में बिजली की भांति चमक रही थी । इस महारण में योद्धाओं ने सुवर्ण की पीठ वाले गाण्डीव धनुष को भी भय के साथ देखा ॥५॥

आशुश्रुम भृशं चाऽस्य शक्रस्येवाऽभिगर्जतः ।
सुघोरं तलयोः शब्दं निघ्नतस्तव वाहिनीम् ॥६॥

हे राजन् ! तुम्हारी सेना का विनाश करते हुए अर्जुन के करतलों से गाण्डीव धनुष की ऐसी गर्जना निकलती थी, जैसे मेघ गर्जना कर रहा हो, जिसे हम स्पष्ट सुन रहे थे ॥६॥

चण्डवातो यथा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ।
दिशः सम्प्लावयन्सर्वाः शरवर्षैः समन्ततः ॥७॥

तीव्र वायु और बिजली के साथ जैसे मेघ चढ़ा हो-इसी तरह अर्जुन सब ओर से बाण वर्षा करता हुआ सारी दिशाओं को ढकता चला आ रहा था ॥७॥

समभ्यधावद्गाङ्गेयं भैरवास्त्रो धनञ्जयः ।
दिशं प्राचीं प्रतीचीं च न जानीमोऽस्त्रमोहिताः ॥८॥

भीषण अस्त्र धारी अर्जुन ने गङ्गा-पुत्र भीष्म पर आक्रमण किया। इस समय हम अर्जुन के अस्त्रों की इतनी चकाचौंध में आ रहे थे, कि हमको पूर्व और पश्चिम दिशा का कुछ भी पता नहीं होता था ॥८॥

कान्दिग्भूताः श्रान्तपत्रा हताश्वा हतचेतसः ।
अन्योन्यमभिसंश्लिष्य योधास्ते भरतर्षभ ॥९॥

हे भरतर्षभ! इस समय तुम्हारे योद्धाओं के वाहन थक चुके थे, बहुत से अश्व मारे गए थे। हतोत्साह होकर योद्धा, भय से इधर उधर भाग रहे थे या एक दूसरे के लिपट कर अपने २ प्राणों के छुपाने की चेष्टा में थे ॥९॥

भीष्ममेवाऽभ्यलीयन्त सह सर्वैस्तवाऽऽत्मजैः ।
तेषामार्तायनमभूद्भीष्मः शान्तनवो रणे ॥१०॥

इस समय तुम्हारे सारे पुत्रों के साथ सारे योद्धा भीष्म की शरण में पहुंचे। इस रण में उनको शान्तनु-पुत्र भीष्म ही दुःख से बचाने वाले हुए ॥१०॥

समुत्पतन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा ।
सादिनश्चाऽश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चाऽपि पदातयः ॥११॥

इस घोर युद्ध में भयभीत हुए, रथी रथों से, अश्वारोही अश्वों से और पैदल भूमि में पड़ने लगे ॥११॥

श्रुत्वा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
सर्वसैन्यानि भीतानि व्यवालीयन्त भारत ॥१२॥

महाभारत चित्र संख्या ७७



शोकातुर दुर्योधन का रात्री में भीष्म पितामह के पास जाना
महा० भीष्म पर्व अ० ६५- ६० पृ० ७२०

हे भारत ! वज्र की गर्जना के तुल्य गाण्डीव ध्वनि सुनकर सारी भयभीत सेना इधर उधर छुपने लगी ॥१२॥

अथ काम्बोजजैरश्वैर्महद्भिः शीघ्रगामिभिः ।
गोपानां बहुसाहस्रैर्बलैर्गोपायनैर्वृतः ॥१३॥
मद्रसौवीरगान्धारैस्त्रैगर्तैश्च विशाम्पते ।
सर्वकालिङ्गमुख्यैश्च कलिङ्गाधिपतिर्वृतः॥१४॥
नानानरगणौघैश्च दुःशासनपुरःसरः ।
जयद्रथश्च नृपतिः सहितः सर्वराजभिः ॥१५॥
हयारोहवराश्चैव तव पुत्रेण चोदिताः ।
चतुर्दश सहस्राणि सौबलं पर्यवारयन् ॥१६॥

शीघ्रगामी, विशाल कम्बोज देश के उत्पन्न अश्व, बहुत से रक्षक, बहुत सी रक्षा करने वाली सेना की टोलियों से आवृत, मद्रसौवीर, गान्धार, त्रिगर्त और कलिङ्ग देशोत्पन्न मुख्य २ वीरों के साथ कलिङ्गाधिपति सन्मुख आया । अनेक वीरों को साथ लेकर दुःशासन भी इसी के साथ था । अनेक वीर राजाओं के साथ जयद्रथ भी था । तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने एक अच्छी घुड़सवार सेना को भी इनके साथ जाने की आज्ञा दी । यह चौदह सहस्र सेना, सुबल-पुत्र शकुनि की रक्षा करती हुई आगे बढ़ी ।

ततस्ते सहिताः सर्वे विभक्तरथवाहनाः ।
अर्जुनं समरे जघ्नुस्तावका भरतर्षभ ॥१७॥

हे भरतर्षभ ! ये सारे वीर, कुछ रथादि वाहन धारी वीरों को अपने २ साथ लेकर इकट्ठे ही रण में अर्जुन पर प्रहार करने लगे ॥१७॥

रथिभिर्वारणैरश्वैः पादातैश्च समीरितम् ।
घोरमायोधनं चक्रे महाभ्रसदृशं रजः ॥१८॥

रथी, हाथी, अश्व और पैदलों के साथ परस्पर घोर युद्ध होने लगा, जिससे महामेघ के समान धूलि आकाश में छा गई ॥१८॥

तोमरप्रासनाराचगजाश्वरथयोधिनाम् ।
बलेन महता भीष्मः समसज्जत्किरीटिना ॥१९॥

तोमर, प्रास, नाराच, गज, अश्व, रथारोही, वीरों की विशाल सेना लेकर भीष्म, मुकुटधारी अर्जुन से युद्ध में भिड़ गये ॥१९॥

आवन्त्यः काशिराजेन भीमसेनेन सैन्धवः ।
अजातशत्रुर्मद्राणामृषभेण यशस्विना ॥२०॥
सहपुत्रः सहामात्यः शल्येन समसज्जत ।
विकर्णः सहदेवेन चित्रसेनः शिखण्डिना ॥२१॥
मत्स्या दुर्योधनं जग्मुः शकुनिं च विशाम्पते ।
द्रुपदश्चेकितानश्च सात्यकिश्च महारथः ॥२२॥
द्रोणेन समसज्जन्त सपुत्रेण महात्मना ।
कृपश्च कृतवर्मा च धृष्टद्युम्नमभिद्रुतौ ॥२३॥

काशीराज के साथ अवन्ति वीर, भीमसेन के साथ सिन्धु-राज जयद्रथ, मद्रदेश के अधिपति यशस्वी शल्य और उसके पुत्र

एवं मंत्री के साथ अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर का युद्ध होने लगा। विकर्ण का सहदेव और चित्रसेन का शिखण्डी के साथ युद्ध हुआ। हे विशाम्पते ! मत्स्यवीर, राजा दुर्योधन और शकुनि पर झपटे। द्रुपद, चेकितान और महारथी सात्यकि का द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और द्रोणाचार्य से युद्ध होने लगा। कृप और कृतवर्मा ने धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया ॥२०-२३॥

एवं प्रव्रजिताश्वानि भ्रान्तनागरथानि च।
सैन्यानि समसज्जन्त प्रयुद्धानि समन्ततः ॥२४॥

इस प्रकार अपने अश्वों को आगे बढ़ा कर और हाथी तथा रथों को घुमाकर सब ओर सेना के वीर युद्ध करने लगे ॥२४॥

निरभ्रे विद्युतस्तीव्रा दिशश्च रजसाऽऽवृताः।
प्रादुरासन्महोल्काश्च सनिर्घाता विशाम्पते ॥२५॥

हे विशाम्पते ! अब विना मेघ बिजली चमकती थी, दिशाओं में रज छा गई और बड़े २ शब्दों के साथ उल्कापात होने लगे।

प्रादुर्भूतो महावातः पांसुवर्षं पपात च।
नभस्यन्तर्दधे सूर्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः ॥२६॥

बड़े वेग से आँधी चल गई और धूलि वर्षा होने लगी। सेना के चरणों से उठी हुई, धूलि से सूर्य बिल्कुल ही ढक गया।

प्रमोहः सर्वसत्वानामतीव समपद्यत।
रजसा चाऽभिभूतानामस्त्रजालैश्च तुद्यताम् ॥२७॥

इस समय सारे प्राणियों की व्याकुलता बढ़ गई, क्योंकि वे रज से दबे हुए और अस्त्राघात से पीड़ित थे ॥२७॥

वीरबाहुविसृष्टानां सर्वावरणभेदिनाम् ।

सङ्घातः शरजालानां तुमुलः समपद्यत ॥२८॥

वीरों की बाहुओं से छोड़े हुए, सबके कवचों को बेंध जाने वाले, बाण समूह की राशि, बड़े घोर रूप में फैल रही थी ॥२८॥

प्रकाशं चक्रुराकाशमुद्यतानि भुजोत्तमैः ।

नक्षत्रविमलाभानि शस्त्राणि भरतर्षभ ॥२९॥

हे भरतर्षभ ! अब उत्तम २ भुजाओं से उठाये हुए नक्षत्रों के तुल्य चमकीले शस्त्रों ने आकाश में प्रकाश फैला दिया था ॥२९॥

आर्षभाणि विचित्राणि रुक्मजालावृतानि च ।

सम्पेतुर्दिक्षु सर्वासु चर्माणि भरतर्षभ ॥३०॥

हे भरतर्षभ ! सुवर्ण के वेल बूंटों से आवृत, उत्तम २ चर्मों की बनी हुई, विचित्र २ ढालें, सब दिशाओं में कट २ कर गिरने लगी ॥३०॥

सूर्यवर्णैश्च निस्त्रिंशैः पात्यमानानि सर्वशः ।

दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त शरीराणि शिरांसि च ॥३१॥

जिस समय सूर्य के सदृश चमकीली असियां (तलवारें) सब ओर रण में चलने लगी, तो उस समय जिधर देखो-उधर ही कटे हुए शिर और शरीर ही दिखाई देते थे ॥३१॥

भग्नचक्राक्षनीडाश्च निपातितमहाध्वजाः।
हताश्वाः पृथिवीं जग्मुस्तत्र महारथाः ॥३२॥

रणभूमि में जहां तहां रथों के चक्र, धुरे और छतरियां टूट २ कर गिरी हुई थी, बड़ी २ ध्वजाएँ कट २ कर पड़ी थीं और अनेक अश्वारोही वीर, अपने अश्वों के मारे जाने से पैदल ही जहां तहां घूमते दिखाई दे रहे थे ॥३२॥

परिपेतुर्हयाश्चाऽत्र केचिच्छस्त्रकृतव्रणाः।
रथान्विपरिकर्षन्तो हतेषु रथयोधिषु ॥३३॥

अनेक स्थानों पर शस्त्रों से कटे हुए अश्व, अपने रथी के मारे जाने पर भी रथों को इधर उधर खैंच रहे थे ॥३३॥

शराहता भिन्नदेहा बद्धयोक्त्रा हयोत्तमाः।
युगानि पर्यकर्षन्त तत्र तत्र स्म भारत ॥३४॥

हे भारत ! शरों से आहत, क्षत-विक्षित देहधारी, मध्य भाग के बन्धन की रज्जु से युक्त, उत्तम २ अश्व जुओं में जुते हुए, इधर उधर रथों को लिए फिर रहे थे ॥३४॥

अदृश्यन्त ससूताश्च साश्वाः सरथयोधिनः।
एकेन बलिना राजन्वारणेन विमर्दिताः॥३५॥

हे राजन् ! अनेक स्थानों पर एक मदोन्मत्त हाथी ने सारथि, अश्व और रथ के साथ अनेक रथी वीरों को चकनाचूर कर दिया ॥३५॥

गन्धहस्तिमदस्रावमाघ्राय बहवो रणे।

सन्निपाते बलौघानां वीतमाददिरे गजाः ॥३६॥

रण में बहुत से हाथी, गन्ध के हाथी के मद के गन्ध को सूंघकर सेना के समूह में मद हीन हाथियों से ही लड़ने लगे।

सतोमरैर्महामात्रैर्निपतद्भिर्गतासुभिः।

बभूवाऽऽयोधनं छन्नं नाराचाभिहतैर्गजैः ॥३७॥

गड़े हुए तोमर सहित मृत होकर भूमि में गिरते हुए, महावतों और बाणों से हत गजों से रणभूमि व्याप्त हो गई ॥३७॥

सन्निपाते बलौघानां प्रेषितैर्वरवारणैः।

निपेतुर्युधि सम्भग्नाः सयोधाः सध्वजा गजाः ॥३८॥

सेना समूह के घमसान युद्ध में आगे बढ़ाए हुए बड़े २ हाथियों से टकरा कर छोटे २ हाथी, ध्वजा और वीरों के साथ रणभूमि में गिरने लगे ॥३८॥

नागराजोपमैर्हस्तैर्नागैराक्षिप्य संयुगे।

व्यदृश्यन्त महाराज सम्भग्ना रथकूबराः॥३९॥

हे महाराज! नागराज के समान अपनी सूँडों से रथों को ऊपर उठाकर फैंकते हुए हाथी दिखाई देते थे, जिससे रथों के कूबर (सारथि का स्थान) चूर २ हो जाता था ॥३९॥

विशीर्णरथसङ्घाश्च केशेष्वाक्षिप्य दन्तिभिः।

द्रुमशाखा इवाऽऽविध्य निष्पिष्टा रथिनो रणे ॥४०॥

जिनके रथ नष्ट हो चुके हैं, ऐसे रथी वीरों के बाल पकड़ २ कर हाथी इस तरह फैंक कर नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं, जैसे-वृक्ष की शाखा को तोड़ मरोड़ कर फ़ैंक रहे हों ॥४०॥

रथेषु च रथान्युद्धे संसक्तान्वरवारणाः ।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः ॥४१॥

बड़े २ मदोन्मत्त हाथी, रथों में घुस कर युद्ध करते हुए रथी वीरों को खैंच २ कर सारी दिशाओं में फैंक रहे थे, इससे दिशाएँ कोलाहल से भरी हुई थी ॥४१॥

तेषां तथा कर्षतां तु गजानां रूपमाबभौ ।
सरःसु नलिनीजालं विषक्तमिव कर्षताम् ॥४२॥

इस प्रकार रथों से रथियों को खैंचते हुए हाथी, सरोवर में खिले हुए कमलिनी के जाल को खैंचते हुए से सुन्दर प्रतीत होते थे ।

एवं सञ्छादितं तत्र बभूवाऽऽयोधनं महत् ।
सादिभिश्च पदातैश्च सध्वजैश्च महारथैः ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

इस प्रकार अश्वारोही, पैदल सैनिक और ध्वजा-धारी महारथियों से यह विशाल रण स्थान आच्छादित हो गया ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घमसान युद्ध के वर्णन का इकहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ।

बहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

शिखण्डी सह मत्स्येन विराटेन विशाम्पते ।
भीष्ममाशु महेष्वासमाससाद सुदुर्जयम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे विशाम्पते! मत्यराज विराट के साथ शिखण्डी ने अत्यन्त दुर्जय महाधनुर्धर भीष्म पितामह पर बड़े वेग से आक्रमण किया ॥१॥

द्रोणं कृपं विकर्णं च महेष्वासं महाबलम् ।
राज्ञश्चाऽन्यान्रणे शूरान्बहूनार्च्छद्धनञ्जयः ॥२॥

इधर अर्जुन ने महा धनुषधारी, महाबली द्रोण, कृप, विकर्ण तथा अन्य शूरवीर राजाओं को रण में जा दबाया ॥२॥

सैन्धवं च महेष्वासं सामात्यं सह बन्धुभिः
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च भूमिपान्भूमिपर्षभ ॥३॥
पुत्रं च ते महेष्वासं दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःसहं चैव समरे भीमसेनोऽभ्यवर्तत ॥४॥

हे राजश्रेष्ठ! अपने सहचर और पुत्रों के साथ महाधनुर्धर जयद्रथ, पूर्व और दक्षिण के राजा तथा महान् धनुष के धारी तुम्हारे पुत्र असहिष्णु राजा दुर्योधन और दुःसह को भीमसेन ने जा घेरा ॥३-४॥

सहदेवस्तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ।
पितापुत्रौ महेष्वासावभ्यवर्तत दुर्जयौ ॥५॥

सहदेव ने शकुनि और उसके पुत्र महारथी उलूक का जा सामना किया। ये दोनों ही पिता-पुत्र महान् धनुष-धारी और अत्यन्त दुर्जय थे ॥५॥

युधिष्ठिरो महाराज गजानीकं महारथः ।
समवर्तत संग्रामे पुत्रेण निकृतस्तव ॥६॥

हे महाराज! राजा युधिष्ठिर ने संग्राम में तुम्हारी गजसेना पर धावा किया। राजा दुर्योधन ने राजा युधिष्ठिर को बार २ अपमानित किया था, जिससे ये भी क्रोध में भरे हुए थे ॥६॥

माद्रीपुत्रस्तु नकुलः शूरसंक्रन्दनो युधि ।
त्रिगर्तानां बलैः सार्धं समसज्जत पाण्डवः ॥७॥

माद्री-पुत्र नकुल युद्ध में बड़े २ शूरवीरों के घातक हैं। ये भी त्रिगर्तों की सेना के साथ भीषण युद्ध करने लगे ॥७॥

अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः समरे शाल्वकेकयान् ।
सात्यकिश्चेकितानश्च सौभद्रश्च महारथः ॥८॥

क्रोध में भरे हुए सात्यकि, चेकितान और महारथी अभिमन्यु, रणभूमि में शाल्य और केकय देश के वीरों से लड़ने लगे ॥८॥

धृष्टकेतुश्च समरे राक्षसश्च घटोत्कचः ।
पुत्राणां ते रथानीकं प्रत्युद्याताः सुदुर्जयाः ॥९॥

धृष्टकेतु और राक्षसराज घटोत्कच, तुम्हारी रथ सेना से युद्ध कर रहे थे। ये सारे ही महारथी बड़े ही दुर्जय थे ॥९॥

सेनापतिरमेयात्मा धृष्टद्युम्नो महाबलः ।
द्रोणेन समरे राजन्समियायोग्रकर्मणा ॥१०॥

हे राजन्! महान् बलशाली, अत्यन्त वीर, धृष्टद्युम्न रणभूमि में उग्र कर्म कर दिखाने वाले द्रोणाचार्य से भिड़ रहे थे ॥१०॥

एवमेते महेष्वासास्तावकाः पाण्डवैः सह ।
समेत्य समरे शूराः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥११॥

इस प्रकार तुम्हारे वीर, पाण्डवों के वीरों के साथ जोट बांध कर रण में प्रहार करने लगे ॥११॥

मध्यन्दिनगते सूर्ये नभस्याकुलतां गते ।
कुरवः पाण्डवेयाश्च निजघ्नुरितरेतरम् ॥१२॥

जब मध्यान्ह काल का सूर्य हो गया और आकाश तपने लगा, तो उसी समय कौरव और पाण्डवों के बीच एक दूसरे में बुरी तरह मार काट मची हुई थी ॥१२॥

ध्वजिनो हेमचित्राङ्गा विचरन्तो रणाजिरे ।
सपताका रथा रेजुर्वैयाघ्रपरिवारणाः ॥१३॥

ध्वजाओं और पताकाओं से सुशोभित, सुवर्ण से चित्रित, सिंह के चर्म से आच्छादित अनेक रथ, रणाङ्गण में चक्कर लगाते सुशोभित हो रहे थे ॥१३॥

समेतानां च समरे जिगीषूणां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दः सिंहानामिव नर्दताम् ॥१४॥

इन परस्पर विजय के अभिलाषी वीरों के इकट्ठे होने पर सिंहों की गर्जना के तुल्य, महाघोर शब्द होने लगा ॥१४॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम सम्प्रहारं सुदारुणम् ।
यदकुर्वन्रणे शूराः सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥१५॥

इस युद्ध में हमने बड़ा ही अचम्भा देखा, कि राजा द्रुपद के अनुचर शूरवीर सृञ्जयों के प्रहार कौरवों पर बड़े ही दारुण हो रहे थे ॥१५॥

नैव खं न दिशो राजन्न सूर्यं शत्रुतापन ।
विदिशो वाऽपि पश्याम शरैर्मुक्तैः समन्ततः ॥१६॥

हे शत्रुतापन! महाराज! इस समय इतने अधिक चारों दिशाओं में बाण छा रहे थे, कि हमको आकाश, दिशा, विदिशा कुछ भी दिखाई नहीं देती थी ॥१६।

शक्तीनां विमलाग्राणां तोमराणां तथाऽस्यताम् ।
निस्त्रिंशानां च पीतानां नीलोत्पलनिभाः प्रभाः ॥१७॥

चमकते हुए अग्र भाग वाली शक्ति, फैंके हुए तोमर, विष में बुझे हुए खड्गों की कान्ति, खिले हुए नील कमल के समान सुशोभित हो रही थी ॥१७॥

कवचानां विचित्राणां भूषणानां प्रभास्तथा ।
खं दिशः प्रदिशश्चैव भासयामासुरोजसा ॥१८॥

विचित्र २ कवच तथा आभूषणों की कान्ति, आकाश, दिशा, विदिशाओं को अपनी चमक से प्रकाशित कर रही थी ॥१८॥

वपुर्भिश्च नरेन्द्राणां चन्द्रसूर्यसमप्रभैः ।

विरराज तदा राजंस्तत्र तत्र रणाङ्गणम् ॥१९॥

हे राजन्! चन्द्रमा और सूर्य के समान देदीप्यमान, नरेन्द्रों के इधर उधर पड़े हुए शरीरों से रणाङ्गण भरा हुआ दिखाई दे रहा था ॥१९॥

रथसङ्घा नरव्याघ्राः समायान्तश्च संयुगे ।

विरेजुः समरे राजन्ग्रहा इव नभस्तले ॥२०॥

हे राजन्! रथों के समूह और नरवीर, रणभूमि में इस भांति सुशोभित हो रहे थे, जैसे-आकाश में ग्रह सुशोभित होते हैं ॥२०॥

भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो भीमसेनं महाबलम् ।

अवारयत संक्रुद्धः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥२१॥

इस समय क्रोधाविष्ट रथिश्रेष्ठ भीष्म ने महाबली भीमसेन को सारी सेना के देखते २ जा घेरा ॥२१॥

ततो भीष्मविनिर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।

अभ्यघ्नन्समरे भीमं तैलधौताः सुतेजनाः ॥२२॥

अब भीष्म द्वारा छोड़े हुए, सुवर्ण के पुङ्ख (मूल) वाले, शाण पर तीक्ष्ण किये हुए, तेल से चिकने, तीक्ष्ण बाण, रण में भीम को आहत (घायल) करने लगे ॥२२॥

तस्य शक्तिं महावेगां भीमसेनो महाबलः ।
क्रुद्धाशीविषसङ्काशां प्रेषयामास भारत ॥२३॥

हे भारत ! महाबली भीमसेन ने भी भीष्म के ऊपर महान् वेग वाली, क्रुद्ध सर्प के तुल्य भीषण शक्ति को चलाया ॥२३॥

तामापतन्तीं सहसा रुक्मदण्डां दुरासदाम् ।
चिच्छेद समरे भीष्मः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२४॥

इस सुवर्ण के दण्ड वाली, दुरासद, शक्ति को आती हुई देख कर भीष्म ने एक दम अपने झुकी पर्व वाले बाणों से काट गिराया

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
कार्मुकं भीमसेनस्य द्विधा चिच्छेद भारत ॥२५॥

हे भारत ! भीष्मने दूसरा विषमें बुझा हुआ, तीक्ष्ण बाण लिया जिससे उसने भीमसेन के धनुष के दो टुकड़े करके फैंक दिए ।२५।

सात्यकिस्तु ततस्तूर्णं भीष्ममासाद्य संयुगे ।
आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ॥२६॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छत्पितरं ते जनेश्वर ।

हे जनेश्वर ! इसी समय सात्यकि यहां आ पहुंचा । इसने कान तक खैंचे हुए बड़े तीक्ष्ण, धार पर चढ़े हुए, बहुत बाणों से भीष्म को पाट दिया ॥२६॥

ततः सन्धाय वै तीक्ष्णं शरं परमदारुणम् ॥२७॥
वार्ष्णेयस्य रथाद्भीष्मः पातयामास सारथिम् ।

अब भीष्म ने भी बड़ा दारुण तीक्ष्ण बाण धनुष पर चढ़ाया, जिससे उसने वृष्णिवंशश्रेष्ठ सात्यकि के सारथि को रथ से नीचे गिरा दिया ॥२७॥

तस्याऽश्वाः प्रद्रुता राजन्निहते रथसारथौ ॥२८॥
तेन तेनैव धावन्ति मनोमारुतरंहसः ।

हे राजन्! सारथि के मारे जाने पर मन और वायु के समान वेग वाले अश्व भाग निकले और उनकी जिधर को इच्छा हुई उधर ही चल दिए ॥२८॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य निःस्वनस्तुमुलोऽभवत् ॥२६॥
हाहाकारश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।

इस समय महात्मा पाण्डवों की सारी सेना में बड़ा घोर कोलाहल और हाहाकार मच गया ॥२६॥

अभ्यद्रवत गृह्णीत हयान्यच्छत धावत ॥३०॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युयुधानरथं प्रति ।

दौड़ो ? पकड़ो ? अश्वों को रोको ? भागो ? इस प्रकार की महाध्वनि, युयुधान (सात्यकि) के रथ के पीछे २ होने लगी ॥३०॥

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥३१॥
न्यहनत्पाण्डवीं सेनामासुरीमिव वृत्रहा ।

इसी समय शान्तनु-पुत्र भीष्म ने असुर सेना को इन्द्र की भांति पाण्डवों की सेना को मारना आरम्भ किया ॥३१॥

ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह ॥३२॥
स्थिरां युद्धे मतिं कृत्वा भीष्ममेवाऽभिदुद्रुवुः ।

भीष्म ने सोमकों के साथ पञ्चालों को बुरी तरह व्याकुल कर दिया। ये भी युद्ध के लिए बुद्धि को स्थिर करके भीष्म पर झपट पड़े ॥३२॥

धृष्टद्युम्नमुखाश्चाऽपि पार्थाः शान्तनवं रणे ॥३३॥
अभ्यधावञ्जिगीषन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।

इस रण में पाण्डव, भी धृष्टद्युम्न आदि वीरों को आगे करके तुम्हारे पुत्र की सेना के विजय के लिए शान्तनु-पुत्र भीष्म पर चढ़ दौड़े ॥३३॥

तथैव कौरवा राजन्भीष्मद्रोणपुरोगमाः॥३४॥
अभ्यधावन्त वेगेन ततो युद्धमवर्तत ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

हे राजन्! इसी तरह भीष्म, द्रोण आदि कौरवों ने वेग से पाण्डवों पर आक्रमण किया और अब बड़े भीषण रूप से युद्ध होने लगा ॥३४-३५॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में पांचवें दिन
के युद्ध का बहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ

तेहत्तरवाँ अध्याय

सञ्जय उवाच

विराटोऽथ त्रिभिर्बाणैर्भीष्ममार्च्छन्महारथम् ।
विव्याध तुरगांश्चाऽस्य त्रिभिर्बाणैर्महारथः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! महारथी विराट ने भीष्म को तीन बाणों से बींध दिया और तीन ही बाण छोड़ कर कर इसके अश्वों को व्याकुल कर दिया॥१॥

तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीष्मः शान्तनवः शरैः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः कृतहस्तो महाबलः ॥२॥

शान्तनु-पुत्र भीष्म ने भी विराटराज को सुवर्ण की पुङ्ख (मूल) वाले दश तीखे बाणों से आहत किया। ये महाबली, महाधनुर्धर, भीष्म युद्ध में बड़ी कुशलता से हाथ चलाने वाले थे॥२॥

द्रौणिर्गाण्डीवधन्वानं भीमधन्वा महारथः ।
अविध्यदिषुभिः षड्भिर्दृढहस्तः स्तनान्तरे ॥३॥

द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा भी भयानक धनुषधारी तथा दृढ़ता से युद्ध में हाथ फेंकने वाले महारथी थे। इन्होंने भी गाण्डीवधारी अर्जुन की छाती में छः बाण मारे॥३॥

कार्मुकं तस्य चिच्छेद फाल्गुनः परवीरहा ।
अविध्यच्च भृशं तीक्ष्णैः पत्रिभिः शत्रुकर्शनः ॥४॥

शत्रुनाशक, परन्तप अर्जुन ने अश्वत्थामा के धनुष को काट गिराया और तीक्ष्ण बाणों से बड़ी गाढ़ रीति से उसको छेद डाला।

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय वेगवान्क्रोधमूर्छितः ।
अमृष्यमाणः पार्थेन कार्मुकच्छेदमाहवे ॥५॥

वेगवान् अश्वत्थामा ने अब क्रोध में भर कर दूसरा धनुष उठाया । यह अर्जुन द्वारा रण में अपने धनुष के काट डालने को सहन नहीं कर सका ॥५॥

अविध्यत्फाल्गुनं राजन्नवत्या निशितैः शरैः ।
वासुदेवं च सप्तत्या विव्याध परमेषुभिः ॥६॥

हे राजन् ! इसने नब्बे तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को और सत्तर बाणों से श्रीकृष्ण को बींध दिया ॥६॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कृष्णेन सह फाल्गुनः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥७॥

अब श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन की आखें क्रोध से लाल हो गई । इसने लम्बा और उष्ण श्वास लिया तथा बार २ विचार किया ॥७॥

धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ।
गाण्डीवधन्वा संक्रुद्धः शितान्सन्नतपर्वणः ॥८॥
जीवितान्तकरान्घोरान्समादत्त शिलीमुखान् ।

शत्रुतापी, गाण्डीवधारी अर्जुन ने क्रोधपूर्वक बायें हाथ से धनुष खैंचा और उस पर नत पर्ववाले तीक्ष्ण,जीवन को समाप्त करने में समर्थ, घोर बाण चढ़ाए ॥८॥

तैस्तूर्णं समरेऽविध्यद् द्रौणिं बलवतां वरः ॥९॥
तस्य ते कवचं भित्वा पपुः शोणितमाहवे ।

बलवानों में श्रेष्ठ, अर्जुन ने इन बाणों से बहुत शीघ्र द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को बींध लिया। उन बाणों ने भी कवच को चीर कर उसके शरीर के रक्त को चाट लिया ॥९॥

न विव्यथे च निर्भिन्नो द्रौणिर्गाण्डीवधन्वना ॥१०॥

तथैव च शरान्द्रौणिः प्रविमुञ्चन्नविह्वलः ।

तस्थौ स समरे राजंस्त्रातुमिच्छन्महाव्रतम् ॥११॥

गाण्डीव धारी अर्जुन से क्षत विक्षत हुआ भी अश्वत्थामा, कुछ पीड़ित नहीं हुआ और वह उसी तरह अविचल भाव से बाण छोड़ता रहा। हे राजन! वह अपने महाव्रत के पालन में संलग्न हुआ व्याकुलता को छोड़कर रणभूमि में डटा रहा ॥१०-११॥

तस्य तत्सुमहत्कर्म शशंसुः कुरुसत्तमाः ।

यत्कृष्णाभ्यां समेताभ्यामभ्यापतत संयुगे ॥१२॥

इसके इस कठिन कार्य को देखकर कौरव वीरों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की, जो यह अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों से ही एक साथ टक्कर ले रहा था ॥१२॥

स हि नित्यमनीकेषु युध्यतेऽभयमास्थितः ।

अस्त्रग्रामं ससंहारं द्रोणात्प्राप्य सुदुर्लभम् ॥१३॥

इसने संहार विधि के साथ दुर्लभ अस्त्रों को प्रयोग विधि अपने पिता द्रोण से सीखी थी, इसी से यह युद्ध में सेनाओं के मध्य में निःशङ्क लड़ता था ॥१३॥

ममैष आचार्यसुतो द्रोणस्याऽपि प्रियः सुतः ।
ब्राह्मणश्च विशेषेण माननीयो ममेति च ॥१४॥
समास्थाय मतिं वीरो बीभत्सुः शत्रुतापनः ।
कृपां चक्रे रथश्रेष्ठो भारद्वाजसुतं प्रति ॥१५॥

अर्जुन यह सोच रहा था, कि अश्वत्थामा मेरे आचार्य द्रोण का पुत्र हैं और उनको बड़ा ही प्रिय है। यह ब्राह्मण है, इससे भी मेरा पूज्य है। इस प्रकार के विचार को करके रथिश्रेष्ठ, शत्रु-विजयी अर्जुन अश्वत्थामा पर दया ही करते रहे ॥१४-१५॥

द्रौणिं त्यक्त्वा ततो युद्धे कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
युयुधे तावकान्निघ्नंस्त्वरमाणः पराक्रमी ॥१६॥

बस ! द्रोण-पुत्र को छोड़ कर श्वेत अश्वों के वाहन वाला, अर्जुन पराक्रम करता हुआ शीघ्रता से आगे निकल गया और तुम्हारे वीरों को मार २ कर बिछाने लगा ॥१६॥

दुर्योधनस्तु दशभिर्गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भीमसेनं महेष्वासं रुक्मपुङ्खैः समार्पयत् ॥१७॥

राजा दुर्योधन ने भी गृद्ध (हुमा) पक्षी के पक्षों से युक्त, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, सुवर्ण के मूल वाले दश बाणों से धनुर्धर भीमसेन को आहत कर दिया ॥१७॥

भीमसेनः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ।
चित्रं कार्मुकमादत्त शरांश्च निशितान्दश ॥१८॥

भीमसेन भी क्रोध में भर गए, उन्होंने भी शत्रुनाशक, दृढ़ और विचित्र धनुष उठाया और उस पर दश तीखे बाण चढ़ाए।

आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्वेगवद्भिरजिह्मगैः ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रः कुरुराजं महोरसि ॥१९॥

किसी भी प्रकार की व्याकुलता से रहित भीमसेन ने कान तक खैंचे हुए धनुष से फैंके हुए, वेगशील, तीक्ष्ण, सीधे जाने वाले बाणों से राजा दुर्योधन की विशाल छाती में प्रहार किया।

तस्य काञ्चनसूत्रस्थः शरैः सञ्छादितो मणिः ।
रराजोरसि खे सूर्यो ग्रहैरिव समावृतः ॥२०॥

इसके सुवर्ण के डोरे में पोई हुई, छाती पर लटकती हुई मणि, बाणों से आच्छादित होकर ऐसी सुन्दर प्रतीत होने लगी, जैसे-आकाश में ग्रहों से सूर्य आवृत हो गया हो ॥२०॥

पुत्रस्तु तव तेजस्वी भीमसेनेन ताडितः ।
नाऽमृष्यत यथा नागस्तलशब्दं मदोत्कटः ॥२१॥

भीमसेन से आहत किये हुए भी तुम्हारे तेजस्वी पुत्र दुर्योधन ने उसके प्रहार की कुछ अपेक्षा (परवाह) नहीं की, जैसे-मदोत्कट हाथी ताली बजाने से नहीं चौंकता है ॥२१॥

ततः शरैर्महाराज रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
भीमं विव्याध संक्रुद्धस्त्रासयानो वरूथिनीम् ॥२२॥

हे महाराज ! उसने सुवर्ण की पुङ्खवाले, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों से क्रोधपूर्वक भीमसेन पर आक्रमण किया और इसकी सारी सेना को व्यथित कर दिया ॥२२॥

तौ युध्यमानौ समरे भृशमन्योन्यविक्षतौ ।
पुत्रौ ते देवसङ्काशौ व्यरोचेतां महाबलौ ॥२३॥

ये दोनों रणभूमि में युद्ध करने लगे और दोनों ही क्षत-विक्षत (घायल) हो गए । ये दोनों तुम्हारे महाबली पुत्र, युद्ध में देवों के समान प्रतीत होते थे ॥२३॥

चित्रसेनं नरव्याघ्रं सौभद्रः परवीरहा ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैः पुरुमित्रं च सप्तभिः । ॥२४॥
सत्यव्रतं च सप्तत्या विध्वा शक्रसमो युधि ।
नृत्यन्निव रणे वीर आर्तिं नः समजीजनत् ॥२५॥

शत्रुवीरघातक, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने नरवीर चित्रसेन को दश बाण और पुरुमित्र को सात बाणों से बींध दिया। इसने सत्तर बाणों से सत्यव्रत को आहत किया। अभिमन्यु इन्द्र के सदृश युद्ध में पराक्रम दिखा रहा था। युद्ध में इधर उधर नांच सा करते हुए अभिमन्यु को कोई पीड़ा नहीं होती थी ॥२४-२५

तं प्रत्यविध्यद्दशभिश्चित्रसेनः शिलीमुखैः ।
सत्यव्रतश्च नवभिः पुरुमित्रश्च सप्तभिः ॥२६॥

चित्रसेन ने भी दश, सत्यव्रत ने नौ और पुरुमित्र ने सात बाणों से अभिमन्यु को आहत कर दिया ॥२६॥

स विद्धो विक्षरन्रक्तं शत्रुसंवारणं महत् ।
चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमार्जुनिः ॥२७॥
भित्त्वा चाऽस्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडयत् ।

इन बाणों से विद्ध हुए अभिमन्यु के शरीर से रक्त धार वह निकली। इसने शत्रु के घातक, विशाल, राजा चित्रसेन के विचित्र चाप को काट डाला। अभिमन्यु ने चित्रसेन के कवचको भेद कर इसके वक्षःस्थल में बाण से प्रहार किया ॥२७॥

ततस्ते तावका वीरा राजपुत्रा महारथाः ॥२८॥
समेत्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः ।
तांश्च सर्वान्शरैस्तीक्ष्णैर्जघान परमास्त्रवित् ॥२९॥

अब वीर, राजपुत्र, महारथी तुम्हारे पुत्रों ने भी इकट्ठे होकर क्रोध-पूर्वक उसको तीक्ष्ण शरों से घायल कर दिया। इस अस्त्र-विद्या में कुशल अभिमन्यु ने उन सारे बाणों को अपने तीखे बाणों से काट गिराया ॥२८-२९॥

तस्य दृष्ट्वा तु तत्कर्म परिवव्रुः सुतास्तव ।
दहन्तं समरे सैन्यं वने कक्षं यथोल्बणम् ॥३०॥

तुम्हारे पुत्रों ने वन में तृण की ढेरी को भस्म करते हुए अग्नि के तुल्य, युद्ध में वीरों का विध्वंस करते हुए अभिमन्यु को देखकर उसको घेर लिया ॥३०॥

अपेतशिशिरे काले समिद्धमिव पावकम् ।
अत्यरोचत सौभद्रस्तव सैन्यानि नाशयन् ॥३१॥

तुम्हारी सेना का विनाश करता हुआ, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ग्रीष्म काल में प्रचण्ड अग्नि सा दिखाई देता था ॥३१॥

तत्तस्य चरितं दृष्ट्वा पौत्रस्तव विशाम्पते ।
लक्ष्मणोऽभ्यपतत्तूर्णं सात्वतीपुत्रमाहवे ॥३२॥

हे विशाम्पते ! उसके इस प्रकार युद्ध कौशल को देखकर तुम्हारा पौत्र लक्ष्मण, युद्धमें सुभद्रा-पुत्र अभिमन्युके सन्मुख आया॥

अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
विव्याध निशितैः षड्भिः सारथिं च त्रिभिः शरैः ३३॥

इसको देखकर अभिमन्यु क्रोध से जल उठा और उसने इस पर तीन बाण छोड़े तथा इसके सारथि को भी तीन बाणों से बेंध दिया ॥३३॥

तथैव लक्ष्मणो राजन्सौभद्रं निशितैः शरैः ।
अविध्यत महाराज तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥६४॥

हे राजन् ! इसी तरह लक्ष्मणने भी सुभद्रा-पुत्र अभिमन्युको अपने तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया, जो बड़ा ही अद्भुत दृश्य था।

तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा सारथिं च महाबलः ।
अभ्यद्रवत सौभद्रो लक्ष्मणं निशितैः शरैः ॥३५॥

महाबली अभिमन्यु ने उसके चारों अश्वों को मारकर सारथि को मार दिया और फिर स्वयं लक्ष्मण पर भी तीक्ष्ण बाणों से आक्रमण कर दिया ॥३५॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठँल्लक्ष्मणः परवीरहा ।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धः सौभद्रस्य रथं प्रति ॥३६॥

शत्रु-वीर-घातक, लक्ष्मण अश्वों के नष्ट हो जाने पर भी रथ में डटा रहा । अब इसने क्रोध में भरकर अभिमन्यु के रथ की ओर शक्ति का प्रहार किया ॥३६॥

तामापतन्तीं सहसा घोररूपां दुरासदाम् ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमाम् ॥३७॥

इस-घोर-रूप धारिणी, दुरासद, सर्प के तुल्य भीषण शक्ति को अभिमन्यु ने अपने तीखे बाणों से मार्ग में ही काट गिराया ॥३७॥

ततः स्वरथमारोप्य लक्ष्मणं गौतमस्तदा ।
अपोवाह रथेनाऽऽजौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥३८॥

अब गौतमवंशज कृपाचार्य ने आकर लक्ष्मण को अपने रथ पर बैठा लिया । वह इसको रण में सारी सेना के देखते २ दूसरी ओर ले गया ॥३८॥

ततः समाकुले तस्मिन्वर्तमाने महाभये ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः परस्परवधैषिणः ॥३९॥

इस प्रकार भीषण भयजनक रण के प्रवृत्त रहने पर वीर लोग, परस्पर वध की इच्छा से एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे ॥३९॥

तावकाश्च महेष्वासाः पाण्डवाश्च महारथाः ।
जुह्वन्तः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥४०॥

तुम्हारे महाधनुर्धर वीर और पाण्डवोंके महारथी युद्ध में प्राणों की आहुति देते हुए एक दूसरे को मारने लगे ॥४०॥

मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः।
बाहुभिः समयुध्यन्त सृञ्जयाः कुरुभिः सह॥४१॥

खुले बालवाले, कवचरहित, रथहीन, धनुष से रहित, कौरव और सृञ्जय वीर, परस्पर बाहुयुद्ध (कुश्ती) करने लगे ॥४१॥

ततो भीष्मो महाबाहुः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सेनां जघान संक्रुद्धो दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥४२॥

महाबली, महाबाहु, भीष्मने अब क्रोध में भरकर फिर अपने दिव्य अस्त्रों से पाण्डवों की सेना का नाश करना आरम्भ किया।

हतैरथैर्गजैस्तत्र नरैरश्वैश्च पातितैः ।
रथिभिः सादिभिश्चैव समास्तीर्यत मेदिनी ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

इस समय मारे हुए अश्व, हाथी, रथी, अश्वारोही वीरों के गिरने से रणभूमि बिल्कुल भर गई ॥४३॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घमसान युद्ध का तेहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

—***—

चौहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अथ राजन्महाबाहुः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
विकृष्य चापं समरे भारसाहमनुत्तमम् ॥१॥
प्रामुञ्चत्पुङ्खसंयुक्ताञ्शरानाशीविषोपमान् ।
प्रगाढं लघु चित्रं च दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! महाबाहु, युद्धदुर्मद, सात्यकि, अपने खैंचने के बल के सह जानेवाले, सर्वोत्तम धनुष को खैंच कर रणभूमि में आया। इसने सुवर्ण-पुङ्खधारी, सर्प के तुल्य भीषण बाणों का छोड़ना आरम्भ किया । यह बड़ी तीव्रता (फुर्ती) से अपने विचित्र हस्तकौशल को दिखा रहा था ॥१-२॥

तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः ।
आददानस्य भूयश्च सन्दधानस्य चाऽपरान् ॥३॥
क्षिपतश्च परांस्तस्य रणे शत्रून्विनिघ्नतः ।
ददृशे रूपमत्यर्थं मेघस्येव प्रवर्षतः ॥४॥

इसके धनुष खैंचने, अन्य बाण चढ़ाने, फिर बाण लेने और धनुष पर चढ़ाने, शत्रुओं पर फैंकने और शत्रु का विनाश करने के इस भीषण काल में इसका घोर रूप वर्षा करने वाले मेघ के सदृश दिखाई देता था ॥३-४॥

तमुदीर्यन्तमालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः ।
रथानामयुतं तस्य प्रेषयामास भारत ॥५॥

हे भारत ! इसको तीव्रता से बढ़ता देखकर राजा दुर्योधन ने दश हज़ार रथी सेना को इसके रोकने की आज्ञा दी ॥५॥

तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान परमेष्वासो दिव्येनाऽस्त्रेण वीर्यवान् ॥६॥

इस सारी धनुर्धर सेना को अस्त्र विद्या में कुशल, महाधनुर्धर, सत्यपराक्रमी, वीर्यवान् सात्यकि ने अपने दिव्य अस्त्रों से मार गिराया ॥६॥

स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आससाद ततो वीरो भूरिश्रवसमाहवे ॥७॥

यह वीर सात्यकि, विशाल धनुष को लिए हुए रणभूमि में दारुण कर्म करता हुआ, अब भूरिश्रवा के सामने पहुंचा ॥७॥

स हि सन्दृश्य सेनां ते युयुधानेन पातिताम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥८॥

युयुधान द्वारा सेना का विध्वंस देखकर कौरवों की कीर्ति के बढ़ाने वाले राजा दुर्योधन क्रोध में भर कर उस पर झपटे ॥८॥

इन्द्रायुधसवर्णं तु विस्फार्य सुमहद्धनुः ।
सृष्टवान्वज्रसङ्काशाञ्शरानाशीविषोपमान् ॥९॥
सहस्रशो महाराज दर्शयन्पाणिलाघवम् ।

इन्होंने इन्द्र के धनुष के तुल्य अपना विशाल धनुष चढ़ाया और उससे वज्र के तुल्य, सर्प के समान भीषण बाण छोड़ना आरम्भ किया ॥९॥

शरांस्तान्मृत्युसंस्पर्शान्सात्यकेश्च पदानुगाः ॥१०॥
न विषेहुस्तदा राजन्दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
विहाय सात्यकिं राजन्समरे युद्धदुर्मदम् ॥११॥

हे महाराज ! वे अपने हस्त के कौशल को दिखाते हुए युद्धकर रहे थे । हे राजन् ! मृत्युके तुल्य उन बाणों को सात्यकिके अनुचर सहन नहीं कर सके, अतएव वे युद्ध में दुर्मद सात्यकि को छोड़कर इधर उधर भाग गए ॥१०-११॥

तं दृष्ट्वा युयुधानस्य सुता दश महाबलाः ।
महारथाः समाख्याताश्चित्रवर्मायुधध्वजाः ॥१२॥
समासाद्य महेष्वासं भूरिश्रवसमाहवे ।
ऊचुः सर्वे सुसंरब्धा यूपकेतुं महारणे ॥१३॥

सात्यकि को अकेले देखकर उनके दश महाबली, महारथी पुत्र, उनकी सहायता को आगे आए। ये पुत्र बड़े विख्यात थे, जिनके विचित्र कवच, शस्त्र और ध्वजाएँ थीं। इस महायुद्ध में महारथी, धनुर्धर भूरिश्रवा के पास पहुंच कर यज्ञ-स्तम्भ के चिह्न वाली ध्वजा धारण करने वाले भूरिश्रवा से क्रोधमें भरे हुए बोले।

भो भो कौरवदायाद सहाऽस्माभिर्महाबल ।
एहि युध्यस्व संग्रामे समस्तैः पृथगेव वा ॥१४॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ, महाबली, यूपकेतो ! आओ और हमारे साथ एक २ या सबसे एक साथ युद्ध करो ॥१४॥

अस्मान्वा त्वं पराजित्य यशः प्राप्नुहि संयुगे ।
वयं वा त्वां पराजित्य प्रीतिं धास्यामहे पितुः ॥१५॥

तुम हमको पराजित करके संसार में कीर्ति प्राप्त करना या हम ही तुमको पराजित करके अपने पिता युयुधान का बदला चुका लेंगे, जिससे वे प्रसन्न होंगे ॥१५॥

एवमुक्तस्तदा शूरैस्तानुवाच महाबलः ।
वीर्यश्लाघी नरश्रेष्ठस्तान्दृष्ट्वा समवस्थितान् ॥१६॥

साध्विदं कथ्यते वीरा यद्येवं मतिरद्य वः ।
युध्यध्वं सहिता यत्ता निहनिष्यामि वो रणे ॥१७॥

जब इन शूरवीरों ने इतना कहा-तो "वह महाबली अपने पराक्रम पर बड़ा भरोसा रखता था," वह वीरवर उनको युद्ध के लिए खड़े देखकर कहने लगा—हे वीरो ! तुमको धन्य है, जो तुम्हारा ऐसा विचार उत्पन्न हुआ है । तुम सब सावधान होकर इकट्ठे ही युद्ध करो-मैं अभी तुम सबको रण में मार गिराता हूँ ।

एवमुक्ता महेष्वासास्ते वीराः क्षिप्रकारिणः ।
महता शरवर्षेण अभ्यधावन्नरिन्दमम् ॥१८॥

जब भूरिश्रवा ने इतना कहा-तो वे महाधनुर्धर बड़े क्षिप्रकारी (जल्दबाज) थे । उन्होंने विशाल, बाण-वर्षा से अरि-विजयी भूरिश्रवा को पाट दिया ॥१८॥

सोऽपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ।
एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे ॥१६॥

हे महाराज! यह युद्ध दोपहर के पीछे अपराह्नकाल में तीव्रता को पहुंच गया था। रणाङ्गण में एक भूरिश्रवा से बहुत से वीरों का यही युद्ध था ॥१६॥

तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरैस्ते समवाकिरन् ।
प्रावृषीव यथा मेरुं सिषिचुर्जलदा नृप ॥२०॥

हे नृप! जैसे-वर्षाकाल में मेघ, मेरु पर्वत को वर्षा से व्याप्त कर देते हैं, ऐसे ही इन सारे वीरों ने रथि-श्रेष्ठ भूरिश्रवा को बाणों से ढ़क दिया ॥२०॥

तैस्तु मुक्ताञ्शरान्घोरान्यमदण्डाशनिप्रभान् ।
असम्प्राप्तानसम्भ्रान्तश्चिच्छेदाऽऽशु महारथः ॥२१॥

यमराज के दण्ड और इन्द्र के वज्र के तुल्य, इन सारे वीरों के छोड़े हुए घोर बाणों को महारथी भूरिश्रवा ने बिना किसी घबराहट के मार्ग में ही काट गिराया ॥२१॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमम् ।
यदेको बहुभिर्युद्धे समसंज्जदभीतवत् ॥२२॥

सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा का पराक्रम इस युद्ध में अद्भुत था, जो वह अकेला ही निर्भीक होकर इन बहुत से वीरों से भिड़ गया

विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन्महारथाः।
परिवार्य महाबाहुं निहन्तुमुपचक्रमुः ॥२३॥

हे राजन् ! ये दशों महारथी, इस प्रकार बाणवर्षा करके और उस महाबाहु भूरिश्रवा को घेर कर यमधाम पहुंचाना चाहते थे।

सौमदत्तिस्ततः क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत।
चिच्छेद समरे राजन्युध्यमानो महारथैः ॥२४॥

हे भारत ! सोमदत्त-पुत्र, भूरिश्रवा ने क्रोध में भर कर उन महारथियों के साथ युद्ध करते २ उनके धनुष काट दिए ॥२४॥

अथैषां छिन्नधनुषां शरैः सन्नतपर्वभिः।
चिच्छेद समरे राजञ्शिरांसि भरतर्षभ ॥२५॥
ते हता न्यपतन्राजन्वज्रभग्ना इव द्रुमाः।

हे भरतर्षभ ! जब इनके धनुष कट गए, तो भूरिश्रवा ने नत पर्व वाले बाणों से युद्ध में उनके शिर भी काट गिराए। हे राजन् ! वज्र से भग्न वृक्षकी भांति वे मरकर रणभूमि में गिर गए ॥२५॥

तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरो रणे पुत्रान्महाबलान् ॥२६॥
वार्ष्णेयो विनदन्राजन्भूरिश्रवसमभ्ययात्।

रण में अपने महाबली पुत्रों को मरे हुए देखकर वृष्णिवंश-श्रेष्ठ वीर सात्यकि, गर्जना करता हुआ भूरिश्रवा के सन्मुख आया।

रथं रथेन समरे पीडयित्वा महाबलौ ॥२७॥
तावन्योन्यं हि समरे निहत्य रथवाजिनः ।
विरथावभिवल्गन्तौ समेयातां महारथौ ॥२८॥

इन दोनों महारथियों ने अपने रथों को भिड़ाकर चूर २ कर दिया तथा दोनों ने एक दूसरे के रथ के अश्व मार दिए । अब रथहीन हुए दोनों महारथी अपनी २ डींग मारते हुए भिड़ गए ।

प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवरधारिणौ ।
शुशुभाते नरव्याघ्रौ युद्धाय समवस्थितौ ॥२९॥

इन दोनों ने बड़ी २ तलवारें और ढाल धारण कर ली । ये दोनों महावीर, युद्ध के लिए उपस्थित हुए बड़े सुशोभित होते थे ।

ततः सात्यकिमभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणम् ।
भीमसेनस्त्वरन्राजन्रथमारोपयत्तदा ॥३०॥

हे राजन् ! अब भीमसेन बड़ी शीघ्रता से उत्तम खड्गधारी सात्यकि के पास पहुंचा और उसको अपने रथ पर बैठा लिया ।

तवाऽपि तनयो राजन्भूरिश्रवसमाहवे ।
आरोपयद्रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥३१॥

हे राजन् ! इसी तरह तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने भी सारे धनुपधारियों के देखते २ भूरिश्रवा को शीघ्र रथ पर चढ़ा लिया ॥३१॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने रणे भीष्मं महारथम् ।
अयोधयन्त संरब्धाः पाण्डवा भरतर्षभ ॥३२॥

हे भरतर्षभ ! जब इस प्रकार युद्ध चल रहा था, तो आवेश में भरे हुए पाण्डव भी इसी समय भीष्म से युद्ध कर रहे थे।

लोहितायति चाऽऽदित्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रान्निजघान महारथान् ॥३३॥

शीघ्रता के साथ हाथ फैंकते हुए धनञ्जय अर्जुन ने सूर्य के लाल होते २ पच्चीस हजार महारथियों को मार गिराया॥३३॥

ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थनिबर्हणे ।
सम्प्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम् ॥३४॥

ये वीर, दुर्योधन की आज्ञा से अर्जुन के पकड़ने को गए हुए थे, परन्तु उसको तो नहीं पकड़ सके और आप अग्नि में पतङ्ग की भांति भस्म हो गए॥३४॥

ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः ।
परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम् ॥३५॥
एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति ।
सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥३६॥

अब धनुर्वेद विशारद, मत्स्य और कैकयवीरों ने पुत्र सहित महारथी अर्जुन को घेर लिया। इस समय सूर्य अस्त होने जा रहा था और समस्त सेनाओं को प्रमोह (थकान) छा रहा था।

अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
सन्ध्यांकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः ॥३७॥

हे महाराज ! तुम्हारे पिता देवव्रत ने इस संध्या समय में सेनाओं को पीछे हट जाने की आज्ञा दी, क्योंकि अब सब वीरों के वाहन भी थक चुके थे ॥३७॥

पाण्डवानां कुरूणां च परस्परसमागमे ।
ते सेने भृशसंविग्ने ययतुः स्वं निवेशनम् ॥३८॥

पाण्डव और कौरवों के इस घमसान युद्ध में दोनों सेना अत्यन्त उद्विग्न हो गई और अपने २ शिविरों (डेरों) को चल दी।

ततः स्वशिविरं गत्वा न्यविशंस्तत्र भारत ।
पाण्डवाः सृञ्जयैः सार्धं कुरवश्च यथाविधि ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसावहारे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

हे भारत ! वे अपने २ शिविरों (खेमों) में पहुंचकर अपने स्थानों में घुस गई। सृञ्जयों के साथ पाण्डव और अपने २ वीरों के साथ कौरव भी विधिपूर्वक अपने शिविर में प्रविष्ट हुए ॥३९॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में पांचवे दिन के युद्ध समाप्ति का चौहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।



पिचहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ते विश्रम्य ततो राजन्सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! रात भर कौरव और पाण्डवों ने इकट्ठे ही विश्राम किया। जब रात बीत गई, तो वे फिर युद्ध को चले दिए ॥१॥

तत्र शब्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
युज्यतां रथमुख्यानां कल्प्यतां चैव दन्तिनाम् ॥२॥

हे भारत! इस समय अपने २ रथों को जोड़ते और हाथियों को तय्यार करते हुए वीरों का महान् कोलाहल उठ खड़ा हुआ ॥२॥

सन्नह्यतां पदातीनां हयानां चैव भारत ।
शङ्खदुन्दुभिनादश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥३॥

हे भारत! पैदल वीर अपने फेंटा-कटार और अश्वारोही अश्वों को कस रहे थे। इनका तथा शङ्ख, दुन्दुभियों का महान् घोष, सब ओर भीषणता के साथ छा गया ॥३॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत ।
व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुनाशनम् ॥४॥

राजा युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न से कहा-हे महावीर! अब तुम शत्रु-नाशक, मकरव्यूह को बनाओ ॥४॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।

व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वरः॥५॥

हे महाराज ! जब राजा युधिष्ठिर ने यह आज्ञा दी, तो रथियों में श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न ने भी अपने महारथियों को व्यूह बनाने की आज्ञा दी ॥५॥

शिरोऽभूद् द्रुपदस्तस्य पाण्डवश्च धनञ्जयः ।

चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः ॥६॥

तुण्डमासीन्महाराज भीमसेनो महाबलः ।

सौभद्रद्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः॥७॥

सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः ।

पृष्ठमासीन्महाराज विराटो वाहिनीपतिः ॥८॥

धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनया वृतः ।

केकया भ्रातरः पञ्च वामपार्श्वं समाश्रिताः ॥९॥

धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रश्चेकितानश्च वीर्यवान् ।

दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थितौ व्यूहस्य रक्षणे ॥१०॥

पादयोस्तु महाराज स्थितः श्रीमान्महारथः

कुन्तिभोजः शतानीको महत्या सेनया वृतः ॥११॥

शिखण्डी तु महेष्वासः सोमकैः संवृतो बली ।

इरावांश्च ततः पुच्छे मकरस्य व्यवस्थितौ ॥१२॥

धर्मराज की आज्ञानुसार इस व्यूह के शिर महाराज द्रुपद और अर्जुन हुए। महारथी नकुल और सहदेव दोनों आंख बनाई

गई। हे महाराज! मकर की तुण्ड नामक स्थान पर महाबली भीमसेन नियत हुए। सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, द्रौपदी-पुत्र, राक्षस-राज घटोत्कच, सात्यकि और धर्मराज, इस व्यूह की ग्रीवा पर स्थित हुए। हे महाराज! वाहिनीपति विराटराज इसके पृष्ठ स्थान पर नियुक्त हुए। धृष्टद्युम्न के साथ महान् सेना से युक्त, पांच केकय राजकुमार इसके वाम पक्ष पर स्थित हुए। नरवीर धृष्टकेतु और वीर्यवान् चेकितान इस व्यूह की रक्षा में तत्पर हुए, जो दक्षिण पक्ष की ओर स्थित थे। हे महाराज! बहुत सी सेनासे युक्त, शतानीक श्रीमान् महारथी कुन्तिभोज, इसके पाद-स्थान पर स्थित हुए। सोमकों के साथ महाबली महाधनुर्धर शिखण्डी और इरावान् इस मकर व्यूह की पूंछ पर नियुक्त हुए ॥६-१२॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः ॥१३॥

हे भारत! इस प्रकार पाण्डव, इस महान् व्यूह को बनाकर सूर्योदय होते ही युद्ध को सन्नद्ध दिखाई दिए ॥१३॥

कौरवानभ्ययुस्तूर्णं हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ।
समुच्छ्रितैर्ध्वजैश्छत्रैः शस्त्रैश्च विमलैः शितैः ॥१४॥

हाथी, अश्व, रथ और पैदल सैनिक, उठाई हुई ध्वजा और छत्र तथा निर्मल और तीक्ष्ण शस्त्रों के साथ पाण्डवों ने कौरवों पर आक्रमण कर दिया ॥१४॥

व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तत ।
क्रौञ्चेन महता राजन्प्रत्यव्यूहत वाहिनीम् ॥१५॥

हे राजन् ! इस प्रकार पाण्डवों की सेना के व्यूह को देखकर तुम्हारे पिता देवव्रत ने भी अपनी सेना का क्रौंच नामक व्यूह बनाया ॥१५॥

तस्य तुण्डे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरासीन्नरेश्वर ॥१६॥

इस क्रौंच पक्षी की चोंच पर द्रोणाचार्य स्थित हुए । हे नरेश्वर ! इस पक्षी की दोनों आंखों के स्थान पर अश्वत्थामा और कृपाचार्य थे ॥१६॥

कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरबाह्लिकैः ।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥१७॥

सारे धनुधरों में श्रेष्ठ, नरोत्तम कृतवर्मा, काम्बोज और बाह्लिक वीरों के साथ इसके शिर पर नियुक्त किये गए ॥१७॥

ग्रीवायां शूरसेनश्च तव पुत्रश्च मारिष ।
दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः ॥१८॥

हे आर्य-गुण-सम्पन्न ! महाराज ! इस क्रौंच व्यूह की ग्रीवा पर राजा शूरसेन और तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अनेक महारथी राजाओं के साथ नियुक्त हुआ ॥१८॥

प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः ।
उरस्यभून्नरश्रेष्ठ महत्या सेनया वृतः ॥१९॥

हे नरश्रेष्ठ ! मद्र, सौवीर और केकयवीर तथा विशाल सेना के साथ राजा भगदत्त इसके वक्षःस्थल पर स्थित हुए ॥१९॥

स्वसेनया च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः ।
वामपक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः ॥२०॥

प्रस्थल प्रदेश के स्वामी सुशर्मा, अपनी सेना के साथ वाम पक्ष का अवलम्बन करके बड़ी सावधानी से स्थित हुआ ॥२०॥

तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत ॥२१॥

हे भारत ! तुषार, यवन, शक और चूचुप-देशज वीर, इस व्यूह के दायें पक्ष का आश्रय लेकर स्थित हुए ॥२१॥

श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष ।
व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम् ॥२२॥

हे आर्य ! श्रुतायु, शतायु और सोमदत्त के पुत्र राजा भूरिश्रवा, इस व्यूह के जघन (पृष्ठ) प्रदेश पर स्थित हुए, जो परस्पर एक दूसरे की रक्षा में तत्पर थे ॥२२॥

ततो युद्धाय सञ्जग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह ।
सूर्योदये महाराज ततो युद्धमभून्महत् ॥२३॥

अब पाण्डव और कौरव युद्ध के लिए चल पड़े । हे महाराज ! सूर्योदय होते ही बड़ा भीषण युद्ध होने लगा ॥२३॥

प्रतीयू रथिनो नागा नागांश्च रथिनो ययुः ।
हयारोहान्रथारोहा रथिनश्चाऽपि सादिनः ॥२४॥

सादिनश्च हयान्राजन्रथिनश्च महारणे ।
हस्त्यारोहान्हयारोहा रथिनः सादिनस्तथा ॥२५॥
रथिनः पत्तिभिः सार्धं सादिनश्चाऽपि पत्तिभिः ।
अन्योन्यं समरे राजन्प्रत्यधावन्नमर्षिताः ॥२६॥

हे राजन्! हाथी, रथियों पर और रथियों ने हाथियों पर आक्रमण किया। अश्वारोहियों पर रथारोही और रथारोहियों पर अश्वारोही झपटे। अश्वारोही, अश्वारोही और रथी इन दोनोंपर एक साथ आक्रमण करने लगे। अश्वारोही, हाथीके सवार और रथी, घुड़सवारों पर टूट पड़े। रथी और अश्वारोही दोनों पं सैनिकों के साथ युद्ध करने लगे। इस प्रकार एक दूसरे ने क्रोध में भर कर परस्पर इस महायुद्ध में आक्रमण करना आरम्भ किया।

भीमसेनार्जुनयमैर्गुप्ता चाऽन्यैर्महारथैः ।
शुशुभे पाण्डवी सेना नक्षत्रैरिव शर्वरी ॥२७॥

भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव से सुरक्षित पाण्डवों की सेना नक्षत्रों से युक्त रात्रि की भांति सुशोभित हो रही थी।

तथा भीष्मकृपद्रोणशल्यदुर्योधनादिभिः ।
तवाऽपि च बभौ सेना ग्रहैर्द्यौरिव संवृता ॥२८॥

हे राजन्! इसी तरह भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, दुर्योधन आदि वीरों से तुम्हारी सेना भी ग्रहों से आकाश की भांति सुशोभित हो रही थी ॥२८॥

भीमसेनस्तु कौन्तेयो द्रोणं दृष्ट्वा पराक्रमी ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्भारद्वाजस्य वाहिनीम् ॥२९॥

पराक्रमी कुन्ती-पुत्र भीमसेन, द्रोणाचार्य को देखकर अपने वेगशील अश्वों से बड़े वेग के साथ द्रोणाचार्य की सेना पर झपटा ॥२६॥

द्रोणस्तु समरे क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ।
विव्याध समरश्लाघी मर्माण्युद्दिश्य वीर्यवान् ॥३०॥

द्रोणाचार्य भी रण में क्रुद्ध हो उठा । उस वीर्यवान् ने भी लोहे के नौ बाणों से भीमसेन के मर्म स्थानों को लक्ष्य बनाकर प्रहार किया । ये अपने इन गुणों के कारण ही युद्ध विद्या में बड़ी प्रशंसा पा चुके हैं ॥३०॥

दृढाहतस्ततो भीमो भारद्वाजस्य संयुगे ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥३१॥

द्रोणाचार्य के दृढ़ प्रहार से भीमसेन झल्ला उठा और उसने युद्ध में बाण मारकर भरद्वाजगोत्रोत्पन्न द्रोणाचार्य के सारथी को यमराज के घर पहुंचा दिया ॥३१॥

स संगृह्य स्वयं वाहान्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
व्यधमत्पाण्डवीं सेनां तूलराशिमिवाऽनलः ॥३२॥

प्रतापी द्रोणाचार्य स्वयं अश्वों की रज्जु (बाग) अपने हाथ में लेकर रथ चलाने और रूई की राशि को अग्नि की तरह पाण्डवों की सेना को भस्म करने लगा ॥३२॥

ते वध्यमाना द्रोणेन भीष्मेण च नरोत्तमः ।
सृञ्जयाः केकयैः सार्धं पलायनपराऽभवन् ॥३३॥

द्रोणाचार्य और भीष्म द्वारा ताड़ित किये हुए वीर, सृञ्जय, केकय वीरों के साथ रण से भागने लगे ॥२३॥

तथैव तावकं सैन्यं भीमार्जुनपरिक्षतम् ।
मुह्यते तत्र तत्रैव समदेव वराङ्गना ॥२४॥

हे राजन्! इसी तरह तुम्हारी सेना भी मद (नशे) में भरी हुई वेश्या की तरह भीम और अर्जुन से घायल हुई घूमने लगी।

अभिद्येतां ततो व्यूहौ तस्मिन्वीरवरक्षते ।
आसीद्व्यतिकरो घोरस्तत्र तेषां च भारत ॥२५॥

जब इस प्रकार वीरों का क्षय होने लगा-तो दोनों के व्यूह छिन्न भिन्न हो गए। हे भारत! इस समय तुम्हारे और पाण्डवों के वीरों का घोर संग्राम होने लगा ॥२५॥

तदद्भुतमपश्याम तावकानां परैः सह।
एकायनगताः सर्वे यदयुध्यन्त भारत ॥२६॥

हे भारत! उस समय मैंने एक अद्भुत दृश्य देखा, कि तुम्हारी सेनाके योद्धा एक पंक्ति में रह कर ही पाण्डवों की सेना के साथ युद्ध कर रहे थे ॥२६॥

प्रतिसंवार्य चास्त्राणि तेऽन्योन्यस्य विशाम्पते ।
युयुधुः पाण्डवाश्चैव कौरवाश्च महाबलाः ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसयुद्धारम्भे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

हे विशाम्पते ! ये परस्पर एक दूसरे के अस्त्रोंको रोक कर महा-बली कौरव और पाण्डव, युद्ध करने में बड़ी व्यग्रता से तत्पर थे।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में छठे दिन के युद्धारम्भ का पिचहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

——***——

छियत्तरवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

एवं बहुगुणं सैन्यमेवं बहुविधं पुरा ।
व्यूढमेवं यथाशास्त्रममोघं चैव सञ्जय ॥१॥
हृष्टमस्माकमत्यन्तमभिकामं च नः सदा ।
अह्वमव्यसनोपेतं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥२॥
नाऽतिवृद्धमबालं च न कृशं न च पीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारयोधमनामयम् ॥३॥
आत्तसन्नाहशस्त्रं च बहुशस्त्रपरिग्रहम् ।
असियुद्धे नियुद्धे च गदायुद्धे च कोविदम् ॥४॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! हमारी सेना अनेक गुणों से युक्त है और अनेक गज, अश्व आदि सेना के अङ्गों से परिपूर्ण है। इसका भीष्म आदि महारथी शास्त्रानुसार व्यूह बनाते हैं, जिससे

यह अप्रतिहत-शक्ति हो जाती है। यह सेना सब तरह से प्रसन्न और हमको सब तरह से चाहती है। यह बड़े विनय से सम्पन्न व्यसन हीन और पूर्वकाल से ही अपने पराक्रम का उदाहरण दिखाती आ रही है। इस सेना के वीर न तो वृद्ध ही हैं और न अत्यन्त बालक, कृश और वृथा-पुष्ट (मोटे) ही हैं। ये तो वेग वाले, गोल, लम्बे शरीरधारी, नीरोग और युद्ध का स्वागत करने वाले हैं। इन्होंने कवच पहिन रखे हैं और शस्त्र धारण कर रखे हैं। अनेक भांति के विचित्र २ शस्त्र इनके पास हैं। ये सारे ही असि (तलवार) युद्ध, बाहुयुद्ध और गदायुद्ध में कुशल हैं ॥१-४॥

प्रासर्ष्टितोमरेष्वाजौ परिघेष्वायसेषु च ।
भिन्दिपालेषु शक्तिषु मुसलेषु च सर्वशः ॥५॥
कम्पनेषु च चापेषु कणपेषु च सर्वशः ।
क्षेपणीयेषु चित्रेषु मुष्टियुद्धेषु च क्षमम् ॥६॥

ये प्रास, ऋष्टि, तोमर, लोहमय परिघ, भिन्दिपाल, शक्ति, मुसल, कम्पन, चाप, कणप आदि शस्त्र और विचित्र शस्त्रों की प्रयोग विधि तथा मुष्टियुद्ध में कुशल हैं ॥५-६॥

अपरोक्षं च विद्यासु व्यायामे च कृतश्रमम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु सर्वासु परिनिष्ठितम् ॥७॥

ये किसी भी धनुर्वेद के अङ्ग से हीन नहीं है, इन्होंने व्यायाम में भी बड़ा परिश्रम कर रखा है। ये सारे ही वीर शस्त्र ग्रहण की रीति के भली प्रकार से जानने वाले हैं ॥७॥

आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥८॥

ये गज अश्व की सवारी, उनसे समय पर अनेक भांति से उतरने, आगे बढ़ने, बीच में कूदने, अच्छी तरह प्रहार करने, चढ़ाई करने, हटने में भी अत्यन्त कुशल हैं ॥८॥

नागाश्वरथयानेषु बहुशः सुपरीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥६॥

इस सेना के वीरों के हाथी, अश्व, रथ आदि के चढ़ने की भी कई बार परीक्षा ली जा चुकी है। जैसी जिसकी योग्यता है, उसी के अनुसार उनको वेतन भी न्यायानुकुल दिया जा चुका है।

न गोष्ठ्या नोपकारेण न च बन्धुनिमित्ततः ।
न सौहृदबलैर्वाऽपि नाऽकुलीनपरिग्रहैः ॥१०॥

किसी मित्रता, उपकार, भाई बन्दी, मित्रों के आग्रह से किसी भी वीर को सेना में भरती नहीं किया गया है और न कुलहीन वीरों का इसमें संग्रह है ॥१०॥

समृद्धजनमार्यं च तुष्टसम्बन्धिबान्धवम् ।
कृतोपकारभूयिष्ठं यशस्वि च मनस्वि च ॥११॥

इस सेना में तो सारे आर्य आचरणों से युक्त, ऐश्वर्यशाली हैं, जिन्होंने अपने सम्बन्धी बान्धवों को सन्तुष्ट कर दिया है। हमने इनके अनेक उपकार भी किये हैं। ये सारे यशस्वी और मनस्वी हैं ॥११॥

स्वजनैस्तु नरैर्मुख्यैर्बहुशो दृष्टकर्मभिः ।
लोकपालोपमैस्तात पालितं लोकविश्रुतम् ॥१२॥

हे तात ! अपने स्वजन, मुख्य पुरुषों द्वारा इन सब लोक प्रसिद्ध वीरों की वृत्ति प्रदान करवाई जाती है । ये नियुक्त किये हुए पुरुष भी अनेक वार शुभ आचरणों से युक्त देखे गए हैं, जो सारे ही लोकपालों के तुल्य ऐश्वर्यशाली वीर हैं ॥१२॥

बहुभिः क्षत्रियैर्गुप्तं पृथिव्यां लोकसम्मतैः ।
अस्मानभिगतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥१४॥

पृथिवी पर प्रतिष्ठा पाये हुए अनेक क्षत्रिय वीरों से यह सेना सुरक्षित है । ये सारे क्षत्रिय वीर अपनी सेना और अनुचरों के साथ अपने प्रेम से ही हमारी ओर आए हैं ॥१३॥

महोदधिमिवाऽऽपूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसङ्काशै रथैर्नागैश्च संवृतम् ॥१४॥

इनकी सेना समुद्र की तरह भरी हुई है, जिसमें वीर नित्य इसी तरह आकर मिल रहे हैं, जैसे-समुद्र में नदियां गिरती हैं। पक्ष नहीं होने पर भी पक्षियों की भांति उड़ने वाले रथ, हाथी आदि वाहन इनके पास हैं ॥१४॥

नानायोधजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासससमाकुलम् ॥१५॥
ध्वजभूषणसम्बाधं रत्नपट्टसुसञ्चितम् ।

परिधावद्भिरश्वैश्च वायुवेगविकम्पितम् ॥१६॥
अपारमिव गर्जन्तं सागरप्रतिमं महत् ।

इस सेना समुद्र में अनेक योद्धाओं रूपी जल भरा हैं, जिसमें गजादि वाहनों की लहरें उठ रहीं हैं। यह क्षेपणी, असि, गदा, शक्ति, शर, प्रास आदि शस्त्रों रूपी जलजन्तुओं से परिपूर्ण हैं। ध्वजा और भूषणों से इसका बंध सा बंध रहा है । रत्न जटित पताकाओं से पूर्ण है। भागने वाले अश्वों से इसमें वायु वेग सा दिखाई देता है। यह सेना अत्यन्त अपार समुद्र के तुल्य विशाल है, जो गर्जना करती रहती है॥१५-१६॥

द्रोणभीष्माभिसंगुप्तं गुप्तं च कृतवर्मणा ॥१७॥
कृपदुःशासनाभ्यां च जयद्रथमुखैस्तथा ।
भगदत्तविकर्णाभ्यां द्रौणिसौबलबाह्लिकैः ॥१८॥
गुप्तं प्रवीरैर्लोकैश्च सारवद्भिर्महात्मभिः ।
यदहन्यत संग्रामे दैवमत्र पुरातनम् ॥१९॥

यह सर्व श्रेष्ठसेना, द्रोण, भीष्म, कृतवर्मा, कृप, दुःशासन, जयद्रथ, . भगदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि, बाल्हिकराज आदि अनेक शक्तिशाली उत्तम २ वीरों से सुरक्षित है । यदि यह सेना भी रण में मारी जा रही है, तो इसका कारण पूर्वजन्मोपार्जित कर्मों से बना हुआ अदृष्ट ही है॥१७-१९॥

नैतादृशं समुद्योगं दृष्टवन्तो हि मानुषाः ।
ऋषयो वा महाभागाः पुराणा भुवि सञ्जय ॥२०॥

हे सञ्जय ! इस प्रकार का उद्योग किसी मनुष्य, महाभाग प्राचीन ऋषियों ने भी नहीं देखा होगा ॥२०॥

ईदृशोऽपि बलौघस्तु संयुक्तः शस्त्रसम्पदा ।
वध्यते यत्र संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥२१॥

शस्त्र सम्पत्ति से सम्पन्न ऐसी भी सेना यदि मारी जा रही है, तो फिर इसमें भाग्य के सिवा कहा ही क्या जा सकता है ॥२१॥

विपरीतमिदं सर्वं प्रतिभाति हि सञ्जय ।
यत्रेदृशं बलं घोरं पाण्डवान्नाऽतरद्रणे ॥२२॥

हे सञ्जय ! इस समय तो सारी स्थिति ही विपरीत (उलटी) हुई दिखाई देती है, जो रण में ऐसी सेना भी पाण्डवों को पार नहीं कर सकी ॥२२॥

पाण्डवार्थाय नियतं देवास्तत्र समागताः ।
युध्यन्ते मामकं सैन्यं यथाऽवध्यत सञ्जय ॥२३॥

हे सञ्जय ! यही ज्ञात होता है, कि पाण्डवों के अर्थ की सिद्धि के लिए देवता आ उतरे और वे ही मेरी सेना से लड़कर उसे मार काट रहे हैं ॥२३॥

उक्तो हि विदुरेणाऽहं हितं पथ्यं च नित्यशः ।
न च जग्राह तन्मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥२४॥

विदुर ने मुझसे मेरे हित और लाभकारी बात सदा कही, परन्तु मेरे मूर्ख पुत्र ने वे ग्रहण न की और न ग्रहण करने दी ।

तस्य मन्ये मतिः पूर्वं सर्वज्ञस्य महात्मनः ।
आसीद्यथागतं तात येन दृष्टमिदं पुरा ॥२५॥

हे तात ! मैं तो यही समझता हूं, कि इस सर्वज्ञ महात्मा विदुर को यह सारी घटना पहले ही ज्ञात हो चुकी थी-वही क्रम-बद्ध अब मैं देख रहा हूं ॥२५॥

अथवा भाव्यमेवं हि सञ्जयैतेन सर्वथा ।
पुरा धात्रा यथा सृष्टं तत्तथा नैतदन्यथा ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायां षटसप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

हे सञ्जय ! अथवा विधाता ने यही होनहार नियत की है । उसी प्रकार यह सब कुछ हो रहा है, उससे विपरीत कुछ नहीं है ।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में धृतराष्ट्र के चिन्ता का छियत्तरवां अध्याय पूरा हुआ ।

—*—

सतहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

आत्मदोषात्त्वया राजन्प्राप्तं व्यसनमीदृशम् ।
नहि दुर्योधनस्तानि पश्यते भरतर्षभ ॥१॥
यानि त्वं दृष्टवान्राजन्धर्मसङ्करकारिते ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! तुमने अपने दोष से ही इस विपत्ति को मोल लिया है । हे भरतर्षभ ! धर्म के लोप करने से जो व्यसन उपस्थित होते हैं, उनको तुमने देख लिया है, परन्तु वे अभी तक दुर्योधन की दृष्टि में नहीं आए हैं ॥१॥

तव दोषात्पुरा वृत्तं द्यूतमेव विशाम्पते ॥२॥
तव दोषेण युद्धं च प्रवृत्तं सह पाण्डवैः ।
त्वमेवाऽद्य फलं भुंक्ष्व कृत्वा किल्बिषमात्मना ॥३॥

हे विशाम्पते ! तुम्हारी न्यूनता के कारण ही पूर्वकाल में द्यूत (जुआ) रचा गया और तुम्हारे ही दोष से पाण्डवों से यह युद्ध ठन गया है । अपने आप किये हुए पाप का आज आप ही तुम फल भोगो ॥२-३॥

आत्मनैव कृतं कर्म आत्मनैवोपभुज्यते ।
इह च प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथातथम् ॥४॥

जो मनुष्य कर्म करता है, उसका वह अवश्य ही फल भोगता है । हे राजन् ! तुमने उसका यहीं फल भोगा और मृत्यु के अनन्तर भी जो कुछ शेष रहेगा वह भोगना है ॥४॥

तस्माद्राजन्स्थिरो भूत्वा प्राप्येदं व्यसनं महत् ।
शृणु युद्धं यथा वृत्तं शंसतो मे नराधिप ॥५॥

हे नराधिप ! अब होना था, वह हो चुका। जो विपत्ति आनी थी, वह आ गई। अब मैं तुमको जो युद्ध हो रहा है, उसे सुनाता हूँ, तुम स्थिर होकर सुनो ॥५॥

भीमसेनः सुनिशितैर्बाणैर्भित्वा महाचमूम् ।
आससाद ततो वीरः सर्वान्दुर्योधनानुजान् ॥६॥

महावीर भीमसेन अपने तीखे बाणों से कौरवों की विशाल सेना को छिन्न भिन्न करके सारे दुर्योधनों के भाइयों के पास पहुंचा ॥६॥

दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयम् ।
जयत्सेनं विकर्णं च चित्रसेनं सुदर्शनम् ॥७॥
चारुचित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च ।
एतांश्चाऽन्यांश्च सुबहून्समीपस्थान्महारथान् ॥८॥
धार्तराष्ट्रान्सुसंक्रुद्धान्दृष्ट्वा भीमो महारथः ।
भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूम् ॥९॥

दुःशासन, दुर्विषह, दुःसह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, चारुचित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण, कर्ण-ये तथा समीप में ही स्थित महारथी, अन्य क्रोध में भरे हुए धृतराष्ट्र-पुत्रों को महारथी भीम देखकर भीष्म से सुरक्षित कौरवों की सेना में घुस गया ॥७-९॥

अथाऽऽलोक्य प्रविष्टं तमूचुस्ते सर्व एव तु ।
जीवग्राहं निगृह्णीमो वयमेनं नराधिपाः ॥१०॥

जब इन धृतराष्ट्र-पुत्रों ने भीम को सेना के मध्य में घुसा देखा-तो वे बोले-हे नराधिप ! अब हम इस भीम को जीवित ही पकड़े लेते हैं ॥१०॥

स तैः परिवृतः पार्थो भ्रातृभिः कृतनिश्चयैः ।
प्रजासंहरणे सूर्यः क्रूरैरिव महाग्रहैः ॥११॥

इस प्रकार निश्चय किये हुए, दुर्योधन के भ्राताओं से घिरे हुए भीमसेन ऐसे प्रतीत होते थे-जैसे-प्रलयकाल में प्रजा का संहार करने में प्रवृत, सूर्य, क्रूर महाग्रहों से घिरा हुआ हो ॥११॥

सम्प्राप्य मध्यं सैन्यस्य न भीः पाण्डवमाविशत् ।
यथा देवासुरे युद्धे महेन्द्रं प्राप्य दानवान् ॥१२॥

कौरवों की सेना के मध्य में घुस जाने पर भी पाण्डु-पुत्र भीम को कोई भीति उत्पन्न नहीं हुई, जैसे-देवासुर संग्राम में दानवों में घुस जाने पर भी इन्द्र को कोई भय नहीं हुआ था ॥१२॥

ततः शतसहस्राणि रथिनां सर्वशः प्रभो ।
उद्यतानि शरैस्तीव्रैस्तमेकं परिवव्रिरे ॥१३॥

अब सैंकड़ों हजारों की संख्या में रथी उद्यत होकर आए, जिनके पास तीव्र बाण थे। उन सबने अकेले भीम को घेर लिया।

स तेषां प्रवरान्योधान्हस्त्यश्वरथसादिनः ।
जघान समरे शूरो धार्तराष्ट्रानचिन्तयन् ॥१४॥

शूरवीर भीमसेन ने इन वीरों के हाथी, अश्व, रथी और अश्वरोही तथा उत्तम २ वीरों को रण में मार गिराया और इन धृतराष्ट्र-पुत्रों का कोई भय या विचार नहीं किया ॥१४॥

तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षताम् ।
समस्तानां वधे राजन्मतिं चक्रे महामनाः ॥१५॥

हे राजन् ! भीमसेन ने जब तुम्हारे दुःशासनादि-पुत्रों की अपने पकड़ने की इच्छा देखी, तो इस मनस्वी ने सबको एक दम मार डालने का विचार किया ॥१५॥

ततो रथं समुत्सृज्य गदामादाय पाण्डवः ।
जघान धार्तराष्ट्राणां तं बलौघं महार्णवम् ॥१६॥

इसके अनन्तर रथ को छोड़ कर और गदा लेकर पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने धार्तराष्ट्रों की समुद्र के तुल्य उभलती हुई सेना का वध करना आरम्भ किया ॥१६॥

भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः ।
द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः ॥१७॥

भीमसेन के सेना में घुस जाने पर पर्षतवंशोत्पन्न राजकुमार धृष्टद्युम्न भी द्रोण को छोड़कर वेग से वहीं पहुंचा, जहां सुबल-पुत्र शकुनि युद्ध कर रहा था ॥१७॥

निवार्य महतीं सेनां तावकानां नरर्षभः ।
आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे ॥१८॥

नरवीर धृष्टद्युम्न, तुम्हारी सेना को चीर फाड़ कर रण में भीमसेन के शून्य रथ के पास पहुंचा ॥१८॥

दृष्ट्वा विशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिम् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना गतचेतनः ॥१९॥
अपृच्छद्बाष्पसंरुद्धो निःश्वसन्वाचमीरयन् ।
मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः ॥२०॥

हे महाराज ! धृष्टद्युम्न, भीमसेन के सारथि विशोक को अकेला ही देखकर अचेत सा होकर उदास मन से पूछने लगा । धृष्टद्युम्न की आंखों में आंसू भर आए और वह दुःख से श्वास लेता हुआ, गद्गद वाणी से बोला, कि मेरा प्राणों से भी अधिक प्रियमित्र, भीमसेन कहां है ? ॥१९-२०॥

विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृताञ्जलिः ।
संस्थाप्य मामिह बली पाण्डवेयः पराक्रमी ॥२१॥
प्रविष्टो धार्तराष्ट्राणामेतद्बलमहार्णवम् ।
मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्रः प्रीतियुक्तमिदं वचः ॥२२॥

विशोक हाथ जोड़कर धृष्टद्युम्न से कहने लगा-कि पराक्रमी पाण्डु-पुत्र महाबली भीमसेन, मुझे यहीं स्थित करके धार्तराष्ट्रों के सेना समुद्र में घुस गया है और वह पुरुष-व्याघ्र जाता हुआ मुझसे बड़े प्रेम के साथ इस प्रकार प्रीति युक्त वचन कह गया है ।

प्रतिपालय मां सूत नियम्याऽश्वान्मुहूर्तकम् ।
यावदेतान्निहन्म्यद्य य इमे मद्वधोद्यताः ॥२३॥

हे सूत ! तुम थोड़ी देर अश्वों को रोक कर यहाँ मेरी प्रतीक्षा करना । मैं अभी इनको मार कर आ जाता हूं-जो मेरे मारने को तय्यार खड़े हैं ॥२३॥

ततो दृष्ट्वा प्रधावन्तं गदाहस्तं महाबलम् ।
सर्वेषामेव सैन्यानां संहर्षः समजायत ॥२४॥

इसी समय गदा हाथ में लेकर दौड़ते हुए महाबली भीमसेन को सब लोगों ने देखा । यह देखकर सारी सेना में हर्ष उत्पन्न हो गया ॥२४॥

तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके ।
भित्वा राजन्महाव्यूहं प्रविवेश वृकोदरः ॥२५॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार घोर भयानक युद्ध चल रहा था, तो कौरवों के महाव्यूह को चीर कर वृकोदर भीम उसके भीतर घुस गया ॥२५॥

विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽथ पार्षतः ।
प्रत्युवाच ततः सूतं रणमध्ये महाबलः ॥२६॥

पर्षतवंशोद्भव, महाबली धृष्टद्युम्न, भीमसेन के सारथि विशोक के वचन सुनकर रण में उससे कहने लगे ॥२६॥

न हि मे जीवितेनाऽपि विद्यतेऽद्य प्रयोजनम् ।
भीमसेनं रणे हित्वा स्नेहमुत्सृज्य पाण्डवैः ॥२७॥

हे सूत ! आज मेरे जीवन का कोई प्रयोजन शेष नहीं रहेगा, जो पाण्डवों के स्नेह को छोड़कर भीमसेन को रण में छोड़ जाऊं

यदि यामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति ।
एकायनगते भीमे मयि चाऽवस्थिते युधि ॥२८॥

यदि मैं भीमसेन के विना रण से लौट पड़ूंगा- तो यह क्षत्रिय समाज मुझे क्या कहेगा । मैं तो युद्ध में खड़ा कौतूहल (तमाशा) देख रहा हूं और भीमसेन अकेला ही रण में घुस गया है ॥२८॥

अस्वस्ति तस्य कुर्वन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः ।
यः सहायान्परित्यज्य स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम् ॥२९॥

इन्द्र आदि देवता उसका अमङ्गल करते हैं, जो अपने साथियों को विपत्ति में छोड़कर आप आनन्द के साथ घर लौट आवे ॥२९॥

मम भीमः सखा चैव सम्बन्धी च महाबलः ।
भक्तोऽस्मान्भक्तिमांश्चाऽहं तमप्यरिनिषूदनम् ॥३०॥

महाबली भीम मेरा मित्र और सम्बन्धी है । वह हमारा भक्त और हम भी उस अरि-विजयी भीम के भक्तिमान् हैं ॥३०॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः ।
निघ्नन्तं मां रिपून्पश्य दानवानिव वासवम् ॥३१॥

अब मैं भी वहीं पहुंचता हूं-जहां भीमसेन पहुंच गया है । तुम दानवों का इन्द्र की भाँति मुझे शत्रुओं का नाश करते देखोगे ।

एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारत।

भीमसेनस्य मार्गेषु गदाप्रमथितैर्गजैः ॥३२॥

हे भारत! इतना कह कर यह वीर धृष्टद्युम्न भी व्यूह के मध्य में भीमसेन की गदा द्वारा चूर्ण किये हुए हाथियों के गिर जाने से बने हुए मार्ग से चला गया ॥३२॥

स ददर्श तदा भीमं दहन्तं रिपुवाहिनीम्।

वातो वृक्षानिव बलात्प्रभञ्जन्तं रणे रिपून् ॥३३॥

धृष्टद्युम्न ने देखा, कि भीमसेन शत्रु सेना का विध्वंस उड़ा रहा है। यह भीमसेन वन में वृक्षों को तोड़ने वाले घोर वायु के तुल्य युद्ध में शत्रुओं को मारने लगा ॥३३॥

ते वध्यमानाः समरे रथिनः सादिनस्तथा।

पादाता दन्तिनश्चैव चक्रुरार्तस्वरं महत् ॥३४॥

इस प्रकार रणभूमि में मारे हुए, रथी, अश्वारोही, पैदल सैनिक और हाथी, बड़े करुणा स्वर में चीत्कार कर रहे थे ॥३४॥

हाहाकारश्च सञ्जज्ञे तव सैन्यस्य मारिष।

वध्यतो भीमसेनेन कृतिना चित्रयोधिना ॥३५॥

हे आर्य! विचित्र युद्ध करनेवाले युद्धकुशल, भीमसेन द्वारा सेना के मारने से तुम्हारी सेना में हाहाकार मच गया ॥३५॥

ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरम्।

अभीताः समवर्तन्त शस्त्रवृष्ट्या परन्तप ॥३६॥

हे परन्तप ! अस्त्र विद्या में कुशल तुम्हारे महारथी भी वृकोदर भीम को घेर निर्भीक भाव से खड़े हो गए और शस्त्रों की वर्षा करने लगे ॥३६॥

अभिद्रुतं शस्त्रभृतां वरिष्ठं समन्ततः पाण्डवं लोकवीरः ।
सैन्येन घोरेण सुसंहितेन दृष्ट्वा बली पार्षतो भीमसेनम् ॥
अथोपगच्छच्छरविक्षताङ्गं पदातिनं क्रोधविषं वमन्तम् ।
आश्वासयन्पार्षतो भीमसेनं गदाहस्तं कालमिवाऽन्तकाले ॥

महाबली पर्वतवंशोद्भव, लोकविख्यात, महावीर धृष्टद्युम्न, घोर, इकट्ठी हुई सेना द्वारा सब ओर से घेरे हुए, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, पाण्डु-पुत्र भीमसेन को देखकर उसके पास पहुंचा। इस समय भीमसेन का शरीर शरों से क्षत-विक्षत हो रहा था। यह क्रोध से विष सा उगल रहा था और रणभूमि में पैदल ही घूम रहा था। प्रलयकाल में काल की भांति घूमने वाले भीमसेन को देखकर पर्पतकुमार धृष्टद्युम्न ने भीमसेन को सान्त्वना दी ॥३८॥

विशल्यमेनं च चकार तूर्णमारोपयच्चाऽऽत्मरथे महात्मा ।
भृशं परिष्वज्य च भीमसेनमाश्वासयामास स शत्रुमध्ये ॥

महात्मा धृष्टद्युम्न ने इसके शरीर से बड़ी शीघ्रता से बाण निकाले और इसको अपने रथ पर बैठा लिया। शत्रुओं के मध्य में भीमसेन का गाढ़ालिङ्गन करके धृष्टद्युम्न ने उसको धैर्य बंधाया ॥३९॥

आर्त्तनथोपेत्य तवाऽपि पुत्रस्तस्मिन्विमर्दे महति प्रवृत्ते ।
अयं दुरात्मा द्रुपदस्य पुत्रः समागतो भीमसेनेन सार्धम् ॥
तं याम सर्वे महता बलेन मा वो रिपुः प्रार्थयतामनीकम् ।

जब यह घोर युद्ध प्रवृत हो रहा था, तब तुम्हारा पुत्र दुर्योधन भी अपने भाइयों के पास पहुंचा और उसने कहा—यह दुरात्मा द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न भीमसेन के साथ आ गया है। हम सब बड़ी भारी सेना के साथ इस पर प्रथम ही आक्रमण करें, जब तक वह हमारी सेना से लड़ने को उसे आह्वान करने में सन्नद्ध न हो सके ॥४०॥

श्रुत्वा तु वाक्यं तममृष्यमाणाज्येष्ठाज्ञया नोदिताधार्तराष्ट्राः
वधाय निष्पेतुरुदायुधास्ते युगक्षये केतवो यद्वदुग्राः ।

राजा दुर्योधन के वाक्य सुनकर वे चुप नहीं रह सके और सारे धार्तराष्ट्र अपने बड़े भाई की आज्ञा से प्रेरित हुए शस्त्र लेकर प्रलय काल में उग्र धूमकेतु आदि ग्रहों की भांति धृष्टद्युम्न के वध के लिए दौड़ पड़े ॥४१॥

प्रगृह्य चाऽस्त्राणिधनूंषि वीरा ज्यां नेमिघोषैःप्रविकम्पयन्तः
शरैरवर्षन्द्रुपदस्य पुत्रं यथाऽम्बुदा भूधरं वारिजालैः ।
निहत्य तांश्चाऽपि शरैः सुतीक्ष्णैर्न विव्यथे समरे चित्रयोधी

ये वीर, अस्त्र और धनुष लेकर नेमिघोषों (रथ की ध्वनि) के साथ धनुष की प्रत्यञ्चा की ध्वनि करने लगे। ये द्रुपद के पुत्र

धृष्टद्युम्न पर इस प्रकार शर-वर्षा करने लगे जैसे-वारिधारा से मेघ पर्वत पर बरस रहा हो। विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले, धृष्टद्युम्न भी अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके बाणों को काटकर युद्ध में बिना किसी भी व्यथा के खड़े रहे ॥४२-४३॥

समभ्युदीर्णांश्च तवाऽऽत्मजांस्तथा,
निशम्य वीरानभितः स्थितान्रणे ।
जिघांसुरुग्रं द्रुपदात्मजो युवा,
प्रमोहनास्त्रं युयुजे महारथः ॥४४॥

अत्यन्त आवेश में भरे हुए, तुम्हारे वीर पुत्रों को रण में अपने चारों ओर देखकर उनके वध की अभिलाषा रखने वाले युवा, द्रुपद-पुत्र महारथी धृष्टद्युम्न ने अपने उग्र, प्रमोहनास्त्र का प्रयोग किया ॥४४॥

क्रुद्धो भृशं तव पुत्रेषु राजन्दैत्येषु यद्वत्समरे महेन्द्रः ।
ततो व्यमुह्यन्त रणे नृवीराः प्रमोहनास्त्राहतबुद्धिसत्त्वाः ॥४५॥

हे राजन्! दैत्यों पर महेन्द्र की भांति तुम्हारे पुत्रों पर धृष्टद्युम्न अत्यन्त ही कुपित हो उठा। इसके अनन्तर प्रमोहनास्त्र से नष्ट बुद्धि और नष्ट मन वाले होकर सारे वीर, मोहित (बेहोश) से हो गए ॥४५॥

प्रदुद्रुवुः कुरवश्चैव सर्वे सवाजिनागाः सरथाः समन्तात् ।
परीतकालानिव नष्टसंज्ञान्मोहोपेतांस्तव पुत्रान्निशम्य ॥४६॥

इस अस्त्र के प्रयोग को देखकर सारे कौरव वीर, अश्व, हाथी, रथ आदि के साथ चारों ओर भागने लगे, क्योंकि उन्होंने तुम्हारे पुत्रों को काल से पकड़े हुए, अचेत, मोह से युक्त हुए देख लिया था ।।४६।।

एतस्मिन्नेव काले तु द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
द्रुपदं त्रिभिरासाद्य शरैर्विव्याध दारुणैः ।।४७।।

इसी समय शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने आकर राजा द्रुपद को तीन दारुण बाणों से बींध लिया ।।४७।।

सोऽतिविद्धस्ततो राजन्रणे द्रोणेन पार्थिवः ।
अपायाद् द्रुपदो राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ।।४८।।

हे राजन् ! राजा द्रुपद भी द्रोण द्वारा इस प्रकार बाणों से आहत होकर द्रोण से अपने पूर्व वैर का स्मरण करके रण से खसक गया ।।४८।।

जित्वा तु द्रुपदं द्रोणः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।
तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा वित्रेसुः सर्वसोमकाः ।।४९।।

इस प्रकार द्रुपद को जीतकर प्रतापी द्रोणाचार्य ने शङ्ख बजाया । उसके इस शंख के घोष को सुनकर सारे सोमक वीर दहल उठे ।।४९।।

अथ शुश्राव तेजस्वी द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
प्रमोहनास्त्रेण रणे मोहितानात्मजांस्तव ।।५०।।
ततो द्रोणो महाराज त्वरितोऽभ्याययौ रणात् ।

अब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, तेजस्वी द्रोणाचार्य ने सुना, कि धृष्टद्युम्न ने रण में प्रमोहनास्त्र से धृतराष्ट्र के पुत्रों को मोहित कर रखा है। हे महाराज! अब द्रोण बड़े वेग से इस रण को छोड़ कर वहाँ पहुंचा ॥५०॥

तत्राऽपश्यन्महेश्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥५१॥
धृष्टद्युम्नं च भीमं च विचरन्तौ महारणे।
मोहाविष्टांश्च ते पुत्रानपश्यत्स महारथः ॥५२॥

वहां जाकर महाधनुर्धर, प्रतापी, भरद्वाजवंशोत्पन्न द्रोणाचार्य ने इस महारण में केवल धृष्टद्युम्न और भीमसेन को घूमते और तुम्हारे प्यारे-पुत्रों को मोह में आविष्ट अचेत देखा ॥५१-५२॥

ततः प्रज्ञास्त्रमादाय मोहनास्त्रं व्यनाशयत्।
अथ प्रत्यागतप्राणास्तव पुत्रा महारथाः ॥५३॥
पुनर्युद्धाय समरे प्रययुर्भीमपार्षतौ।

द्रोणाचार्य ने प्रज्ञास्त्र का प्रयोग करके संमोहनास्त्र को निवृत्त किया। इसके अनन्तर तुम्हारे महारथी पुत्रों के शरीर में फिर से प्राणों का सञ्चार होने लगा। अब फिर युद्ध के लिए भीम और धृष्टद्युम्न आगे बढ़े ॥५३॥

ततो युधिष्ठिरः प्राह समाहूय स्वसैनिकान् ॥५४॥
गच्छन्तु पदवीं शक्त्या भीमपार्षतयोर्युधि।

अब राजा युधिष्ठिर ने अपने सैनिकों को बुलाकर कहा-तुम लोग युद्ध में जहां तक हो सके-भीम और धृष्टद्युम्न की रक्षा में तत्पर हो जाओ ॥५४॥

सौभद्रप्रमुखा वीरा रथा द्वादश दंशिताः ॥५५॥
प्रवृत्तिमधिगच्छन्तु नहि शुद्ध्यति मे मनः।

सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के सदृश बारह महारथी वीर तय्यार हो जाओ और भीम तथा धृष्टद्युम्न के समाचारों का पता लगाओ। इस समय मेरा मन बड़ी आशङ्का कर रहा है, शुद्ध नहीं है ॥५५॥

त एवं समनुज्ञाताः शूरा विक्रान्तयोधिनः ॥५६॥
बाढमित्येवमुक्त्वा तु सर्वे पुरुषमानिनः।
मध्यन्दिनगते सूर्ये प्रययुः सर्व एव हि ॥५७॥
केकया द्रौपदेयाश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान्।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य महत्या सेनया वृताः ॥५८॥

राजा युधिष्ठिर की इतनी आज्ञा सुनकर बड़े पराक्रम के साथ युद्ध करने वाले, शूरवीर, "जो सच्चे वीर होने का अभिमान रखते थे" अच्छी बात है-ऐसा कह कर मध्यान्हकाल में सूर्य के ललाट पर तपने के समय केकय-राजकुमार, द्रौपदी-पुत्र; वीर्यवान् धृष्टकेतु, बड़ी भारी सेना के साथ अभिमन्यु को आगे करके युद्ध के लिए चल पड़े ॥५६-५८॥

ते कृत्वा समरे व्यूहं सूचीमुखमरिन्दमाः।
बिभिदुर्धार्तराष्ट्राणां तद्रथानीकमाहवे ॥५९॥

इन शत्रु-विजयी वीरों ने रण में सूचीमुख नामक अपनी सेना का व्यूह रचा और रण में धार्तराष्ट्रों के रथ की सेना का व्यूह, छिन्न-भिन्न कर दिया ॥५९॥

तान्प्रयातान्महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् ।
भीमसेनभयाविष्टा धृष्टद्युम्नविमोहिता ॥६०॥
न संवारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप ।
मदमूर्छान्वितात्मा वै प्रमदेवाऽध्वनि स्थिता ॥६१॥

हे जनाधिप ! इन महाधनुर्धर अभिमन्यु आदि वीरों को आता हुआ देखकर भीमसेन के भय से आतुर, धृष्टद्युम्न के भय से विमोहित, तुम्हारी सेना इनके रोकने में समर्थ नहीं हो सकी और मद तथा मूर्च्छा में व्याप्त हुई, मार्ग में स्थित स्त्री की भाँति स्थित रह गई ॥६०-६१॥

तेऽभिजाता महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
परीप्सन्तोऽभ्यधावन्त धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ॥६२॥

ये उत्तम वीर, क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए, महाधनुर्धर, सुवर्ण की ध्वजाओं से संयुक्त, धृष्टद्युम्न और भीमसेन के समीप पहुंचने की अभिलाषा से वेग से बढ़े जा रहे थे ॥६२॥

तौ च दृष्ट्वा महेष्वासावभिमन्युपुरोगमान् ।
बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीम् ॥६३॥

अभिमन्यु आदि महारथियों को वहां उपस्थित देखकर वे दोनों महाधनुर्धर भीमसेन और धृष्टद्युम्न, बड़े आनन्द से युक्त हुए, उत्साह में भरकर तुम्हारी सेना का नाश करने लगे ॥६३॥

दृष्ट्वा तु सहसा यान्तं पाञ्चाल्यो गुरुमात्मनः ।
नाऽशंसत वधं वीरः पुत्राणां तव भारत ॥६४॥

हे भारत ! अचानक पाञ्चालवीरों के गुरु द्रोणाचार्य को आते हुए देखकर महावीर धृष्टद्युम्न ने तुम्हारे पुत्रों के वध करने के मनोरथ का परित्याग कर दिया ॥६४॥

ततो रथं समारोप्य कैकेयस्य वृकोदरम् ।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो द्रोणमिष्वस्त्रपारगम् ॥६५॥

इसके अनन्तर भीमसेन को केकयराज के रथ पर चढ़ाकर क्रोध में भरे हुए धृष्टद्युम्न, अस्त्र विद्या में कुशल, द्रोण पर झपटे।

तस्याऽभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
क्रुद्धश्चिच्छेद बाणेन धनुः शत्रुनिबर्हणः ॥६६॥

इसको इस भांति झपटते हुए देखकर प्रतापी भरद्वाजवंशोत्पन्न शत्रु-नाशक, द्रोणाचार्य ने क्रोध में भर कर अपने बाण से धृष्टद्युम्न का धनुष काट दिया ॥६६॥

अन्यांश्च शतशो बाणान्प्रेषयामास पार्षते ।
दुर्योधनहितार्थाय भर्तृपिण्डमनुस्मरन् ॥६७॥

द्रोण ने अनेक बाण पर्षतवंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न पर छोड़े । ये अपने स्वामी के अन्न से उऋण होना चाहते थे, इससे अपने स्वामी राजा दुर्योधन के हित के लिए सब कुछ प्रयत्न कर रहे थे ॥६७॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणं विव्याध विंशत्या रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥६८॥
तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदाऽमित्रकर्शनः ।

शत्रु-विजयी, पर्षतवंशोत्पन्न, धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष उठाया और सुवर्ण की पुङ्ख वाले, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों से बींध दिया। शत्रु-नाशक द्रोण ने इसका धनुष फिर काट गिराया।

हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥६९॥
वैवस्वतक्षयं घोरं प्रेषयामास भारत।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥७०॥

हे भारत! चार उत्तम बाणों से इसने धृष्टद्युम्न के चारों अश्वों को घोर यमराज के घर भेज दिया और इसके सारथि को भी एक बाण से ही मृत्यु के अधीन किया ॥६९-७०॥

हताश्वात्स रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः।
आरुरोह महाबाहुरभिमन्योर्महारथम् ॥७१॥

ये महारथी महाबाहु धृष्टद्युम्न, अब शीघ्र इस रथ से कूद पड़े और अभिमन्यु के रथ पर जा बैठे ॥७१॥

ततः सरथनागाश्वा समकम्पत वाहिनी।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥७२॥

पर्षतवंशज, धृष्टद्युम्न और भीमसेन के देखते २ रथ, हाथी और अश्वों से युक्त पाण्डवों की सेना द्रोण के अस्त्रों से पीड़ित होकर कांपने लगी ॥७२॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेनाऽमिततेजसा।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं समस्तास्ते महारथाः ॥७३॥

अत्यन्त तेजस्वी द्रोण द्वारा छिन्न भिन्न की हुई, सेना को देखकर वे सारे महारथी भी उनको रोकने में समर्थ नहीं हो सके

वध्यमानं तु तत्सैन्यं द्रोणेन निशितैः शरैः ।
न्यभ्रमत्तत्र तत्रैव क्षोभ्यमाण इवाऽर्णवः ॥७४॥
तथा दृष्ट्वा च तत्सैन्यं जहृषे तावकं बलम् ।

द्रोण द्वारा तीक्ष्ण बाणों से आहत की हुई सेना आलोडित किये हुए समुद्र की भांति डगमगाने लगी । इस दशा को देखकर तुम्हारी सेना प्रस हो उठी ॥७४॥

दृष्ट्वाऽऽचार्यं सुसंक्रुद्धं पतन्तं रिपुवाहिनीम् ।
चुक्रुशुः सर्वतो योधाः साधु साध्विति भारत ॥७५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे द्रोणपराक्रमे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

हे भारत ! रिपु सेना को गिराते हुए, क्रोधपूर्ण, द्रोणाचार्य को देखकर सब ओर से सारे योद्धा, धन्य २ की ध्वनि कहने लगे।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घोर युद्ध और द्रोण के पराक्रम का सतहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ



अठहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो दुर्योधनो राजा मोहात्प्रत्यागतस्तदा ।
शरवर्षैः पुनर्भीमं प्रत्यवारयदच्युतम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! राजा दुर्योधन भूल से फिर लौटा और युद्ध से पीछे पद नहीं हटाने वाले, भीमसेन पर बाण वर्षा करने लगा ॥१॥

एकीभूतास्ततश्चैव तव पुत्रा महारथाः ।
समेत्य समरे भीमं योधयामासुरुद्यताः ॥२॥

हे राजन् ! इस समय तुम्हारे सारे महारथी पुत्र इकट्ठे हो गए और बड़ी तय्यारी के साथ रण में भीम से लड़ने को उद्यत हो गए ॥२॥

भीमसेनोऽपि समरे सम्प्राप्य स्वरथं पुनः ।
समारुह्य महाबाहुर्ययौ येन तवाऽऽत्मजः ॥३॥

महाबाहु भीमसेन ने भी फिर अपना दूसरा रथ मंगवाया और उस पर चढ़कर उसी ओर चल दिए, जिधर तुम्हारे पुत्र गए थे ।

प्रगृह्य च महावेगं परासुकरणं दृढम् ।
सज्जं शरासनं संख्ये शरैर्विव्याध ते सुतम् ॥४॥

हे राजन्! अब भीमसेन ने प्राण खैंच लेनेवाला, महावेग-शील दृढ़ धनुष चढ़ाया और वह उससे रण में तुम्हारे पुत्रों को बाणों से घायल करने लगा ॥४॥

ततो दुर्योधनो राजा भीमसेनं महाबलम्।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं मर्मण्यताडयत् ॥५॥

राजा दुर्योधन ने भी महा बलवान् भीमसेन के मर्म स्थान में एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारकर उसको छेदित कर दिया ॥५॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तव पुत्रेण धन्विना।
क्रोधसंरक्तनयनो वेगेनाऽऽक्षिप्य कार्मुकम् ॥६॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत्।
स तत्र शुशुभे राजा शिखरैर्गिरिराडिव ॥७॥

वह महाधनुर्धर, भीम, तुम्हारे पुत्र के उस बाण से अत्यन्त पीड़ित हो उठा और इसकी क्रोधसे आंखें लाल हो गई। उसने बड़ी शीघ्रता से धनुष उठाकर तीन बाण दुर्योधन के बाहु और वक्षस्थल में मारे। इस समय राजा दुर्योधन तीन शिखरों से युक्त पर्वत के समान सुशोभित हो रहे थे ॥७॥

तौ दृष्ट्वा समरे क्रुद्धौ विनिघ्नन्तौ परस्परम्।
दुर्योधनानुजाः सर्वे शूराः सन्त्यक्तजीविताः ॥८॥
संस्मृत्य मन्त्रितं पूर्वं निग्रहे भीमकर्मणः।
निश्चयं परमं कृत्वा निग्रहीतुं प्रचक्रमुः ॥९॥

रणभूमि में इन दोनों वीर, भीम और दुर्योधन को इस प्रकार परस्पर प्रहार करते देखकर दुर्योधन के सारे छोटे शूरवीर भ्राता, प्राणों का मोह छोड़कर और भीमकर्मा भीमसेन के जीवित ही पकड़ने की मन्त्रणा का स्मरण करके पकड़ने का निश्चय करके चल पड़े ॥८-९॥

तानापतत एवाऽऽजौ भीमसेनो महाबलः ।
प्रत्युद्ययौ महाराज गजः प्रतिगजानिव ॥१०॥

हे महाराज ! उनको रण में झपटते देखकर महाबली भीमसेन भी गजों की ओर महागज की भांति उनकी ओर दौड़े ॥१०॥

भृशं क्रुद्धश्च तेजस्वी नाराचेन समार्पयत् ।
चित्रसेनं महाराज तव पुत्रं महायशाः ॥११॥

हे महाराज ! तेजस्वी, महायशस्वी, भीमसेन, अत्यन्त कुपित हो रहे थे, उन्होंने तुम्हारे पुत्र चित्रसेन के ऊपर एक तीक्ष्ण बाण का प्रहार किया ॥११॥

तथेतरांस्तव सुतांस्ताडयामास भारत ।
शरैर्बहुविधैः संख्ये रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः ॥१२॥

हे भारत ! इसी प्रकार रणभूमि में अत्यन्त तीक्ष्ण, सुवर्ण के मूल वाले बहुत से बाणों से तुम्हारे अन्य पुत्रों को भीमसेन ने घायल कर दिया ॥१२॥

ततः संस्थाप्य समरे तान्यनीकानि सर्वशः ।
अभिमन्युप्रभृतयस्ते द्वादश महारथाः ॥१३॥

प्रेषिता धर्मराजेन भीमसेनपदानुगाः ।
प्रतिजग्मुर्महाराज तव पुत्रान्महाबलान् ॥१४॥

हे महाराज ! अब अभिमन्यु आदि बारह महारथी वीरों को भीमसेन की रक्षा के लिए धर्मराज ने प्रेषित किया और ये अपनी २ सेना को उत्तम स्थानों (नाकों) पर नियुक्त करके तुम्हारे महाबली पुत्रों पर चढ़ दौड़े ॥१३-१४॥

दृष्ट्वा रथस्थांस्ताञ्शूरान्सूर्याग्निसमतेजसः ।
सर्वानेव महेष्वासान्भ्राजमानाञ्श्रिया वृतान् ॥१५॥

महाहवे दीप्यमानान्सुवर्णमुकुटोज्ज्वलान् ।
तत्यजुः समरे भीमं तव पुत्रा महाबलाः ॥१६॥

सूर्य और अग्नि के तुल्य देदीप्यमान, रथ में स्थित, शूरवीर, देह की कान्ति से जाज्वल्यमान, महाधनुर्धर, सुवर्ण के मुकुटों से कान्तिमान्, इन बारह महारथी तेजस्वी वीरों को देखकर तुम्हारे महाबली पुत्र, भीमसेन का पीछा करना छोड़कर खसक चले ॥१६

तान्नाऽमृष्यत कौन्तेयो जीवमाना गता इति ।
अन्वीय च पुनः सर्वास्तव पुत्रानपीडयत् ॥१७॥

कुन्ती-पुत्र भीमसेन को यह अच्छा प्रतीत नहीं हुआ, कि ये सारे जीते ही निकल गए। यह उनके पीछे दौड़कर सबको पीड़ित करने लगा ॥१७॥

अथाऽभिमन्युं समरे भीमसेनेन सङ्गतम् ।
पार्षतेन च सम्प्रेक्ष्य तत्र सैन्ये महारथाः ॥१८॥

दुर्योधनप्रभृतयः प्रगृहीतशरासनाः ।
भृशमश्वैः प्रजवितैः प्रययुर्यत्र ते रथाः ॥१९॥

अब तुम्हारे दुर्योधन आदि महारथी पुत्रोंने रणमें भीमसेन और पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न से अभिमन्यु आदि बारह महारथी वीरों को मिलते हुए देखकर धनुष उठाए और अपने वेगशील अश्वों से वहां पहुंचे, जहां वे महारथी स्थित थे ॥१८-१९॥

अपराह्णे महाराज प्रावर्तत महारणः ।
तावकानां च बलिनां परेषां चैव भारत ॥२०॥

हे महाराज ! दोपहर के पीछे तुम्हारे महाबली पुत्र और पाण्डवों में घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥२०॥

अभिमन्युर्विकर्णस्य हयान्हत्वा महाहवे ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥२१॥

इस महायुद्ध में अभिमन्यु ने विकर्ण के अश्वों को मार गिराया और पचीस क्षुद्रक बाण इसके ऊपर छोड़े ॥२१॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य विकर्णस्तु महारथः ।
आरुरोह रथं राजंश्चित्रसेनस्य भारत ॥२२॥

हे भारत ! महारथी विकर्ण भी मृत अश्वों के रथ को छोड़ कर चित्रसेन के रथ पर चढ़ गया ॥२२॥

स्थितावेकरथे तौ तु भ्रातरौ कुलवर्धनौ ।
आर्जुनिः शरजालेन च्छादयामास भारत ॥२३॥

हे राजन् ! ये दोनों कुलवर्धन भ्राता एक रथ में चढ़ गए। अब इन दोनों को अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने अपने बाण समूह से आच्छादित कर दिया ॥२३॥

चित्रसेनो विकर्णश्च कार्ष्णिं पञ्चभिरायसैः ।
विव्याध तेन चाऽकम्पत्कार्ष्णिर्मेरुरिव स्थितः ॥२४॥

चित्रसेन और विकर्ण ने कृष्ण (अर्जुन) पुत्र अभिमन्यु को पांच लोहमय बाणों से बींधा, जिससे वह कम्पित न होकर मेरु-पर्वत की भांति अचल ही खड़ा रहा ॥२४॥

दुःशासनस्तु समरे केकयान्पञ्च मारिष ।
योधयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२५॥

हे आर्य-गुण-सम्पन्न ! राजन् ! दुःशासन ने रण में पांच केकय राजकुमारों से इतना अच्छा युद्ध किया, जो बड़ा ही अद्भुत दृश्य था ॥२५॥

द्रौपदेया रणे क्रुद्धा दुर्योधनमवारयन् ।
शरैराशीविषाकारैः पुत्रं तव विशाम्पते ॥२६॥

हे विशाम्पते ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को द्रौपदी के पुत्रों ने रण में क्रुद्ध होकर सर्प के तुल्य भीषण बाणों से ढक दिया।

पुत्रोऽपि तव दुर्धर्षो द्रौपद्यास्तनयान्रणे ।
सायकैर्निशितै राजन्नाजघान पृथक्पृथक् ॥२७॥

तुम्हारे दुर्धर्ष-पुत्र दुर्योधन ने भी रण में द्रौपदी के पुत्रों को तीक्ष्ण बाणों से पृथक् २ बींध दिया ॥२७॥

तैश्चाऽपि विद्धः शुशुभे रुधिरेण समुक्षितः ।
गिरिः प्रस्रवणैर्यद्वद्गैरिकादिविमिश्रितैः ॥२८॥

द्रौपदी के पुत्रों से विद्ध, रुधिर से भीगा हुआ, राजा दुर्योधन, गैरिक (गेरु) आदि धातुओं से मिले हुए झरनों से युक्त पर्वत सा प्रतीत होता था ॥२८॥

भीष्मोऽपि समरे राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कालयामास बलवान्पालः पशुगणानिव ॥२९॥

भीष्म भी रण में पाण्डवों की सेना को पशुओं को बलवान् पशुपालक की भाँति खदेड़ रहा था ॥२९॥

ततो गाण्डीवनिर्घोषः प्रादुरासीद्विशाम्पते ।
दक्षिणेन वरूथिन्याः पार्थस्याऽरीन्विनिघ्नतः ॥३०॥

हे विशाम्पते ! इतने में ही शत्रुओं का वध करते हुए अर्जुन के गाण्डीव धनुष की ध्वनि रण में दायीं ओर की सेना में सुनाई पड़ी ॥३०॥

उत्तस्थुः समरे तत्र कबन्धानि समन्ततः ।
कुरूणां चैव सैन्येषु पाण्डवानां च भारत ॥३१॥

हे भारत ! इस युद्ध में अनेक कबन्ध कौरव और पाण्डवों की सेना में उठ २ कर युद्ध कर रहे थे ॥३१॥

शोणितोदं शरावर्तं गजद्वीपं हयोर्मिणम् ।
रथनौभिर्नरव्याघ्राः प्रतेरुः सैन्यसागरम् ॥३२॥

रक्त के जल से पूर्ण, बाणों के आवर्त वाले, हाथियों के द्वीपों से समन्वित, अश्वों की लहरों से सुशोभित, इस सेना समुद्र को रथों की नौकाओं से वीर लोग तैर रहे थे ॥३२॥

छिन्नहस्ता विकवचा विदेहाश्च नरोत्तमाः ।
दृश्यन्ते पतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥३३॥

किन्हीं वीरों के हाथ कट गए, कवच छिन्न भिन्न हो गए। ऐसे अनेक वीर पुरुष, क्षत-विक्षत देह से सैंकड़ों हजारों की संख्या में रणभूमि में पड़े हुए दिखाई दे रहे थे ॥३३॥

निहतैर्मत्तमातङ्गैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ पर्वतैराचिता यथा ॥३४॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! रक्त प्रवाह में भीगे हुए मृत, मदोन्मत्त हाथियों से रणभूमि, पर्वतों से व्याप्त सी दिखाई देती थी ॥३४॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम तव तेषां च भारत ।
न तत्राऽऽसीत्पुमान्कश्चिद्यो युद्धं नाऽभिकांक्षति ॥३५॥

हे भारत ! इस रण में हमने एक अद्भुत दृश्य देखा, कि तुम्हारी और पाण्डवों की सेना में कोई ऐसा पुरुष नहीं था, जो युद्ध करने को आतुर न हो रहा हो ॥३५॥

एवं युयुधिरे वीराः प्रार्थयाना महद्यशः ।
तावकाः पाण्डवैः सार्धमाकांक्षन्तो जयं युधि ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अपने २ महान् यश की अभिलाषा में भरे हुए, तुम्हारे और पाण्डवों के वीर, रण में अपनी २ जय की आकांक्षा से घोर युद्ध कर रहे थे ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में घोर युद्ध का अठहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

उनासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे।
संग्रामरभसो भीमं हन्तुकामोऽभ्यधावत ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! इसके अनन्तर सूर्य के रक्त वर्ण होने के साथ ही राजा दुर्योधन संग्राम के उत्साह से सम्पन्न होकर भीम के मारने की कामना से बड़े वेग से दौड़ा ॥१॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य नृवीरं दृढवैरिणम्।
भीमसेनः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥२॥

मनुष्यों में वीर, दृढ़ वैर रखने वाले, राजा दुर्योधन को आता हुआ देखकर क्रोधाविष्ट भीमसेन यह वचन बोला ॥२॥

अयं स कालः सम्प्राप्तो वर्षपूगाभिवाञ्छितः ।
अद्य त्वां निहनिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ॥३॥

हे दुर्योधन ! बहुत से वर्षों से जिस काल की प्रतीक्षा थी, वह काल आज प्राप्त हो गया है । जो तू रण को छोड़कर नहीं भागेगा· तो मैं तुझे मारे विना नहीं छोड़ूंगा ॥३॥

अद्य कुन्त्याः परिक्लेशं वनवासं च कृत्स्नशः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं प्रणेष्यामि हते त्वयि ॥४॥

आज तेरे मार लेने पर ही कुन्ती के क्लेश, वनवास की सारी यातनाएँ और द्रौपदी की चिन्ता इन सबका परिमार्जन हो जावेगा ।

यत्पुरा मत्सरी भूत्वा पाण्डवानवमन्यसे ।
तस्य पापस्य गान्धारे पश्य व्यसनमागतम् ॥५॥

हे गान्धारी-पुत्र ! जो तू हम पाण्डवों का द्वेषी होकर सदा हमारा तिरस्कार करता रहता था, उस पाप का परिणाम यह विपत्ति या मृत्यु को सामने खड़ी हुई देख ले ॥५॥

कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च यत्पुरा ।
अचिन्त्य पाण्डवान्कामाद्यथेष्टं कृतवानसि ॥६॥

याचमानं च यन्मोहाद्दाशार्हमवमन्यसे ।
उलूकस्य समादेशं यद्ददासि च हृष्टवत् ॥७॥

तेन त्वां निहनिष्यामि सानुबन्धं सबान्धवम् ।
समीकरिष्ये तत्पापं यत्पुरा कृतवानसि ॥८॥

हे दुर्योधन! तू सदा से सुबल-पुत्र शकुनि और कर्ण के मतमें स्थित होकर हम पाण्डवों की कुछ भी अपेक्षा (परवा) नहीं रखता था और अपनी इच्छा के अनुकूल, उच्छृङ्खलता के साथ वर्ताव करता था। जब सन्धि की याचना की, तो दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण को भी अपमानित किया। उलूक को अपमान पूर्ण सन्देश देकर हमारे पास भेजा। मैं इन सभी कुकर्मों के प्रतीकार में आज तुझे अनुचर और बान्धवों के साथ मार कर रहूंगा और उस पाप का परिमार्जन कर दूंगा-जो तू अब तक करता चला आ रहा है ॥८॥

एवमुक्त्वा धनुर्घोरं विकृष्योद्भ्राम्य चाऽसकृत्।
समाधत्त शरान्घोरान्महाशनिसमप्रभान् ॥९॥

इतना कह कर भीमसेन ने घोर धनुष चढ़ाया और उसको बार २ घुमा कर उस पर घोर वज्रोपम बाण चढ़ाए ॥९॥

षड्विंशतिमसंक्रुद्धो मुमोचाऽऽशु सुयोधने।
ज्वलिताग्निशिखाकारान्वज्रकल्पानजिह्मगान् ॥१०॥

भीमसेन ने बिना किसी क्रोध के प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला के तुल्य, वज्रोपम, सीधे जाने वाले छब्बीस बाण दुर्योधन पर छोड़े ॥१०॥

ततोऽस्य कार्मुकं द्वाभ्यां सूतं द्वाभ्यां च विव्यधे।
चतुर्भिरश्वाञ्जवनाननयद्यमसादनम् ॥११॥
द्वाभ्यां च सुविकृष्टाभ्यां शराभ्यामरिमर्दनः।
छत्रं चिच्छेद समरे राज्ञस्तस्य नरोत्तम ॥१२॥

षड्भिश्च तस्य चिच्छेद ज्वलन्तं ध्वजमुत्तमम् ।
छित्वा तं च ननादोच्चैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥१३॥

हे नरोत्तम ! भीमसेन ने दो बाणों से राजा दुर्योधन के धनुष को काट दिया और दो से सारथि, चार बाणों से वेगशील अश्वों को आहत करके यमधाम पहुंचा दिया । इसी तरह अरिमर्दन भीम ने कान तक खैंचे हुए धनुष से छोड़े हुए दो बाणों से रण में राजा दुर्योधन का छत्र काट गिराया । छः बाणों से दुर्योधन के देखते २ चमकीली सर्वोत्तम ध्वजा को काट दी और इन सब को काट पीट कर वह बड़े उच्च स्वर में गर्जना करने लगा ॥११-१३॥

रथाच्च स ध्वजः श्रीमान्नानारत्नविभूषितात् ।
पपात सहसा भूमौ विद्युज्जलधरादिव ॥१४॥

यह कान्तिमती ध्वजा, अनेक रत्नों से विभूषित, रथ से इस तरह गिरी-जैसे-मेघ से बिजली गिरती है ॥१४॥

ज्वलन्तं सूर्यसङ्काशं नागं मणिमयं शुभम् ।
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ॥१५॥

जाज्वलमान, सूर्य के सदृश प्रदीप्त, मणि जटित, सुन्दर नाग (हाथी) के चिन्ह से अङ्कित, कुरुराज दुर्योधन की कटी हुई ध्वजा को सब राजाओं ने अचम्भे के साथ देखा ॥१५॥

अथैनं दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ।
आजघान रणे वीरं स्मयन्निव महारथः ॥१६॥

अब महारथी भीम ने हँसते २ तोत्र (मोटे डण्डे) से महागज की भांति दश बाणों से महावीर भीमसेन को रणमें आहत किया।

ततः स राजा सिन्धूनां रथश्रेष्ठो महारथः।
दुर्योधनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥१७॥

इसके अनन्तर सिन्धुराज, रथियों में श्रेष्ठ, महारथी जयद्रथ, अच्छे २ वीर पुरुषों को साथ लेकर राजा दुर्योधन की पृष्ठ की रक्षा करने लगा ॥१७॥

कृपश्च रथिनां श्रेष्ठः कौरव्यममितौजसम्।
आरोपयद्रथं राजन्दुर्योधनममर्षणम् ॥१८॥

हे राजन्! रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने लपक कर अमित-ओजस्वी, असहिष्णु, कुरुराज दुर्योधन को अपने रथ में बैठा लिया

स गाढविद्धो व्यथितो भीमसेनेन संयुगे।
निषसाद रथोपस्थे राजन्दुर्योधनस्तदा ॥१९॥

हे राजन्! रण में भीमसेन से गाढ़ी तरह आहत होकर व्यथित हुए राजा दुर्योधन, रथ के स्तम्भ से चिपट कर बैठ गए।

परिवार्य ततो भीमं जेतुकामो जयद्रथः।
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्याऽवारयद्दिशः ॥२०॥

भीम के जीतने का मनोरथ लेकर राजा जयद्रथ ने भीम को घेर लिया और सहस्रों रथ लेकर इसने इसके मार्ग को रोक दिया।

धृष्टकेतुस्ततो राजन्नभिमन्युश्च वीर्यवान्।
केकया द्रौपदेयाश्च तव पुत्रानयोधयन् ॥२१॥

हे राजन्! अब धृष्टकेतु, वीर्यवान् अभिमन्यु, केकयराजकुमार और द्रौपदी-पुत्र, तुम्हारे पुत्रों से लड़ने लगे ॥२१॥

चित्रसेनः सुचित्रश्च चित्राङ्गश्चित्रदर्शनः।
चारुचित्रः सुचारुश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥२२॥

अष्टावेते महेष्वासाः सुकुमारा यशस्विनः।
अभिमन्युरथं राजन्समन्तात्पर्यवारयन् ॥२३॥

चित्रसेन, चित्राङ्ग, सुचित्र, चित्रदर्शन, चारुचित्र, सुचारु, नन्द, उपनन्दक, इन आठ महाधनुर्धर यशस्वी, तुम्हारे सुकुमार कुमारों ने अभिमन्यु के रथ को चारों ओर से घेर लिया ॥२३॥

आजघान ततस्तूर्णमभिमन्युर्महामनाः।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः शितैः सन्नतपर्वभिः ॥२४॥
वज्रमृत्युप्रतीकाशैर्विचित्रायुधनिःसृतैः।

अब महामनस्वी वेगशील अभिमन्यु ने बड़े वेग के साथ झुकी पर्व वाले, पांच २ तीखे बाणों से प्रत्येक राजकुमार को बींध दिया, जो बाण वज्र और मृत्यु के सदृश, विचित्र धनुष द्वारा छोड़े हुए थे ॥२४॥

अमृष्यमाणास्ते सर्वे सौभद्रं रथसत्तमम् ॥२५॥
ववृषुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेरुमिवाऽम्बुदाः।

इन सारे राजकुमारों ने भी इसके इस प्रहार को क्षमा नहीं किया और इस पर मेरु पर्वत पर मेघों की भांति तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करना आरम्भ किया ॥२५॥

स पीड्यमानः समरे कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥२६॥

अभिमन्युर्महाराज तावकान्समकम्पयत् ।

यथा देवासुरे युद्धे वज्रपाणिर्महासुरान् ॥२७॥

हे महाराज! युद्ध में मदोन्मत्त रहने वाला, अस्त्र विद्या में कुशल, अभिमन्यु, उनके इन प्रहारों से व्याकुल हो उठा और इसने भी देवासुर संग्राम में महा असुरों को वज्रपाणि इन्द्र की भांति तुम्हारे पुत्रों को व्यथित करना आरम्भ किया ॥२६-२७॥

विकर्णस्य ततो भल्लान्प्रेषयामास भारत ।

चतुर्दश रथश्रेष्ठो घोरानाशीविषोपमान् ॥२८॥

हे भारत! रथियों में उत्तम अभिमन्यु ने विकर्ण के ऊपर घोर सर्प के समान तीक्ष्ण चौदह बाणों को छोड़ा ॥२८॥

स तैर्विकर्णस्य रथात्पातयामास वीर्यवान् ।

ध्वजं सूतं हयांश्चैव नृत्यमान इवाऽऽहवे ॥२९॥

उस वीर्यवान् अभिमन्यु ने तुम्हारे पुत्र विकर्ण के रथ से ध्वजा को काट गिराया और सारथि तथा अश्वों को मार दिया। यह रण में वेग के साथ नृत्य सा कर रहा था ॥२९॥

पुनश्चाऽन्याञ्शरान्पीतानकुण्ठाग्राञ्शिलाशितान् ।

प्रेषयामास संक्रुद्धो विकर्णाय महाबलः ॥३०॥

इस महाबली ने क्रुद्ध होकर विष में बुझे हुए, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, तेज बाणों से फिर विकर्ण पर आक्रमण किया ॥३०॥

ते विकर्णं समासाद्य कङ्कबर्हिणवाससः ।

भित्त्वा देहं गता भूमिं ज्वलन्त इव पन्नगाः ॥३१॥

कङ्क और मयूर की पांखोंसे युक्त, सर्पके समान जाज्वल्यमान, अभिमन्यु के बाण, विकर्ण की देह में प्रविष्ट होकर भूमि में घुस गए ॥३०॥

ते शरा हेमपुङ्खाग्रा व्यदृश्यन्त महीतले ।

विकर्णरुधिरक्लिन्ना वमन्त इव शोणितम् ॥३२॥

सुवर्ण के मूल वाले, विकर्ण के रक्त से भीगे हुए, अभिमन्यु के बाण, पृथिवी पर रक्त की वमन सी करते दिखाई दिए ॥३२॥

विकर्णं वीक्ष्य निर्भिन्नं तस्यैवाऽन्ये सहोदराः ।

अभ्यद्रवन्त समरे सौभद्रप्रमुखान्रथान् ॥३३॥

विकर्ण के अन्य भ्राता, विकर्ण को इस प्रकार आहत देखकर सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु आदि महारथियों की ओर झपटे ॥३३॥

अभियात्वा तथैवाऽन्यान्रथांस्तान्सूर्यवर्चसः ।

अविध्यन्समरेऽन्योन्यं संरम्भात्कुद्धदुर्मदाः ॥३४॥

ये युद्ध दुर्मद, तेरे पुत्र अन्य भी सूर्य के समान तेजस्वी वीरों पर आक्रमण करके बड़े वेग से एक दूसरे को रण में क्षत-विक्षत करने लगे ॥३४॥

दुर्मुखः श्रुतकर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः ।

ध्वजमेकेन चिच्छेद सारथिं चाऽस्य सप्तभिः ॥३५॥

दुर्मुख ने सात शरों से श्रुतकर्मा को क्षत किया। इसकी ध्वजा को एक बाण से काट दिया और सारथि को सात बाणों से घायल किया ॥३५॥

अश्वाञ्जाम्बूनदैर्जालैः प्रच्छन्नान्वातरंहसः।
जघान षड्भिरासाद्य सारथिं चाऽभ्यपातयत् ॥३६॥

अत्यन्त पुष्ट वायु के तुल्य वेग वाले, अश्वों को सुवर्ण जटित छः बाणों से मार डाला और सारथि को भी पकड़ कर नीचे गिरा दिया ॥३६॥

स हताश्वे रथे तिष्ठञ्श्रुतकर्मा महारथः।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धो महोल्कां ज्वलितामिव ॥३७॥

अब महारथी श्रुतकर्मा, अश्वविहीन रथ में ही बैठा था और वहीं से उसने क्रोध में भर कर महान् उल्कापात की भांति चमकती हुई शक्ति को फैंका ॥३७॥

सा दुर्मुखस्य विमलं वर्म भित्वा यशस्विनः।
विदार्य प्राविशद्भूमिं दीप्यमाना स्वतेजसा ॥३८॥

यह शक्ति, यशस्वी दुर्मुख के चमकीले कवच को भेद कर अपनी चमक से चमचमाती हुई भूमि में घुस गई ॥३८॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र सुतसोमो महारथः।
पश्यतां सर्वसैन्यानां रथमारोपयत्स्वकम् ॥३९॥

श्रुतकर्मा को रथहीन देखकर महारथी सुतसोम ने सारी सेना के सन्मुख उसको अपने रथ पर चढ़ा लिया ॥३९॥

श्रुतकीर्तिस्तथा वीरो जयत्सेनं सुतं तव ।
अभ्ययात्समरे राजन्हन्तुकामो यशस्विनम् ॥४०॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र यशस्वी जयत्सेन के मारने की इच्छा से इस पर श्रुतकीर्ति ने रण में आक्रमण किया ॥४०॥

तस्य विक्षिपतश्चापं श्रुतकीर्तेर्महास्वनम् ।
चिच्छेद समरे तूर्णं जयत्सेनः सुतस्तव ॥४१॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन प्रहसन्निव भारत ।

हे भारत ! महाशब्द करने वाले धनुष को चढ़ाने के समय ही श्रुतकीर्ति के धनुष को तुम्हारे पुत्र जयत्सेन ने हँसते २ क्षुर के समान तीक्ष्ण बाण से रण में शीघ्रता से काट गिराया ॥४१॥

तं दृष्ट्वा छिन्नधन्वानं शतानीकः सहोदरम् ॥४२॥
अभ्यपद्यत तेजस्वी सिंहवन्निनदन्मुहुः ।

अपने भ्राता श्रुतकीर्ति के धनुष को खण्डित देखकर तेजस्वी शतानीक सिंह के समान बार २ गर्जना करता हुआ बड़े वेग से दौड़ा ॥४२॥

शतानीकस्तु समरे दृढं विस्फार्य कार्मुकम् ॥४३॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं जयत्सेनं शिलीमुखैः ।
ननाद सुमहानादं प्रभिन्न इव वारणः ॥४४॥

शतानीक ने दृढ़ धनुष चढ़ाकर रण में दश बाणों से शीघ्र ही जयत्सेन को आहत कर दिया और वह मदोत्कट हाथी की भांति गर्जना करने लगे ॥४३-४४॥

अथाऽन्येन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।
शतानीको जयत्सेनं विव्याध हृदये भृशम् ॥४५॥

इसके अनन्तर भी सारे कवचों को भेद जाने वाले अन्य तीक्ष्ण बाण से शतानीक ने जयत्सेन के हृदय में बड़े जोर से आघात किया ॥४५॥

तथा तस्मिन्वर्तमाने दुष्कर्णो भ्रातुरन्तिके ।
चिच्छेद समरे चापं नाकुलेः क्रोधमूर्च्छितः ॥४६॥

जब यह दशा देखी, तो रण में दुष्कर्ण अपने भाई जयत्सेन के पास पहुंचा और इसने नकुल-पुत्र शतानीक के धनुष को क्रोध में भर कर काट डाला ॥४६॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय भारसाहमनुत्तमम् ।
समादत्त शरान्घोराञ्शतानीको महाबलः ॥४७॥

अब महाबली शतानीक ने युद्ध के भार को सहने वाले दूसरे उत्तम धनुष को उठाया और उस पर घोर बाण चढ़ाए ॥४७॥

तिष्ठ तिष्ठेति चाऽऽमन्त्र्य दुष्कर्णं भ्रातुरग्रतः ।
मुमोचाऽस्मै शितान्बाणाञ्ज्वलितान्पन्नगानिव ॥४८॥

भाई के सन्मुख ही दुष्कर्ण से शतानीक कहने लगा-जरा ठहरो ? ठहरो और इतना कहकर उसने उस पर सर्पों की भांति जलते हुए तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया ॥४८॥

ततोऽस्य धनुरेकेन द्वाभ्यां सूतं च मारिष ।
चिच्छेद समरे तूर्णं तं च विव्याध सप्तभिः ॥४९॥

हे मारिष ! शतानीक ने एक बाण से दुष्कर्ण का धनुष और दो बाणों से उसके सारथि को छेद दिया और स्वयं उसके शरीर में सात बाणों से प्रहार किया ॥४९॥

अश्वान्मनोजवांस्तस्य कर्बुरान्वातरंहसः ।
जघान निशितैस्तूर्णं सर्वान्द्वादशभिः शरैः ॥५०॥

शतानीक ने दुष्कर्ण के कर्बुररंग के मन और वायु के समान वेग वाले अश्वों को बारह बाणों से क्षत-विक्षत कर दिया ॥५०॥

अथाऽपरेण भल्लेन सुयुक्तेनाऽऽशुपातिना ।
दुष्कर्णं सुदृढं क्रुद्धो विव्याध हृदये भृशम् ॥५१॥
स पपात ततो भूमौ वज्राहत इव द्रुमः ।

इसके अनन्तर वेग से जाने वाला, उचित रीति से धनुष पर चढ़ाया हुआ, दूसरा बाण क्रोध में भर कर शतानीक ने बड़ी दृढ़ता से दुष्कर्ण के हृदय में मारा। इसके आघात से दुष्कर्ण वज्राहत वृक्ष की तरह भूमि में गिर गया ॥५१॥

दुष्कर्णं व्यथितं दृष्ट्वा पञ्च राजन्महारथाः ॥५२॥
जिघांसन्तः शतानीकं सर्वतः पर्यवारयन् ।

हे राजन् ! दुष्कर्ण को व्यथित देखकर पञ्च महारथी, शतानीक के मारने की अभिलाषा से उसको घेर कर खड़े हो गए।

छाद्यमानं शरव्रातैः शतानीकं यशस्विनम् ॥५३॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः केकयाः पञ्च सोदराः ।

जब यशस्वी, शतानीक को शर समूह से व्याप्त देखा, तो पांच केकय राजकुमार क्रोध पूर्ण होकर दौड़े ॥५३॥

तानभ्यापततः प्रेक्ष्य तव पुत्रा महारथाः ॥५४॥

प्रत्युद्ययुर्महाराज गजानिव महागजाः ।

हे महाराज ! उनको तीव्रता से आते हुए देखकर तुम्हारे महारथी पुत्र, गजों पर महागज की भांति झपटे ॥५४॥

दुर्मुखो दुर्जयश्चैव तथा दुर्मर्षणो युवा ॥५५॥

शत्रुञ्जयः शत्रुसहः सर्वे क्रुद्धाः यशस्विनः ।

दुर्मुख, दुर्जय, युवा दुर्मर्षण, शत्रुञ्जय, शत्रुसह आदि सारे यशस्वी दुर्योधन के भ्राता क्रोध में भर गए ॥५५॥

प्रत्युद्याता महाराज केकयान्भ्रातरः समम् ॥५६॥

रथैर्नगरसङ्काशैर्हयैर्युक्तैर्मनोजवैः ।

नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतैः ॥५७॥

वरचापधरा वीरा विचित्रकवचध्वजाः ।

विविशुस्ते परं सैन्यं सिंहा इव वनाद्वनम् ॥५८॥

हे महाराज ! नगर के समान विशाल, मन के तुल्य वेग वाले अश्वों से युक्त, अनेक वर्ण की विचित्र पताकाओं से सुशोभित, रथों से उत्तम २ धनुष धारण करके और विचित्र २ कवच पहिन कर ये सारे ही वीर, एक वन से दूसरे वन में सिंह की भांति शत्रु-सेना में प्रविष्ट हुए ॥५६-५८॥

तेषां सुतुमुलं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
अवर्तत महारौद्रं निघ्नतामितरेतरम् ॥५६॥

रथ और हाथियोंका घमसान युद्ध होने लगा । इस समय एक दूसरे के वध करने से महान् भीषण रण मच रहा था ॥५६॥

अन्योन्यागस्कृतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ।
मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥६०॥
रथिनः सादिनश्चाऽथ व्यकीर्यन्त सहस्रशः ।

हे राजन् ! एक दूसरे पर प्रहार रूप अपराध करते हुए, वीर यमराज के राष्ट्र की वृद्धि कर रहे थे । सूर्य के छुपने में थोड़ी ही देर होगी, कि युद्ध बहुत दारुण हो गया । सहस्रों की संख्या में रथी और अश्वारोही भूमि में छा गए ॥६०॥

ततः शान्तनवः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥६१॥
नाशयामास सेनां तां भीष्मस्तेषां महात्मनाम् ।
पञ्चालानां च सैन्यानि शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥६२॥

अब शान्तनु-पुत्र भीष्म क्रोध में भर गया । इसने झुकी पर्व वाले बाणों से महावीर पाण्डवों की सेना का नाश करना आरम्भ किया तथा पञ्चालों की बहुत सी सेना को यमराज के धाम का अतिथि बनाया ॥६१-६२॥

एवं भित्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीं ।
कृत्वाऽवहारं सैन्यानां ययौ स्वशिबिरं नृप ॥६३॥

हे नृप ! इस प्रकार महाधनुर्धर भीष्म ने पाण्डवों की सेना को छिन्न-भिन्न करके अपनी सेनाओं को पीछे हटाकर युद्ध को बन्द कर दिया और वह अब अपने शिविर की ओर चला ॥६३॥

धर्मराजोऽपि सम्प्रेक्ष्य धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय प्रहृष्टः शिविरं ययौ ॥६४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसावहारे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७६॥

धर्मराज भी धृष्टद्युम्न और भीमसेन को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा स्नेह से उनके मस्तक सूंघकर अपने शिविर को चला ।

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में छठे दिन के युद्ध की समाप्ति का उनासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।



अस्सीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अथ शूरा महाराज परस्परकृतागसः ।
जग्मुः स्वशिबिराण्येव रुधिरेण समुक्षिताः ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे महाराज ! इस प्रकार एक दूसरे का अपराध करके रुधिर में भीगे हुए सारे वीर, अपने २ शिबिरों में गए ॥१॥

विश्रम्य च यथान्यायं पूजयित्वा परस्परम् ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त भूयो युद्धचिकीर्षया ॥२॥

रात में पूर्व नियम के अनुसार विश्राम करके और एक दूसरी सेना के वीरों से परस्पर वन्दना करके फिर युद्ध के करने की इच्छा से दोनों सेना तय्यार हो गई ॥२॥

ततस्तव सुतो राजंश्चिन्तयाऽभिपरिप्लुतः ।
विस्रवच्छोणिताक्ताङ्गः पप्रच्छेदं पितामहम् ॥३॥

हे राजन् ! रक्त से भीगे शरीर वाला, चिन्ता में निमग्न तुम्हारा पुत्र, राजा दुर्योधन, भीष्मपितामह से पूछने लगा ॥३॥

सैन्यानि रौद्राणि भयानकानि व्यूढानि सम्यग्बहुलध्वजानि
विदार्यहत्वाचनिपीड्यशूरास्ते पाण्डवानांत्वरिता महारथाः
सम्मोह्य सर्वान्युधि कीर्तिमन्तो व्यूहं च तं मकरं वज्रकल्पम्
प्रविश्य भीमेन रणे हतोऽस्मि घोरैः शरैर्मृत्युदण्डप्रकाशैः

हे पितामह ! हमारी सेना बड़ी भयानक, भीषण, व्यूह रचना में खड़ी हुई, अनेक ध्वजाओं से सम्पन्न थी। उसको भी पाण्डवों के शूरवीर शीघ्रताकारी महारथियों ने क्षण में चीर चारकर मार-कूट दिया। इन कीर्ति-शाली वीरों ने युद्ध में हम सबको मोहित करके वज्रोपम मकरव्यूह को तोड़ दिया और उसमें भीमसेन घुस गया। उसने मृत्यु दण्ड के तुल्य घोर बाणों से रण में हमको अच्छी तरह क्षत-विक्षत (घायल) कर दिया है ॥४-५॥

क्रुद्धं तमुद्वीक्ष्य भयेन राजन्सम्मूर्च्छितो न लभे शान्तिमद्य
इच्छे प्रसादात्तव सत्यसन्ध प्राप्तुं जयं पाण्डवेयांश्च हन्तुम्

हे राजन् ! उसके क्रुद्ध मुख को देखकर इतना भय सवार हुआ है, कि मैं अभी तक मूर्च्छित सा हो रहा हूं और मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। हे सत्यप्रतिज्ञ ! मैं आपके अनुग्रह से पाण्डवों को मार कर विजय प्राप्त करना चाहता हूँ ॥६॥

तेनैवमुक्तः प्रहसन्महात्मा दुर्योधनं मन्युगतं विदित्वा ।
तं प्रत्युवाचाऽविमना मनस्वी गङ्गासुतः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥

राजा दुर्योधन के इतना कहने पर महात्मा भीष्म हँसने लगे। उन्होंने दुर्योधन को शोक निमग्न समझा। गङ्गा-पुत्र, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ मनस्वी भीष्म के मन पर कोई चिन्ता नहीं थी। वे दुर्योधन से कहने लगे ॥७॥

परेण यत्नेन विगाह्य सेनां सर्वात्मनाऽहं तव राजपुत्र ।
इच्छामि दातुं विजयं सुखं च न चाऽऽत्मानं छादयेऽहंत्वदर्थे॥

हे राजपुत्र! मैं बड़े प्रयत्न से अपना सारा बल लगाकर पाण्डवों की सेना का आलोडन करता हूँ। मैं तो तुमको विजयी बनाकर सुखी बनाना चाहता हूं। मैं तुम्हारे हित की सिद्धि में कोई बात छुपाकर नहीं रख छोड़ रहा हूँ ॥८॥

एते तु रौद्रा बहवो महारथा यशस्विनः शूरतमाः कृतास्त्राः
ये पाण्डवानां समरे सहाया जितक्लमा रोषविषं वमन्ति ॥

परन्तु जो बहुत से क्षत्रिय पाण्डवों के सहायक हुए हैं, वे भी अस्त्र विद्या में कुशल, यशस्वी, शूरवीर और महारथी हैं। ये युद्ध में कुछ भी क्लेश नहीं मानते हैं, किन्तु सदा क्रोध के विष को उगलते रहते हैं ॥९॥

ते नैव शक्याः सहसा विजेतुं वीर्योद्धताः कृतवैरास्त्वया च
अहं सेनां प्रतियोत्स्यामिराजन्सर्वात्मना जीवितं त्यज्य वीर

इनका जीत लेना कोई सरल बात नहीं है। ये पराक्रम से उद्धत और तुमसे स्वयं वैर मानने वाले हैं। हे वीर ! राजन् ! तो भी मैं अपने प्राणों का मोह छोड़ कर और सब कुछ बल लगा उनसे अपनी सेना को लड़ा दूंगा ॥१०॥

रणे तवाऽर्थाय महानुभाव न जीवितं रक्ष्यतमं ममाऽद्य ।
सर्वांस्तवाऽर्थाय सदेवदैत्यान्घोरान्दहेयं किमु शत्रुसेनाम्

हे महानुभाव ! आज रण में तुम्हारे प्रयोजन की सिद्धि के लिए अपने जीवन को भी बचा रखना उचित नहीं समझता हूं। तुम्हारे कार्य के लिए सारे घोर देव और दानवों को भी भस्म

कर सकता हूं, फिर इस शत्रुसेना का नाश करना मुझे कौन विशेष बात है ॥११॥

तान्पाण्डवान्योधयिष्यामि राजन्प्रियं च ते सर्वमहं करिष्ये
श्रुत्वैव चैतद्वचनं तदानीं दुर्योधनः प्रीतमना बभूव ॥१२॥

हे राजन्! मैं इन सारे पाण्डवों से अवश्य युद्ध करूंगा और तुम्हारे सारे प्रिय हित को पूरा करके रहूंगा। राजा दुर्योधन इतना वचन सुन कर बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥१२॥

सर्वाणि सैन्यानि ततः प्रहृष्टो निर्गच्छतेत्याह नृपांश्च सर्वान्
तदाज्ञया तानि विनिर्ययुर्द्रुतं गजाश्वपादातरथायुतानि ॥

प्रसन्न हुए राजा दुर्योधन ने सारी सेनाओं और सारे महारथी नृपतियों को आज्ञा दी, कि अब तुम युद्ध को सन्नद्ध हो जाओ। राजा दुर्योधन की आज्ञा सुनकर गज, अश्व, पैदल, रथी आदि सारी सेना चल पड़ी ॥१३॥

प्रहर्षयुक्तानि तु तानि राजन्महान्ति नानाविधशस्त्रवन्ति।
स्थितानि नागाश्वपदातिमन्ति विरेजुराजौ तव राजन्बलानि

हे राजन्! यह विशाल सेना बड़े उल्लास में भरी हुई थी और इसके पास नाना प्रकार के शस्त्र थे। हाथी, अश्व और पैदल सैनिकों से युक्त, सारी सेना बड़ी ही सुशोभित हो रही थी ॥१४॥

शस्त्रास्त्रविद्भिर्नरवीरयोधैरधिष्ठिताः सैन्यगणास्त्वदीयाः।
रथौघपादातगजाश्वसंघैः प्रयाद्भिराजौ विधिवत्प्रणुन्नैः ॥

हे राजन् ! तुम्हारी सेना के वीरों पर शस्त्र विद्या में कुशल, अनेक महारथी अध्यक्ष थे। रणभूमि में रथ-समूह, पैदल, गज, अश्व आदि के संघों से युक्त, विधिपूर्वक चलाई हुई सेना क्रम से चल रही थी ॥१५॥

समुद्धृतं वै तरुणार्कवर्णं रजो बभौ च्छादयत्सूर्यरश्मीन् ।
रेजुः पताका रथदन्तिसंस्थावातेरिता भ्राम्यमाणाः समन्तात्

प्रचण्ड सूर्य के समान चमकीला रेणु, इस सेना के चरणाघात से खड़ा हो गया, जिसने सूर्य की किरणों को ढ़क लिया। रथ और हाथियों पर वायु से चारों ओर फहराती हुई ध्वजाएँ बड़ी ही सुन्दर प्रतीत होती थीं ॥१६॥

नानारङ्गाः समरे तत्र राजन्मेघैर्युता विद्युतः खे यथैव ।
वृन्दैःस्थिताश्चाऽपिसुसम्प्रयुक्ताश्चकाशिरे दन्तिगणाःसमन्तात्

हे राजन् ! वे पताकाएँ अनेक रंग की थीं, जो रणभूमि में आकाश में बिजली से युक्त मेघ सी दिखाई देती थीं। इस समय चारों ओर ठीक २ पंक्ति में खड़े किये हुए हाथियों के झुण्ड प्रकाशित हो रहे थे ॥१७॥

धनूंषि विस्फारयतां नृपाणां बभूव शब्दस्तुमुलोऽतिघोरः ।
विमथ्यतो देवमहासुरौघैर्यथाऽर्णवस्यादियुगे तदानीम् ॥

पूर्वकाल में देव और असुरों के समुद्र मन्थन के समय जैसा महाघोर शब्द उठा था, वैसा ही धनुषों को चढ़ाते हुए महावीर राजाओं का महान् घोर लगातार शब्द हो रहा था ॥१८॥

तदुग्रनागं बहुरूपवर्णं तवाऽऽत्मजानां समुदीर्णमेवम् ।
बभूव सैन्यं रिपुसैन्यहन्तृ युगान्तमेघौघनिभं तदानीम् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादेऽशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

हे राजन् ! अत्यन्त उग्र हाथियों से समन्वित, अनेक रंग रूपधारी, सब तरह से सन्नद्ध, शत्रु-सेना का नाश करने वाली, तुम्हारे पुत्रों की सेना, प्रलयकाल में उमड़ने वाले मेघ समूह के सदृश प्रतीत होती थी ॥१९॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीष्म दुर्योधन के सम्वाद का अस्सीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

इक्यासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अथाऽऽत्मजं तव पुनर्गाङ्गेयो ध्यानमास्थितम् ।
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठः सम्प्रहर्षकरं वचः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! चिन्ता में निमग्न, तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन से भरतवंशश्रेष्ठ, गङ्गा-पुत्र भीष्म, इस प्रकार प्रहर्षित करने वाले वचन बोले ॥१॥

भीष्म उवाच—

अहं द्रोणश्च शल्यश्च कृतवर्मा च सात्वतः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च भगदत्तोऽथ सौबलः॥२॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लीकः सह बाह्लिकैः ।
त्रिगर्तराजो बलवान्मागधश्च सुदुर्जयः ॥३॥
बृहद्बलश्च कौसल्यश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
रथाश्च बहुसाहस्राः शोभनाश्च महाध्वजाः ॥४॥

हे राजन् ! मैं, द्रोणाचार्य, शल्य, यदुवंशश्रेष्ठ कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, सुबलपुत्र शकुनि, अवन्ति राजकुमार विन्दानुविन्द, बाल्हिक वीरों के साथ बाल्हिकराज, बलवान् त्रिगर्तराज, अत्यन्त दुर्जय मगधराज, बृहद्बल, कोशलाधिपति सुदक्षिण, चित्रसेन, विविंशति आदि सहस्रों रथी तुम्हारे पक्ष में हैं, जिनकी बड़ी २ सुन्दर ध्वजाएँ हैं ॥२-४॥

देशजाश्च हया राजन्स्वारूढा हयसादिभिः ।
गजेन्द्राश्च मदोद्वृत्ताः प्रभिन्नकरटामुखाः ॥५॥
पादाताश्च तथा शूरा नानाप्रहरणध्वजाः ।
नानादेशसमुत्पन्नास्त्वदर्थे योद्धुमुद्यताः ॥६॥

हे राजन् ! भिन्न २ देशों में उत्पन्न, उत्तम २ अश्वारोहियों से अच्छी तरह सवारी लिए गए, अश्व, मदोद्धत कपोलो से मद के टपकाने वाले हाथी, अनेक भांति के शस्त्र और ध्वजाओं से

सुशोभित, अनेक देशों से आए हुए युद्ध परायण, पैदल सैनिक, तुम्हारे लिए प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध में तय्यार हैं ॥५-६॥

एते चाऽन्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः ।
देवानपि रणे जेतुं समर्था इति मे मतिः ॥७॥

उपर्युक्त तथा अन्य भी बहुत से क्षत्रिय वीर, तुम्हारे लिए युद्ध में प्राणों के छोड़ने को उत्कण्ठित हैं। ये सब देवों को भी जीत सकते हैं-ऐसा मेरा मत (खयाल) है ॥७॥

अवश्यं हि मया राजंस्तव वाच्यं हितं सदा ।
अशक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥८॥
वासुदेवसहायाश्च महेन्द्रसमविक्रमाः ।
सर्वथाऽहं तु राजेन्द्र करिष्ये वचनं तव ॥९॥
पाण्डवांश्च रणे जेष्ये मां वा जेष्यन्ति पाण्डवाः ।

हे राजन्! तो भी मुझे तुम्हारे हित की बात अवश्य कहनी चाहिए, कि पाण्डव, इन्द्र सहित देवों से भी दुर्जय प्रतीत होते हैं। ये पाण्डव, महेन्द्र के तुल्य पराक्रम रखने वाले हैं और इनकी वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण सहायता कर रहे हैं। हे राजेन्द्र! यह सब कुछ है, परन्तु हम तो तुम्हारा ही वचन करेंगे। अब या तो मैं पाण्डवों को रण में मार लूंगा या वे ही मुझे समाप्त करेंगे ॥८-९॥

एवमुक्त्वा ददावस्मै विशल्यकरणीं शुभाम् ॥१०॥
ओषधीं वीर्यसम्पन्नां विशल्यश्चाऽभवत्तदा ।

हे राजन्! इतना कहकर भीष्मपितामह ने राजा दुर्योधन को शस्त्रों के क्षतों (घावों) को भर देने वाली, प्रभावशालिनी ओषधि प्रदान की, जिससे तत्क्षण राजा दुर्योधन के क्षत (घावों) की पीड़ा निवृत्त हो गई ॥१०॥

ततः प्रभाते विमले स्वेन सैन्येन वीर्यवान् ॥११॥
अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूहविशारदः ।

जब स्वच्छ प्रातःकाल हो गया-तो महा पराक्रमी व्यूह रचना में कुशल भीष्म ने अपनी सेना का स्वयं व्यूह बनाया ॥११॥

मण्डलं मनुजश्रेष्ठो नानाशस्त्रसमाकुलम् ॥१२॥
सम्पूर्णं योधमुख्यैश्च तथा दन्तिपदातिभिः ।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्परिवारितम् ॥१३॥
अश्ववृन्दैर्महद्भिश्च ऋष्टितोमरधारिभिः ।
नागे नागे रथाः सप्त सप्त चाऽश्वा रथे रथे ॥१४॥
अन्वश्वं दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः ।

वीरश्रेष्ठ भीष्म ने अनेक शस्त्रधारियों से व्याप्त, मण्डल बनाया। यह मुख्य २ योद्धा और हाथी तथा पैदल सैनिकों से भरा हुआ था। इसमें सहस्रों की संख्या में रथ सम्मिलित थे एवं ऋष्टि और तोमर धारी अश्वारोहियों के वृन्दों से युक्त था। एक २ हाथी के साथ सात २ रथ थे। एक २ रथ के साथ सात २ अश्व थे। एक २ अश्व के पीछे दश २ धनुषधारी और एक २ धनुषधारी के पीछे दश २ ढ़ाल तलवार धारी वीर थे ॥१२-१४॥

एवं व्यूढं महाराज तव सैन्यं महारथैः ॥१५॥
स्थितं रणाय महते भीष्मेण युधि पालितम् ।

हे महाराज ! इस प्रकार उत्तम २ महारथियों से सम्पन्न, व्यूह में खड़ी हुई, तुम्हारी सेना भीष्म से सुरक्षित हुई भीषण संग्राम के लिये उत्सुक हो रही थी ॥१५॥

दशाऽश्वानां सहस्राणि दन्तिनां च तथैव च ॥१६॥
रथानामयुतं चाऽपि पुत्राश्च तव दंशिताः ।
चित्रसेनादयः शूरा अभ्यरक्षन्पितामहम् ॥१७॥

हे राजन ! दश हजार हाथी, दश हजार अश्व और दश हजार रथियों के साथ तुम्हारे शूरवीर पुत्र, चित्रसेन आदि बड़ी सावधानी से भीष्म की रक्षा कर रहे थे ॥१६-१७॥

रक्ष्यमाणः स तैः शूरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त राजानश्च महाबलाः ॥१८॥
दुर्योधनस्तु समरे दंशितो रथमास्थितः ।
व्यराजत श्रिया जुष्टो यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥१९॥

भीष्म इन वीरों से सुरक्षित थे और इन वीरों की भीष्म भी रक्षा कर रहे थे। इसी प्रकार अनेक महाबली राजा युद्ध को सन्नद्ध हुए दिखाई दे रहे थे। राजा दुर्योधन भी सन्नद्ध हुए रणभूमि में रथ में स्थित थे। ये स्वर्ग में इन्द्र की तरह कान्ति से देदीप्यमान हो रहे थे ॥१८-१९॥

ततः शब्दो महानासीत्पुत्राणां तव भारत।
रथघोषश्च विपुलो वादित्राणां च निःस्वनः ॥२०॥

हे भारत! अब तुम्हारे पुत्र महान् गर्जना करने लगे। इसी समय रथों का घोष और वाद्यों (बाजों) का शब्द बड़े वेग से खड़ा हो रहा था ॥२०॥

भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूढः प्रत्यङ्मुखो युधि।
मण्डलः स महाव्यूहो दुर्भेद्योऽमित्रघातनः ॥२१॥
सर्वतः शुशुभे राजन्रणेऽरीणां दुरासदः।

भीष्म ने राजा दुर्योधन की सेना का व्यूह पश्चिमाभिमुखी बनाया। यह महाव्यूह मण्डलाकर था, जो बड़ा अभेद्य और शत्रु-नाशक था। सब ओर से यह महाव्यूह सुशोभित था, जो रण में शत्रुओं को बड़ा ही दुर्गम था ॥२१॥

मण्डलं तु समालोक्य व्यूहं परमदुर्जयम् ॥२२॥
स्वयं युधिष्ठिरो राजा वज्रं व्यूहमथाऽकरोत्।

कौरवों के परम दुर्जय, मण्डल-व्यूह को देखकर राजा युधिष्ठिर ने स्वयं वज्र नामक व्यूह की रचना की ॥२२॥

तथा व्यूढेष्वनीकेषु यथास्थानमवस्थिताः ॥२३॥
रथिनः सादिनः सर्वे सिंहनादमथाऽनदन्।

जब दोनों सेनाओं की व्यूह-रचना हो चुकी तो रथी और अश्वारोही (घुड़सवार) अपने २ स्थानों पर खड़े हो गए और सिंहनाद करने लगे ॥२३॥

विभित्सवस्ततो व्यूहं निर्ययुर्युद्धकांक्षिणः ॥२४॥
इतरेतरतः शूराः सहसैन्याः प्रहारिणः ।

एक दूसरे के व्यूह के भेदने की इच्छा में तत्पर, युद्ध के अभिलाषी, प्रहार करने में कुशल, दोनों ओर के वीर अपनी २ सेना के साथ चल पड़े ॥२४॥

भारद्वाजो ययौ मत्स्यं द्रौणिश्चापि शिखण्डिनम् ॥
स्वयं दुर्योधनो राजा पार्षतं समुपाद्रवत् ।

भरद्वाजगोत्रोत्पन्न द्रोणाचार्य, मत्स्यराज पर, अश्वत्थामा शिखण्डी पर और स्वयं राजा दुर्योधन, पर्षतराजकुमार धृष्टद्युम्न पर झपटा ॥२५॥

नकुलः सहदेवश्च मद्रराजानमीयतुः ॥२६॥
विन्दानुविन्दावावन्त्याविरावन्तमभिद्रुतौ ।
सर्वे नृपास्तु समरे धनञ्जयमयोधयन् ॥२७॥

नकुल और सहदेव ने मद्रराज शल्य पर आक्रमण किया, अवन्तीकुमार विन्दानुविन्द, इरावत पर तथा अनेक राजा मिलकर रण में धनञ्जय पर झपटे ॥२६-२७॥

भीमसेनो रणे यान्तं हार्दिक्यं समवारयत् ।
चित्रसेनं विकर्णं च तथा दुर्मर्षणं विभुः ॥२८॥
आर्जुनिः समरे राजंस्तव पुत्रानयोधयत् ।

रण में आक्रमण करते हुए, हृदिक-पुत्र कृतवर्मा को भीमसेन ने रोका। हे राजन्! चित्रसेन, विकर्ण, दुर्मर्षण, नामक तुम्हारे पुत्रों से शक्तिशाली अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने रण में युद्ध किया।

प्राग्ज्योतिषो महेष्वासो हैडिम्बं राक्षसोत्तमम् ॥२६॥
अभिदुद्राव वेगेन मत्तो मत्तमिव द्विपम्।

महाधनुर्धर प्राग्ज्योतिष (भगदत्त) ने राक्षसराज हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच पर मदोन्मत्त हाथी पर दूसरे मदोन्मत्त हाथी की तरह वेग से आक्रमण किया ॥२८॥

अलम्बुषस्तदा राजन्सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ॥३०॥
ससैन्यं समरे क्रुद्धो राक्षसः समुपाद्रवत्।

हे राजन्! अलम्बुष दैत्यराज ने युद्धदुर्मद, सेना सहित सात्यकि पर रण में क्रोध-पूर्वक आक्रमण किया ॥३०॥

भूरिश्रवा रणे यत्तो धृष्टकेतुमयोधयत् ॥३१॥
श्रुतायुषं च राजानं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
चेकितानश्च समरे कृपमेवाऽन्वयोधयत् ॥३२॥

इस रण में भूरिश्रवा ने बड़ी सावधानी से धृष्टकेतु पर चढ़ाई की। राजा श्रुतायु से धर्मराज युधिष्ठिर और कृपाचार्य से राजा चेकितान युद्ध करने लगे ॥३१-३२॥

शेषाः प्रतिययुर्यत्ता भीष्ममेव महारथम्।
ततो राजसमूहास्ते परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥३३॥

शक्तितोमरनाराचगदापरिघपाणयः ।
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत् ॥३४॥

अन्य कुछ पाण्डववीर, महारथी भीष्म पर झपटे और इसी तरह शक्ति, तोमर, नाराच, गदा और परिघ आदि शस्त्र हाथ में लेकर तुम्हारे पक्ष के राजाओं ने एक दम अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन, इस समय क्रोधाविष्ट होकर वृष्णि-वंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण से कहने लगे ॥३३-३४॥

पश्य माधव सैन्यानि धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना ॥३५॥
युद्धाभिकामाञ्शूरांश्च पश्य माधव दंशितान् ।
त्रिगर्त्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशव ॥३६॥

हे माधव ! व्यूह बनाने में कुशल, महावीर गङ्गा-पुत्र भीष्म ने कैसी उत्तम व्यूह रचना की है। हे केशव ! तुम युद्ध की अभिलाषा में तय्यार खड़े हुए इन वीरों तथा भाइयों के साथ त्रिगर्तराज को देखो ॥३५-३६॥

अद्यैतान्नाशयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन ।
य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे ॥३७॥

हे जनार्दन ! यदुश्रेष्ठ ! अब मैं आपके देखते २ इन सब का नाश किए देता हूं, जो रणाङ्गण में मेरे साथ युद्ध की अभिलाषा कर रहे हैं ॥३७॥

एतदुक्त्वा तु कौन्तेयो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान्प्रति ॥३८॥

हे राजन् ! इतना कह कर कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने धनुष की डोरी को बजाया और इन राजाओं पर बाण-वर्षा करना आरम्भ किया ॥३८॥

तेऽपि तं परमेष्वासा शरवर्षैरपूरयन् ।
तडागं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ॥३९॥

जिस तरह वर्षाकाल में मेघ, तड़ाग (तालाब) को भर देता है, उसी तरह ये महाधनुर्धर भी बाण-वर्षा से अर्जुन को ढकने लगे ॥३९॥

हाहाकारो महानासीत्तत्र सैन्ये विशाम्पते ।
छाद्यमानौ रणे कृष्णौ शरैर्दृष्ट्वा महारणे ॥४०॥

हे विशाम्पते ! इस समय तुम्हारी सेना में बड़ा ही हाहाकार मच गया, जब उन्होंने भीषण रण में अर्जुन और श्रीकृष्ण को बाणों से आच्छादित करते हुए देखा ॥४०॥

देवा देवर्षयश्चैव गन्धर्वाश्च सहोरगैः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्दृष्ट्वा कृष्णौ तथागतौ ॥४१॥

देवता, देवर्षि, गन्धर्व, उरग आदि देवगण, श्रीकृष्ण और अर्जुन को इस ढंग में देख कर बड़े ही चकित हुए ॥४१॥

ततः क्रुद्धोऽर्जुनो राजन्नैन्द्रमस्त्रमुदैरयत ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम विजयस्य पराक्रमम् ॥४२॥

हे राजन ! अब अर्जुन बड़ा कुपित हो उठा और उसने इन्द्र का अस्त्र उठाया। इस समय अर्जुन का पराक्रम बड़ा ही अद्भुत दर्शनीय था ॥४२॥

शस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां शरौघैर्यदवारयत् ।
न च तत्राऽप्यनिर्भिन्नः कश्चिदासीद्विशाम्पते ॥४३॥

हे विशाम्पते ! शत्रुओं की बाणवर्षा को अर्जुन ने अपने बाणसमूह से रोक दी। इस समय कोई भी इस स्थान में ऐसा नहीं था, जो बाण से आहत न हुआ हो ॥४३॥

तेषां राजसहस्राणां हयानां दन्तिनां तथा ।
द्वाभ्यां त्रिभिः शरैश्चाऽन्यान्पार्थो विव्याध मारिष ४४॥

हे आर्य ! सहस्रों राजा, अश्व, हाथी आदि में से कोई ऐसा नहीं बचा, जिसके अर्जुन ने दो तीन बाण न मार दिए हों ॥४४

ते हन्यमानाः पार्थेन भीष्मं शान्तनवं ययुः ।
अगाधे मज्जमानानां भीष्मः पोतोऽभवत्तदा ॥४५॥

अर्जुन से बींधे हुए सैनिक, शान्तनु-पुत्र भीष्म पर दौड़े हुए गए। जब वीर युद्ध के अगाध समुद्र में डूबने लगते थे-तब ही भीष्म उनकी नौका बनते थे ॥४५॥

आपतद्भिस्तु तैस्तत्र प्रभग्नं तावकं बलम् ।
संचुक्षुभे महाराज वातैरिव महार्णवः ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवस
एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

हे महाराज ! भाग कर आई इस सेना से तुम्हारी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। वह सेना इस भांति संक्षुभित हो उठी, जैसे वायु के वेग से समुद्र उछलने लगता है ॥४६॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में सातवें
दिन के युद्ध का इक्कासीवां अध्याय समाप्त हुआ।

——***——

बयासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तथा प्रवृत्ते संग्रामे निवृत्ते च सुशर्मणि।
भग्नेषु चापि वीरेषु पाण्डवेन महात्मना ॥१॥
क्षुभ्यमाणे बले तूर्णं सागरप्रतिमे तव।
प्रत्युद्याते च गाङ्गेये त्वरितं विजयं प्रति ॥२॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम्।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वांस्तानब्रवीन्नृपान् ॥३॥
तेषां तु प्रमुखे शूरं सुशर्माणं महाबलम्।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्निव ॥४॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! जब इस प्रकार युद्ध होने लगा और महारथी सुशर्मा युद्ध से विमुख होकर लौट आए, महावीर पाण्डु-पुत्र अर्जुन द्वारा कौरव सेना के अनेक वीरों के युद्ध से मुख मोड़ दिये गए तथा समुद्र के समान उछलने वाली तुम्हारी सेना व्याकुल हो गई, तो फिर गङ्गा-पुत्र भीष्म ने अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। रण में अर्जुनके पराक्रमको देखकर राजा दुर्योधन बड़े वेग से आकर इन सारे सैनिकों में प्रमुख, शूरवीर, महाबली सुशर्मा को सारी सेना के मध्य में उत्साहित करते हुए उन सब वीरों से कहने लगे ॥१-४॥

एष भीष्मः शान्तनवो योद्धुकामो धनञ्जयम् ।
सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥५॥

हे वीरो! ये कुरुश्रेष्ठ, शान्तनु-पुत्र भीष्म, अपना सारा बल लगाकर और प्राणों की भी उपेक्षा करके धनञ्जय अर्जुन से लड़ने को उद्यत हैं ॥५॥

तं प्रयान्तं रणे वीरं सर्वसैन्येन भारतम् ।
संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम् ॥६॥

इन भरतवंशश्रेष्ठ महावीर भीष्म के आक्रमण करने पर तुम लोग भी रण में सावधान हो जाओ और सब ओर से भीष्म-पितामह की रक्षा करो ॥६॥

बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः ।
नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम् ॥७॥

हे महाराज ! नरेन्द्रों की वे सारी सेनाएँ "अच्छी बात है" इतना कहकर सब ओर से आकर भीष्म पितामह के समीप इकट्ठी हो गई ॥७॥

ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।
रणे भारतमायान्तमाससाद महाबलः ॥८॥

रण में बढ़े चले आते हुए भरतवंशश्रेष्ठ अर्जुन पर एकदम महाबली, शान्तनु-पुत्र भीष्म ने आक्रमण कर दिया ॥८॥

महाश्वेताश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना ।
महता मेघनादेन रथेनाऽतिविराजता ॥९॥

समरे सर्वसैन्यानामुपयान्तं धनञ्जयम् ।
अभवत्तुमुलो नादो भयाद् दृष्ट्वा किरीटिनम् ॥१०॥

अत्यन्त शुक्ल अश्वों से युक्त, भीषण वानर की ध्वजा के धारण और मेघ के समान घोष करने वाले, अत्यन्त सुन्दर विशाल रथ से रण में सारी सेना पर झपटते हुए, धनञ्जय अर्जुन को आता हुआ देखकर कौरव सेना में भय से भीषण कोलाहल मच गया ॥९-१०॥

अभीषुहस्तं कृष्णं च दृष्ट्वाऽऽदित्यमिवाऽपरम् ।
मध्यन्दिनगतं संख्ये न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ॥११॥

अश्वों की रज्जु हाथ में लिए हुए, द्वितीय मध्याह्न कालके सूर्य के तुल्य देदीप्यमान श्रीकृष्ण को रण में कोई देखने में भी समर्थ नहीं हो सका ॥११॥

तथा शान्तनवं भीष्मं श्वेताश्वं श्वेतकार्मुकम् ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं श्वेतं ग्रहमिवोदितम् ॥१२॥

इसी तरह श्वेत अश्वों वाले, रथ में बैठे हुए, श्वेत ही धनुष धारी शान्तनु-पुत्र भीष्म को भी पाण्डवों की सेना में उदय को प्राप्त हुए धूमकेतु महाग्रह की भांति कोई भी देखने में समर्थ नहीं हो सका ॥१२॥

स सर्वतः परिवृतस्त्रिगर्तैः सुमहात्मभिः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च तथाऽन्यैश्च महारथः ॥१३॥

इस समय भीष्म की रक्षा में सारे महावीर त्रिगर्त, अनेक पुत्रों के साथ तुम्हारे पुत्र दुःशासनादि सारे भ्राता तथा अन्य महारथी राजा यात्रा कर रहे थे ॥१३॥

भारद्वाजस्तु समरे मत्स्यं विव्याध पत्रिणा ।
ध्वजं चाऽस्य शरेणाऽऽजौ धनुश्चैकेन चिच्छिदे ॥१४॥

भरद्वाजवंशोत्पन्न द्रोणाचार्य ने रण में अपने बाण से मत्स्यराज को बींध दिया और इसकी ध्वजा तथा धनुष को एक ही बाण से काट डाला ॥१४॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं विराटो वाहिनीपतिः ।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं दृढम् ॥१५॥
शरांश्चाऽऽशीविषाकाराञ्ज्वलितान्पन्नगानिव ।
द्रोणं त्रिभिश्च विव्याध चतुर्भिश्चाऽस्य वाजिनः ॥१६॥

ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चाऽस्य पञ्चभिः ।
धनुरेकेषुणाऽविध्यत्तत्राऽक्रुध्यद् द्विजर्षभः ॥१७॥

सेनापति विराटराज ने इस खण्डित धनुष को फेंक कर दूसरा युद्ध के भार का सहने वाला, दृढ़ धनुष, वेग से ग्रहण किया। विराटराज ने सर्प के समान विष भरे हुए, सर्पाकार धारी बाणों को उस धनुष पर चढ़ाया और उनमें से तीन बाण से द्रोण और चार बाणों से उसके अश्व, एक बाण से ध्वजा, पांच बाणों से सारथि और एक से धनुष बींध दिया, जिससे द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य कुपित हो उठे ॥१५-१७॥

तस्य द्रोणोऽवधीदश्वाञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूतमेकेन पत्रिणा ॥१८॥

हे भरतश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्य ने भी सन्नतपर्व वाले आठ बाणों से विराटराज के अश्व और एक बाण से उसके सारथि को बींध दिया

स हताश्वादवप्लुत्य स्यन्दनाद्धतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं पुत्रस्य रथिनां वरः ॥१९॥

रथिश्रेष्ठ विराटराज भी सारथि के मारे जाने पर अश्व विहीन रथ से कूद पड़ा और वह शीघ्र ही अपने पुत्र के रथ पर चढ़ गया।

ततस्तु तौ पितापुत्रौ भारद्वाजं रथे स्थितौ ।
महता शरवर्षेण वारयामासतुर्बलात् ॥२०॥

अब दोनों पिता पुत्र (विराटराज और शङ्ख) एक ही रथ पर स्थित हुए भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य को अपनी महती बाण-वर्षा से रोकने लगे ॥२०॥

भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम् ।
चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वर ॥२१॥

हे जनेश्वर ! द्रोणाचार्य भी कोप में भर गया । इसने सर्प के समान भयङ्कर बाण रण में बड़ी शीघ्रता से विराट-पुत्र शङ्ख पर छोड़े ॥२१॥

स तस्य हृदयं भित्वा पीत्वा शोणितमाहवे ।
जगाम धरणीं बाणो लोहितार्द्रपरच्छदः ॥२२॥

शंख के हृदय को छेद कर और रण में उसके रक्त को चाट कर रक्त मिश्रित गीले पंख आदि आवरणों वाला द्रोण का बाण, धरणी में घुस गया ॥२२॥

स पपात रणे तूर्णं भारद्वाजशराहतः ।
धनुस्त्यक्त्वा शरांश्चैव पितुरेव समीपतः ॥२३॥

भरद्वाज-पुत्र द्रोण के बाण से आहत हुआ, शङ्ख, अपने धनुष बाण को छोड़ कर पिता के ही पास में रण में गिर गया ॥२३॥

हतं तमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद्भयात् ।
उत्सृज्य समरे द्रोणं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥२४॥

अपने पुत्र को मृत देखकर विराटराज, खुले मुख वाले काल के समान भयङ्कर द्रोणाचार्य को देख कर भय से रण छोड़ कर भाग गया ॥२४॥

भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महाचमूम् ।
दारयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥२५॥

द्रोणाचार्य भी अब बड़ी शीघ्रता से पाण्डवों की विशाल सेना को सैंकड़ों हजारों की संख्या में मार २ कर रण में बिछाने लगा ॥२५॥

शिखण्डी तु महाराज द्रौणिमासाद्य संयुगे ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचैस्त्रिभिराशुगैः ॥२६॥

हे महाराज ! शिखण्डी ने रण में पहुंच कर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के भ्रुवों के मध्य स्थान ललाट में तीन तीव्रगामी बाणों से प्रहार किया ॥२६॥

स बभौ रथशार्दूलो ललाटे संस्थितैस्त्रिभिः ।
शिखरैः काञ्चनमयैर्मेरुस्त्रिभिरिवोच्छ्रितैः ॥२७॥

यह रथियों में श्रेष्ठ, अश्वत्थामा, ललाट में स्थित इन तीन बाणों से इस तरह सुशोभित होने लगे-जैसे-सुवर्ण के तीन उठे हुए शिखरों से मेरु पर्वत सुन्दर प्रतीत होता है ॥२७॥

अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो निमेषार्धाच्छिखण्डिनः ।
ध्वजं सूतमथो राजंस्तुरगानायुधानि च ॥२८॥
शरैर्बहुभिराच्छिद्य पातयामास संयुगे ।

हे राजन् ! अश्वत्थामा ने क्रोध में भर कर क्षण भर में ही शिखण्डी के ध्वजा, सारथि, अश्व और शस्त्रों को बहुत से बाणों से काट कर रणभूमि में डाल दिया ॥२८॥

स हताश्वादवप्लुत्य रथाद्वै रथिनां वरः ॥२९॥
खड्गमादाय सुशितं विमलं च शरावरम् ।
श्येनवद्व्यचरत्क्रुद्धः शिखण्डी शत्रुतापनः ॥३०॥

जब अश्व मारे गए, तो परन्तप रथिश्रेष्ठ शिखण्डी अश्व-विहीन रथ से कूद पड़ा और तीक्ष्ण चमकीला खड्ग और ढाल लेकर श्येन (बाज) पक्षी की तरह रणभूमि में मंडलाने लगा ॥३०

सखड्गस्य महाराज चरतस्तस्य संयुगे ।
नाऽन्तरं ददृशे द्रौणिस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥३१॥

हे महाराज ! खड्ग लेकर रण में घूमते हुए शिखण्डी के ऊपर प्रहार करने का कोई अन्तर (मौका) अश्वत्थामा को दिखाई नहीं पड़ता था। यह एक बड़ा ही आश्चर्यजनक दृश्य था ॥३१॥

ततः शरसहस्राणि बहूनि भरतर्षभ ।
प्रेषयामास समरे द्रौणिः परमकोपनः ॥३२॥

हे भरतर्षभ ! अब अत्यन्त कोप में आतुर होकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, सहस्रों बाणों को रण में छोड़ने लगा ॥३२॥

तामापतन्तीं समरे शरवृष्टिं सुदारुणाम् ।
असिना तीक्ष्णधारेण चिच्छेद बलिनां वरः ॥३३॥

इस प्रकार दारुण बाण-वर्षा को आती हुई देख कर रणभूमि में महाबली शिखण्डी, अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवार से उन्हें काट २ कर गिराने लगा ॥३३॥

ततोऽस्य विमलं द्रौणिः शतचन्द्रं मनोरमम् ।
चर्माऽच्छिनदसिं चाऽस्य खण्डयामास संयुगे ॥३४॥
शितैस्तु बहुशो राजन्तं च विव्याध पत्रिभिः ।

इसके अनन्तर अश्वत्थामा ने इसके शतचन्द्रों वाले मनोहर, खड्ग और चर्म (ढाल) को रणभूमि में तीक्ष्ण बाणों से काट गिराया और शिखण्डी को भी विक्षत कर दिया ॥३४॥

शिखण्डी तु ततः खड्गं खण्डितं तेन सायकैः ॥३५॥
आविध्य व्यसृजत्तूर्णं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ।

अश्वत्थामा द्वारा बाणों से खण्डित खड्गको शिखण्डीने खैंचकर विष भरे सर्प के समान शीघ्रता से अश्वत्थामा पर फैंका दिया ।

तमापतन्तं सहसा कालानलसमप्रभम् ॥३६॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
शिखण्डिनं च विव्याध शरैर्बहुभिरायसैः ॥३७॥

कालाग्नि के समान भीषण, इस खण्डित खड्ग को देखकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने हाथ का कौशल दिखाकर उसको भी रणभूमि में काट गिराया और शिखण्डी को भी अनेक लोहमय बाणों से बींध डाला ॥३६-३७॥

शिखण्डी तु भृशं राजंस्ताड्यमानः शितैः शरैः ।
आरुरोह रथं तूर्णं माधवस्य महात्मनः ॥३८॥

हे राजन ! इस प्रकार जब तीक्ष्ण बाणोंसे शिखण्डी बड़ा आहत हो गया-तो वह दौड़कर वृष्णिवंशज सात्यकि के रथपर चढ़ गया ।

सात्यकिश्चाऽपि संक्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध बलिनां वरः ॥३९॥

बलवान् सात्यकि भी क्रोध में भरा हुआ था। इसने रण में क्रूर अलम्बुष नामक राक्षसराज को अपने तीक्ष्ण बाणों से घायल किया ॥३९॥

राक्षसेन्द्रस्ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद भारत ।
अर्धचन्द्रेण समरे तं च विव्याध सायकैः ॥४०॥

हे भारत! राक्षसराज अलम्बुष ने भी सात्यकि के धनुष को एक अर्धचन्द्र बाण से काट डाला और सात्यकि को भी बाणों से बींध दिया ॥४०॥

मायां च राक्षसीं कृत्वा शरवर्षैरवाकिरत्।
तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयस्य पराक्रमम् ॥४१॥

इसने राक्षसी माया का अवलम्बन करके बाण-वर्षा करना आरम्भ किया। इस समय शिनि-पुत्र सात्यकि का भी पराक्रम बड़ा अद्भुत था ॥४१॥

असम्भ्रमस्तु समरे वध्यमानः शितैः शरैः ।
ऐन्द्रमस्त्रं च वार्ष्णेयो योजयामास भारत ॥४२॥

हे भारत! यह राक्षसराज के तीक्ष्ण बाणों से बींध कर भी बिना किसी व्याकुलता के रण में डटा रहा। अब वृष्णिवंशश्रेष्ठ सात्यकि ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया ॥४२॥

विजयाद्यदनुप्राप्तं माधवेन यशस्विना ।
तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा मायां तां राक्षसीं तदा ॥४३॥

यशस्वी सात्यकि ने जिस ऐन्द्रास्त्र को अर्जुन से प्राप्त किया था, उस अस्त्र ने अलम्बुष की राक्षसी माया को क्षण में विनाश कर दिया ॥४३॥

अलम्बुषं शरैरन्यैरभ्याकिरत सर्वतः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥४४॥

वर्षाकाल में जैसे मेघ, पर्वतों को अपनी वर्षासे व्याप्त कर देते हैं, उसी तरह सात्यकि ने भी राक्षसराज अलम्बुष को अनेक बाणों से व्याप्त कर दिया ॥४४॥

तत्तथा पीडितं तेन माधवेन यशस्विना ।
प्रदुद्राव भयाद्रक्षस्त्यक्त्वा सात्यकिमाहवे ॥४५

यशस्वी सात्यकि ने अलम्बुष को इतना पीड़ित किया, कि वह राक्षसराज रण में डटे हुए सात्यकि को छोड़कर भय से भाग गया

तमजेयं राक्षसेन्द्रं संख्ये मघवता अपि ।
शैनेयः प्राणदज्जित्वा योधानां तव पश्यताम् ॥४६॥

यह राक्षसराज, रण में इन्द्र से भी नहीं जीता जा सकता था, इसको सात्यकि ने जीतकर तुम्हारे सारे योद्धाओं के देखते २ बड़ा सिंहनाद किया ॥४६॥

न्यहनत्तावकांश्चाऽपि सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
निशितैर्बहुभिर्बाणैस्तेऽद्रवन्त भयार्दिताः ॥४७॥

सत्य-पराक्रमी सात्यकि ने तुम्हारी सेना के भी अनेक वीरों को अपने तीक्ष्ण बाणों से आहत कर दिया तथा अनेक वीर भयार्दित होकर रणभूमि से भाग निकले ॥४७॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदस्याऽऽत्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नो महाराज पुत्रं तव जनेश्वरम् ॥४८॥
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ।

हे महाराज ! इसी समय द्रुपद का बलवान् पुत्र, धृष्टद्युम्न, तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को अपने झुकी पर्व वाले बाणों से रण में आच्छादित करने लगा ॥४८॥

स च्छाद्यमानो विशिखैर्धृष्टद्युम्नेन भारत ॥४६॥
विव्यथे न च राजेन्द्र तव पुत्रो जनेश्वरः ।

हे भारत ! राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्न के बाणों से आच्छादित हुआ तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन कुछ भी व्यथित नहीं हुआ ॥४६॥

धृष्टद्युम्नं च समरे तूर्णं विव्याध पत्रिभिः ॥५०॥
षष्ट्या च त्रिंशता चैव तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

इसने अपने नब्बे बाणों से शीघ्र रण में धृष्टद्युम्न को आहत किया, यह घटना बड़ी ही अद्भुत थी ॥५०॥

तस्य सेनापतिः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ॥५१॥
हयांश्च चतुरः शीघ्रं निजघान महाबलः ।
शरैश्चैनं सुनिशितैः क्षिप्रं विव्याध सप्तभिः ॥५२॥

हे आर्य ! अब सेनापति महाबली धृष्टद्युम्न ने क्रुद्ध होकर राजा दुर्योधन का धनुष काट गिराया और इसके चारों अश्वों को मार डाला तथा सात तीक्ष्ण बाणों से इसे बींध दिया ॥५१-५२॥

स हताश्वान्महाबाहुरवप्लुत्य रथाद्बली ।
पदातिरसिमुद्यम्य प्राद्रवत्पार्षतं प्रति ॥५३॥

वह महाबाहु, बली, दुर्योधन अश्वविहीन रथ से कूदकर पैदल ही खड्ग उठाकर पर्षत राजकुमार धृष्टद्युम्न पर झपटा ॥५३॥

शकुनिस्तं समभ्येत्य राजगृद्धी महाबलः ।
राजानं सर्वलोकस्य रथमारोपयत्स्वकम् ॥५४॥

राज्य का लोलुप, महाबली शकुनि ने वेग से पहुंच कर सारे लोक के नृपति, दुर्योधन को अपने रथ पर चढ़ा लिया ॥५४॥

ततो नृपं पराजित्य पार्षतः परवीरहा ।
न्यहनत्तावकं सैन्यं वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥५५॥

शत्रुविजयी पर्षतकुमार धृष्टद्युम्न, इस प्रकार राजा दुर्योधन को पराजित करके फिर असुरों को वज्रपाणि इन्द्र की भांति, तुम्हारी सेना का वध करने लगा ॥५५॥

कृतवर्मा रणे भीमं शरैराच्छन्महारथः ।
प्रच्छादयामास च तं महामेघो रविं यथा ॥५६॥

महारथी कृतवर्मा; रण में भीम को बाणों से इस तरह ढ़क ने लगा, जैसे महामेघ सूर्य को ढ़क लेता है ॥५६॥

ततः प्रहस्य समरे भीमसेनः परन्तपः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान्कृतवर्मणे ॥५७॥

परन्तप भीम भी कुछ मुस्कुराकर क्रोधपूर्वक कृतवर्मा पर रण में बाण फेंकने लगा ॥५७॥

तैरर्द्यमानोऽतिरथः सात्वतः सत्यकोविदः ।
नाऽकम्पत महाराज भीमं चाऽऽर्छच्छितैः शरैः॥५८॥

हे महाराज ! इन बाणों से व्यथित किया हुआ यदुवंशोत्पन्न कृतवर्मा कुछ कम्पित नहीं हुआ और वह तीक्ष्ण शरों से भीम पर प्रहार करने लगा ॥५८॥

तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा भीमसेनो महारथः ।
सारथिं पातयामास सध्वजं सुपरिष्कृतम् ॥५९॥

महारथी भीमसेन ने भी उसके चारों अश्वों को मारकर देदीप्यमान ध्वजा के साथ सारथि को रणभूमि में काट गिराया।

शरैर्बहुविधैश्चैनमाचिनोत्परवीरहा ।
शकलीकृतसर्वाङ्गो हताश्वः प्रत्यदृश्यत ॥६०॥

शत्रुविजयी भीमसेन ने अनेक भांति के बाण चलाकर कृतवर्मा का शरीर छेद डाला । इसके अश्व मर चुके थे और सारा शरीर क्षतों से परिपूर्ण दिखाई दे रहा था ॥६०॥

हताश्वश्च ततस्तूर्णं वृषकस्य रथं ययौ ।
स्यालस्य ते महाराज तव पुत्रस्य पश्यतः ॥६१॥

हे महाराज ! अश्वविहीन, कृतवर्मा, तुम्हारे साले वृषक के रथ पर वेग से जा चढ़ा। इस सारी घटना को तुम्हारा पुत्र दुर्योधन देख रहा था ॥६१॥

भीमसेनोऽपि संक्रुद्धस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
निजघान च संक्रुद्धो दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥६२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वैरथे द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥

क्रोध में भरा हुआ, भीमसेन, तुम्हारी सेना को छिन्न-भिन्न करने लगा। वह कुपित हो रहा था और दण्डपाणि यमराज की भांति सेना संहार में प्रवृत्त था ॥६२॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में भीषण युद्ध का बयासीवां अध्याय समाप्त हुआ।



तिरासीवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

बहूनि हि विचित्राणि द्वैरथानि स्म सञ्जय।
पाण्डूनां मामकैः सार्धमश्रौषं तव जल्पतः ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय! मैंने दो दो महारथियों के जोट के बड़े २ विचित्र युद्ध तुम्हारे मुख से सुने, जो मेरे पुत्र और पाण्डव के मध्य में हुए थे ॥१॥

न चैव मामकं किञ्चिद्धृष्टं शंससि सञ्जय।
नित्यं पाण्डुसुतान्हृष्टानभग्नान्सम्प्रशंससि ॥२॥

हे सञ्जय! तुमने कभी मुझे मेरे किसी पुत्र या वीर की विजय नहीं सुनाई। तुमने तो सर्वदा पाण्डवों को प्रसन्नचित्त और विजयी, रण से पराङ्‌मुख नहीं होने वाला सुनाया है ॥२॥

जीयमानान्विमनसो मामकान्विगतौजसः।
वदसे संयुगे सूत दिष्टमेतन्न संशयः ॥३॥

हे सूत! तुम जो मेरे उत्तम २ वीरों को भी रण में विजित, उदास और तेज हीन सुना रहे हो-यह सब दैव का ही खेल है—इसमें सन्देह नहीं है ॥३॥

सञ्जय उवाच—

यथाशक्ति यथोत्साहं युद्धे चेष्टन्ति तावकाः।
दर्शयानाः परं शक्त्या पौरुषं पुरुषर्षभ ॥४॥

गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादु भूत्वा यथोदकम् ।
महोदधेर्गुणाभ्यासाल्लवणत्वं निगच्छति ॥५॥
तथा तत्पौरुषं राजंस्तावकानां परन्तप ।
प्राप्य पाण्डुसुतान्वीरान्व्यर्थं भवति संयुगे ॥६॥

सञ्जय ने कहा—हे पुरुषर्षभ ! तुम्हारी ओर के वीर भी अपनी शक्ति और उत्साह से युद्ध में पराक्रम दिखाते हैं, वे बड़ा ही बल, इस युद्ध के जीतने में व्यय कर रहे हैं, परन्तु गङ्गा नदी का जल, जैसे समुद्र में जाकर समुद्र के गुण से खारी हो जाता है। हे परन्तप ! राजन् ! इसी तरह आपके वीरों का पुरुषार्थ, वीर पाण्डवों के सन्मुख सारा ही रण में व्यर्थ हो जाता है ॥४-६॥

घटमानान्यथाशक्ति कुर्वाणान्कर्म दुष्करम् ।
न दोषेण कुरुश्रेष्ठ कौरवान्गन्तुमर्हसि ॥७॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! अपनी शक्ति के अनुसार उद्योग करते हुए कौरवों को इस समय कोई दोष नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि वे रण में फिर भी बड़े २ दुष्कर कर्म करके दिखा रहे हैं ॥७॥

तवाऽपराधात्सुमहान्सपुत्रस्य विशाम्पते ।
पृथिव्याः प्रलयो घोरो यमराष्ट्रविवर्धनः ॥८॥

हे विशाम्पते ! यह सब कुछ तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रों के अपराध का परिणाम है, जो यम के राष्ट्र की वृद्धि करने वाला यह घोर संहार प्रवृत्त हुआ है ॥८॥

आत्मदोषात्समुत्पन्नं शोचितुं नार्हसे नृप ।
नहि रक्षन्ति राजानः सर्वथाऽत्राऽपि जीवितम् ॥९॥

हे नृपते ! यह तो सारा क्लेश अपने ही दोष से उत्पन्न हुआ है । अब इसकी चिन्ता करने से क्या लाभ है । अब इस युद्ध में राजा लोग सब तरह से जीवन का मोह छोड़कर प्रवृत्त हैं ॥९॥

युद्धे सुकृतिनां लोकानिच्छन्तो वसुधाधिपाः ।
चमूं विगाह्य युद्ध्यन्ते नित्यं स्वर्गपरायणाः ॥१०॥

अब ये महीपाल तो पुण्यात्माओं को प्राप्त होने वाले लोकों की अभिलाषा करते हैं, इससे स्वर्ग-परायण होकर सेना का आलोडन करते हुए नित्य भीषण युद्ध ठानते रहते हैं ॥१०॥

पूर्वाह्णे तु महाराज प्रावर्तत जनक्षयः ।
तं त्वमेकमना भूत्वा शृणु देवासुरोपमम् ॥११॥

हे महाराज ! दिन के पूर्वार्द्ध में बड़ा ही जन संहार हुआ । अब तुम एकाग्र मन करके देवासुर संग्राम के तुल्य इस संग्राम के वृत्तान्त को सुनो ॥११॥

आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ ।
इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ ॥१२॥
तेषां प्रववृते युद्धं सुमहल्लोमहर्षणम् ।

अवन्ती के दोनों महाधनुर्धर, बड़ी सेना वाले, महाबली राजकुमार विन्द और अनुविन्द, इरावान को देखकर उस पर झपटे । ये दोनों ही रण में बड़े उत्कट थे । इन दोनों का बड़ा लोमहर्षण युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥१२॥

इरावांस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरौ देवरूपिणौ ॥१३॥
विव्याध निशितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ।

इरावान् भी क्रोध में भरा हुआ था, उसने देवों के समान पराक्रमी, इन दोनों भाइयों को झुकी पर्व वाले, तीक्ष्ण बाणों से शीघ्रता के साथ बींधना आरम्भ किया ॥१३॥

तावेनं प्रत्यविध्येतां समरे चित्रयोधिनौ ॥१४॥
युध्यतां हि तथा राजन्विशेषो न व्यदृश्यत ।
यततां शत्रुनाशाय कृतप्रतिकृतैषिणाम् ॥१५॥

ये दोनों भाई भी बड़ी विचित्रता के साथ युद्ध करने वाले थे । ये रण में इरावान् को बाणों से बींधने लगे। हे राजन्! जब ये वीर युद्ध कर रहे थे, तो इनमें कौन अधिक बली है, यह विशेषता नहीं बताई जा सकती थी । इन दोनों पक्षों (पार्टी) में अपने २ शत्रु के नाश की चेष्टा और एक दूसरे के प्रहार का उत्तर प्रत्युत्तर दोनों ही वीरता के साथ समान रूप से दे रहे थे ॥१५॥

इरावांस्तु ततो राजन्ननुविन्दस्य सायकैः ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहानयन्यमसादनम् ॥१६॥

हे राजन्! अब इरावान् ने अपने चार बाणों से अनुविन्द के चारों अश्वों को यमलोक भेज दिया ॥१६॥

भल्लाभ्यां च सुतीक्ष्णाभ्यां धनुः केतुं च मारिष ।
चिच्छेद समरे राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥१७॥

हे मारिष ! बड़े तीक्ष्ण दो बाणों से इरावान् ने अनुविन्द का धनुष और उसकी ध्वजा भी काट डाली। हे राजन्! यह घटना रण में बड़े आश्चर्य के साथ देखी गई ॥१७॥

त्यक्त्वाऽनुविन्दोऽथ रथं विन्दस्य रथमास्थितः।
धनुर्गृहीत्वा परमं भारसाधनमुत्तमम् ॥१८॥

अनुविन्द अपने रथ को छोड़ कर अपने भाई विन्द के रथ पर चढ़ गया। इसने युद्ध के भार का सह लेने वाला, बड़ा उत्तम धनुष उठाया ॥१८॥

तावेकस्थौ रणे वीरावावन्त्यौ रथिनां वरौ।
शरान्मुमुचतुस्तूर्णमिरावति महात्मनि ॥१९॥

अवन्तिदेशोत्पन्न, रथियों में श्रेष्ठ, दोनों वीर एक ही रथ में बैठे हुए थे। ये दोनों अत्र महावीर इरावान् पर रण में भीषण बाण-वर्षा बड़ी शीघ्रता से करने लगे ॥१९॥

ताभ्यां मुक्ता महावेगाः शराः काञ्चनभूषणाः।
दिवाकरपथं प्राप्य च्छादयामासुरम्बरम् ॥२०॥

विन्द और अनुविन्द द्वारा छोड़े हुए, महावेगशील, सुवर्ण जटित, बाण, सूर्य के मार्ग में जाकर आकाश को आच्छादित करने लगे ॥२०॥

इरावांस्तु रणे क्रुद्धौ भ्रातरौ तौ महारथौ।
ववर्ष शरवर्षेण सारथिं चाऽप्यपातयत् ॥२१॥

इस रण में क्रोध में भरे हुए इरावान् ने भी इन दोनों महारथी भ्राताओं को अपनी बाणवर्षा से व्याकुल कर दिया और इनके सारथि को भी रणभूमि में गिरा दिया ॥२१॥

तस्मिंस्तु पतिते भूमौ गतसत्वे तु सारथौ ।
रथः प्रदुद्राव दिशः समुद्भ्रान्तहयस्ततः ॥२२॥

जब प्राण विहीन होकर सारथि रणभूमि में गिर गया, तो अश्व चौंककर रथ को इधर उधर दिशाओं में लेकर भागने लगे।

तौ स जित्वा महाराज नागराजसुतासुतः ।
पौरुषं ख्यापयंस्तूर्णं व्यधमत्तव वाहिनीम् ॥२३॥

हे महाराज ! अर्जुन द्वारा नागराज कन्या में उत्पन्न इरावान् इन दोनों को जीतकर अत्यन्त वेग से अपने पुरुषार्थ का परिचय देने लगा। इसने तुम्हारी सेना का विनाश करना आरम्भ किया।

सा वध्यमाना समरे धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
वेगान्बहुविधांश्चक्रे विषं पीत्वेव मानवः ॥२४॥

रण में मारी गई धार्तराष्ट्रों की महान् सेना, विष के पान करने वाले मनुष्य की भांति अनेक तरह से छटपटाने लगी ॥२४॥

हैडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत् ।
रथेनाऽऽदित्यवर्णेन सध्वजेन महाबलः ॥२५॥

भीमसेन द्वारा हिडिम्बा राक्षसी में उत्पन्न घटोत्कच ने राजा भगदत्त पर आक्रमण किया। इस महाबली राक्षसराज का रथ

सूर्य के समान चमक रहा था और उस पर बड़ी सुन्दर ध्वजा लगी थी ॥२५॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा नागराजं समास्थितः ।
यथा वज्रधरः पूर्वं संग्रामे तारकामये ॥२६॥

यह राजा प्राग्ज्योतिष (भगदत्त) एक उत्तम हाथी पर बैठा था। तारकासुर संग्राम में जिस प्रकार वज्र-धर इन्द्र दिखाई देता था, वैसा ही भगदत्त भी प्रतीत होता था ॥२६॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च समागताः ।
विशेषं न स्म विविदुर्हैडिम्बभगदत्तयोः ॥२६॥

इस समय यहां देव, गन्धर्व ऋषिगण भी इस युद्ध के दृश्य को देख रहे थे, परन्तु कोई भी घटोत्कच और भगदत्त के पराक्रम के भेद को निश्चित नहीं कर सकता था ॥२७॥

यथा सुरपतिः शक्रस्त्रासयामास दानवान् ।
तथैव समरे राजा द्रावयामास पाण्डवान् ॥२८॥

जिस तरह सुरपति इन्द्र, दानवों को पीड़ित कर देता है, उसी तरह रण में राजा भगदत्त, पाण्डवों की सेना को छिन्न भिन्न करने लगे ॥२८॥

तेन विद्राव्यमाणास्ते पाण्डवाः सर्वतोदिशम् ।
त्रातारं नाऽभ्यगच्छन्तः स्वेष्वनीकेषु भारत ॥२९॥

हे भारत ! राजा भगदत्त से सब दिशाओं में खदेड़े गए पाण्डव वीर, अपनी सेना में किसी को अपनी रक्षा करते नहीं देख पाते थे ॥२९॥

भैमसेनिं रथस्थं तु तत्राऽपश्याम भारत ।
शेषा विमनसो भूत्वा प्राद्रवन्त महारथाः ॥३०॥

हे भारत ! वहां पर भीमसेन-पुत्र घटोत्कच ही केवल रथमें बैठा दिखाई देता था, शेष महारथी तो उदास मन होकर भाग निकले थे।

निवृत्तेषु तु पाण्डूनां पुनः सैन्येषु भारत ।
आसीन्निष्ठानको घोरस्तव सैन्यस्य संयुगे ॥३१॥

हे भारत ! किसी प्रकार फिर पाण्डवों की सेना लौट पड़ी। इस समय रण में तुम्हारी सेना में बड़ा करुणा क्रन्दन हो उठा ॥३१

घटोत्कचस्ततो राजन्भगदत्तं महारणे ।
शरैः प्रच्छादयामास मेरुं गिरिमिवाऽम्बुदः ॥३२॥

हे राजन् ! मेरु पर्वत को मेघ की तरह राक्षसराज घटोत्कच ने इस महारण में राजा भगदत्त को अपने बाणों से पाट दिया ॥३२॥

निहत्य ताञ्शरान्राजा राक्षसस्य धनुश्च्युतान् ।
भैमसेनिं रणे तूर्णं सर्वमर्मस्वताडयत् ॥३३॥

इस रण में राजा भगदत्त, राक्षसराज घटोत्कच के धनुष से निकले हुए बाणों को काट कर भीमसेन-पुत्र घटोत्कच के मर्मों में बड़ी शीघ्रता से बाणों द्वारा प्रहार करने लगे ॥३३॥

स ताड्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
न विव्यथे राक्षसेन्द्रो भिद्यमान इवाऽचलः ॥३४॥

झुकी पर्ववाले, बहुत से बाणों से बिंधा हुआ भी राक्षसराज घटोत्कच, भेदित किए हुए पर्वत की भांति कुछ भी व्यथित नहीं हुआ ॥३४॥

तस्य प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरांश्च चतुर्दश ।
प्रेषयामास समरे तांश्चिच्छेद स राक्षसः ॥३५॥

इस समय राजा प्राग्ज्योतिष (भगदत्त) ने क्रुद्ध होकर चौदह तोमर उठाए और घटोत्कच पर फैंके। राक्षसराज घटोत्कच ने उनको मार्ग में ही काट कर रणभूमि में डाल दिए ॥३५॥

स तांश्छित्वा महाबाहुस्तोमरान्निशितैः शरैः ।
भगदत्तं च विव्याध सप्तत्या कङ्कपत्रिभिः ॥३६॥

इस महाबाहु घटोत्कच ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उन तोमर शस्त्रों को काट कर कङ्कपक्षी के पंखों से युक्त सात बाणों से राजा भगदत्त को बींध दिया ॥३६॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा प्रहसन्निव भारत ।
तस्याऽश्वांश्चतुरः संख्ये पातयामास सायकैः ॥३७॥

हे भारत ! इसके अनन्तर प्राग्ज्योतिषपुर के अधिपति राजा भगदत्त ने मुस्कुराते हुए घटोत्कच के चारों अश्वों को अपने बाणों से रणभूमि में गिरा दिया ॥३७॥

स हताश्वे रथे तिष्ठन्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति ॥३८॥

अश्वविहीन रथ में स्थित, प्रतापी, राक्षसेन्द्र, घटोत्कच ने राजा भगदत्त के हाथी के ऊपर बड़े वेगसे शक्ति का प्रहार किया।

तामापतन्तीं सहसा हेमदण्डां सुवेगिनीम् ।
त्रिधा चिच्छेद नृपतिः सा व्यकीर्यत मेदिनीम् ॥३६

सुवर्ण के दण्ड से युक्त, वेगवाली उस शक्ति को आती हुई देखकर राजा भगदत्त ने उसके तीन टुकड़े कर दिए, जिससे वह छिन्न भिन्न होकर भूमि में गिर गई ॥३६॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा हैडिम्बः प्राद्रवद्भयात् ।
यथेन्द्रस्य रणात्पूर्वं नमुचिर्दैत्यसत्तमः ॥४०॥

अपनी शक्ति को इस प्रकार निष्फल जाते देखकर, हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच, भय से इन्द्र के रण से दैत्यराज नमुचि की भांति भाग निकला ॥४०॥

तं विजित्य रणे शूरं विक्रान्तं ख्यातपौरुषम् ।
अजेयं समरे वीरं यमेन वरुणेन च ॥४१॥

पाण्डवीं समरे सेनां सम्ममर्द स कुञ्जरः ।
यथा वनगजो राजन्मृद्नंश्चरति पद्मिनीम् ॥४२॥

हे राजन् ! विख्यात पराक्रमी, अत्यन्त विक्रमशील, रण में शूरता प्रदर्शित करने वाले, युद्ध में वरुण और यमराज से भी

दुर्जय, घटोत्कच को जीत कर वीर-श्रेष्ठ, राजा भगदत्त जैसे-सरोवर में पद्मिनी को गजराज मसल डालता है, उसी तरह रण में पाण्डवी सेना को कुचलने लगा ॥४१ ४२॥

मद्रेश्वरस्तु समरे यमाभ्यां समसज्जत ।
स्वस्रीयौ छादयाञ्चक्रे शरौघैः पाण्डुनन्दनौ ॥४३॥

इधर मद्रेश्वर शल्य भी रण में नकुल और सहदेव से भिड़ गए। इसने अपने भगिनी-पुत्र पाण्डु-नन्दन, नकुल और सहदेव को बाण समूह से ढ़क दिया ॥४३॥

सहदेवस्तु समरे मातुलं दृश्य सङ्गतम् ।
अवारयच्छरौघेण मेघो यद्वद्दिवाकरम् ॥४४॥

इस रण में सहदेव ने अपने मामा शल्य से ही अपनी टक्कर देखकर उसको इस तरह बाणों से ढ़क दिया, जैसे-मेघ, सूर्य को ढ़क देता है।४४॥

छाद्यामनः शरौघेण हृष्टरूपतरोऽभवत् ।
तयोश्चाऽप्यभवत्प्रीतिरतुला मातृकारणात् ॥४५॥

अपने भगिनी-पुत्रों के हाथ से छोड़े हुए बाणों से आच्छादित होकर राजा शल्य बड़ा ही प्रसन्न हुआ। इन दोनों की परस्पर बड़ी ही प्रीति दिखाई दी, क्योंकि इनकी माता के कारण इनका बहुत समीप का सम्बन्ध था ॥४५॥

ततः प्रहस्य समरे नकुलस्य महारथः ।
अश्वांश्च चतुरो राजंश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥४६॥
प्रेषयामास समरे यमस्य सदनं प्रति ।

महारथी शल्य ने कुछ मुस्कुराकर रण में नकुल के चारों अश्वों को अपने चार बाणों से यमराज की पुरी को भेज दिया।

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ॥४७॥
आरुरोह ततो यानं भ्रातुरेव यशस्विनः ।

महारथी नकुल अश्वविहीन रथ से झटपट कूद पड़ा और शीघ्रता से अपने यशस्वी भाई सहदेव के रथ पर जा चढ़ा ॥४७॥

एकस्थौ तु रणे शूरौ दृढे विक्षिप्य कार्मुके ॥४८॥
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामासतुः क्षणात् ।

अब दोनों शूरवीर भ्राता, नकुल और सहदेव, एक रथ पर चढ़े हुए, दृढ़ धनुष फैंकने लगे। इन्होंने क्षण भर में मद्रराज शल्य के रथ को बाणों से पाट दिया ॥४८॥

स च्छाद्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४९॥
स्वस्रीयाभ्यां नरव्याघ्रो नाऽकम्पत यथाऽचलः ।
प्रहसन्निव तां चाऽपि शस्त्रवृष्टिं जघान ह ॥५०॥

यह नरव्याघ्र शल्य, झुकी पर्व-वाले बाणों से अपने भगिनी पुत्रों द्वारा आहत होकर भी कुछ भी विचलित नहीं हुआ और पर्वत की तरह अचल ही खड़ा रहा। इसने धीरे २ हंसते हुए उस बाणवर्षा को भी शान्त कर दिया ॥४९-५०॥

सहदेवस्ततः क्रुद्धः शरमुद्गृह्य वीर्यवान् ।
मद्रराजमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास भारत ॥५१॥

हे भारत ! वीर्यवान् सहदेव ने क्रोध में भर कर बाण निकाला और मद्रराज शल्य को लक्ष्य बनाकर उस पर प्रहार किया

स शरः प्रेषितस्तेन गरुडानिलवेगवान् ।
मद्रराजं विनिर्भिद्य निपपात महीतले ॥५२॥

सहदेव का छोड़ा हुआ, गरुड़ और वायु के तुल्य वेग वाला, बाण, मद्रराज के शरीर को चीर कर पृथिवी पर जा गिरा ॥५२॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः ।
निषसाद महाराज कश्मलं च जगाम ह ॥५३॥

इस बाण की मद्रराज शल्य के इतनी गहरी चोट बैठी, कि वह व्यथा के मारे रथ के मध्य में बैठ गया । हे महाराज ! थोड़ी देर के लिये इसको कश्मल (बेहोशी) प्राप्त हो गया ॥५३॥

तं विसंज्ञं निपतितं सूतः सम्प्रेक्ष्य संयुगे ।
अपोवाह रथेनाऽऽजौ यमाभ्यामभिपीडितम् ॥५४॥

सारथि इसको रण में मूर्च्छित और अचेत पड़ा हुआ देख कर, अपने रथ के द्वारा इसको रण से बाहर ले गया । यह नकुल और सहदेव के प्रहारों से बहुत ही व्याकुल हो गया था ॥५४॥

दृष्ट्वा मद्रेश्वररथं धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखम् ।
सर्वे विमनसो भूत्वा नेदमस्तीत्यचिन्तयन् ॥५५॥

धृतराष्ट्र-पुत्र मद्रेश्वर शल्य के रथ को युद्ध से विमुख होकर लौटता देखकर सारे उदास मन वाले हो गए और विचारने लगे, कि अब यह युद्ध हाथ नहीं आवेगा ॥५५॥

निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ सिंहनादं च नेदतुः ॥५६॥

महारथी, माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव अपने मामा को रण में जीतकर बड़ी प्रसन्नता के साथ शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥५६॥

अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशाम्पते ।
यथा दैत्यचमूं राजन्निन्द्रोपेन्द्राविवाऽमरौ ॥५७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

हे विशाम्पते ! ये दोनों पाण्डव प्रसन्नता में भरे हुए, तुम्हारी सेना पर चढ़ दौड़े । हे राजन् ! जैसे दैत्य सेना पर इन्द्र और उपेन्द्र (विष्णु) चढ़ जाते हैं ॥५७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में द्वन्द्व युद्ध का तिरासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।



चौरासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास वाजिनः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर ने सूर्य को आकाश के मध्य में पहुंच जाने के समय, राजा श्रुतायु को देखकर उसकी ओर अपने रथ के अश्वों को चलाया ॥१॥

अभ्यधावत्ततो राजा श्रुतायुषमरिन्दमम् ।
विनिघ्नन्सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥२॥

राजा युधिष्ठिर ने नौ नतपर्ववाले, तीक्ष्ण, बाणों से अरि-मर्दन श्रुतायु पर प्रहार करते हुए। उस पर आक्रमण किया ॥२॥

स संवार्य रणे राजा प्रेषितान्धर्मसूनुना ।
शरान्सप्त महेष्वासः कौन्तेयाय समार्पयत ॥३॥

धर्मराज द्वारा फैंके हुए नौ बाणों को रोककर रण में महा-धनुर्धर राजा श्रुतायु ने कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर पर सात बाणों से आक्रमण किया ॥३॥

ते तस्य कवचं भित्वा पपुः शोणितमाहवे ।
असूनिव विचिन्वन्तो देहे तस्य महात्मनः ॥४॥

ये बाण, रण में धर्मराज के कवच को चीरकर उसका रुधिर पीने लगे, मानो ये बाण, महावीर युधिष्ठिर की देह में प्राणों की खोज कर रहे हों ॥४॥

पाण्डवस्तु भृशं क्रुद्धो विद्धस्तेन महात्मना ।
रणे वराहकर्णेन राजानं हृद्यविध्यत ॥५॥

महावीर राजा श्रुतायु द्वारा विद्ध हुए धर्मराज अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे । इन्होंने वराह-कर्ण नामक बाण से राजा श्रुतायु के हृदय में प्रहार किया ॥५॥

अथाऽपरेण भल्लेन केतुं तस्य महात्मनः ।
रथश्रेष्ठो रथात्तूर्णं भूमौ पार्थो न्यपातयत् ॥६॥

रथियों में श्रेष्ठ, कुन्ती-पुत्र, राजा युधिष्ठिर ने दूसरे बाण से इस महावीर राजा श्रुतायु की ध्वजा को शीघ्र ही रथ से नीचे काट गिराया ॥६॥

केतुं निपतितं दृष्ट्वा श्रुतायुः स तु पार्थिवः ।
पाण्डवं विशिखैस्तीक्ष्णै राजन्विव्याध सप्तभिः ॥७॥

हे राजन् ! अपनी ध्वजा को कट कर गिरती हुई देखकर-राजा श्रुतायु क्रोध से झल्ला उठा । उस ने सात तीक्ष्ण बाणों से धर्मराज को आहत कर दिया ॥७॥

ततः क्रोधात्प्रजज्वाल धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यथा युगान्ते भूतानि दिधक्षुरिव पावकः ॥८॥

धर्मपुत्र, राजा युधिष्ठिर अब क्रोध से जल उठे। प्रलयकाल में भूतों को भस्म करते हुए अग्नि के सदृश धर्मराज का स्वरूप दिखाई दे रहा था ॥८॥

क्रुद्धं तु पाण्डवं दृष्ट्वा देवगन्धर्वराक्षसाः ।
प्रविव्यथुर्महाराज व्याकुलं चाऽप्यभूज्जगत् ॥९॥

हे महाराज ! राजा युधिष्ठिर को कुपित देखकर देव, गन्धर्व और राक्षस बड़े पीड़ित हुए और सारा जगत् व्याकुल हो उठा।

सर्वेषां चैव भूतानामिदमासीन्मनोगतम् ।
त्रीँल्लोकानद्य संक्रुद्धो नृपोऽयं धक्ष्यतीति वै ॥१०॥

इस समय सारे प्राणियों को यही प्रतीत होने लगा, कि क्रोध में भरे हुए धर्मराज, अब तीनों लोकों को भस्म करके रहेंगे ॥१०॥

ऋषयश्चैव देवाश्च चक्रुः स्वस्त्ययनं महत् ।
लोकानां नृप शान्त्यर्थं क्रोधिते पाण्डवे तदा ॥११॥

हे नृपते ! जब पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर कुपित हुए-तो लोकों की शान्ति के लिए ऋषि और देवताओं ने बहुत सा स्वस्ति-वाचन किया ॥११॥

स च क्रोधसमाविष्टः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
दधाराऽऽत्मवपुर्घोरं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥१२॥

क्रोध में आविष्ट हुए धर्मराज, अपने ओष्ठों को चबाने लगे। इस समय इनका स्वरूप प्रलय-कालीन सूर्य के सदृश भीषण दिखाई देता था ॥१२॥

ततः सैन्यानि सर्वाणि तावकानि विशाम्पते ।
निराशान्यभवंस्तत्र जीवितं प्रति भारत ॥१३॥

हे विशाम्पते ! भारत ! इस समय तुम्हारी सारी सेनाएँ इतनी भयभीत हुई, कि उन्होंने अपने जीवन की आशा तक छोड़ दी ॥१३॥

स तु धैर्येण तं कोपं सन्निवार्य महायशाः ।
श्रुतायुषः प्रचिच्छेद मुष्टिदेशे महाधनुः ॥१४॥

महायशस्वी धर्मराज ने धैर्य के साथ शीघ्र ही अपने क्रोध को शान्त किया और श्रुतायु के मुष्टि-प्रदेश से उसके महाधनुष को काट गिराया ॥१४॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचेन स्तनान्तरे ।
निर्बिभेद रणे राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥१५॥

जब श्रुतायु का धनुष कट गया-तो दूसरे बाण से राजा युधिष्ठिर ने श्रुतायु की छाती में सारी सेना के देखते २ भीषण प्रहार किया ॥१५॥

सत्वरं च रणे राजंस्तस्य वाहान्महात्मनः ।
निजघान शरैः क्षिप्रं सूतं च सुमहाबलः ॥१६॥

हे राजन् ! महाबली धर्मराज ने बड़ी शीघ्रता से इस महावीर श्रुतायु के अश्व और सारथि को अपने तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया ॥१६॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दृष्ट्वा राज्ञोऽस्य पौरुषम् ।
विप्रदुद्राव वेगेन श्रुतायुः समरे तदा ॥१७॥

अपने रथ के अश्वों को निहत तथा राजा युधिष्ठिर का महान् पौरुष देखकर राजा श्रुतायु बड़े वेग के साथ रणभूमि से भाग निकला ॥१७॥

तस्मिञ्जिते महेष्वासे धर्मपुत्रेण संयुगे ।
दुर्योधनबलं राजन्सर्वमासीत्पराङ्मुखम् ॥१८॥

हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर द्वारा महाधनुर्धर राजा श्रुतायु के जीत लेने पर राजा दुर्योधन की सारी सेना युद्ध से पराङ्मुख होकर लौट पड़ी ॥१८॥

एतत्कृत्वा महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
व्यात्ताननो यथा कालस्तव सैन्यं जघान ह ॥१६॥

हे महाराज ! इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर, राजा श्रुतायु को पराजित करके, मुख फाड़े हुए काल की भांति तुम्हारी सेना को मारने-लगे ॥१६॥

चेकितानस्तु वार्ष्णेयो गौतमं रथिनां वरम् ।
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां छादयामास सायकैः ॥२०॥

वृष्णिवंशोत्पन्न, चेकितान ने भी रथियों में मुख्य, गौतम-गोत्रोत्पन्न, कृपाचार्य को सब सेना के देखते २ बाणों से आच्छादित कर दिया ॥२०॥

सन्निवार्य शरांस्तांस्तु कृपः शारद्वतो युधि ।

चेकितानं रणे यत्तं राजन्विव्याध पत्रिभिः ॥२१॥

हे राजन्! शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य, उन बाणों को रोक कर रणाङ्गण में सावधानी से युद्ध करने वाले चेकितान को अपने बाणों से बींधने लगे ॥२१॥

अथाऽपरेण भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ।

सारथिं चाऽस्य समरे क्षिप्रहस्तो न्यपातयत् ॥२२॥

अश्वांश्चाऽस्याऽवधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ।

हे आर्य! अब एक बाण से कृपाचार्य ने चेकितान का धनुष काट दिया और वेग वाले हाथ की कुशलता से इसके सारथि को भी इससे समर में लिटा दिया। हे राजन्! इसने इसके रथ के अश्व भी मार दिए और दो पृष्ठ-रक्षकों को भी यमराज के पुर में पहुंचा दिया ॥२२॥

सोऽवप्लुत्य रथात्तूर्णं गदां जग्राह सात्वतः ॥२३॥

स तया वीरघातिन्या गदया गदिनां वरः ।

गौतमस्य हयान्हत्वा सारथिं च न्यपातयत् ॥२४॥

अब यदुवंशश्रेष्ठ चेकितान ने शीघ्र रथ से कूद कर गदा उठाई। गदाधारियों में श्रेष्ठ इस महारथी ने वीरों के नाश कर देने वाली इस गदा से कृपाचार्य के अश्वों को मार कर उसके सारथि को भी यमधाम पहुंचा दिया ॥२३-२४॥

भूमिष्ठो गौतमस्तस्य शरांश्चिक्षेपषोडश ।
शरास्ते सात्वतं भित्वा प्राविशन्धरणीतलम् ॥२५॥

अब भूमि में ही स्थित कृपाचार्य ने उसके ऊपर सोलह बाण छोड़े ,ये बाण चेकितान का शरीर बींधकर भूमि में घुस गए ॥२५॥

चेकितानस्ततः क्रुद्धः पुनश्चिक्षेप तां गदाम् ।
गौतमस्य वधाकांक्षी वृतस्येव पुरन्दरः ॥२६॥

चेकितान ने कुपित होकर फिर वही गदा चलाई, वृत्रासुर के वध के अभिलाषी इन्द्र की भांति यह भी कृपाचार्य के वध की चेष्टा कर रहा था ॥२६॥

तामापतन्तीं विमलामश्मगर्भां महागदाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास गौतमः ॥२७॥

इस चमकती हुई, अश्मसार से युक्त, महागदा को अपने ऊपर आती हुई देखकर कृपाचार्य ने अनेक सहस्र बाणों से उसे वहीं रोक दिया ॥२७॥

चेकितानस्ततः खड्गं क्रोधादुद्धृत्य भारत ।
लाघवं परमास्थाय गौतमं समुपाद्रवत् ॥२८॥

हे भारत ! अब चेकितान ने क्रोध में भरकर खड्ग उठाया और बड़े लाघव (फुर्ती) के साथ गौतमगोत्रोत्पन्न कृपाचार्य पर आक्रमण किया ॥२८॥

गौतमोऽपि धनुस्त्यक्त्वा प्रगृह्याऽसिं सुसंयतः ।
वेगेन महता राजंश्चेकितानमुपाद्रवत ॥२६॥

कृपाचार्य भी अपने धनुष को छोड़कर खड्ग लेकर सावधानी के साथ बड़े वेग से चेकितान पर टूट पड़ा ॥२६॥

तावुभौ बलसम्पन्नौ निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
निस्त्रिंशाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यामन्योन्यं सन्ततक्षतुः ॥३०॥

ये दोनों ही बलसम्पन्न और खड्गधारी थे । इन्होंने अपने २ तीक्ष्ण खड्ग से एक दूसरे पर प्रहार किया ॥३०।

निस्त्रिंशवेगाभिहतौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ ।
धरणीं समनुप्राप्तौ सर्वभूतनिषेविताम् ॥३१॥

ये दोनों वीरश्रेष्ठ, एक दूसरे से परस्पर आहत हुए समस्त प्राणियों की आधारभूत भूमि पर गिर पड़े ॥३१॥

मूर्च्छयाऽभिपरीताङ्गौ व्यायामेन तु मोहितौ ।
ततोऽभ्यधावद्वेगेन करकर्षः सुहृत्तया ॥३२॥

इन दोनों वीरों को मूर्च्छा आ गई थी और ये इस युद्ध के परिश्रम से भी, थक गए थे । इसी समय शिशुपाल-पुत्र वीर करकर्ष, चेकितान की मित्रता के सम्बध से बड़े वेग से दौड़ा ।

चेकितानं तथा भूतं दृष्ट्वा समरदुर्मदः ।
रथमारोपयच्चैनं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥३३॥

युद्धदुर्मद, करकर्ष, चेकितान को इस दशा में मूर्च्छित देखकर सारी सेना के देखते २ उसको अपने रथ में चढ़ा लाया।

तथैव शकुनिः शूरः श्यालस्तव विशाम्पते।
आरोपयद्रथं तूर्णं गौतमं रथिनां वरम् ॥३४॥

हे विशाम्पते ! इसी तरह शूरवीर, आपका श्यालक (साला) शकुनि भी रथिवर कृपाचार्य को अपने रथ में ले आया ॥३४॥

सौमदत्तिं तथा क्रुद्धो धृष्टकेतुर्महाबलः।
नवत्या सायकैः क्षिप्रं राजन्विव्याध वक्षसि ॥३५॥

हे राजन ! महाबली धृष्टकेतु ने क्रोध में भरकर सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा पर आक्रमण किया और उसके वक्षःस्थल में नव्वे बाण मारे ॥३५॥

सौमदत्तिरुरःस्थैस्तैर्भृशं बाणैरशोभत।
मध्यन्दिने महाराज रश्मिभिस्तपनो यथा ॥३६॥

हे महाराज ! हृदय स्थित इन बाणों से व्याप्त हुआ, सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा, मध्याह्न में किरणों से युक्त सूर्य की भांति अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥३६॥

भूरिश्रवास्तु समरे धृष्टकेतुं महारथम्।
हतसूतहयं चक्रे विरथं सायकोत्तमैः ॥३७॥

भूरिश्रवा ने भी अपने उत्तम बाणों से धृष्टकेतु के अश्वों को मार कर महारथी धृष्टकेतु को रथविहीन कर दिया ॥३७॥

निरथं तं समालोक्य हताश्वं हतसारथिम् ।
महता शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे ॥३८॥

जब धृष्टकेतु के अश्व और सारथि मारे गए और वह रथहीन हो गया-तो रण में भूरिश्रवा ने बड़ी भारी बाणवर्षा करके इसको पाट दिया ॥३८॥

स तु तं रथमुत्सृज्य धृष्टकेतुर्महामनाः ।
आरुरोह ततो यानं शतानीकस्य मारिष ॥३९॥

हे मारिष ! महामनस्वी धृष्टकेतु भी अब उस रथ को छोड़ कर शतानीक के रथ पर चढ़ गया ॥३९॥

चित्रसेनो विकर्णश्च राजन्दुर्मर्षणस्तथा ।
रथिनो हेमसन्नाहाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥४०॥

हे राजन् ! चित्रसेन, विकर्ण, दुर्मर्षण आदि महारथी भी सुवर्ण के कवच पहिन कर सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु पर झपटे ॥४०॥

अभिमन्योस्ततस्तैस्तु घोरं युद्धमवर्तत ।
शरीरस्य यथा राजन्वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥४१॥

हे राजन् ! इस महारथी और अभिमन्यु में इस प्रकार घोर युद्ध होने लगा, जैसे शरीर में वात, पित्त और कफ का होता रहता है ॥४१॥

निरथांस्तव पुत्रांस्तु कृत्वा राजन्महाहवे ।
न जघान नरव्याघ्रः स्मरन्भीमवचस्तदा ॥४२॥

हे राजन्! इस महारण में तुम्हारे पुत्रों को रथ विहीन करके भी अभिमन्यु ने उनका वध नहीं किया, क्योंकि उसे भीमसेन की इनके मारने की प्रतिज्ञा का स्मरण था ॥४२॥

ततो राज्ञां बहुशतैर्गजाश्वरथयायिभिः ।
संवृतं समरे भीष्मं देवैरपि दुरासदम् ॥४३॥
प्रयान्तं शीघ्रमुद्वीक्ष्य परित्रातुं सुतांस्तव ।
अभिमन्युं समुद्दिश्य बालमेकं महारथम् ॥४४॥
वासुदेवमुवाचेदं कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
चोदयाऽश्वान्हृषीकेश यत्रैतेः बहुला रथाः॥४५॥

हे राजन्! सैंकड़ों राजा, गज, अश्व, रथी आदि वीरों से घिरे हुए, देवों से भी दुरासद, भीष्म को तुम्हारे पुत्रों की रक्षा के निमित्त महारथी बालक अभिमन्यु को लक्ष्य करके दौड़ते हुए देखकर श्वेत अश्वों के वाहन वाले, अर्जुन, वसुदेव-पुत्र, श्रीकृष्ण से बोले—हे हृषीकेश! जहां ये सारे महारथी इकट्ठे हो रहे हैं, वहाँ मेरे अश्वों को भी ले चलो ॥४३-४५॥

एते हि बहवः शूराः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
यथा हन्युर्न नः सेनां तथा माधव चोदय॥४६॥

हे माधव! ये बहुत से शूरवीर, युद्धदुर्मद और अस्त्र-विद्या में कुशल हैं। ये जिस तरह हमारी सेना का नाश न कर सकें-उसी तरह का प्रयत्न करके हमारे अश्वों को चलाओ ॥४६॥

एवमुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनाऽमितौजसा।
रथं श्वेतहयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे ॥४७॥

अत्यन्त तेजस्वी अर्जुन द्वारा इतना कहने पर वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने श्वेत अश्वों से युक्त रथ को उसी रण की ओर चलाया

निष्ठानको महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष।
यदर्जुनो रणे क्रुद्धः संयातस्तावकान्प्रति ॥४८॥

हे मारिष ! इस समय तुम्हारी सेना में बड़ा ही करुणाक्रन्दन हो रहा था, क्योंकि क्रोध में भरा हुआ अर्जुन तुम्हारी सेना पर प्रहार कर रहा था ॥४८॥

समासाद्य तु कौन्तेयो राज्ञस्तान्भीष्मरक्षिणः।
सुशर्माणमथो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥४९॥
जानामि त्वां युधां श्रेष्ठमत्यन्तं पूर्ववैरिणम् ।
अनयस्याऽद्य सम्प्राप्तं फलं पश्य सुदारुणम् ॥५०॥
अद्य ते दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान्पितामहान्।

हे राजन् ! भीष्म की रक्षा करने वाले, इन वीर महारथियों के पास पहुंच कर अर्जुन ने राजा सुशर्मा से यह वचन कहा हे सुशर्मन् ! मैं जानता हूँ, कि तू युद्ध में अत्यन्त श्रेष्ठ है और हमारा पूर्व से ही वैरी है। आज तेरे दुष्कर्मों का दारुण फल निकलने वाला है। तू उसके देखने को उद्यत हो जा। आज मैं तुमको अपने पूर्व में मरे हुए पितामहादि का दर्शन कराऊंगा ॥५०॥

एवं सञ्जल्पतस्तस्य बीभत्सोः शत्रुघातिनः ॥५१॥
श्रुत्वाऽपि परुषं वाक्यं सुशर्मा रथयूथपः ।
न चैनमब्रवीत्किञ्चिच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥५२॥

शत्रुनाशक अर्जुन के इस प्रकार कहने पर भी अनेक रथियों के यूथ का स्वामी, सुशर्मा-ये सब कुछ कठोर वचन सुनकर भी अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं बोला ॥५१-५२॥

अभिगम्याऽर्जुनं वीरं राजभिर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्तात्पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चैव सर्वतः ॥५३॥
परिवार्याऽर्जुनं संख्ये तव पुत्रैर्महारथः ।
शरैः सञ्छादयामास मेघैरिव दिवाकरम् ॥५४॥

यह महारथी अनेक राजाओं से युक्त होकर अर्जुन को आगे, पीछे, और उसको दोनों पार्श्वों (अगल बगल) से घेरकर तुम्हारे पुत्रों के साथ रण में इस तरह बाणों से ढकने लगा, जैसे-मेघों से सूर्य ढक लिया जाता है ॥५३-५४॥

ततः प्रवृत्तः सुमहान्संग्रामः शोणितोदकः ।
तावकानां च समरे पाण्डवानां च भारत ॥५५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे
सुशर्मार्जुनसमागमे चतुरशीतितमोऽध्यायः

हे भारत ! अब तुम्हारी सेना और पाण्डवों की सेना में घोर संग्राम होने लगा, जिसमें रुधिर की नदी बह निकली ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में सातवें दिन के युद्ध में सुशर्मा और अर्जुन के समागम का चौरासीवां अध्याय समाप्त हुआ।

पिच्चासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

स ताड्यमानस्तु शरैर्धनञ्जयः पदाहतो नाग इव श्वसन्बली
बाणेन बाणेन महारथानां चिच्छेद चापानि रणे प्रसह्य ॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! तुम्हारे महारथियों द्वारा आहत किया हुआ महाबली धनञ्जय, पदाहत सर्प की भांति श्वास लेने लगा। इसने बाण पर बाण छोड़कर प्रत्येक महारथी का धनुष, हठ-पूर्वक रण में काट डाला ॥१॥

सञ्छिद्य चापानि च तानि राज्ञां तेषां रणे वीर्यवतां क्षणेन
विव्याध बाणैर्युगपन्महात्मा निःशेषतां तेष्वथ मन्यमानः

इन महापराक्रमी तुम्हारे योद्धाओं के धनुषों को क्षण भर में काटकर महावीर अर्जुन ने रण में बाणों से एकदम उन वीरों

को भी बेंध दिया। यह अर्जुन तो इन राजाओं को इसी क्षण निःशेष कर देना चाहता था ॥२॥

निपेतुराजौ रुधिरप्रदिग्धास्ते ताडिताः शक्रसुतेन राजन्।
विभिन्नगात्राः पतितोत्तमाङ्गा गतासवश्छिन्नतनुत्रकायाः ॥३

हे राजन्! इन्द्र-पुत्र अर्जुन द्वारा ताड़ित हुए योद्धा, रुधिर में भीग २ कर रणभूमि में गिरने लगे। इनमें किसी के शरीर कट गए, किसी के मस्तक कट कर गिर गए, किसी के कवच के बींधे जाने पर शरीर बींधा गया। इस तरह प्राण-विहीन हुए अनेक योद्धा रणभूमि में लेट गए ॥३॥

महीङ्गताः पार्थबलाभिभूता विचित्ररूपा युगपद्विनेशुः।
दृष्ट्वा हतांस्तान्युधि राजपुत्रांस्त्रिगर्तराजः प्रययौ रथेन ॥४॥

अर्जुन के बल से परास्त किये हुए अनेक रूप धारी योद्धा, पृथिवी में पड़े हुए एकदम नष्ट हो गए। इन राजपुत्रों को इस भांति नष्ट होते देखकर त्रिगर्तराज अपने रथ से आगे बढ़ा ॥४॥

तेषां रथानामथ पृष्ठगोपा द्वात्रिंशदन्येऽभ्यपतन्त पार्थम्।
तथैव ते तं परिवार्य पार्थं विकृष्य चापानि महारवाणि ॥५॥
अवीवृषन्बाणमहौघवृष्ट्या यथा गिरिं तोयधरा जलौघैः।

इस त्रिगर्तराज के रथ के रक्षक, बत्तीस अन्य योद्धा भी कुन्ती-पुत्र अर्जुन पर टूट पड़े। इन्होंने अर्जुन को घेर कर अपने महान् घोष करने वाले धनुष खैंचे और ये उन पर बाण चढ़ाकर इस तरह बाण वर्षा करने लगे, जैसे—बादल पर्वत पर झड़ी लगा देते हैं ॥५॥

संपीड्यमानस्तु शरौघवृष्ट्या धनञ्जयस्तान्युधि जातरोषः ॥६॥
षष्ट्या शरैः संयति तैलधौतैर्जघान तानप्यथ पृष्ठगोपान् ।

इस बाण समूह की वर्षा से पीड़ित हुए अर्जुन ने रोष में भरकर रण में तेल से चिकने किये हुए साठ तीक्ष्ण बाण छोड़े, जिनसे इसने उन पृष्ठ रक्षकों को भी घायल कर दिया ॥६॥

रथांश्च तांस्तानवजित्य संख्ये धनञ्जयः प्रीतमना यशस्वी ॥७
अथाऽत्वरद्भीष्मवधाय जिष्णुर्बलानि राजन्समरे निहत्य ।

प्रसिद्ध २ इन महारथियों को जीतकर रणाङ्गण में यशस्वी अर्जुन प्रसन्न हुए खड़े थे । हे राजन् ! इस प्रकार सेना को नाश करके जयशील अर्जुन ने अब भीष्म के वध की इच्छा की ॥७॥

त्रिगर्तराजो निहतान्समीक्ष्य महात्मना तानथ बन्धुवर्गान् ॥
रणे पुरस्कृत्य नराधिपांस्ताञ्जगाम पार्थं त्वरितो वधाय ।

महावीर अर्जुन द्वारा मारे हुए बन्धु वर्गों को देखकर त्रिगर्त-राज, विख्यात २ महारथी राजाओं को साथ लेकर अर्जुन के वध के लिए आगे बढ़ा ॥८॥

अभिद्रुतं चाऽस्त्रभृतां वरिष्ठं धनञ्जयं वीक्ष्य शिखण्डिमुख्याः
अभ्युद्ययुस्ते शितशस्त्रहस्ता रिरक्षिषन्तो रथमर्जुनस्य ।

शिखण्डी आदि पाण्डवों के महारथी भी अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, अर्जुन को इन अनेक महारथियों से घिरा हुआ देखकर अर्जुन के रथ की रक्षा करने के लिए तीक्ष्ण शस्त्र हाथ में लेकर आगे बढ़े ॥९॥

पार्थोऽपि तानापततः समीक्ष्य त्रिगर्तराज्ञा सहितान्नृवीरान् ॥
विध्वंसयित्वा समरे धनुष्मान्गाण्डीवमुक्तैर्निशितैः पृषत्कैः ।

त्रिगर्तराज के साथ इन अनेक महारथियों को आता हुआ देखकर धनुर्धर अर्जुन ने गाण्डीव से छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से उनका विध्वंस उड़ा दिया ॥१०॥

भीष्मं यियासुर्युधि सन्ददर्श दुर्योधनं सैन्धवादींश्च राज्ञः ॥११
संवारयिष्णूनभिवारयित्वा मुहूर्तमायोध्य बलेन वीरः ।
उत्सृज्य राजानमनन्तवीर्यो जयद्रथादींश्च नृपान्महौजाः ॥
ययौ ततो भीमबलो मनस्वी गाङ्गेयमाजौ शरचापपाणिः ।

अर्जुन, भीष्मके ऊपर आक्रमण करने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु उन्होंने बीच में राजा दुर्योधन और सिन्धुराज जयद्रथ आदि को देखा, जो भीष्म की रक्षा में तत्पर थे। वीर-श्रेष्ठ अर्जुन ने थोड़ी देर इनसे युद्ध करके और भीष्म पर आक्रमण के रोकने वाले इन वीर और राजा दुर्योधन तथा जयद्रथादि को दूर करके महा-ओजस्वी, अनन्तपराक्रमी, मनस्वी, धनुष बाण धारण किये हुए, भीषण सेना सहित, अर्जुन ने रण में गङ्गा-पुत्र भीष्म पर आक्रमण कर ही दिया ॥११-१२॥

युधिष्ठिरश्च प्रबलो महात्मा समाययौ त्वरितो जातकोपः ॥
मद्राधिपं समभित्यज्य संख्ये स्वभागमाप्तं तमनन्तकीर्तिः ।
सार्धं समाद्रीसुतभीमसेनैर्भीष्मं ययौ शान्तनवं रणाय ॥१४

महाबली, महात्मा, अनन्तकीर्तिधारी राजा युधिष्ठिर, अपने भाग में लड़ने को प्राप्त हुए मद्रराज शल्य को छोड़कर, माद्री-पुत्र नकुल सहदेव और भीम के साथ क्रोध में भरे हुए बड़े वेग से उधर ही चले, जहां भीष्म युद्ध कर रहा था ॥१३-१४॥

तैः सम्प्रयुक्तैः स महारथाग्र्यैर्गङ्गासुतः समरे चित्रयोधी।
न विव्यथे शान्तनवो महात्मा समागतैः पाण्डुसुतैः समस्तैः

इन महारथियों में श्रेष्ठ वीरों से आहत होकर भी रण में विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले शान्तनु-पुत्र, महात्मा भीष्म, कुछ भी व्यथित नहीं हुए, यद्यपि इस समय सारे पाण्डव यहीं आकर युद्ध करने लगे थे ॥१५॥

अथैत्य राजा युधि सत्यसन्धो जयद्रथोऽत्युग्रबलो मनस्वी।
चिच्छेद चापानि महारथानां प्रसह्य तेषां धनुषा वरेण ॥१६

इसी समय सत्य पराक्रमी, उग्र बलधारी, मनस्वी, सिन्धुराज जयद्रथ भी यहीं आ पहुंचा। इसने अपने बाणों से बलपूर्वक इन महारथियों के धनुषों को काटना आरम्भ किया ॥१६॥

युधिष्ठिरं भीमसेनं यमौ च पार्थं कृष्णं युधि सञ्जातकोपः।
दुर्योधनः क्रोधविषो महात्मा जघान बाणैरनलप्रकाशैः।

क्रोध में भरे हुए महात्मा दुर्योधन भी अपने क्रोध रूपी विष को उगलते हुए, अग्नि के तुल्य बाणों से राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव और कुन्ती-पुत्र, अर्जुन को रण में आहत करने लगे ॥१७॥

कृपेण शल्येन शलेन चैव तथा विभो चित्रसेनेन चाऽऽजौ
विद्धाः शरैस्तेऽतिविवृद्धकोपैर्देवा यथा दैत्यगणैः समेतैः ।

हे विभो! कृपाचार्य, शल्य, शल तथा चित्रसेन द्वारा ये पाण्डव वीर, बाणों से अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो गए । इस समय कौरव वीरों, को बड़ा ही कोप चढ़ रहा था । ये इस तरह प्रहार कर रहे थे, जैसे इकट्ठे होकर दैत्य देवों को घायल कर रहे हों ।

छिन्नायुधं शान्तनवेन राजा शिखण्डिनं प्रेच्य च जातकोपः
अजातशत्रुः समरे महात्मा शिखण्डिनं क्रुद्ध उवाच वाक्यम्

शान्तनु-पुत्र भीष्म द्वारा शिखण्डी के धनुष के काट डालने पर धनुष हीन शिखण्डी को देखकर महात्मा, अजात-पुत्र राजा युधिष्ठिर को क्रोध चढ़ आया और वह क्रोध में भरा हुआ ही शिखण्डी से कहने लगा ॥१६॥

उक्त्वा तथा त्वं पितुरग्रतो मामहं हनिष्यामि महाव्रतं तम्
भीष्मं शरौघैर्विमलार्कवर्णैः सत्यं वदामीति कृता प्रतिज्ञा ॥
त्वया च नैनां सफलां करोषि देवव्रतं यन्न निहंसि युद्धे ।
मिथ्याप्रतिज्ञो भव माऽत्र वीर रक्षस्व धर्मं स्वकुलं यशश्च ॥

हे शिखण्डिन्! तुमने तो अपने पिता के सन्मुख यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं महाबली भीष्म को सूर्य के सदृश चमकीले अपनी बाणों से मार कर रहूंगा-यह सत्य कहता हूँ, परन्तु तुम तो अपने प्रतिज्ञा को पूर्ण कर ही नहीं रहे हो, जो युद्ध में अब तक भीष्म

को नहीं मार सके हो। हे वीर! तुम अपनी प्रतिज्ञा को मिथ्या न होने दो। तुम पराक्रम दिखाकर अपने धर्म, कुल, प्रतिष्ठा और यश की रक्षा करो ॥२०-२१॥

प्रेक्षस्व भीष्मं युधि भीमवेगं सर्वांस्तपन्तं मम सैन्यसङ्घान्।
शरौघजालैरतितिग्मवेगैः कालं यथा कालकृतं क्षणेन ॥२२

हे महाभाग! तुम युद्ध में भीषण वेगधारी भीष्म को जरा देखो-तो सही? जो मेरी सेना-समूह को अत्यन्त तीखे वेग वाले बाण-समूह से किस तरह नष्ट भ्रष्ट कर रहा है। जैसे—प्रलय काल में सबका संहार करना चाहता हो ॥२२॥

निकृत्तचापः समरेऽनपेक्षः पराजितः शान्तनवेन चाऽऽजौ
विहाय बन्धूनथ सोदरांश्च क्व यास्यसे नाऽनुरूपं तवेदम् ॥

आज शान्तनु-पुत्र भीष्म ने तुम्हारा धनुष काट दिया और तुम पराजित होकर भी इस पर कुछ ध्यान नहीं दे रहे हो। इस समय अपने बन्धु-बान्धव और सहोदर भाइयों को छोड़कर कहां भाग जाने की चेष्टा कर रहे हो-यह तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप नहीं है ॥२३॥

दृष्ट्वा हि भीष्मं तमनन्तवीर्यं भग्नं च सैन्यं द्रवमाणमेवम्
भीतोऽसि नूनं द्रुपदस्य पुत्र तथा हि ते मुखवर्णोऽप्रहृष्टः ॥

हे द्रुपदराज-पुत्र! तुम अनन्त-पराक्रमी भीष्म और इस प्रकार भागती हुई सेना को देखकर अवश्य कुछ भयभीत हो

गए हो। यही कारण है, कि तुम्हारे मुख की कान्ति भी फीकी और प्रसन्नता से रहित दिखाई देता है ॥२४॥

अज्ञायमाने च धनञ्जयेऽपि महाहवे सम्प्रसक्ते नृवीरे।
कथं हि भीष्मात्प्रथितः पृथिव्यां भयं त्वमद्य प्रकरोषि वीर

हे वीर! क्या तुमको यह पता नहीं है, कि महावीर धनञ्जय अर्जुन, इस महायुद्ध में भीष्म से युद्ध कर रहे हैं। तुम भी पृथिवी पर एक प्रसिद्ध वीर हो, फिर भीष्म से कैसे भयभीत हो रहे हो ॥२५॥

स धर्मराजस्य वचो निशम्य रूक्षाक्षरं विप्रलापानुबद्धम्।
प्रत्यादेशं मन्यमानो महात्मा प्रतत्वरे भीष्मवधाय राजन् ॥

हे राजन्! इस प्रकार फटकार पूर्ण, रूक्ष, धर्मराज के वचनों को सुनकर महात्मा शिखण्डी ने उन्हें उपदेश समझा और वह फिर भीष्म के वध में प्रयत्नशील हो गया ॥२६॥

तमापतन्तं महता जवेन शिखण्डिनं भीष्ममभिद्रवन्तम्।
निवारयामास हि शल्य एनमस्त्रेण घोरेण सुदुर्जयेन ॥२७॥

बड़े भारी वेग से भीष्म पर आक्रमण करते हुए शिखण्डी को देखकर राजा शल्य ने दुर्जय, घोर अस्त्र से शिखण्डी को वहीं रोक दिया ॥२७॥

स चाऽपि दृष्ट्वा समुदीर्यमाणमस्त्रं युगान्ताग्निसमप्रकाशम्
न सम्मुमोह द्रुपदस्य पुत्रो राजन्महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ॥२८॥

हे राजन्! शिखण्डी भी इन्द्र के समान पराक्रम रखने वाला था, इससे प्रलयाग्नि के तुल्य प्रकाशित, हुए अस्त्रों को भी देखकर द्रुपद-पुत्र शिखण्डी को कुछ भी आशङ्का नहीं हुई ॥२८॥

तस्थौ च तत्रैव महाधनुष्मान्शरैस्तदस्त्रं प्रतिबाधमानः ।
अथाऽऽददे वारुणमन्यदस्त्रं शिखण्डयथोग्रं प्रतिघातमस्य तदस्त्रमस्त्रेण विदार्यमाणं खस्थाः सुरा ददृशुः पार्थिवाश्च ।

यह महाधनुषधारी शिखण्डी भी बाणोंसे उनके अस्त्रों को रोकता हुआ, वहीं रणभूमि में डटा रहा। इसके अनन्तर शिखण्डी ने अब वारुणास्त्र उठाया, जिसका आघात बड़ा ही उग्र था। शिखण्डी ने इस वारुणास्त्र से कौरवों के आग्नेयास्त्र का प्रतीकार कर दिया, जिसको सारे राजा और आकाश स्थित देवों ने देखा।

भीष्मस्तु राजन्समरे महात्मा धनुश्च चित्रं ध्वजमेव चाऽपि
छित्त्वाऽनदत्पाण्डुसुतस्य वीरो युधिष्ठिरस्याऽजमीढस्य राज्ञः

हे राजन्! महात्मा भीष्म ने भी इस समर में अजमीढ़-वंशोत्पन्न, पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के धनुष और ध्वजा को काट गिराया और फिर वे बड़े उल्लास में गर्जना करने लगे ॥३०॥

ततः समुत्सृज्य धनुः सबाणं युधिष्ठिरं वीक्ष्य भयाभिभूतम्
गदां प्रगृह्याऽभिपपात संख्ये जयद्रथं भीमसेनः पदातिः ।

अब भीमसेन ने राजा युधिष्ठिर को भयभीत देखकर अपने धनुष बाण फैंक दिए और गदा लेकर रण में राजा जयद्रथ पर पैदल ही टूट पड़ा ॥३१॥

तमापतन्तं सहसा जवेन जयद्रथः सगदं भीमसेनम् ॥३२॥
विव्याध घोरैर्यमदण्डकल्पैः शितैः शरैः पञ्चशतैःसमन्तात्

इस प्रकार वेग से गदा लेकर झपटते हुए भीमसेन को अचानक देखकर राजा जयद्रथ ने भी सब ओर से बड़े तीक्ष्ण, यमराज के दण्ड के तुल्य भीषण, घोर पांच सौ बाणों से उसे आच्छादित कर दिया ॥३२॥

अचिन्तयित्वा स शरांस्तरस्वी वृकोदरः क्रोधपरीतचेताः ॥
जघान वाहान्समरे समन्तात्पारावतान्सिंधुराजस्य संख्ये ।

क्रोध से व्याप्त मन वाले, वेगशील, भीमसेन ने इन बाणों की कुछ भी अपेक्षा (परवाह) नहीं की । इसने रण में सिन्धुराज जयद्रथ के कबूतर की सी रंग वाले अश्वों को रण में मार गिराया ।

ततोऽभिवीक्ष्याऽप्रतिमप्रभावस्तवाऽऽत्मजस्त्वरमाणो रथेन
अभ्याययौ भीमसेनं निहन्तुं समुद्यतास्त्रो सुरराजकल्पः ।

इसके अनन्तर अद्वितीय प्रभावशाली, इन्द्र के समान वैभव रखने वाला, तुम्हारा पुत्र चित्रसेन, यह सब कुछ देखकर बड़े वेग से अस्त्र हाथ में उठाए हुए भीमसेन के वध के उद्देश्य से आगे बढ़ा ॥३४॥

भीमोऽप्यथैनं सहसा विनद्य प्रत्युद्ययौ गदया तर्जयानः ॥
समुद्यतां तां यमदण्डकल्पां दृष्ट्वा गदां ते कुरवः समन्तात्
विहाय सर्वे तव पुत्रमुग्रं पातं गदायाः परिहर्तुकामाः ॥६६॥
अपक्रान्तास्तुमुले सम्प्रमर्दे सुदारुणे भारत मोहनीये ।

हे भारत ! भीमसेन भी गर्जना और गदा से भयभीत करता हुआ इसके सामने आया। यमराज के दण्ड के तुल्य उठाई हुई, गदा को देखकर बहुत से कौरव तुम्हारे पुत्र, चित्रसेन को रण में अकेला छोड़कर इस गदा के प्रहार से बचने की इच्छा से उस घोर, दारुण, मोहित कर देने वाले युद्ध में भाग निकले ॥३५-३६॥

अमूढचेतास्त्वथ चित्रसेनो महागदामापतन्तीं निरीक्ष्य ॥
रथं समुत्सृज्य पदातिराजौ प्रगृह्य खड्गं विपुलं च चर्म ।
अवप्लुतः सिंह इवाऽचलाग्राज्जगामाऽन्यं भूमिप भूमिदेशम्

इस विशाल गदा को अपने ऊपर गिरती देखकर भी चित्रसेन सावधानी से रणभूमि में डटा रहा। इसने अश्व-विहीन अपना रथ छोड़ दिया और यह रण में विशाल खड्ग और ढाल को धारण करके पैदल ही इस प्रकार घूमने लगा, जैसे—पर्वत की चोटी से उतर कर सिंह अन्य भूमि के प्रदेश पर जा रहा हो ॥३८॥

गदाऽपि सा प्राप्य रथं सुचित्रं साश्वं ससूतं विनिहत्य संख्ये
जगाम भूमिं ज्वलिता महोल्का भ्रष्टाम्बराद्गामिव सम्पतन्ती

वह चमचमाती हुई गदा भी चित्रसेन के विचित्र रथ पर पड़ी, जो रण में सूत और अश्वों के सहित रथ का चूरा करके आकाश से भूमि पर गिरने वाले महान् उल्कापात की तरह भूमि में गिर गई ॥३९॥

आश्चर्यभूतं सुमहत्त्वदीया दृष्ट्वैव तद्भारत सम्प्रहृष्टाः ।
सर्वे विनेदुः सहिताः समन्तात्पुपूजिरे तव पुत्रस्य शौर्यम्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

हे भारत! तुम्हारे वीर इस महान् आश्चर्य को देखकर बड़े प्रसन्न हुए, कि इस समय भी चित्रसेन बच निकला। अब सारे वीरों ने एकदम सिंहनाद किया और तुम्हारे पुत्र चित्रसेन के पराक्रम की बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में सातवें दिन
के युद्ध का पिच्चासीवां अध्याय समाप्त हुआ।

छियासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

विरथं तं समासाद्य चित्रसेनं यशस्विनम्।
रथमारोपयामास विकर्णस्तनयस्तव ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इस समय यशस्वी चित्रसेन को रथ से हीन देखकर तुम्हारे पुत्र विकर्ण ने उसे अपने रथ पर चढ़ा लिया ॥१॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने तुमुले संकुले भृशम्।
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥२॥

इस प्रकार घोर घमसान भीषण युद्ध के प्रवृत्त होने पर शान्तनु-पुत्र, भीष्म शीघ्र ही राजा युधिष्ठिर पर टूट पड़ा ॥२॥

ततः सरथनागाश्वा समकम्पन्त सृञ्जयाः ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मेनिरे च युधिष्ठिरम् ॥३॥

इस समय सारे रथी, गजपति और अश्वारोही सृञ्जय वीर कांप उठे । उन्होंने राजा युधिष्ठिर को मृत्यु के मुख में ही फंसा हुआ समझा ॥३॥

युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
महेष्वासं नरव्याघ्रं भीष्मं शान्तनवं ययौ ॥४॥

कुरुवंशश्रेष्ठ, शक्तिशाली राजा युधिष्ठिर ने भी अपने दोनों भाई नकुल और सहदेव के साथ, महाधनुर्धर, नरव्याघ्र, शान्तनु-पुत्र भीष्म पर आक्रमण किया ॥४॥

ततः शरसहस्राणि प्रमुञ्चन्पाण्डवो युधि ।
भीष्मं सञ्छादयामास यथा मेघो दिवाकरम् ॥५॥

इस रण में पाण्डु-पुत्र धर्मराज ने सहस्रों की संख्या में बाण छोड़े होंगे, जिनसे मेघ से सूर्य की भांति भीष्म ढक सा दिया ।

तेन सम्यक्प्रणीतानि शरजालानि मारिष ।
प्रतिजग्राह गाङ्गेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥६॥

हे आर्य ! राजा युधिष्ठिर द्वारा फैंके हुए सैंकड़ों और हजारों की संख्या में बाण समूहों को गङ्गा-पुत्र भीष्म ने काट गिराया ।

तथैव शरजालानि भीष्मेणाऽस्तानि मारिष ।
आकाशे समदृश्यन्त खगमानां व्रजा इव ॥७॥

हे उदार-गुण-सम्पन्न ! राजन् ! इस समय जो बाण-जाल, भीष्म ने फैंका-वह आकाश में उड़ते हुए पक्षियों का सा समूह दिखाई दे रहा था ॥७॥

निमेषार्धेन कौन्तेयं भीष्मः शान्तनवो युधि ।
अदृश्यं समरे चक्रे शरजालेन भागशः ॥८॥

थोड़ी ही देर में शान्तनु-पुत्र भीष्म ने रण में कुन्ती-पुत्र धर्मराज को अपने बाण जाल से अदृश्य कर दिया है ॥८॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कौरव्यस्य महात्मनः ।
नाराचं प्रेषयामास क्रुद्ध आशीविषोपमम् ॥९॥

अब राजा युधिष्ठिर ने भी कुरुवंशश्रेष्ठ महावीर भीष्म के ऊपर क्रोध करके सर्प के समान तीक्ष्ण बाण छोड़ा ॥९॥

असम्प्राप्तं ततस्तं तु क्षुरप्रेण महारथः ।
चिच्छेद समरे राजन्भीष्मस्तस्य धनुश्च्युतम् ॥१०॥

हे राजन्! यह बाण धर्मराज के धनुष से निकला ही था, कि महारथी भीष्म ने अपने पास आने से पूर्व मार्ग में ही क्षुर के समान तीक्ष्ण बाण से उसे काट गिराया ॥१०॥

तं तु च्छित्वा रणे भीष्मो नाराचं कालसम्मितम् ।
निजघ्ने कौरवेन्द्रस्य हयान्काञ्चनभूषणान् ॥११॥

इस रण में राजा युधिष्ठिर के काल के समान भीषण इस बाण को काट कर भीष्म ने सुवर्ण के आभरणों से सुशोभित कुरुवंशश्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर के अश्वों को भी मार गिराया ॥११

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आरुरोह रथं तूर्णं नकुलस्य महात्मनः ॥१२॥

धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर, मृत अश्वों के रथ को छोड़कर महावीर नकुल के रथ पर बड़ी शीघ्रता से जा चढ़े ॥१२॥

यमावपि हि संक्रुद्धः समासाद्य रणे तदा ।
शरैः सञ्छादयामास भीष्मः परपुरञ्जयः ॥१३॥

शत्रु-पुर-विजयी भीष्म ने इस रण में नकुल और सहदेव को देख कर क्रोध के साथ उनको भी बाणों से आच्छादित कर दिया ॥१३॥

तौ तु दृष्ट्वा महाराज भीष्मबाणप्रपीडितौ ।
जगाम परमां चिन्तां भीष्मस्य वधकांक्षया ॥१४॥

हे महाराज ! भीष्म के बाण से पीड़ित अपने दोनों भाई नकुल और सहदेव को देखकर भीष्म के वध करने की राजा युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई ॥१४॥

ततो युधिष्ठिरो वश्यान्राज्ञस्तान्समचोदयत् ।
भीष्मं शान्तनवं सर्वे निहतेति सुहृद्गणान् ॥१५॥

अब राजा युधिष्ठिर ने अपने सुहृद्भूत अनुयायी नृपतियों को आज्ञा दी, कि तुम सारे इकट्ठे होकर शान्तनु-पुत्र भीष्म के वध का प्रयत्न करो ॥१५॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।
महता रथवंशेन परिवव्रुः पितामहम् ॥१६॥

इन राजाओं ने धर्मराज की आज्ञा सुनकर बहुत बड़ी रथियों की सेना लेकर भीष्म पितामह को घेर लिया ॥१६॥

स समन्तात्परिवृतः पिता देवव्रतस्तव ।
चिक्रीड धनुषा राजन्पातयानो महारथान् ॥१७॥

हे राजन्! तुम्हारा पिता देवव्रत भीष्म, इन महारथियों से घिरा हुआ, धनुषके खेल दिखाकर इन महारथियोंको गिराने लगा।

तं चरन्तं रणे पार्था ददृशुः कौरवं युधि ।
मृगमध्यं प्रविश्येव यथा सिंहशिशुं वने ॥१८॥

इस समय रण में कुरुश्रेष्ठ भीष्म को पाण्डवों ने इस तरह देखा, जैसे-मृगों के मध्य में घुस कर सिंह शिशु वन में क्रीड़ा कर रहा हो ॥१८॥

तर्जयानं रणे वीरांस्त्रासयानं च सायकैः ।
दृष्ट्वा त्रेसुर्महाराज सिंहं मृगगणा इव ॥१९॥

हे महाराज! रण में वीरों को फटकारते और बाणों से व्यथित करते हुए देखकर सारे वीर सैनिक सिंह को देखकर मृग गणों की तरह भयभीत हो गए ॥१९॥

रणे भारतसिंहस्य ददृशुः क्षत्रिया गतिम् ।
अग्नेर्वायुसहायस्य यथा कक्षं दिधक्षतः ॥२०॥

सारे क्षत्रिय-वीरों ने भरतवंश के सिंह भीष्म की लीला, वायु से सहायता प्राप्त, तृण की ढेरी को भस्म करते हुए अग्नि के समान देखी ॥२०॥

शिरांसि रथिनां भीष्मः पातयामास संयुगे।
तालेभ्यः परिपक्वानि फलानि कुशलो नरः ॥२१॥

इस रण में भीष्म इस तरह सैनिकों के शिर काट कर गिरा रहे थे, जैसे—ताल के वृक्षों से कुशल पुरुष, परिपक्व फलों को गिराता है ॥२१॥

पतद्भिश्च महाराज शिरोभिर्धरणीतले।
बभूव तुमुलः शब्दः पततामश्मनामिव ॥२२॥

हे महाराज! जब वीरों के शिर कट २ कर पृथिवी में गिर रहे थे-तो उनका इतना घोर शब्द होता था, कि मानो पत्थर बरस रहे हों ॥२२॥

तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥२३॥

इस प्रकार घमसान और भीषण युद्ध के प्रवृत्त होने पर सारी सेनाओं में जहां तहां बड़ी भारी मुठभेड़ होने लगी ॥२३॥

भिन्नेषु तेषु व्यूहेषु क्षत्रिया इतरेतरम्।
एकमेकं समाहूय युद्धायैवाऽवतस्थिरे ॥२४॥

यद्यपि अब दोनों ओर के व्यूह छिन्न-भिन्न हो गए-तो भी क्षत्रिय योद्धा, एक दूसरे को ललकार कर परस्पर युद्धकी इच्छा से वहीं डटे रहे ॥२४॥

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥२५॥

महारथी शिखण्डी ने भरतवंशी क्षत्रियों के पितामह, भीष्म के सन्मुख जाकर बड़े वेग से आक्रमण किया और कहा-जरा ठहरे रहो ? ॥२५॥

अनादृत्य ततो भीष्मस्तं शिखण्डिनमाहवे ।
प्रययौ सृञ्जयान्क्रुद्धः स्त्रीत्वं चिन्त्य शिखण्डिनः ॥

इस रण में भीष्म, शिखण्डी की अवहेलना सी करके क्रोध के साथ अन्य सृञ्जय वीरों में घुस गया, क्योंकि भीष्म शिखण्डी के स्त्रीत्व का ध्यान करते थे ॥२६॥

सृञ्जयास्तु ततो दृष्ट्वा हृष्टं भीष्मं महारणे ।
सिंहनादांश्च विविधांश्चक्रुः शङ्खविमिश्रितान् ॥२७॥

इस महारण में उल्लास में भरे हुए भीष्म को युद्ध करने को आता देखकर सृञ्जय वीर, बड़े प्रसन्न हुए और वे शङ्खध्वनि के साथ २ बड़ा भारी सिंहनाद करने लगे ॥२७॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
पश्चिमां दिशमासाद्य स्थिते सवितरि प्रभो ॥२८॥

हे प्रभो ! इस समय सूर्य पश्चिम दिशा में जा पहुंचा था, तो भी रथी और गजपतियों का परस्पर घमसान युद्ध प्रवृत्त हुआ ।२८।

धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः ।
पीडयन्तौ भृशं सैन्यं शक्तितोमरवृष्टिभिः ॥२९॥

महारथी, धृष्टद्युम्न और सात्यकि, शक्ति, तोमर आदि शस्त्रों की झड़ी लगा कर शत्रु-सेना को पीड़ित कर रहे थे ॥२९॥

शस्त्रैश्च बहुभी राजञ्जघ्नतुस्तावकान्रणे ।
ते हन्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ॥३०॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा न त्यजन्ति स्म संयुगम् ।
यथोत्साहं तु समरे निजघ्नुस्तावका रणे ॥३१॥

हे राजन्! ये अनेक प्रकार के शस्त्रों से तुम्हारे वीरों को मार रहे थे। हे भरतर्षभ! इस प्रकार प्रहारों से पीड़ित हुए भी तुम्हारे वीर, आर्य-बुद्धि के आश्रय से युद्ध-भूमि का परित्याग नहीं करते थे, किन्तु जितनी उनमें शक्ति थी, वे उत्साह-पूर्वक युद्ध ही कर रहे थे ॥३०-३१॥

तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्तावकानां महात्मनाम् ।
वध्यतां समरे राजन्पार्षतेन महात्मना ॥३२॥

हे राजन्! पर्षतवंशोत्पन्न धृष्टद्युम्न के प्रहारों से व्यथित हुए तुम्हारे वीरों में बड़ा ही भारी कोलाहल मच गया ॥३२॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां महारथौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पार्षतं प्रत्युपस्थितौ ॥३३॥

इस महान् करुण कोलाहल को सुनकर तुम्हारी सेना के वीर अवन्ति-राजकुमार विन्दानुविन्द, धृष्टद्युम्न के सन्मुख आए ॥३३॥

तौ तस्य तुरगान्हत्वा त्वरमाणौ महारथौ ।
छादयामासतुरुभौ शरवर्षेण पार्षतम् ॥३४॥

शीघ्रता से बाण फेंकने में समर्थ इन दोनों महारथी विन्द और अनुविन्द ने आकर धृष्टद्युम्न के अश्वों को मार दिया और उसको भी अपनी बाण-वर्षा से आच्छादित कर दिया ॥३४॥

अवप्लुत्याऽथ पाञ्चाल्यो रथात्तूर्णं महाबलः ।
आरुरोह रथं तूर्णं सात्यकेस्तु महात्मनः ॥३५॥

महाबली पञ्चालराजकुमार, धृष्टद्युम्न, शीघ्र ही अपने रथ से कूद कर महावीर सात्यकि के रथ पर जा चढ़े ॥३५॥

ततो युधिष्ठिरो राजा महत्या सेनया वृतः ।
आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात्स परन्तपौ ॥३६॥

अब राजा युधिष्ठिर, बड़ी भारी सेना लेकर रण में कुपित हुए शत्रु-विजयी, अवन्ति-राजकुमार विन्दानुविन्द पर झपटे ॥३६॥

तथैव तव पुत्रोऽपि सर्वोद्योगेन मारिष ।
विन्दानुविन्दौ समरे परिवार्याऽवतस्थिवान् ॥३७॥

हे उदार ! राजन् ! इस समय तुम्हारा पुत्र, दुर्योधन भी सब कुछ उद्योग करके रण में विन्द और अनुविन्द को घेर कर उनकी रक्षा करने लगे ॥३७॥

अर्जुनश्चापि संक्रुद्धः क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
अयोधयत संग्रामे वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥३८॥

क्षत्रियश्रेष्ठ, अर्जुन भी इस समय बड़े क्रुद्ध हो रहे थे । वे भी इस रण में एक ओर असुरों को वज्रपाणि इन्द्र की भांति शत्रुवीरों का हनन कर रहे थे ॥३८॥

द्रोणस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रस्य प्रियकृत्तव ।

व्यधमत्सर्वपञ्चालांस्तूलराशिमिवाऽनलः ॥३६॥

द्रोणाचार्य भी रण में कुपित हो रहे थे और सब प्रकार से तुम्हारे पुत्र के हित में तत्पर थे। यह भी जिस भांति अग्नि तूल (रूई) की ढेरी को भस्म कर देती है, उसी तरह पाञ्चाल वीरों को नष्ट कर रहा था ॥३६॥

दुर्योधनपुरोगास्तु पुत्रास्तव विशाम्पते ।

परिवार्य रणे भीष्मं युयुधुः पाण्डवैः सह ॥४०॥

हे विशाम्पते ! राजा दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्र रण में भीष्म को घेर कर उसकी रक्षा करते हुए युद्ध कर रहे थे ॥४०॥

ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे ।

अब्रवीत्तावकान्सर्वांस्त्वरध्वमिति भारत ॥४१॥

हे राजन् ! जब सूर्य कुछ लाल हो गया और छुपने ही वाला था, तो राजा दुर्योधन ने तुम्हारी सेना के सारे वीरों को आज्ञा दी, कि अब तुम शीघ्रता करो ॥४१॥

युध्यतां तु तथा तेषां कुर्वतां कर्म दुष्करम् ।

अस्तं गिरिमथाऽऽरूढे अप्रकाशति भास्करे ॥४२॥

इस प्रकार घमसान युद्ध करते हुए, युद्ध में दुष्कर कर्म करके वीरों के दिखाने पर सूर्य अस्ताचल पर पहुंच गया और सूर्य का प्रकाश नितान्त (बिल्कुल) बन्द हो गया ॥४२॥

प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।
गोमायुगणसङ्कीर्णा क्षणेन क्षणदामुखे ॥४३॥

इस समय रात्रि के आरम्भ में क्षण भर में रक्त प्रवाह की घोर नदी वह निकली, जिस पर गीदड़ आदि मांसहारी प्राणी घूमने लगे।

शिवाभिरशिवाभिश्च रुवद्भिर्भैरवं रवम् ।
घोरमायोधनं जज्ञे भूतसङ्घैः समाकुलम् ॥४४॥

भीषण शब्द करने वाली गीदड़ी (लोमड़ी) भयानक शब्द कर रही थीं। इस प्रकार के प्राणियों से व्याप्त हुआ रण-स्थान बड़ा ही घोर दिखाई देता था ॥४४॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च तथाऽन्ये पिशिताशिनः ।
समन्ततो व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥४५॥

इस समय सैंकड़ों हजारों की संख्या में चारों ओर राक्षस, पिशाच तथा अन्य मांसाहारी भूत प्रेतादि के गण दिखाई देने लगे

अर्जुनोऽथ सुशर्मादीन्राज्ञस्तान्सपदानुगान् ।
विजित्य पृतनामध्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति ॥४६॥

अर्जुन भी अनुचरों के सहित सुशर्मा आदि महारथियों को सेना के मध्य में जीतकर अपने शिविर में पहुंचे ॥४६॥

युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो भ्रातृभ्यां सहितस्तथा ।
ययौ स्वशिबिरं राजा निशायां सेनया वृतः ॥४७॥

रात्रि के आरम्भ होते ही अपनी सेना और भाइयों के साथ कुरुवंशश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर भी अपने शिविर में गए ॥४७॥

भीमसेनोऽपि राजेन्द्र दुर्योधनमुखान्रथान् ।
अवजित्य ततः संख्ये ययौ स्वशिविरं प्रति ॥४८॥

हे राजेन्द्र ! दुर्योधनादि मुख्य २ रथियों को रण में जीत कर भीमसेन भी अपने शिबिर में प्रविष्ट हुए ॥४८॥

दुर्योधनोऽपि नृपतिः परिवार्य महारणे ।
भीष्मं शान्तनवं तूर्णं प्रयातः शिबिरं प्रति ॥४६॥

इस महारण में राजा दुर्योधन भी शान्तनु-पुत्र भीष्म को घेरे हुए शीघ्रता के साथ अपने शिबिर की ओर चले ॥४६॥

द्रोणो द्रौणिः कृपः शल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ।
परिवार्य चमूं सर्वां प्रययुः शिबिरं प्रति ॥५०॥

द्रोण, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य, यदुवंश श्रेष्ठ कृतवर्मा आदि वीर अपनी २ सेना को लेकर अपने शिविरों (डेरों) में घुस गए ॥५०॥

तथैव सात्यकी राजन्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
परिवार्य रणे योधान्ययतुः शिबिरं प्रति ॥५१॥

हे राजन् ! इसी तरह सात्यकि और पर्षत-राजकुमार धृष्टद्युम्न भी अपनी २ सेना के योद्धाओं को लेकर अपने २ शिबिर में गए

एवमेते महाराज तावकाः पाण्डवैः सह ।
पर्यवर्तन्त सहिता निशाकाले परन्तप ॥५२॥

हे परन्तप ! महाराज ! इस प्रकार तुम्हारे पुत्र और पाण्डव रात हो जाने पर अपनी २ सेना लेकर एक साथ रणभूमिसे लौट पड़े ।

ततः स्वशिबिरं गत्वा पाण्डवाः कुरवस्तथा ।

न्यवसन्त महाराज पूजयन्तः परस्परम् ॥५३॥

हे महाराज ! कौरव और पाण्डव, अपने २ शिविरों में पहुंच कर विश्राम करने लगे। ये परस्पर एक दूसरे वीर के उत्साह की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे ॥५३॥

रक्षां कृत्वा ततः शूरा न्यस्य गुल्मान्यथाविधि ।

अपनीय च शल्यानि स्नात्वा च विविधैर्जलैः ॥५४॥

कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे संस्तूयन्तश्च बन्दिभिः ।

गीतवादित्रशब्देन व्यक्रीडन्त यशस्विनः ॥५५॥

हे राजन ! अब दोनों ओर के यशस्वी शूरवीर, अपनी २ रक्षा के निमित्त विधि-पूर्वक सेना की चौकी बैठाकर तथा बन्दी, मागधों आदि की स्तुति और उनके स्वतिवाचन सुनकर गान और बाजों के साथ अनेक भांति की क्रीड़ा करने लगे ॥५४-५५॥

मुहूर्तादिव तत्सर्वमभवत्स्वर्गसन्निभम् ।

नहि युद्धकथां काश्चित्तत्राऽकुर्वन्महारथाः ॥५६॥

थोड़ी देर तक रणस्थल स्वर्गस्थली सा बन गया । इस समय कोई भी महारथी युद्ध चर्चा करता दिखाई नहीं दिया ॥५६॥

ते प्रसुप्ते बले तत्र परिश्रान्तजने नृप ।

हस्त्यश्वबहुले रात्रौ प्रेक्षणीये बभूवतुः ॥५७

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमदिवसयुद्धावहारे षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

हे नृप ! दोनों सेना के वीर पुरुष थक रहे थे और यही दशा हाथी और अश्वों की थी। जब सब सो गए-तो दोनों सेनाओं का सन्नाटा देखने योग्य था ॥५७॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में सातवें दिन के युद्ध की समाप्ति का छियासीवां अध्याय समाप्त हुआ

—***—

सत्तासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

परिणाम्य निशां तां तु सुखं प्राप्ता जनेश्वराः ।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजेन्द्र ! रात को व्यतीत करके सारे राजा सुख से स्थित हुए। अब फिर कौरव और पाण्डव युद्ध के लिए रणाङ्गण में निकले ॥१॥

ततः शब्दो महानासीत्सैन्ययोरुभयोर्नृप ।
निर्गच्छमानयोः संख्ये सागरप्रतिमो महान् ॥२॥

हे नृप ! इस समय रण के लिए निकलती हुई दोनों सेनाओं में महान् समुद्र की गर्जना के तुल्य घोर शब्द होने लगा ॥२॥

ततो दुर्योधनो राजा चित्रसेनो विविंशतिः ।
भीष्मश्च रथिनां श्रेष्ठो भारद्वाजश्च वै नृप ॥३॥
एकीभूताः सुसंयत्ताः कौरवाणां महाचमूम् ।
व्यूहाय विदधू राजन्पाण्डवान्प्रति दंशिताः ॥४॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर राजा दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति रथियों में श्रेष्ठ भीष्म, भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य आदि सारे महारथी, कौरवों की विशाल सेना में बड़ी सावधानी से इकट्ठे हुए । युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए, महारथी, पाण्डवों के विजय करने को व्यूह रचना करने लगे ॥४॥

भीष्मः कृत्वा महाव्यूहं पिता तव विशाम्पते ।
सागरप्रतिमं घोरं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ॥५॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां भीष्मः शान्तनवो ययौ ।
मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः ॥६॥

हे विशाम्पते ! आपके पिता शान्तनु-पुत्र, भीष्म, वाहन रूपी तरङ्गों से युक्त, समुद्र के सदृश, महाभीम व्यूह बना कर, उसके अग्रभाग में स्वयं उपस्थित हुए। मालव, दक्षिणात्य और अवन्ति (उज्जैन) देश की सारी सेनायें इसमें सम्मिलित थी ॥५-६॥

ततोऽनन्तरमेवाऽऽसीद्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कुलिन्दैः पारदैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ॥७॥

इसके पीछे प्रतापी द्रोणाचार्य, कुलिन्द, पारद, क्षुद्रक और मालव वीरों की सेना को साथ लेकर स्थित हुए ॥७॥

द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान् ।
मगधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशाम्पते ॥८॥

हे विशाम्पते ! द्रोणाचार्य के पीछे बड़े उद्योगी प्रतापी राजा भगदत्त थे, जिनके साथ मगध कलिङ्ग देश के वीर और बहुत से पिशाच थे ॥८॥

प्राग्ज्योतिषादनु नृपः कौसल्योऽथ बृहद्बलः ।
मेकलैः कुरुविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः ॥९॥

राजा भगदत्त के पीछे कोसल देश का अधिपति राजा बृहद्बल थे, जो मेकल, कुरुविन्द और त्रैपुरी क्षत्रियों से समन्वित थे ॥९॥

बृहद्बलात्ततः शूरस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
काम्बोजैर्बहुभिः सार्धं यवनैश्च सहस्रशः ॥१०॥

राजा बृहद्बल के अनन्तर प्रस्थल-प्रदेश के स्वामी शूरवीर त्रिगर्त, बहुत से कम्बोज और यवन सेना को साथ लेकर चल रहे थे ॥१०॥

द्रौणिस्तु रभसः शूरस्त्रैगर्तादनु भारत ।
प्रययौ सिंहनादेन नादयानो धरातलम् ॥११॥

हे भारत ! त्रिगर्त के पीछे वेगशील, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा थे, जो अपने सिंहनाद से सारे पृथिवी मण्डल को कँपा रहे थे ॥

तथा सर्वेण सैन्येन राजा दुर्योधनस्तदा ।
द्रौणेरनन्तरं प्रायात्सोदर्यैः परिवारितः ॥१२॥

अश्वत्थामा के पीछे सारी सेना को लेकर अपने भाइयों के साथ राजा दुर्योधन चल रहे थे ॥१२॥

दुर्योधनादनु ततः कृपः शारद्वतो ययौ ।
एवमेष महाव्यूहः प्रययौ सागरोपमः ॥१३॥

राजा दुर्योधन के पीछे शरद्वान-पुत्र कृपाचार्य थे । यही महाव्यूह था, जो समुद्र की भांति उमड़ रहा था ॥१३॥

रेजुस्तत्र पताकाश्च श्वेतच्छत्राणि वा विभो ।
अङ्गदान्यत्र चित्राणि महार्हाणि धनूंषि च ॥१४॥

हे विभो ! इस सेना में उत्तम २ पताका श्वेतच्छत्र, विचित्र बाहुभूषण और महामूल्य के धनुष सुशोभित हो रहे थे ।

तं तु दृष्ट्वा महाव्यूहं तावकानां महारथः ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीत्तूर्णं पार्षतं पृतनापतिम् ॥१५॥

हे राजन् ! तुम्हरे पुत्रों के इस महाव्यूह को देखकर महारथी, राजा युधिष्ठिर, पर्षतवंशोद्भव सेनापति धृष्टद्युम्न से कहने लगे ।

पश्य व्यूहं महेष्वास निर्मितं सागरोपमम् ।
प्रतिव्यूहं त्वमपि हि कुरु पार्षत सत्वरम् ॥१६॥

हे महाधनुर्धर ! पर्षतवंशश्रेष्ठ ! धृष्टद्युम्न ! देखो ? कौरवों ने कैसा समुद्र के समान उछलने वाला व्यूह बनाया है , अब तुम भी इसके उत्तर में शीघ्र ही उत्तम सा व्यूह बनाओ ॥१६॥

ततः स पार्षतः क्रूरो व्यूहं चक्रे सुदारुणम् ।
शृङ्गाटकं महाराज परव्यूहविनाशनम् ॥१७॥

हे महाराज ! इतना सुनकर क्रूर वीर-धृष्टद्युम्न ने भी शीघ्र शत्रु के व्यूह के नाश कर देने वाला, शृङ्गाटक नाम का अत्यन्त दारुण व्यूह बनाया ॥१७॥

शृङ्गाभ्यां भीमसेनश्च सात्यकिश्च महारथः ।
रथैरनेकसाहस्रैस्तथा हयपदातिभिः ॥१८॥

इस व्यूह के सबसे प्रथम दो शृङ्गों पर कई सहस्र रथी, अश्वारोही और गजपतियों की सेना लेकर महारथी भीमसेन और सात्यकि थे ॥१८॥

ताभ्यां बभौ नरश्रेष्ठः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः
मध्ये युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥१९॥

पुरुषों में श्रेष्ठ, श्वेत अश्वों के वाहनों वाले, कृष्ण-सारथि अर्जुन इन दोनों के साथ ही सुशोभित हो रहे थे। इसके मध्य में राजा युधिष्ठिर और माद्री-पुत्र नकुल सहदेव थे ॥१९॥

अथोत्तरे महेष्वासाः सहसैन्या नराधिपाः ।
व्यूहं तं पूरयामासुर्व्यूहशास्त्रविशारदाः ॥२०॥
अभिमन्युस्ततः पश्चाद्विराटश्च महारथः ।
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥२१॥

इस व्यूह के शेष भागों पर महाधनुर्धर अनेक राजा अपनी २ सेना के साथ स्थित हुए। इन व्यूह रचना के विशारदों ने उस

व्यूह के सारे अङ्ग प्रत्यङ्गों को अच्छी तरह सुसज्जित कर दिया। इनके पीछे अभिमन्यु और अभिमन्यु के पीछे महारथी विराटराज थे। इनके पीछे प्रसन्नचित्त द्रौपदी-पुत्र और इनके पीछे राक्षसराज घटोत्कच थे ॥२१॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
अतिष्ठन्समरे शूरा योद्धुकामा जयैषिणः ॥२२॥

हे भारत ! इस प्रकार शूरवीर पाण्डव, अपने शृङ्गाटक नामक महाव्यूह को बनाकर रण में विजय की अभिलाषा से युद्ध करने को सन्नद्ध होकर खड़े हो गए ॥२२॥

भेरीशब्दैश्च विमलैर्विमिश्रैः शङ्खनिःस्वनैः ।
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैर्नादिताः सर्वतो दिशः ॥२३॥

उत्तम २ भेरी के शब्द, शंखध्वनि के साथ मिलकर सारी दिशाओं को शब्दायमान कर रहे थे तथा कहीं पर वीर लोग गर्जना, कहीं सिंहनाद और कहीं पर किलकारियां मार रहे थे।

ततः शूराः समासाद्य समरे ते परस्परम् ।
नेत्रैरनिमिषै राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥२४॥

हे राजन् ! दोनों सेनाओं के वीर रणभूमि में परस्पर एक दूसरे के सामने हुए। ये दोनों परस्पर एक दूसरे को अनिमेष (पलक न झपकाकर) दृष्टि से देखने लगे ॥२४॥

नामभिस्ते मनुष्येन्द्र पूर्वं योधाः परस्परम् ।
युद्धाय समवर्तन्त समाहूयेतरेतरम् ॥२५॥

हे मनुजेन्द्र ! अब प्रथम योद्धाओं ने परस्पर नाम ले २ कर वीरों को ललकारा और फिर युद्ध करने में प्रवृत्त हुए ॥२५॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥२६॥

इसके अनन्तर तुम्हारी सेना और पाण्डवों की सेना में परस्पर भयानक घोर युद्ध होने लगा । इसमें दोनों ओर के वीर दोनों पर घोर प्रहार कर रहे थे ॥२६॥

नाराचा निशिताः संख्ये सम्पतन्ति स्म भारत ।
व्यात्ताननाः भयङ्करा उरगा इव सङ्घशः ॥२७॥

हे भारत ! इस समय रण में तीक्ष्ण बाण चलने लगे। ये ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे मुख खोले हुए भयङ्कर सर्पों के संघ उड़े चले आते हों ॥२७॥

निष्पेतुर्विमलाः शक्त्यस्तैलधौताः सुतेजनाः ।
अम्बुदेभ्यो यथा राजन्भ्राजमानाः शतह्रदाः ॥२८॥

हे राजन् ! मेघों से चमचमाती बिजली के गिरने की भांति रणभूमि में तेल से तीक्ष्ण की हुई चमकती हुई शक्तियां चल रही थी ॥२८॥

गदाश्च विमलैः पट्टैः पिनद्धाः स्वर्णभूषितैः ।
पतन्त्यस्तत्र दृश्यन्ते गिरिशृङ्गोपमाः शुभाः ॥२९॥

सुवर्ण जटित, निर्मल रेशमी वस्त्र से वेष्टित, पर्वत के शृङ्ग के समान विशाल, सुन्दर गदाएँ इधर उधर भयानक आकार में गिर रही थीं ॥२६॥

निस्त्रिंशाश्च व्यदृश्यन्त विमलाम्बरसन्निभाः ।
आर्षभाणि विचित्राणि शतचन्द्राणि भारत ॥३०॥
अशोभन्त रणे राजन्पात्यमानानि सर्वशः ।

हे भारत ! विमल श्वेत वस्त्रों के समान, तीक्ष्ण खड्ग और ऋषभ (गैंडे बैल आदि) की चर्म से बनी हुई विचित्र ढाले ही युद्ध में चमक रही थीं। जिधर देखो ? उधर ही यह असियुद्ध दिखाई दे रहा था ॥३०॥

तेऽन्योन्यं समरे सेने युद्ध्यमाने नराधिप ॥३१॥
अशोभेतां यथा देवदैत्यसेने समुद्यते ।

हे नराधिप ! एक दूसरे से परस्पर युद्ध करती हुई दोनों सेनाएँ, देव और दैत्यों की सेना के समान सुशोभित हो रही थीं ।

अभ्यद्रवन्त समरे तेऽन्योन्यं वै समन्ततः ॥३२॥
रथास्तु रथिभिस्तूर्णं प्रेपिताः परमाहवे ।
युगैर्युगानि संश्लिष्य युयुधुः पार्थिवर्षभाः ॥३३॥

इस युद्ध में चारों ओर एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। रथियों ने इस महायुद्ध में अपने २ रथ बड़े वेग से चलाए । ये नृपतिवीर, रथों के जुओं को दूसरे के रथ के जुये से टकरा कर युद्ध कर रहे थे ॥३२-३३॥

दन्तिनां युध्यमानानां सङ्घर्षात्पावकोऽभवत् ।
दन्तेषु भरतश्रेष्ठ सधूमः सर्वतोदिशम् ॥३४॥

हे भरतश्रेष्ठ ! हाथियों के दूसरे हाथी के टक्कर मारने से दांतों से आग निकल रही थी, जिसकी सब दिशाओं में धूम फैल रही थी ॥३४॥

प्रासैरभिहताः केचिद्गजयोधाः समन्ततः ।
पतमानाः स्म दृश्यन्ते गिरिशृङ्गान्नगा इव ॥३५॥

प्रास नामक शस्त्रों से आहत हुए, गज-योद्धा, रणभूमि में चारों ओर इस तरह गिर रहे थे, जैसे-पर्वत की चोटी से वृक्ष गिर रहे हों ॥३५॥

पादाताश्चाऽप्यदृश्यन्त निघ्नन्तोऽथ परस्परम् ।
चित्ररूपधराः शूरा नखरप्रासयोधिनः ॥३६॥

पैदल सैनिक भी परस्पर आघात करते दिखाई दे रहे थे, जिनके विचित्र रूप थे और जो शूरवीर तीक्ष्ण प्रास आदि शस्त्रों को लेकर युद्ध में तत्पर थे ॥३६॥

अन्योन्यं ते समासाद्य कुरुपाण्डवसैनिकाः ।
अस्त्रैर्नानाविधैर्घोरै रणे निन्युर्यमक्षयम् ॥३७॥

कौरव और पाण्डवों के सैनिक एक दूसरे के पास पहुंच कर नाना प्रकार के घोर अस्त्रों से रण में एक दूसरे को यमराज के घर पहुंचा रहे थे ॥३७॥

ततः शान्तनवो भीष्मो रथघोषेण नादयन् ।
अभ्यागमद्रणे पार्थान्धनुःशब्देन मोहयन् ॥३८॥

इसके अनन्तर शान्तनु-पुत्र भीष्म रथ के नाद से दिशाओं को शब्दायमान करता और धनुष की टङ्कार से सारे पाण्डवों को मोहित बनाता हुआ रणभूमि में सन्मुख आया ॥३८॥

पाण्डवानां रथाश्चाऽपि नदन्तो भैरवं स्वनम् ।
अभ्यद्रवन्त संयत्ता धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥३९॥

पाण्डवों के रथी धृष्टद्युम्न आदि भी भैरव ध्वनि करते हुए बड़ी सावधानी से आगे बढ़े ॥३९॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
नराश्वरथनागानां व्यतिषक्तं परस्परम् ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धारम्भे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

हे भारत ! अब तुम्हारे पुत्र और पाण्डवों की सेना में युद्ध प्रवृत्त हुआ और नर, अश्व, रथ और हाथी, एक दूसरे से परस्पर भिड़ने लगे ॥४०॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में अष्टम दिन के युद्धारम्भ का सत्तासीवां अध्याय समाप्त हुआ

अट्ठासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

भीष्मं तु समरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! रण में कुपित हुए और सब ओर से सेना को व्यथित करते हुए, प्रचण्ड सूर्य के समान उदय होते हुए भीष्म को पाण्डव लोग सहन नहीं कर सके ॥१॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं मर्दयन्तं शितैः शरैः ॥२॥

जब गङ्गा-पुत्र भीष्म, अपने तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवी सेना का मर्दन कर रहे थे, तो धर्म-पुत्र की आज्ञा से सारी सेना एक-दम भीष्म पर टूट पड़ी ॥२॥

स तु भीष्मो रणश्लाघी सोमकान्सहसृञ्जयान् ।
पञ्चालांश्च महेष्वासान्पातयामास सायकैः ॥३॥

रण में प्रशंसा पाने वाले भीष्म, सोमक महाधनुर्धर सृञ्जय और पाञ्चालवीरों को अपने बाणों से आहत करके रणभूमि में गिराने लगे ॥३॥

ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह ।
भीष्ममेवाऽभ्ययुस्तूर्णं त्यक्त्वा मृत्युकृतं भयम् ॥४॥

भीष्म द्वारा मारे जाते हुए सोमक और पाञ्चालों ने मृत्यु का भय छोड़ कर किसी प्रकार साहस करके भीष्म पर वेग से आक्रमण कर दिया ॥४॥

स तेषां रथिनां वीरो भीष्मः शान्तनवो युधि ।
चिच्छेद सहसा राजन्बाहूनथ शिरांसि च ॥५॥

रथियों में श्रेष्ठ, शान्तनु-पुत्र भीष्म भी अब इन वीरों के बाहु और शिर काट २ कर रणभूमि में बिछाने लगे ॥५॥

विरथान्रथिनश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
पतितान्युत्तमाङ्गानि हयेभ्यो हयसादिनाम् ॥६॥

हे राजन्! आपके पिता देवव्रत भीष्म ने रथियों को रथ हीन कर दिया और वे अश्वों के ऊपर बैठे हुए ही अश्वारोहियों के शिरों को भूमि में गिराने लगे ॥६॥

निर्मनुष्यांश्च मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ।
अपश्याम महाराज भीष्मास्त्रेण प्रमोहितान् ॥७॥

हे महाराज! हमने रणभूमि में भीष्म के अस्त्र से अचेत पड़े हुए, मनुष्यों से हीन, पर्वत के समान पड़े हुए, अनेक अनेक हाथियों को देखा ॥७॥

न तत्राऽऽसीत्पुमान्कश्चित्पाण्डवानां विशाम्पते ।
अन्यत्र रथिनां श्रेष्ठाद्भीमसेनान्महाबलात् ॥८॥

हे विशाम्पते! इस समय पाण्डवों का कोई वीर, भीष्म-पितामह के सामने नहीं डट सका। हां! एक रथियों में श्रेष्ठ महाबली भीम वहीं डटे हुए थे ॥८॥

स हि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे ।
ततो निष्ठानको घोरो भीष्म भीमसमागमे ॥९॥
बभूव सर्वसैन्यानां घोररूपो भयानकः ।
तथैव पाण्डवा हृष्टाः सिंहनादमथाऽनदन् ॥१०॥

ये ही भीष्म के सन्मुख पहुंच कर उनका झटका सह रहे थे और बराबर के प्रहार कर रहे थे । इस भीष्म और भीम के घोर युद्ध में दोनों सेना में बड़ा ही घोर और भयानक आर्तनाद हो रहा था । इसी भाँति पाण्डव भी उत्साहित हुए बड़े आनन्द से सिंहध्वनि कर रहे थे ॥९-१०॥

ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।
भीष्मं जुगोप समरे वर्तमाने जनक्षये ॥११॥

राजा दुर्योधन भी अपने भाइयों को साथ लेकर इस जन विनाशकारी रण में भीष्म की रक्षा कर रहे थे ॥११॥

भीमस्तु सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनां वरः ।
प्रद्रुताश्वे रथे तस्मिन्द्रवमाणे समन्ततः ॥१२॥
सुनाभस्य शरेणाऽऽशु शिरश्चिच्छेद भारत ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ॥१३॥

महारथी भीम ने भीष्म का सारथि मार गिराया, इससे भीष्म के रथ के अश्व चमक कर इधर उधर भाग निकले । हे भारत ! इसी समय भीम ने झटपट तुम्हारे पुत्र सुनाभ का शिर क्षुर की धारवत् तीक्ष्ण बाण से काट डाला । यह मर कर भूमि में गिर गया ॥१२-१३॥

हते तस्मिन्महाराज तव पुत्रे महारथे ।
नाऽमृष्यन्त रणे शूराः सोदराः सप्त संयुगे ॥१४॥
आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः ।
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः ॥१५॥
पाण्डवं चित्रसन्नाहा विचित्रकवचध्वजाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामारिमर्दनाः ॥१६॥

हे महाराज ! तुम्हारे महारथी पुत्र सुनाभ के रण में मार लेने पर तुम्हारे सात अरिमर्दन पुत्र, आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक और सुदुर्जय विशालाक्ष, विचित्र २ कवच और ध्वजा धारण किये हुए, विचित्र शिरस्त्राण आदि पहिने हुए, पाण्डवों के साथ युद्ध की कामना से रणभूमि में आगे बढ़े ॥१५-१६॥

महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
नवभिर्वज्रसङ्काशैर्नमुचिं वृत्रहा यथा ॥१७॥

जिस प्रकार वृत्रनाशक इन्द्र ने नमुचि दैत्य को अपने वज्र से बींध दिया था-उसी तरह वज्र के तुल्य बाणों से महोदर ने रण में भीम को छेद डाला ॥१७॥

आदित्यकेतुः सप्तत्या बह्वाशी चाऽपि पञ्चभिः ।
नवत्या कुण्डधारश्च विशालाक्षश्च पञ्चभिः ॥१८॥
अपराजितो महाराज पराजिष्णुर्महारथम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्भीमसेनं महाबलम् ॥१९॥

हे महाराज ! आदित्यकेतु ने सत्तर, बह्वाशी ने पांच, कुण्ड-धार ने नव्वे, विशालाक्ष ने पांच तथा शत्रु-विजयी अपराजित ने बहुत से बाण छोड़ कर महाबली, महारथी भीमसेन को अत्यन्त आहत कर दिया ॥१८-१६॥

रणे पण्डितकश्चैनं त्रिभिर्बाणैः समार्पयत् ।
स तन्न ममृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे ॥२०॥

इस रण में आपके पुत्र पण्डितक ने भी भीमसेन के तीन बाण मारे । शत्रुओं द्वारा इस प्रकार किये गए प्रहार को रण में भीम सह नहीं सका ॥२०॥

धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ।
शिरश्चिच्छेद समरे शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥२१॥
अपराजितस्य सुनसं तव पुत्रस्य संयुगे ।
पराजितस्य भीमेन निपपात शिरो महीम् ॥२२॥

शत्रु-नाशक भीम ने अब बायें हाथ से धनुष खेंचा और झुकी पर्व वाले तीक्ष्ण बाण से सुन्दर नासिका वाले तुम्हारे पुत्र अपराजित का शिर काट लिया । इस प्रकार पराजित हुए अपराजित का शिर कट कर भूमि में गिर पड़ा ॥२१-२२॥

अथाऽपरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय सर्वलोकस्य पश्यतः ॥२३॥

इसके अनन्तर भीम ने दूसरे बाण से महारथी कुण्डधार को सारी सेना के देखते २ यमराज के लोक को प्रेषित किया ॥२३॥

ततः पुनरमेयात्मा प्रसन्धाय शिलीमुखम् ।
प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत ॥२४॥
स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम् ।
यथा नरं निहत्याऽऽशु भुजगः कालचोदितः ॥२५॥

हे भारत ! अपरिमित-बलशाली भीम ने रण में धनुष पर बाण चढ़ा कर तुम्हारे पुत्र पण्डितक पर छोड़ा । वह बाण, पण्डितक का वध करके पृथिवी तल में इस तरह घुस गया, जैसे-काल प्रेरित सर्प मनुष्य को मार कर शीघ्र घुस जाता है ॥२४-२५॥

विशालाक्षशिरश्छित्वा पातयामास भूतले ।
त्रिभिः शरैरदीनात्मा स्मरन्क्लेशं पुरातनम् ॥२६॥
महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विव्याध समरे राजन्स हतो न्यपतद्भुवि ॥२७॥

इसी तरह भीम ने विशालाक्ष का शिर भूतल पर गिरा दिया। फिर उत्साह-सम्पन्न भीम ने पुराने क्लेशों का स्मरण करके महाधनुर्धर महोदर के भी छाती में बाण मार कर विक्षत (घायल) कर दिया, जिससे वह मृत्यु को प्राप्त होकर भूमि में गिर गया ॥२६-२७॥

आदित्यकेतोः केतुं च छित्वा बाणेन संयुगे ।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिरश्चिच्छेद भारत ॥२८॥

हे भारत ! अब भीम ने प्रथम आदित्यकेतु की बाण से ध्वजा काट गिराई और फिर अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से उसका शिर भी काट डाला ॥२८॥

बह्वाशिनं ततो भीमः शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥२९॥

इसके अनन्तर क्रोध में भरे हुए भीम ने झुकी पर्ववाले बाण से बह्वाशी को यमराज के घर का अतिथि बना कर भेज दिया ॥२९॥

प्रदुद्रुवुस्ततस्तेऽन्ये पुत्रास्तव विशाम्पते ।
मन्यमाना हि तत्सत्यं सभायां तस्य भाषितम् ॥३०॥

हे विशाम्पते ! अब जो तुम्हारे अन्य पुत्र इस रण में स्थित थे, वे भाग निकले । उन्होंने समझ लिया, कि भीम अपनी सभा में की हुई प्रतिज्ञा को अवश्य सत्य करेगा ॥३०॥

ततो दुर्योधनो राजा भ्रातृव्यसनकर्शितः ।
अब्रवीत्तावकान्योधान्भीमोऽयं युधि वध्यताम् ॥३१॥

भाइयों के वध से क्लेशित हुए, राजा दुर्योधन ने तुम्हारी सेना के वीरों को आज्ञा दी, कि यह भीम है, तुम इसका शीघ्र वध करो ॥३१॥

एवमेते महेष्वासाः पुत्रास्तव विशाम्पते ।
भ्रातॄन्सन्दृश्य निहतान्प्रास्मरंस्ते हितद्वचः ॥३२॥
यदुक्तवान्महाप्राज्ञः क्षत्ता हितमनामयम् ।
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दिव्यदर्शिनः ॥३३॥

हे विशाम्पते ! मृत्यु से बचे हुए तुम्हारे अन्य महाधनुर्धर पुत्रों ने अपने भाइयों को मृत देखकर उन हितकारी और दुःख-नाशक वचनों का स्मरण किया, जो महाबुद्धिमान् विदुर ने सभा में

कहे थे। उन्होंने समझ लिया, कि दिव्यदर्शी विदुर के वचनों के पूरा होने का यही समय है ॥३२-३३॥

लोभमोहसमाविष्टः पुत्रप्रीत्या जनाधिप ।
न बुध्यसे पुरा यत्तत्तथ्यमुक्तं वचो महत् ॥३४॥

हे जनाधिप! आपने भी लोभ, मोह में आविष्ट होकर पुत्र की प्रीति से सत्य, हितकारी, पूर्वकाल में कहे हुए विदुर के वचन स्वीकार नहीं किए ॥३४॥

तथैव च वधार्थाय पुत्राणां पाण्डवो बली ।
नूनं जातो महाबाहुर्यथा हन्ति स्म कौरवान् ॥३५॥

अब तुम्हारे पुत्रों को वध के लिए ही यह महाबाहु, महाबली, पाण्डु-पुत्र भीमसेन उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है, तभी तो यह तुम्हारे सारे पुत्रों या कौरव सेना का नाश कर रहा है ॥३५॥

ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममासाद्य संयुगे ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो विललाप सुदुःखितः ॥३६॥

अब राजा दुर्योधन रण में फिर भीष्म के पास पहुंचे और बड़े दुःख से आविष्ट होकर क्लेश-पूर्वक विलाप करने लगे ॥३६॥

निहता भ्रातरः शूरा भीमसेनेन मे युधि ।
यतमानास्तथाऽन्येऽपि हन्यन्ते सर्वसैनिकाः ॥३७॥

हे पितामह! मेरे अनेक शूरवीर भाइयों को भीम ने युद्ध में मार गिराया तथा विजय का प्रयत्न करने वाले, अन्य भी सारे सैनिक मार डाले गए ॥३७॥

भवांश्च मध्यस्थतया नित्यमस्मानुपेक्षते ।
सोऽहं कुपथमारूढः पश्य दैवमिदं मम ॥३८॥

आप इतने मध्यस्थ (उदासीन) से हो रहे हो, कि हमारी बिल्कुल उपेक्षा कर रहे हो । मैं बड़े बुरे मार्ग में फंस गया हूं-दैव की इस विचित्र गति को देखना चाहिए ॥३८॥

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं पिता देवव्रतस्तव ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्साश्रुलोचनः ॥३९॥

इस क्रूर वचन को सुनकर तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म, आंखों में आंसू भर कर राजा दुर्योधन से कहने लगे ॥३९॥

उक्तमेतन्मया पूर्वं द्रोणेन विदुरेण च ।
गान्धार्या च यशस्विन्या तत्त्वं तात न बुद्धवान् ॥४०

हे तात ! मैंने, द्रोण, विदुर और यशस्विनी गान्धारी ने तुमसे प्रथम ही कहा था, परन्तु उस समय तुमने कुछ भी नहीं सुना ॥४०

समयश्च मया पूर्वं कृतो वै शत्रुकर्शन ।
नाऽहं युधि नियोक्तव्यो नाऽप्याचार्यः कथञ्चन ॥४१॥

हे शत्रुकर्शन ! मैंने तो तुमको अपना मत प्रथम ही प्रदर्शित कर दिया था, कि इस युद्ध में मुझे या आचार्य द्रोण को नियुक्त करना निष्फल सा है ॥४१॥

यं यं हि धार्तराष्ट्राणां भीमो द्रक्ष्यति संयुगे ।
हनिष्यति रणे नित्यं सत्यमेत द्ब्रवीमि ते ॥४२॥

धृतराष्ट्र-पुत्रों में से जिस २ को रण में भीम देखेगा-वह उसे मारे विना नहीं छोड़ेगा-यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥४२॥

स त्वं राजन्स्थिरो भूत्वा रणे कृत्वा दृढां मतिम् ।
योधयस्व रणे पार्थान्स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥४३॥

हे राजन् ! अब तुम स्थिर होकर अपनी बुद्धि को दृढ़ करके रण में युद्ध करो । यदि मृत्यु हुई तो क्या है-स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

न शक्याः पाण्डवा जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
तस्माद्युद्धे स्थिरां कृत्वा मतिं युद्ध्यस्व भारत ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सुनाभादिधृतराष्ट्रपुत्रवधे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

इन्द्रादि देव और असुरों को भी पाण्डवों को जीत लेना कठिन है । हे भारत ! तुम तो अपनी बुद्धि को स्थिर करके युद्ध करते रहो ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत भीष्मपर्वान्तर्गत भीष्मवधपर्व में सुनाभ आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों के वध का अठासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।